# विश्व स्वभाव एवं विश्व की कार्यप्रणाली धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से

गद्य-पद्य मय

-वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

## पुण्य – स्मरण

द्रव्य-सौजन्य/( ज्ञानदानी )
श्री रवीन्द्र सुमितसा खड़कपुरकर
श्री सुरेन्द्र सुमतिसा खड़कपुरकर
श्री नीलेश लालचन्दजी खड़कपुरकर
श्री पीयूष रवीन्द्र जी खड़कपुरकर
एवं
समस्त खड़कपुरकर परिवार, देऊळगाँव-राजा
जिला - बुलढाणा ( महाराष्ट्र ) - 443 204
मोबाईल : 9423145095 ( रवीन्द्र जैन )

ग्रंथांक : 230 प्रतियाँ : 500
संस्करण : 2014 मूल्य : 251/- रु.

## सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

1. धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, द्वारा - श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिर आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर ( राज. ) - 313001, मो.: 97832-16418
2. डॉ. नारायणलाल कछारा, सचिव, धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्र नगर, उदयपुर ( राज. ) - 313001
फोन नं.: 0294-2491422, मो.: 92144-60622
E-mail : nlkachhara@yahoo.com

# इस कृति का संक्षिप्त परिचय

( विश्व-स्वरूप एवं विश्व की कार्यप्रणाली )

**चाल : सुनो सुनो हे.....**

स्वयंभू सनातन स्वयंपूर्ण है, षट्द्रव्यमय यह पूर्ण विश्व।
अनन्त अक्षय गुणशक्ति पूर्ण, अकृत्रिम शाश्वत यह विश्व।।1।।
जीव पुद्गल व धर्म-अधर्म, आकाश काल युक्त यह विश्व।
स्व-स्व गुणयुक्त सहित होकर, वैश्विक कार्य/( प्रणाली )में होते युक्त।।2।।
अस्तित्व वस्तुत्व द्रव्यत्व प्रमेयत्व, अगुरुलधुत्व गुण व प्रदेशत्व।
मूर्तत्त्व अमूर्तत्त्व चेतन-अचेतनत्व, अनन्त गुण युक्त विशतत्त्व।।3।।
अस्तित्व गुण से युक्त होने से, हर द्रव्य होते अस्तित्त्ववान्।
इसी गुण से हर द्रव्य होते( हैं ), स्वयंभू सनातन व सत्यवान्।।4।।
वस्तुत्व गुण से युक्त होने से, अर्थक्रिया युक्त होते हैं षट्द्रव्य।
द्रव्यत्व गुण से युक्त होने से, परिणमन करते हैं षट्द्रव्य।।5।।
प्रमेयत्व गुण से युक्त होने से, जानने योग्य होते हैं षट्द्रव्य।
अगुरुलघुगुण के कारण से, द्रव्य व गुणों में न होता बिखराव।।6।।
प्रदेशत्वगुण के कारण से ही, छहों द्रव्य होते हैं आकारवान्।
मूर्तत्वगुण के कारण से ही, पुद्गल होते हैं रूपीत्ववान्।।7।।
अमूर्तत्वगुण के कारण से, पाँच द्रव्य होते हैं अरूपवान्।
स्पर्श रस गन्ध वर्ण से रहित, धर्माधर्मकाल आकाश जीव।।8।।
चेतन गुण से युक्त होने से, जीव होते हैं ज्ञान व दर्शनवान्।
चेतन रहित होते पाँचों ही द्रव्य, संवेदना रहित अचेतवान्।।9।।
धर्म द्रव्य गति सहायक होता है, गतिशील जीव व पुद्गल हेतु।
अधर्म स्थिति सहायक होता है, स्थितिशील जीव व पुद्गल हेतु।।10।।
आकाश द्रव्य सहायक होता है, अवकाश हेतु छहों द्रव्यों के।

काल द्रव्य तो सहायक होता है, परिणमन हेतु छहों द्रव्यों के ।।11 ।।
चारों द्रव्य है उदासीन निमित्त, उपादान कारण होते सभी ( ही ) द्रव्य ।
अन्तरंग व बहिरंग कारण सहित, कार्य करते हैं प्रत्येक द्रव्य ।।12 ।।
परस्पर-उपग्रही होते हैं जीव, सहअस्तित्व व विकास हेतु ।
गुरु-शिष्य व दाता-पात्र रूप में, जीने से लेकर मोक्ष के हेतु ।।13 ।।
पुद्गलमय यह भौतिक जगत्, अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक ।
तन मन धन व जीवन-मरण, जलवायु मृदादि वातावरण ।।14 ।।
परस्पर-उपकारी होते हैं द्रव्य, जिससे बना यह सम्पूर्ण विश्व ।
द्रव्यों के परिणमन व कार्य ही होता, विश्व का परिणमन व कार्य ।।15 ।।
एक भी द्रव्य के अभाव से न होगा, विश्व का अस्तित्व तथाहि कार्य ।
विश्व के अस्तित्व व कार्य के बिना, सर्वशून्यता का होगा प्रसंग ।।16 ।।
केवल कोई एक द्रव्य अथवा, पुद्गल/( भौतिक ) से न बन सकेगा विश्व ।
सर्वथा शून्य या एक द्रव्य से, षट्द्रव्यमयी न बन सकेगा विश्व ।।17 ।।
हर द्रव्य में स्थित अगुरुलघु गुण, द्रव्य से द्रव्यान्तर न होने देता ।
गुण से गुणान्तर भी न होने देता, द्रव्य व गुणों को नियन्त्रित करता ।।18 ।।
देव दानव या गन्धर्व राक्षस, तीर्थंकर गणधर या वैज्ञानिक ।
किसी भी उपायों से न कर सकते, किसी भी द्रव्य के उत्पाद या नाश ।।19 ।।
ये सभी रहस्य सर्वज्ञ ही जानते, आचार्यों ने किया है ग्रन्थ निबद्ध ।
दार्शनिक या वैज्ञानिक लेखक, परमसत्य से अभी तक वंचित ।।20 ।।
इन्द्रियमन व यंत्रों के द्वारा भी, परम सत्य का न होता है ज्ञान ।
परम सत्य तो सर्वज्ञ ज्ञानगम्य, जो है आत्मोत्थ अनन्त ज्ञान ।।21 ।।
दार्शनिक व वैज्ञानिक जन अभी, प्रयासरत हैं विश्व विज्ञान हेतु ।
अतएव ही 'कनकनन्दी' भी, कृति संकल्प किया ज्ञान के हेतु ।।22 ।।

हिरणमगरी से.11, दिनांक 07/08/2014, मध्याह्न 12.52

# विनयांजलि

मानव मन प्रारम्भ से ही जिज्ञासु रहा है। वह जानना चाहता है कि यह विश्व जो दिखाई देता है, कैसा है? विश्व का बहुत बड़ा भाग अदृश्य है वह कैसा होगा? आधुनिक विज्ञान की आशातीत प्रगति के बाद भी आज विश्व का स्वरूप एक पहेली बना हुआ है। जैन दर्शन में लोक का वर्णन प्राप्त होता है, परन्तु वह विज्ञान को ज्ञात विश्व से बहुत भिन्न है। वैज्ञानिक विश्व गतिशील और परिवर्तनशील है और जैन विश्व अपेक्षाकृत द्रव्य दृष्टि से स्थिर और स्थायी है। जैन विश्व की अवधारणा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्धान्त से कथंचित् परिणमनशील है। अत: इसके पुनर्विचार की आवश्यकता प्रतीत होती है।

वैज्ञानिक विचारधारा प्रकृतिवादी है, इसमें पदार्थ ही प्रकृति का घटक तत्व है। पदार्थ, आकाश और काल मिलकर विश्व का निर्माण करते हैं। जैन दर्शन के अनुसार लोक में छः द्रव्य हैं - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव द्रव्य के अस्तित्व को अभी तक वैज्ञानिक स्वीकृति नहीं मिली है। दार्शनिक स्तर पर विश्व के स्वरूप की नई अवधारणाएँ हैं। अनेक महापुरुषों और दार्शनिकों के भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये हैं। यह वैचारिक भिन्नता हमारे मन में संदेह पैदा करती है। संदेह की स्थिति में कोई निश्चित समाधान मिलना कठिन हो जाता है, परन्तु इसमें कोई 'संदेह' नहीं कि संदेह होता है। गौतम को भी आत्मा के अस्तित्व पर संदेह था। महावीर ने कहा, यह संदेह ही आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण है, क्योंकि संदेह आत्मा में ही होता है, शरीर में नहीं। अत: विज्ञान चाहे जीव तत्त्व को न माने उसका अस्तित्व असंदिग्ध है।

विज्ञान के तीन तत्त्वों से बने विश्व की विस्तृत खोज की है। सूर्य, ग्रह, चन्द्र, तारे, नक्षत्र, निहारिका आदि के बारे में आज बहुत कुछ जानकारी प्राप्त है तथा उनके इतिहास और स्थान के बारे में भी जानकारी एकत्रित की गई है। परन्तु इस ज्ञान में अनुमान का बहुत बड़ा अंश है और विश्व के बारे में कोई निश्चित अवधारणा अभी तक नहीं बन पाई है। जैन दर्शन में तीन लोक - अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक का वर्णन प्राप्त होता है और उनमें रहने वाले जीवों

की जानकारी दी गई है। एक अनुमान के अनुसार विज्ञान को ज्ञात विश्व जैन दर्शन का मध्यलोक है। यह इंगित करता है कि विज्ञान के लिए विश्व के बारे में अभी बहुत जानना शेष है।

वैज्ञानिक ज्ञान के दो आधार हैं - प्रयोग और प्रमेय। प्रायोगिक ज्ञान अपेक्षाकृत संदेश रहित होता है, परन्तु प्रमेय आधारित ज्ञान उसकी मान्यताओं पर निर्भर करता है जो मानव मन की सीमाओं से बंधी हुई है। इस प्रकार वैज्ञानिक ज्ञान में परिवर्तन की संभावना बनी रहती है। जैन दर्शन तीर्थंकर के केवलज्ञान आधारित माना गया है, जिसमें संदेह का कोई स्थान नहीं। परन्तु, तीर्थंकर महावीर का ज्ञान हमें आज प्राप्त है या नहीं, इसमें संदेह हो सकता है। बहुत से ग्रंथों की रचना, जिनमें विश्व का वर्णन है, छद्मस्थ आचार्यों द्वारा की गई है और यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन ग्रंथों में आचार्यों के अपने विचार नहीं हैं। आचार्यों के पास व्यापक विश्व के बारे में आगम तर्क और अनुमान के अतिरिक्त अन्य कोई जानने का साधन नहीं था। अत: जैन दर्शन में प्राप्त विश्व के वर्णन और उसके इतिहास के बारे में संदेह रहित अवधारणा बनाना कठिन है। ऐसा माना जा सकता है कि जितने अंश तक उसमें केवलज्ञान का भाग है, उतने अंश तक वर्णन और इतिहास असंदिग्ध है। इसलिये जैन दर्शन के विश्व और वैज्ञानिक विश्व की तुलना की अपार संभावनाएँ हैं और इस प्रकार के अध्ययन से सत्य तक पहुँचने की आशा की जा सकती है।

विश्व की कार्यप्रणाली क्या है और उसे कौन निर्धारित करता है ? विज्ञान के अनुसार पदार्थ के नियम ही कार्यप्रणाली निर्धारित करते हैं। बहुत से नियमों की खोज हो चुकी है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सभी नियम खोज लिए गए हैं। द्रव्य के अनन्त गुण होते हैं और सभी गुणों को जानना मानव मन के लिए संभव नहीं है। अत: विज्ञान यह दावा नहीं करता और न कर सकता है कि उसे विश्व की कार्यप्रणाली के बारे में सब कुछ ज्ञात है। दार्शनिक स्तर पर अनेक विचारधाराएँ हैं, जिन्हें मोटे तौर पर दो श्रेणी में विभाजित किया जा सकता है - ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी। ईश्वरवादी विचारधारा के अनुसार ईश्वर ही

इस विश्व का सृष्टिकर्त्ता, नियंता और संचालक है। इस विचारधारा में कई जगह पदार्थ के गुणों को भी स्थान दिया गया है, परन्तु ईश्वर को सर्वशक्ति सम्पन्न माना गया है जो पदार्थ के गुणों को भी नियंत्रित कर सकता है। जैन दर्शन अनीश्वरवादी है और यह घोषणा करता है कि इस विश्व को बनाने वाली और संचालन करने वाली कोई शक्ति नहीं है। यह विश्व अनादि, अकृत और स्वयंभू है। यह विश्व इसके घटक तत्त्वों के नियमों और उनमें होने वाली प्रतिक्रिया से संचालित होता है। इस प्रक्रिया में कोई भी शक्ति न तो अवरोध पैदा कर सकती है और न ही उसे बदल सकती है।

जैन दर्शन के छह द्रव्यों में दो जीव और पुद्गल सक्रिय हैं और परस्पर प्रतिक्रिया करते हैं। शेष चार द्रव्य निष्क्रिय है और आपस में तथा अन्य द्रव्यों से प्रतिक्रिया नहीं करते, परन्तु परस्पर सहयोगी बनते हैं। जीव और पुद्गल की प्रतिक्रिया ही सांसारिक जीवन का कारण है। इस प्रतिक्रिया को जैन दर्शन में कर्म सिद्धान्त से समझाया गया है। कर्म सिद्धान्त सांसारिक जीव की प्रक्रिया का नियम है और जीव की संसार में गति, स्थिति तथा व्यवहार इसी सिद्धान्त से तय होते हैं। जीव और पुद्गल यद्यपि अपने-अपने नियमों से परिणमन करते हैं तथापि वे एक-दूसरे के परिणमन में निमित्त कारण बनते हैं। जब तक जीव और पुद्गल का संयोग रहता है, सांसारिक परिणमन होता रहता है। दोनों का वियोग होने पर वे स्वतंत्र हो जाते हैं, फिर केवल स्वाभाविक परिणमन होता है, वैभाविक नहीं। शरीर के निर्माण में जीव भी कारण है जिसको विज्ञान नहीं मानता। विज्ञान शरीर की समस्त क्रियाओं की व्याख्या भौतिक नियमों के आधार पर करने का प्रयास करता है, जो अपूर्ण है। शरीर और उसकी क्रियाओं को समझने के लिए जीव और पुद्गल दोनों के नियमों को जानना आवश्यक है, इसके बिना सम्पूर्ण समझ संभव नहीं।

एक जीव दूसरे जीव के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता, हर जीव स्वतंत्र है। जीव स्वयं का कर्त्ता है, अन्य का नहीं। अपने-अपने कर्मों के अनुसार जीव की गति होती है, इसके लिए कोई अन्य जिम्मेदार नहीं। अतः जैन दर्शन में विश्व

निर्माता ईश्वर का कोई स्थान नहीं है। जीव जैसा करता है, उसी का परिणाम वह भुगतता है। जीव अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है, ईश्वर या अन्य कोई जीव नहीं। जैन दर्शन में यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रत्येक जीव को ईश्वर के समकक्ष खड़ा करती है, प्रत्येक जीव में परमात्मा बनने की क्षमता है।इस प्रकार जैन दर्शन में अनन्त ईश्वर है, हर जीव कर्मों से छुटकारा पाकर परमात्मा बन जाता है।

कर्म से बंधे सांसारिक जीव का ज्ञान सीमित होता है। सीमित ज्ञान से वह पूर्णता को प्राप्त नहीं होता। अपूर्णता से जिज्ञासा बनी रहती है और वह पूर्णता की ओर बढ़ने का प्रयास करता है।यह प्रयास ही जीवन में रस पैदा करता है और इच्छाओं को बनाये रखता है।पूर्णता प्राप्त होने पर रस नहीं आनन्द की अनुभूति होती है और सांसारिक जीवन का अंत हो जाता है। केवलज्ञान अवस्था में जीव पूर्णता का स्वाद चखता है जिसकी अंतिम परिणति सिद्ध अवस्था है। सिद्ध अवस्था संसार से परे है, वहाँ कोई रस नहीं, कोई इच्छा नहीं, कोई प्रक्रिया नहीं, केवल आनन्द है, सत्‌चित्‌ आनन्द। यह समयातीत अवस्था है, वर्तमान, भूत, भविष्य में कोई अन्तर नहीं, केवल वर्तमान और वर्तमान।

**आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव की प्रस्तुत पुस्तक विश्व के उपरोक्त और अनेक स्वरूप पर विचार करती है। आचार्य श्री अनेकांतवादी हैं और वे विभिन्न दृष्टिकोण से विश्व के स्वरूप और उसकी कार्यप्रणाली को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं।आचार्य श्री जैन दर्शन ही नहीं, अन्य दर्शनों और विज्ञान के भी पारंगत ज्ञाता हैं और उन्होंने जिज्ञासु पाठकों के लिए समस्त सामग्री एक जगह प्रस्तुत कर उनका बहुत उपकार किया है जिसके लिए विज्ञजन सदैव उनके ऋणी रहेंगे। यही कामना है कि गुरुदेव की लेखनी इसी प्रकार चलती रहे और वे पाठकों का ज्ञानवर्द्धन करते रहें।**

श्रद्धालु

दिनांक : 14.08.2014 डॉ. नारायण लाल कछारा

# प्रस्तावना

## वैज्ञानिक एवं जैन सिद्धान्त की दृष्टि से ब्रह्माण्ड की कार्यप्रणाली

**डॉ. पारसमल अग्रवाल**

भूतपूर्व वैज्ञानिक, अमेरिका

प्रकृति में आत्मा, पुद्गल आदि छह प्रकार के द्रव्य हैं। किसी भी मूलभूत द्रव्य को न तो कोई बना सकता है और न कोई नष्ट कर सकता है। सुनार सोने का रूपान्तरण करने में निमित्त हो सकता है, किन्तु सोने का एक दाना भी नहीं बना सकता। चाँद, सूरज, तारे, धरती आदि कैसे बने? इस प्रश्न का उत्तर आधुनिक विज्ञान जो देता है व प्राचीन ग्रंथों से जो प्राप्त होता है, इनमें भिन्नता है। किन्तु जैन दर्शन व आधुनिक विज्ञान में यह समानता स्पष्ट दिखाई देती है कि दोनों सृष्टि के चलने में प्रकृति के नियमों को ही स्वीकारते हैं।

**आचार्य श्री कनकनन्दी जी द्वारा रचित इस ग्रंथ को पढ़ने वालों के मस्तिष्क में एक प्रश्न यह आ सकता है कि इस तरह की जानकारी का हमारे जीवन में क्या उपयोग हो सकता है? इस प्रश्न के कई उत्तर हो सकते हैं। इस पुस्तक से कुछ जिज्ञासु आगे अनुसंधान के लिये प्रेरणा ले सकते हैं। कुछ जिज्ञासु सृष्टि की विशालता को जानकर अपने करोड़ों के संग्रह का अभिमान कम कर सकते हैं। कुछ जिज्ञासु अपने को आत्मा समझकर दीन-हीन, गरीब-अमीर मानना छोड़ सकते हैं। कुछ जिज्ञासु आचार्य अमृतचन्द्र के निम्नांकित समयसार कलश का मर्म समझकर सुख एवं शान्ति का मार्ग प्राप्त कर सकते हैं।**

**बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनंतशक्तिः स्वयं**
**तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम्।**
**स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते**
**स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितःक्लिश्यते।।212।।**

यहाँ आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं कि अन्य वस्तु, अन्य वस्तु के भीतर प्रवेश नहीं करती; समस्त वस्तुएँ अपने-अपने स्वभाव में नियत हैं। ऐसा होने पर भी मोही जीव अपने स्वभाव से चलित होकर आकुल होता हुआ क्यों क्लेश पाता है?

विद्वानों के बीच एक प्रश्न यह भी अक्सर चर्चा का विषय बनता है कि एक

द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर सकता है या नहीं। यहाँ इसकी भी चर्चा करना उपयोगी हो सकती है, क्योंकि विश्व व्यवस्था में तत्वार्थसूत्र में वर्णित सूत्र -

**परस्परोपग्रहो जीवानां - 5.21**

का भी महत्त्व है व समयसार गाथा 372 का भी महत्त्व है।

**अण्णदविएण अण्णदवियस्स णो कीरए गुणुप्पाओ।**
**तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण।।372।।**

यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द यह कहना चाहते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में किसी भी नवीन गुण को पैदा नहीं कर सकता है। इसी तरह गाथा 104 में भी आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि -

**दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पोग्गलमयम्हि कम्मम्हि।**
**तं उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता।।104**

यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द यह कहना चाहते हैं कि आत्मा किसी पुद्गल कर्म के द्रव्य व गुण उत्पन्न नहीं कर सकता है तो फिर वह पुद्गल का कर्त्ता कैसे हो सकता है?

**भौतिक विज्ञान में सूत्र - परस्परोपग्रहो जीवानां का मर्म**

परस्पर विभिन्न द्रव्यों का रिश्ता यत्र-तत्र-सर्वत्र नजर आता है। फिर भी एक भौतिक विज्ञान का उदाहरण यहाँ देना उपयोगी हो सकता है। एक भवन की छत से यदि एक पत्थर ( चाहे 10 ग्राम का या 10 किलो का, कुछ अन्य वजन का ) आइस्ता से नीचे की तरफ छोड़ दिया जाए तो वह नीचे कितनी देर में पहुँचेगा? इसका उत्तर यह है कि यदि जमीन से छत की ऊँचाई 16 फीट है तो लगभग एक सैकण्ड लगेगा, 64 फीट है तो लगभग 2 सैकण्ड, 144 फीट है तो लगभग 3 सैकण्ड, 256 फीट है तो लगभग 4 सैकण्ड लगेंगे। यह गणना गुरुत्वाकर्षण बल एवं अन्य सामान्य हायर सैकण्डरी कक्षा में पढ़ाये जाने वाले गति के नियमों के आधार पर की गई है। इन आँकड़ों की पुष्टि प्रयोग करके भी देखी जा सकती है। यहाँ तक आने में भौतिक विज्ञान का एक अनमोल सिद्धान्त काम में लिया गया है कि पृथ्वी का एक-एक कण उस पत्थर पर गुरुत्वाकर्षण

बल लगा रहा है। भौतिक विज्ञान के अनुसार यदि यह पृथ्वी हल्की होती तो फिर यही पत्थर जमीन पर थोड़ा धीमे गिरता; यदि पृथ्वी इतनी ही विशाल ( व्यास - 12800 किलोमीटर ) किन्तु चौथाई वजन वाली होती तो पत्थर को जमीन पर आने में ज्यादा समय लगता; यदि छत जमीन से 16 फीट ऊँची है तो इस नई धरती पर एक सैकण्ड के बदले दो सैकण्ड लगते व 256 फीट की ऊँचाई होने पर 4 सैकण्ड के बदले 8 सैकण्ड लगते।

भौतिक विज्ञान में यह सब तथ्य हाथ में रखते हुए आंवले की तरफ स्पष्ट है। यह उदाहरण स्पष्टतया यह बताने के लिये दिया गया है कि जिस तरह पृथ्वी का एक-एक कण गिरते हुए पत्थर आदि को प्रभावित करता है। उसी तरह सूर्य का एक-एक कण पृथ्वी को प्रभावित करता है। सूर्य का वजन धूप आदि विकिरण निकलने के कारण कम होता जा रहा है व इसका असर पृथ्वी पर होगा।( 5-10 हजार वर्षों में इसका प्रभाव न के बराबर होगा )।

समयसार की गाथा 372 या 104 का मर्म

इसे समझने के लिये दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म एवं पैनी करने की आवश्यकता है। इसे समझने के लिये भगवान् महावीर द्वारा वर्णित एक पुद्गल द्रव्य यानी एक पुद्गल परमाणु कितना सूक्ष्म है, इस पर विचार करते हैं।

28000 रु. प्रति 10 ग्राम के सोने की कल्पना करें। इस भाव से एक रुपये में जितना सोना आयेगा, उसकी कल्पना करें। एक रुपये के इस सोने को विश्व की 7 अरब आबादी में बराबर-बराबर वितरित करने की कल्पना करें। इस तरह वितरण करने पर एक व्यक्ति को कितना सोना मिलेगा ? यह प्रश्न शुद्ध रूप से भौतिक विज्ञान का है व एक हायर सैकण्डरी का विद्यार्थी भी कुछ मिनट में हल कर सकता है। कैसे गणना होगी, इसका विस्तार न करते हुए इसका उत्तर यहाँ बताते हैं। उत्तर है, 15 करोड़ 60 लाख मालिक्यूल प्रत्येक व्यक्ति को ( एक रुपये के सोने का 7 अरब व्यक्तियों में वितरण करने पर ) मिलेंगे। यहाँ हम यह बताना चाहते हैं कि सोने का एक मालिक्यूल कितना सूक्ष्म है, किन्तु सोने का एक मालिक्यूल तो स्कन्ध है। अतः एक पुद्गल परमाणु तो इससे भी सूक्ष्म है।

परमाणु की सूक्ष्मता की बात समझने हेतु इतना वर्णन ही पर्याप्त है। जो विशेष रुचि रखते हैं, वे यह जान लें कि एक सोने के मालिक्यूल में 79 प्रोटॉन, 118 न्यूटॉन एवं 79 इलेक्ट्रॉन होते हैं। इलेक्ट्रॉन तो प्रोटॉन एवं न्यूट्रॉन से लगभग 2000 गुना हल्का होता है। ऐसा सूक्ष्म इलेक्ट्रॉन भी स्कन्ध है। पुद्गल परमाणु तो इससे भी सूक्ष्म है।

**प्रश्न : किस आधार पर हम ऐसा कह रहे हैं ?**

उत्तर : कर्म वर्गणा स्कन्ध है, पर अभी सूक्ष्म यंत्रों से पकड़ में नहीं आई है, किन्तु इलेक्ट्रॉन तो यंत्रों द्वारा ज्ञात है। अत: यदि कर्मवर्गणा स्कन्ध है तो इलेक्ट्रॉन तो उससे भी बड़ा स्कन्ध होना चाहिए।

पुन: जो विशेष-विशेष रुचि रखते हैं, वे यह जान लें कि पीले प्रकाश का एक कण एक इलेक्ट्रॉन से लगभग ढाई लाख गुना हल्का होता है व वह भी स्कन्ध है यानी पुद्गल परमाणु से स्थूल.....। इसी तरह आगे हम माइक्रोवेव के एक कण की बात करें तो पायेंगे कि यह तो पीले प्रकाश के कण से कई गुना हल्का है।

इतनी सूक्ष्मता की दृष्टि के बाद यदि हम सूक्ष्म पुद्गल परमाणु ( ाजवउ वि डवकमतदै बपमदबम से भी सूक्ष्म ) की तरफ देखें तो यह दिखाई दे सकता है कि चाहे समस्त पृथ्वी के कण पत्थर को प्रभावित करें तो भी समयसार की गाथा 372 या 104 के अनुसार किसी भी पुद्गल परमाणु का उत्पाादन या विनाश नहीं होता है एवं किसी भी पुद्गल परमाणु के गुण नहीं बदलते हैं।

पुद्गल परमाणु जितनी सूक्ष्मता की बात न करें व केवल प्रोटॉन, न्यूट्रॉन एवं इलेक्ट्रॉन पर ही दृष्टि रखें तो भी हम पायेंगे कि भौतिक या रासायनिक क्रिया में प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉनों का न तो उत्पादन होता है और न ही विनाश होता है। जैसे कोयले ( कार्बन ) के जलने की रासायनिक क्रिया लें- $c_2 \rightarrow co_2$

इस रासायनिक समीकरण में यह बताया गया है कि जलने पर कार्बन ऑक्सीजन से संयोग करके कार्बन-डाइ-ऑक्साइड गैस बनाता है। इस रासायनिक क्रिया के पहले कार्बन में 6 प्रोटॉन, ऑक्सीजन में 16 प्रोटॉन एवं

जलने के बाद कार्बन-डाइ-ऑक्साइड में 22 प्रोटॉन है, यानी प्रोटॉन उतने ही रहे। इसी तरह न्यूट्रॉन एवं इलेक्ट्रॉन की गिनती करके देखा जा सकता है कि कोई भी प्रोटॉन, न्यूट्रॉन एवं इलेक्ट्रॉन नहीं जला है।

उक्त वर्णन के बाद आचार्य कुन्दकुन्द की गाथा 104 एवं 372 का मर्म थोड़ा अधिक स्पष्ट हो सकता है। वस्तुतः आचार्य कुन्दकुन्द का उद्देश्य तो आत्मा की अजरता एवं अमरता दिखाकर निर्भीक बनाने का है, किन्तु पुद्गल द्रव्य की अजरता-अमरता की समझ का यह वर्णन भी आत्मा की अविनाशिता को समझने में उपयोगी हो सकता है। जो केवल अपने को एवं दूसरे को बनाने एवं बिगाड़ने वाले ही मानते हैं, वे डर एवं अहंकार ही करते रहेंगे। प्रभावित करते रहने का ही यदि कोई सोचता रहे तो यह एकान्त दृष्टि लौकिक में भी अलाभकारी सिद्ध हो सकती है। जैसे कोई अपनी देह में ही मैं पना देखे एवं स्वयं को पुत्र का जनक एवं भाग्य विधाता मानता रहे तो ऐसा व्यक्ति अन्य को भी नियंत्रित करने का असफल प्रयास करता रहेगा व स्वयं भी दुःखी होतारहेगा।

अनेकान्त दृष्टि

सारांश यह है कि अन्य को प्रभावित करने के सूत्रों एवं अन्य को प्रभावित न करने की संदेश देने वाली गाथाओं को यथायोग्य समझ कर एक व्यक्ति अपने जीवन का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

तत्वार्थसूत्र में वर्णित 5.21 के अनुसार जीव परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं एवं सूत्र 5.20 के अनुसार भौतिक पदार्थ भी जीवों के सुख-दुःख, जीवन-मरण आदि में निमित्त बनते हैं। विभिन्न सूत्रों द्वारा आचार्य उमास्वामी तत्वार्थसूत्र के 5वें अध्याय में यह बताना चाहते हैं कि सभी द्रव्य जीवों को प्रभावित करते हैं। इन सबके बावजूद जीव को जीवराज कहा जाता है ( देखिये समयसार गाथा 18 ), क्योंकि जीव अपना मार्ग चुनने के लिये किसी अपेक्षा स्वतंत्र है एवं किसी अपेक्षा जीवराज के चुने हुए मार्ग के अनुसार अन्य चेतन एवं अचेतन द्रव्य सहयोग के लिए उपस्थित एवं अनुपस्थित होते रहते हैं। अतः सृष्टि की इस दिव्य व्यवस्था का ज्ञान चारों अनुयोगों के माध्यम से प्राप्त करना है।

शास्त्रों में एवं आचार्य कनकनन्दी जी द्वारा रचित इस ग्रंथ में बहुत कुछ है। आवश्यकता है स्व-कल्याण, वात्सल्य एवं निर्भीकता का मार्ग प्रशस्त करने की। आचार्य कनकनन्दी जी ने सैकड़ों ग्रंथ पढ़कर, चर्चा करके, मनन करके अब तक अपने प्रवचनों एवं लेखनी के माध्यम से स्वयं के साथ-साथ हजारों-हजारों व्यक्तियों के जीवन को उन्नत बनाने का उत्कृष्ट श्रम किया है। यह ग्रंथ भी उसी क्रम में एक श्रेष्ठ प्रयास सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

– डॉ. पारसमल अग्रवाल

## ब्रह्माण्ड में जीवन

1. हमारी पृथ्वी सौर परिवार का सदस्य है जिसका व्यास 12800 किलोमीटर है। बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि आदि भी हमारे सौर परिवार के सदस्य हैं। चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है।
2. हमारी आकाश गंगा में 100 अरब तारे हैं। दूरी के कारण, तारे हमें बहुत छोटे दिखाई देते हैं। सूर्य स्वयं एक तारा है।
3. हमारे ब्रह्माण्ड में एक हजार अरब आकाश गंगाएँ हैं। हमारे ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त भी कई ब्रह्माण्ड और भी हो सकते हैं।
4. हमारे ब्रह्माण्ड में लगभग 100,000,000,000,000,000,000,000 ( एक के आगे 23 शून्य ) तारे हैं।
5. यदि हम औसतन एक तारे के साथ एक ग्रह मान लें तो 100,000,000,000,000,000,000,000 ( एक के आगे 23 शून्य ) पृथ्वी सरीखे ग्रह हमारे ब्रह्माण्ड में हैं।
6. एक अनुमान के अनुसार एक प्रतिशत ग्रहों पर जीवन की संभावना है, यानि हमारे ब्रह्माण्ड में 1000,000,000,000,000,000,000 ( एक के आगे 21 शून्य ) ग्रहों पर जीवन की संभावना है।
7. 100,000,000,000,000,000 ( एक के आगे 17 शून्य ) ग्रहों पर बुद्धियुक्त प्राणियों के होने की संभावना है।
8. कुछ ग्रहों पर हमारे से बहुत अधिक या बहुत कम बुद्धि वाले प्राणी होने की भी संभावना है। स्टीफन हाकिंग के अनुसार ऐसे रासायनिक घटक, रूप एवं बुद्धिवाले प्राणी भी अन्यत्र हो सकते हैं, जिनकी कल्पना वैज्ञानिक उपन्यासकार भी नहीं कर पाये हैं।
9. कुछ ग्रहों पर अत्यन्त दुःखी या अत्यन्त सुखी प्राणी भी होने की सम्भावना है।
10. अत्यन्त दुःखी प्राणियों वाले ग्रहों को नरक और सुखी प्राणियों के ग्रहों को स्वर्ग भी कह सकते हैं।
11. वैज्ञानिक धारणाओं के अनुसार वर्तमान में उपलब्ध साधनों से अन्य ग्रहों के प्राणियों तक पहुँच सकने की संभावना नगण्य है।

## वैज्ञानिक ज्ञान से मुझे प्राप्त लाभ / (शिक्षाएँ)

### (वैज्ञानिक साहित्य, विदेशी वैज्ञानिक टी.वी. चैनलों से मुझे प्राप्त लाभ)

- आचार्य कनकनन्दी

**(चाल : 1. क्या मिलिये ऐसे लोगों से..... 2. छोटी-छोटी गैया.....)**

विज्ञान से मिल रही ( है ) मुझे अनेक शिक्षा, शोध-बोध-प्रयोग की विविध शिक्षा।
सत्यग्राही विनम्र व दृढ़ साहसी, धैर्यशील पुरुषार्थी व आत्मविश्वासी।।( 1 )

उदार प्रगतिशील व वैश्विक दृष्टि, विश्लेषण सहित समन्वय की दृष्टि।
संकीर्ण रूढ़ि परम्परा परे प्रवृत्ति, सत्य-तथ्य जानने की जिज्ञासु वृत्ति।।( 2 )

एकला चलने की दृढ़ भावना शक्ति, प्रसिद्धि व भीड़ से परे साधना-वृत्ति।
शक्ति-संरक्षण व नियोजन की वृत्ति, तन-मन-भावना की प्रबल शक्ति।।( 3 )
सापेक्ष सिद्धान्त व अणु सिद्धान्त, जिनोम सिद्धान्त तथा मनोविज्ञान।
पर्यावरण रक्षा व अन्तरिक्ष ज्ञान से, जैन धर्म का मुझे मिले प्रयोगज्ञान।।( 4 )

अहिंसा शाकाहार व पर्यावरण सुरक्षा, परस्पर उपग्रहों जीवों/( द्रव्यों ) की शिक्षा।
भौतिक शक्ति का होता प्रायोगिक विज्ञान,
जिससे ज्ञात होता अन्य द्रव्य विज्ञान।।( 5 )
इसी से होता है कर्मशक्ति का ज्ञान, जिससे ज्ञात होता जीव विज्ञान।
क्रम व्यवस्थित शोध-पूर्ण होता ज्ञान,
आगम ज्ञान का होता ( है ) समीक्षा ज्ञान।।( 6 )

जैन धर्म की श्रेष्ठता का होता सुज्ञान, भारतीय संस्कृति का होता विशद् ज्ञान।
जिससे गौरव बोध विशेष होता, आत्मविश्वास मेरा दृढ़तर ( भी ) होता।।( 7 )

दीन-हीन अहंकार भाव न होते, आधुनिक दिखावा व ढोंग न होते।
भारतीयों के दोषों का होता सुज्ञान, दोष परिहार हेतु होता भी है ज्ञान।।( 8 )

शोध ग्रंथ लिख रहा हूँ अनेकविध, जिनका सदुपयोग हो रहा है बहुविध।
अध्ययन-अध्यापन ( व ) हो रहा है शोध/( Ph.D. ),
विभिन्न देशों में हो रहा प्रचार विविध।।9।।

पूर्व-आचार्य भी करते थे ज्ञान, स्व-पर मत विभावना पटु मतिभ्यः।
स्व-पर मत व तात्कालीन ज्ञानयुत,
होते थे अकलंक वीरसेन समन्तभद्रः।।( 10 )

भारत में विज्ञान का ज्ञान नहीं विशेष, जिससे समस्याएँ होती यहाँ विशेष।
मिलावट भ्रष्टाचार व गन्दगी रोग, फैशन-व्यसन-ढोंग-दिखावा के रोग।।( 11 )

संकीर्ण रूढ़िवादिता भेद-भाव विद्वेष, ईर्ष्या द्वेष घृणा बलात्कार संक्लेश।
पाश्चात्य अंधानुकरण स्व-संस्कृति त्याग,
वेशभूषा भाषा शिक्षा भोगोपभोग।।( 12 )

संस्कृति हमारी पाश्चात्य अपना रहे, वैज्ञानिक शोध से वे स्वीकार रहे।
भारतीयों में नहीं है स्व-संस्कृति ज्ञान, जिससे समझ न पाते वैज्ञानिक ज्ञान।।( 13 )

रटन्त स्वार्थपूर्ण तो पढ़ाई करते, अयोग्य अश्लील हिंसक टी.वी. देखते।
रूढ़िवादी स्वार्थनिष्ठ धर्म पालते, अस्त-व्यस्त-संत्रस्त जीवन जीते।।( 14 )

भो! भारतीय तुम अभी तो जागो, राग द्वेष मोह रूढ़ि स्वार्थ को त्यागो।
स्व-पर-उपकारी व पावन बनो, 'कनक' का आशीष आदर्श बनो।।( 15 )

हिरणमगरी से. 11, दिनांक 09/08/2014, मध्याह्न 12.10

## आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव का व्यक्तित्व–कृतित्व एवं उपलब्धि

प्रस्तुतिकार : श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

**(चाल : 1. सुनो सुनो ऐ दुनिया.....2. क्या मिलिये ऐसे.....)**

सुनो सुनो ऐ! दुनिया वालों, विश्व गुरु का वृहत् कृतित्व।
जिसे सुनकर तुम जान पाओगे, 'कनक' गुरु का महान् व्यक्तित्व।।( स्थायी )

तीन वर्ष की आयु में जिनने, प्रबल स्मरण शक्ति को पाया.....
दश वर्ष की आयु में देखो, महान् लक्ष्य निर्धारित किया.....
उसी ध्येय को ध्यान में रखकर, योग्य दिशा में प्रयाण किया.....( 1 )

वह लक्ष्य था मैं बनूँगा, महावैज्ञानिक सन्त या नेता.....
आपने पायी सब उपलब्धि, वर्तमान में यह सब देखा.....
आधुनिक इस भूमण्डल में, आपको सबसे आगे देखा.....( 2 )

साहित्य सृजन में आप अग्रणी, द्वय शताधिक ग्रंथ ( है ) रचे.....
धर्म-दर्शन-आगम-विज्ञान के, युगीन समन्वय से पिरोये.....
आधुनिक विज्ञान से परे, भारतीय/( जैन ) तथ्य उसमें भरे.....( 3 )

देश-विदेश के विश्वविद्यालय, जिनमें साहित्य कक्ष आपके.....
जिस पर विद्यार्थी शोधार्थी, पीएच.डी., एम.फिल./( डी.लिट् ) करते.....
आपके शिष्य शोध निर्देशक, विश्व धर्म संसद में जाते.....( 4 )

प्रायः त्रयशत साधु-साध्वी, आपसे शिक्षा प्राप्त किये.....
दिक्-श्वेताम्बर हिन्दू आदि, समन्वय सह आगे बढ़े.....
देश-विदेश के कई संगठन, शिक्षा प्रेरणा पाने आते.....( 5 )

यह सब कार्य स्व-इच्छा से, शिष्य भक्तजन सतत करते.....
तन मन धन श्रम समय देकर, श्री गुरु संघ की सेवा करते.....
'सुविज्ञ' जन अनुमोदना पाकर, जन-गण-मन को पावन करते.....( 6 )

## प्रगतिशील/पुरोधा/(पुरोगामी) गुरुवर

भाव-सुमन अर्चक : श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : आँसू भरी हैं ये जीवन की राहें.....)

आधुनिक जनों/( युग ) में प्रगतिशील पाये.....
कनकनन्दी गुरुवर पुरोधा/( पुरोगामी ) हैं पाये.....
आधुनिक जनों में.....( ध्रुवपद ).....

भारत में देखा....विदेशों से जाना.....
ज्ञान-विज्ञान-अनुभव से जाना.....
आध्यात्म विद्या की ज्योति जगाते.....
धर्म-दर्शन-विज्ञान मिलाते.....आधुनिक.....( 1 )

शिक्षा पद्धति समन्वयकारी/( जोड़ रूपी ज्ञानी ).....
प्राचीन गुरुकुल..... आधुनिक विज्ञानी.....
कार्य-कारणयुत गणितीय पद्धति/( क्रमबद्ध )/( टू दि पाइण्ट )
अपूर्व-अर्थी ( व ) आनन्ददायी.....आधुनिक.....( 2 )

सूक्ष्म रहस्य के जो प्रश्न होते.....
जिनका न कोई समाधान पाते.....
देश-विदेश के जिज्ञासुजन.....
आकर त्वरित समाधान पाते.....आधुनिक.....( 3 )

भारतीय/( जैन ) तथ्य जो आप बताते.....
आधुनिक विज्ञान से जो परे है.....
जिसका शोध-बोध 'सुविज्ञ' सुधीजन.....
सतत तुम्हारी शरण में है पाते..... आधुनिक.....( 4 )

## जैन धर्म में समाहित वैश्विक ज्ञान–विज्ञान

(ज्ञान-विज्ञान के आदि प्रवक्ता आदिनाथ भगवान्)

(चाल: 1. भातुकली....(जोगीरासा)..... 2. सायोनारा..... 3. सुनो-सुनो ऐ दुनिया वालो..... 4. यमुना किनारे..... 5. शत-शत वन्दन.....)

सुनो! सुनो! हे दुनियाँवालों/( भारतवासी ),
जैन धर्म के ज्ञान-विज्ञान।
जिसे सुनकर तुम जान पाओगे,
ब्रह्माण्ड के विशेष ज्ञान।।( ध्रुवपद )।।.....

ब्राह्मी लिपि है प्रथम लिपि..... ब्राह्मी पुत्री से हुआ प्रारम्भ.....
सुन्दरी से हुआ अंक प्रारम्भ..... जिससे शिक्षा का हुआ आरम्भ.....
आदिनाथ है प्रथम गुरु ऽऽऽ.... अंक अक्षर व असि मसि के.....
कृषि वाणिज्य शिल्प सेवा व..... राजनीति व न्यायनीति के/( कानून के )....( 1 )

नीति सदाचार सभ्यता संस्कृति....आध्यात्मिक व मोक्षमार्ग के.....
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक....आत्मा से लेकर परमात्मा के.....
पंचव्रत है परम संविधान ऽऽऽ... सप्त व्यसन रहित युक्त.....
नवकोटि से पालनयुक्त..... क्रोध मान माया लोभ ( से ) रिक्त.....( 2 )

यह है नीति-नियम सदाचार..... स्वास्थ्य कानून राजनीति.....
प्रशासन व अनुशासन..... मर्यादा व्यवस्था सर्वोदयी.....
वस्तु व्यवस्था है ब्रह्माण्डीय ज्ञान ऽऽऽ..... अनेकान्त है उसका सूत्र.....
स्याद्वाद है कथन पद्धति..... प्रमाण नय तर्क सहित.....( 3 )

परस्पर-उपग्रहो जीवानाम्..... पर्यावरण रक्षा के सूत्र.....
पंच-समिति व भावना चारों ..... प्रबन्धन के महान् सूत्र.....
सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र ऽऽऽ..... सर्वोदय के महान् सूत्र.....
इह परलोक मोक्ष सुखार्थ..... परम सार्वभौम के सूत्र.....( 4 )

उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी.... होता भौगोलिक परिवर्तन.....
पंच परिवर्तन होता जीवों का..... सर्व ब्रह्माण्ड में परिवर्तन.....
इतिहास व सही पुराण ऽऽऽ..... महापुरुषों की जीवनी गाथा/( यात्रा ).....
इसी से प्राप्त होती सुशिक्षा..... वह ही परम्परा यथार्थ..... ( 5 )

निगोदिया से सिद्ध तक में/( है ).... जीवों का होता क्रम विकास.....
शरीर इन्द्रिय मन से परे..... आध्यात्मिक का होता विकास.....
आकाश में यथा सभी संव्याप्त ऽऽऽ..... अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक.....
सर्वज्ञ कथित सत्य-तथ्य में..... समाहित लोक तथा अलौकिक..... ( 6 )

यह सब वर्णन किया है..... आद्य में आदिनाथ भगवान् ने.....
प्राग् ऐतिहासिक काल में..... विज्ञान के अति पूर्व से/( में ).....
स्व-पर-विश्व कल्याण हेतु ऽऽऽ..... इन्हीं तथ्यों का हो प्रचार.....
इसी हेतु ही ' कनकनन्दी '..... सत्य-तथ्यों का करे प्रसार..... ( 7 )

नोट : इस विषय के विशेष परिज्ञान हेतु कवि सृजित ''युग निर्माता ऋषभदेव'' तथा ''जैन तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे''... ज्ञानधारा 1 से 20 तक का अध्ययन करें।

आप अपनी गलतियों को एक बार स्वीकार कर लेंगे तो कोई भी उसे आपके खिलाफ इस्तेमाल नहीं कर सकेंगे ।

-साभार हार्वर्ड बिजनेस रिव्यू

जो स्वयं की गलती स्वीकार करता है
वह स्वं-गलतियों को जानता है, मानता है
व सुधार करने के लिए प्रयास करता है,
इसलिए अन्य लोग भी उसकी गलती को
लेकर आलोचना या विरोध नहीं करते ।

आचार्य कनकनन्दी

## विषयानुक्रमणिका


| अ.क्र. | विषय/(गीत) | पृ.क्र. |
|---|---|---|
| ( अ ) | इस कृति का संक्षिप्त परिचय | 02 |
| ( ब ) | विनयांजली | 04 |
| ( स ) | प्रस्तावना | 08 |
| ( द ) | वैज्ञानिक ज्ञान से मुझे प्राप्त लाभ ( शिक्षा ) | 14 |
| 1. | आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव का व्यक्तित्व-कृतित्व एवं उपलब्धि | 16 |
| 2. | प्रगतिशील/पुरोधा/( पुरोगामी ) गुरुवर | 17 |
| 3. | जैन धर्म में समाहित वैश्विक ज्ञान-विज्ञान | 18 |
| **प्रस्तावना** | | |
| 1. | जैन धर्म की अति विशेषताएँ | 27 |
| 2. | अनेकान्त मय जैन धर्म | 28 |
| 3. | सर्वत्र समन्वय-सम्बन्ध | 29 |
| 4. | अनन्त गुण-गण अनुप्रेक्षा | 30 |
| 5. | आधुनिक विज्ञान ही नहीं है सम्पूर्ण सत्य | 30 |
| 6. | लोक ( विश्व ) अलोक ( प्रतिविश्व ) एवं मोक्ष | 31 |
| 7. | सर्वज्ञ उपदिष्ट सत्य ही परम सत्य | 32 |
| 8. | जैन धर्म की अति विशेषताएँ - गुणस्थान ( आध्यात्मिक विकास ही यथार्थ विकास ) | 33 |
| 9. | स्व-विश्व दर्शन | 34 |
| 10. | पंच परिवर्तन से मुझे प्राप्त शिक्षाएँ | 34 |
| 11. | स्वरूप-चिन्तन | 35 |
| 12. | मेरी अनन्त कहानी ( संसार एवं मोक्ष ) | 36 |
| 13. | विषय एवं सन्दर्भ के अनुसार विभिन्न शब्दार्थ | 37 |

| | | |
|---|---|---|
| 14. | जैन दर्शन अपेक्षा ( 10 ) प्रकार के लोक | 38 |
| 15. | ब्रह्माण्ड और सौरतंत्र | 78 |
| **अनुच्छेद-1 (पद्य विभाग)** | | **पृ.क्र.** |
| 1. | षट्द्रव्य मय वैश्विक व्यवस्था एवं मोक्षावस्था | 94 |
| 2. | विश्व की व्यवस्था | 95 |
| 3. | महासत्तात्मक विश्व-प्रतिविश्व | 97 |
| 4. | अनेकान्त वन्दन ( स्याद्वाद का स्वरूप ) Master Theory | 99 |
| 5. | विश्व के हर शुद्ध द्रव्य ईश्वर है ! ( सत्य ही ईश्वर ) | 100 |
| 6. | द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः का यथार्थ एवं व्यंगात्मक कथन | 101 |
| 7. | सर्वत्र समन्वय - सम्बन्ध | 102 |
| 8. | षट्गुण हानि वृद्धि ( एकीकृत सिद्धान्त ) | 103 |
| 9. | पुद्गल द्रव्य की व्यापकता | 104 |
| 10. | चेतनमय जीव में भी होते हैं अनेक अचेतन गुण | 105 |
| 11. | भौतिकमय कर्म का विश्वरूप | 106 |
| 12. | जीवों के विश्वरूप दर्शन | 107 |
| 13. | विविध विकासवाद | 108 |
| 14. | जीवों के उत्थान-पतन | 110 |
| 15. | विश्व संसार एवं मोक्ष स्वरूप | 110 |
| 16. | जीवों के उत्थान-पतन एवं मोक्ष | 111 |
| 17. | सर्वत्र भरा हुआ ब्रह्माण्ड / ( लोक ) | 112 |
| 18. | प्राचीन परग्रही ( देव ) प्राचीन एवं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में | 113 |
| 19. | प्राचीनतम एलियन ( परग्रही देव ) | 114 |
| 20. | देव की आत्मकथा | 115 |
| 21. | भोग-भूमिजों से प्राप्त शिक्षायें | 116 |
| 22. | ज्ञान-ज्ञेय-ध्येय-हेय | 116 |

| | | |
|---|---|---|
| 23. | स्व-विश्व दर्शन | 117 |
| 24. | स्व-अनन्तगुण गण स्मरण-ध्यान | 118 |
| 25. | स्व-स्वरूप-स्मरण | 119 |
| 26. | बन्ध एवं मोक्ष डगर | 119 |
| 27. | सत्य परिज्ञान की श्रेष्ठतम पद्धतियाँ | 120 |
| 28. | संकीर्ण भौतिकता परे भी जानो मानो! | 121 |
| 29. | विश्व कल्याण के लिए भौतिकता से श्रेष्ठ < आध्यात्मिकता | 123 |
| 30. | सत् < चित् < आनन्द या आनन्द > चित् > सत् | 125 |
| 31. | मैं ही मेरे परमद्रव्य-सत्य-धर्म-तीर्थ हूँ ! | 126 |
| 32. | वैभाविक 'मैं' एवं स्वाभाविक 'मैं' | 127 |

**अनुच्छेद-2 ( गद्य विभाग )**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | परिणमनशील विश्व | 128 |

**अनुच्छेद-3**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | लोकाकाश/( विश्व, ब्रह्माण्ड का स्वरूप ) | 144 |
| 2. | लोकाकाश की विशेषता | 145 |
| 3. | लोक की परिणमनशीलता के कारण | 145 |
| 4. | लोक का आकार | 147 |
| 5. | लोक का दक्षिण-उत्तर में विस्तार | 148 |
| 6. | तीनों लोकों की ऊँचाई | 148 |
| 7. | लोक शब्द की निरुक्ति | 150 |
| 8. | जीवों से भरा हुआ विश्व | 151 |
| 9. | सब द्रव्यों में श्रेष्ठतम है जीव | 154 |
| 10. | जीव ही उत्तम व परम तत्त्व क्यों ? | 154 |
| 11. | पुद्गल द्रव्य का स्वरूप | 155 |
| 12. | पुद्गल का विशेष स्वरूप एवं संख्या | 157 |

| | | |
|---|---|---|
| 13. | पुद्गल का जीव के प्रति उपकार | 159 |
| 14. | जीव का जीव के प्रति उपकार | 162 |
| 15. | पुद्गल की महती शक्ति | 163 |
| 16. | धर्म द्रव्य एवं अधर्म द्रव्य के उपकार | 164 |
| 17. | आकाश द्रव्य का स्वरूप | 165 |
| 18. | हर द्रव्य में है अवगाहन शक्ति | 166 |
| 19. | हर जीवों में अवगाहना शक्ति के अभाव से..... | 166 |
| 20. | काल द्रव्य का लक्षण | 167 |
| 21. | सभी द्रव्य में स्वभाव से ही परिणमन करने की शक्ति है! | 169 |
| 22. | सभी द्रव्य परस्पर उपकारी | 169 |
| 23. | परिणमन अनिवार्य | 170 |
| 24. | व्यवहारकाल का निरूपण | 171 |
| 25. | अतीत अनागत और वर्तमान पर्यायों की संख्या | 172 |
| 26. | द्रव्यों के कार्य-कारण भाव का निरूपण | 173 |
| 27. | तीनों कालों में वस्तु के कार्य-कारण भाव | 174 |

**अनुच्छेद-4**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | वस्तु अनन्त धर्मात्मक | 175 |
| 2. | अनेकान्तात्मक वस्तु ही अर्थ क्रियाकारी | 178 |
| 3. | सर्वथा एकान्त रूप वस्तु कार्यकारी नहीं | 179 |
| 4. | सर्वथा नित्य में अर्थक्रिया का अभाव | 181 |
| 5. | क्षणिक वस्तु में अर्थक्रिया नहीं | 181 |
| 6. | अनेकान्त में कार्य-कारण भाव | 182 |
| 7. | पूर्व परिणाम और उत्तर परिणाम से युक्त द्रव्य में कार्य-कारण भाव | 183 |
| 8. | अनादि निधन जीव में कार्य-कारण भाव | 184 |

| | | |
|---|---|---|
| 9. | स्व-चतुष्ट्य युक्त जीव कार्य करता | 184 |
| 10. | पररूप में स्थित जीव कार्य नहीं करता | 186 |
| 11. | सभी वस्तु एक ब्रह्म स्वरूप नहीं | 187 |
| 12. | अणुमात्र आत्मा नहीं | 188 |
| 13. | एकानेक रूप द्रव्य | 188 |
| 14. | गुण पर्याय स्वभाव वाला द्रव्य | 189 |
| 15. | द्रव्यों में उत्पाद-व्यय | 190 |
| 16. | द्रव्यों में ध्रुवत्व | 191 |
| 17. | द्रव्य एवं पर्याय का स्वरूप | 191 |
| 18. | गुण का स्वरूप | 192 |
| 19. | गुण पर्यायों का एकपना ही द्रव्य | 194 |
| 20. | पर्याय सम्बन्धी शंका | 195 |
| 21. | अविद्यमान पर्यायों की ही उत्पत्ति होती है | 196 |
| 22. | द्रव्य व पर्याय में कथंचित् भेद कथंचित् अभेद | 196 |
| 23. | द्रव्य और पर्याय में सर्वथा भेद मानने से दोष | 197 |
| 24. | ज्ञानाद्वैतवादी के मत में दूषण | 197 |
| 25. | ज्ञेय का समर्थन | 198 |
| 26. | ज्ञानाद्वैतवादी में दोषण | 198 |
| 27. | शून्यवाद में दूषण | 199 |
| 28. | जितने नाम उतने पदार्थ | 200 |
| 29. | ज्ञान का स्वरूप | 201 |
| 30. | केवलज्ञान का अस्तित्व | 202 |
| 31. | ज्ञान सर्वगत | 203 |
| 32. | ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध | 203 |
| 33. | अर्थ के द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप | 205 |

| | | |
|---|---|---|
| 34. | स्व-समय ( स्वधर्म ) पर-समय ( परधर्म ) | 213 |
| 35. | द्रव्य का लक्षण | 215 |
| 36. | स्वरूप अस्तित्व का लक्षण | 223 |
| 37. | सादृश्य अस्तित्व ( महासत्ता ) | 239 |
| 38. | द्रव्य स्वरूपतः सत् एवं स्वभाव सिद्ध है | 242 |
| 39. | उत्पत्ति-नाश-स्थित्यात्मक द्रव्य ही सत् है | 247 |
| 40. | उत्पाद-विनाश एवं स्थिरता परस्पर अविनाभाव है | 250 |
| 41. | उत्पाद-स्थिति भंग पर्यायात्मक एवं द्रव्य से अभिन्न है | 253 |
| 42. | उत्पादादि तीनों एक समय में होते हैं | 256 |
| 43. | द्रव्य में पर्यायों की अपेक्षा उत्पादादि हैं | 258 |
| 44. | गुण पर्यायात्मक द्रव्य है | 260 |
| 45. | सत्ता एवं द्रव्य अभेद हैं | 263 |
| 46. | पृथक्त्व एवं अन्यत्व का लक्षण | 264 |
| 47. | अतद्भाव का लक्षण | 266 |
| 48. | सर्वथा अभाव अतद्भाव नहीं है | 269 |
| 49. | सत्ता गुण है और द्रव्य गुणी है | 272 |
| 50. | गुण और पर्यायों से द्रव्य का अभेदत्व | 274 |
| 51. | सत् उत्पाद एवं असत् उत्पाद दोनों सम्भव | 276 |
| 52. | सर्व पर्यायों में द्रव्य वही रहता है | 281 |
| 53. | द्रव्य के असत् उत्पाद पूर्व पर्याय से भिन्न है | 282 |
| 54. | एक ही द्रव्य में अन्यत्व एवं अनन्यत्व है | 283 |
| 55. | सर्व विरोधों को दूर करने वाला स्याद्वाद | 285 |
| 56. | मूर्त पुद्गल द्रव्य के गुण | 293 |
| 57. | शेष अमूर्तिक द्रव्यों के गुण | 308 |
| 58. | बहुप्रदेशी एवं एकप्रदेशी द्रव्य | 318 |

59. लोकाकाश में सम्पूर्ण द्रव्य रहते हैं 328
60. प्रदेश एवं अप्रदेश की परिभाषा 337
61. कालाणु अप्रदेशी है 342
62. समय की परिभाषा 347
63. आकाश प्रदेश का लक्षण 354
64. तिर्यक प्रचय एवं ऊर्ध्वता प्रचय 358
65. काल द्रव्य भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है 360
66. सर्वसमय में उत्पाद व्यय ध्रौव्य होते हैं 362
67. सर्वशून्य ( असत्य ) की परिभाषा 373
68. ज्ञान, ज्ञेय और व्यवहार जीवत्व के हेतु 376
69. चारों प्राणों का स्वरूप 377
70. जीव की परिभाषा 379

**अनुच्छेद-5**

**विज्ञान की दृष्टि में.....**

1. ब्रह्माण्ड विज्ञान या ब्रह्माण्डिकी 385
2. अन्तरिक्ष की गहराईयों में 394

**अनुच्छेद-6**

1. वस्तु-स्वरूप अनेकान्तात्मक एवं सापेक्ष एकान्त भी 406

कानून का अन्तिम उद्देश्य प्रतिबन्ध लगाना या मर्यादा खींचना नहीं, स्वतंत्रता का विस्तार करना हैं ।

-जॉन लॉक

कानून का अन्तिम उद्देश्य प्रतिबन्ध लगाना या मर्यादा खींचना नहीं, सत्य समता शान्ति स्वतन्त्रता का विस्तार करना है ।

-आचार्य कनकनन्दी

# प्रस्तावना

## ''जैन धर्म की अतिविशेषताएँ''

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : 1. तुम दिल की धड़कन..... 2. क्या मिलिये.....)

जैन धर्म की अहिंसा प्यारी..... सर्व जीव रक्षा करने वाली।
भाव अहिंसा है समतावाली..... द्रव्य अहिंसा है रक्षावाली।।द्यु.।।

अनेकान्त है सिद्धान्त न्यारा..... वस्तु स्वभाव सहित वाला।
अनन्त पक्ष सहित वाला..... सापेक्ष सिद्धान्त वैश्विक वाला।।
स्याद्वाद कथन करने वाला..... सापेक्ष कथन सहित वाला।
सप्त भंगों से सहित वाला..... अनन्त सप्त भंग वाला।।( 1 )

अपरिग्रह है सिद्धान्त प्यारा..... सामाजिक न्याय सहित वाला।
अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह रिक्त..... पर्यावरण सुरक्षायुक्त।।
वस्तु व्यवस्था है प्राकृतिक वाली..... द्रव्य की प्रकृति सहित वाली।
इसी से बनती विश्व व्यवस्था..... प्राकृतिक शाश्वतिक दशा।।( 2 )

कर्म सिद्धान्त है संसार-दशा..... द्रव्य भाव नोकर्म की दशा।
संसार भ्रमण इसी से होता..... कर्म रहित मोक्ष की दशा।।
मोक्षमार्ग है रत्नत्रयमय..... आत्मविश्वास ज्ञानवृत्तमय।
अनन्त वैभव इसी से मिलता..... 'कनकनन्दी' तो इसे ही चाहते।।( 3 )

# अनेकान्तमय जैन धर्म

(चाल : 1. आत्मशक्ति से ओतप्रोत..... 2. जय हनुमान.....
3. क्या मिलिये ऐसे लोगों से..... 4. सायोनारा.....)

जैन धर्म के स्वरूप को जानो..... अनेकान्त रूप से इसे पहिचानो.....
जैन धर्म भेद-भाव न करता..... जैन धर्म भेद-विज्ञान सिखाता.....ध्रुवपद.....

निन्दा अपमान किसी से न करता..... सनम्र सत्यग्राही सदा बनता.....
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र बताता..... आत्मा से परमात्म भी बनाता.....
सत्य-असत्य-उभय बताता..... जीव-अजीव-मिश्र भी जताता.....
मूर्तिक-अमूर्तिक स्वरूप बताता..... शुद्ध-अशुद्ध स्वरूप जताता.....( 1 )

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी बताता..... सत्-द्रव्यमय स्वरूप बताता.....
अनादि-अनिधन/( अनन्त )सत्य को मानता..... अकृत्रिम-शाश्वतिक जताता.....
स्व-चतुष्ट्य से द्रव्य है सत्य..... पर द्रव्यापेक्षा द्रव्य है असत्य.....
पर्याय अपेक्षा द्रव्य है उत्पाद..... पूर्व पर्याय का होता है व्यय.....( 2 )
द्रव्य अपेक्षा होता है ध्रौव्य..... स्वभाव अपेक्षा होता अव्यय.....
सत्ता रूप में सभी हैं सत्य..... इसी दृष्टि से सत्य है एक.....
भिन्न दृष्टि से सत्य है अनेक..... द्रव्य छह या अनन्तानन्त.....
हर द्रव्य मौलिक स्वतन्त्र होते..... परस्पर उपकार वे सभी करते.....( 3 )
हर जीव भी स्वतन्त्र मौलिक..... अनन्त गुणयुक्त होते प्रत्येक.....
परतन्त्र होता है अशुद्ध जीव..... स्वतन्त्र होता है शुद्ध जीव.....
विशुद्ध जीव ही होता परमात्मा..... सच्चिदानन्दमय अमूर्त आत्मा.....
विश्व/( पर )का कत्ता-धर्ता न होता..... सुख-दुःख हानि-लाभ न देता.....( 4 )

राग द्वेष मोह रहित शुद्धात्मा..... जन्म जरा मृत्यु रहित शुद्धात्मा.....
जैन धर्म का यह परम लक्ष्य..... 'कनकनन्दी' का अन्तिम लक्ष्य.....( 5 )

करणानुयोग सम्बन्धी वैश्विक कविता

# सर्वत्र समन्वय–सम्बन्ध

(चाल : 1. मन है छोटा-सा..... 2. तुम दिल की धड़कन में..... 3. सायोनारा.....)

देखो! देखो! देखो! सर्वत्र देखो! समन्वय का स्वरूप देखो!
द्रव्यों में देखो! गुणों में देखो! ज्ञान-ज्ञेय में सम्बन्ध देखो!.....( ध्रुव ).....

वाच्य-वाचक सम्बन्ध देखो!..... द्रव्य-गुण-पर्यायों में देखो!.....
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में देखो!..... द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावों में देखो!.....

पर्यावरण-पारिस्थितिकी देखो!..... परस्पर उनके उपकार देखो!.....
माता-पिता-भाई-बन्धु को देखो!..... समाज राष्ट्रीय वैश्विक देखो!.....

वर्णमाला-मात्रा-शब्दों को देखो!..... पद वाक्य व ग्रंथों को देखो!.....
संख्या-गणित व वस्तु/( सत् ) को देखो!..... अंक-अक्षरी-विद्या को देखो!.....

'अ' से अनादि-अनन्त देखो!....'क्ष' से मोह के क्षय/( मोक्ष ) को देखो!.....
प्रत्येक अक्षर के रहस्य देखो!..... शब्द-पद-वाक्य रहस्य देखो!.....

वाच्य-वाचक सर्वत्र देखो!..... कार्य-कारण सम्बन्ध देखो!.....
अनेकान्त व स्याद्वाद देखो!..... निश्चय-व्यवहार नय को देखो!.....

निगोद से सिद्ध पर्यन्त देखो!..... स्वयं से सम्बन्ध कर के देखो!.....
सर्वत्र सम्बन्ध व स्वतन्त्र देखो!..... भिन्न-अभिन्न व इतर देखो!.....

यथा शरीर के अंग-सम्बन्ध!..... भिन्न-अभिन्न व अन्तःसम्बन्ध!.....
तथाहि सर्वत्र यह विधान!....'कनक' चाहे ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध!.....

'अ' से प्रारम्भ पद प्रयोगमय कविता

## अनन्त गुण–गण अनुप्रेक्षा

( चाल : 1. भावे वन्दू तो अरिहन्त..... 2. शत-शत वन्दन..... )

अनादि अनिधन अविनाशी हूँ, अक्षय अनन्त गुण/( शक्ति ) युक्त हूँ।
अनन्त गुण-पर्याययुक्त हूँ, अनन्त चतुष्टयधारी रूप हूँ।।
अजर-अमर-अमय रूप हूँ, अमूर्तिकमय ज्ञान शरीरी हूँ।
अदेह अभय अमृतमय हूँ, अजय अहीन अमन रूप हूँ।।
अनेकान्त हूँ अशरीरी हूँ, असर्वज्ञ द्वारा अगम्य रूप हूँ।
अभय-भव्य से रिक्त रूप हूँ, अन्त विरहित अन्तरतम हूँ।।
अरूप अस्पर्श अगन्ध रूप हूँ, अरस अवर्ण अशब्द रूप हूँ।
अनुभव-गम्य अक्षातीत हूँ, अकर्त्ता-अभोक्ता अकर्म रूप हूँ।।
अप्रमादमय अहिंसा रूप हूँ, 'कनक' अनाम अविकृत हूँ।।

## आधुनिक विज्ञान ही नहीं है सम्पूर्ण सत्य

(राग : 1. दुनिया हँसे..... 2. छोटी-छोटी गैया.....)

आधुनिक विज्ञान न पूर्ण विज्ञान, प्रयोगशाला में सिद्ध हुआ जो ज्ञान।
जो है सत्य-तथ्य वह सभी विज्ञान, आयुर्वेद से लेकर आत्मा का ज्ञान।।1।।
आयुर्वेद है शरीर स्वास्थ्य-विज्ञान, तदनुकूल जीवनचर्या का ज्ञान।
सोना जागना खाना पीना व्यायाम, प्राणायाम योगासन स्नान विश्राम।।2।।
दान दया परोपकार सेवा का ज्ञान, परस्पर सहयोग स्नेह विज्ञान।
इसी से भी तन-मन स्वस्थ्य होते हैं, परिवार समाज भी स्वस्थ्य होते हैं।।3।।
परम विज्ञान होता कर्म-सिद्धान्त, वस्तु स्वरूप अनेकान्त-सिद्धान्त।
जीवसमास रूपी जीव-विज्ञान, गुणस्थानमय आत्म-विज्ञान।।4।।
विज्ञान का विज्ञान है आत्मिक ज्ञान, जिससे मिलता है परिनिर्वाण।

अनन्त ज्ञान दर्शन सुख सम्पन्न, सत्य शिव सुन्दर है परिनिर्माण।।5।।
परम विज्ञान से अज्ञ अभी का ज्ञान, ( स्थूल )/भौतिक ज्ञान से आबद्ध अभी विज्ञान।
अति सीमित ज्ञान में है अभी विज्ञान, विज्ञान से सिद्ध नहीं सम्पूर्ण ज्ञान।।6।।
जड़ विज्ञान से न होता शिव/( आत्म, मोक्ष )
ज्ञान, आधुनिक विज्ञान नहीं प्रमाण/( मापक, मानक ) ज्ञान।
परम ज्ञान प्रमाण सभी सत्य का, जीव-अजीव व संसार-मोक्ष का।।7।।
विज्ञान से अज्ञात सभी न होता मिथ्या, विज्ञान के अनेक तथ्य हो गये मिथ्या।
विज्ञान दुहाई सर्वत्र नहीं है सत्य, 'कनक' को मान्य है सदा ही सत्य।।8।।

## ''लोक (विश्व) अलोक (प्रतिविश्व) एवं मोक्ष''

**(राग : 1. सायोनारा..... 2. आत्मशक्ति से....., चौपाई)**
लोक अलोक स्वरूप को जानो.....जीव-अजीव द्रव्यों को मानो।
षड्द्रव्यमय होता है लोक..... लोक से परे होता अलोक।।ध्रु.।।
सर्वज्ञ अवलोकित है विश्व/( लोक )..... अलोक भी सर्वज्ञ से ज्ञात।
तीन सौ तैंतालीस घन राजू लोक..... अनन्त आकाश होता अलोक।।
अनेक प्रकार होते हैं लोक..... नाम[1] स्थापना[2] द्रव्य[3] लोक।
क्षेत्र[4] काल[5] भाव[6] पर्याय[7] लोक..... कषाय[8] भव[9] चिह्न[10] भी लोक।।( 1 )
जीव होता है चैतन्य द्रव्य..... अजीव होते अचेतन द्रव्य।
पुद्गल धर्म-अधर्म आकाश..... काल सहित पंच अजीव द्रव्य।।
पुद्गल ही है मूर्तिक द्रव्य..... अमूर्तिक होते शेष पंच द्रव्य।
जीव पुद्गल होते शुद्धाशुद्ध..... शेष द्रव्य होते नित्य शुद्ध।।( 2 )
अक्षय अनन्त होते हैं जीव.....पुद्गल जीव से अनन्त गुणा।
अनन्त प्रदेशी होता एक आकाश.....धर्म-अधर्म भी एक-एक ही द्रव्य।।
असंख्यात होते हैं काल द्रव्य..... अकृत्रिम शाश्वत हैं हर द्रव्य।
हर द्रव्य में होते अनन्तगुण..... अनन्त पर्याय युक्त हर गुण।।( 3 )
संसारी जीव हैं कर्म से युक्त..... मुक्त जीव होते कर्म से मुक्त।
तिर्यंच नारकी देव मानव..... अक्षय अनन्त होते संसारी जीव।।

सच्चिदानन्दमय होते ( हैं ) मुक्त जीव..... अनन्त गुण युक्त अनन्त जीव।
तीन लोक में होते संसारी जीव..... लोकाग्र में होते विमुक्त जीव।।( 4 )
पाप से तिर्यंच व नरक गति..... पुण्य से मिलती है देव की गति।
पुण्य व पाप से मनुष्य गति..... पुण्य-पाप परे सिद्ध की गति।।
गति सहायक होता है धर्म द्रव्य..... स्थिति सहायक होता अधर्म द्रव्य।
अवकाश दाता होता ( है ) आकाश द्रव्य..... परिणमन सहायक होता काल द्रव्य।।
गतिमान होते हैं जीव पुद्गल..... शेष द्रव्य होते हैं अविचल।
चौदह राजू होती परम गति..... न्यूनतम होती एक प्रदेश गति।।
आगम वर्णित ये सब तथ्य..... मोक्ष प्राप्ति हेतु विज्ञेय सत्य।
अल्पज्ञ द्वारा ये अज्ञेय सत्य..... 'कनक' मान्य है परम सत्य।।( 6 )

## ''सर्वज्ञ उपदिष्ट सत्य ही परम सत्य''

**(राग : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)**

देखो! देखो! सत्य को देखो..... जो विज्ञान में/( से ) अज्ञात ( है )।
साधारण जन से तथा अज्ञात..... तथापि सर्वज्ञ से ज्ञात ( है )।।
विज्ञान अभी भी नहीं जानता..... शुद्ध परमाणु का रूप ( है )।
ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के कारण..... तथा ब्रह्माण्ड स्वरूप ( है )।।( 1 )
पाँच प्रतिशत ( 5% ) भौतिक जानता..... नहीं जाने अभौतिक है।
जीव ( की ) उत्पत्ति कारण न जानता..... नहीं जाने जीव स्वरूप है।।
कहाँ से जीव पृथ्वी में आये..... किससे बनता जीव है।
मृत्यु के बाद कहाँ जायेगा..... विश्व में कितने/( कहाँ-कहाँ ) जीव है।।( 2 )
साधारण जन संकीर्ण होते..... स्वार्थ में ( ही ) लवलीन है।
खाना पीना सोना जागना..... प्रजनन मरना काम है।।
सर्वज्ञ सर्वदर्शी ही जानते..... विश्व के हर सत्य है।
चेतनाचेतन मूर्तिकामूर्तिक..... व्यवहार परम सत्य है।।( 3 )
राग द्वेष मोह रहित वे होते..... होते सर्वजीव उपकारी है।
उनके द्वारा उपदेश सत्य ही..... मानने जानने के योग्य है।।
सत्य को जानो सत्य पहचानो..... उपलब्धि करो सत्य है।
सत्य की प्राप्ति करने हेतु..... 'कनक' करे सदा प्रयत्न है।।( 4 )

## जैन धर्म की अति विशेषताएँ (गुणस्थान)

# आध्यात्मिक विकास ही यथार्थ विकास

सुनो! सुनो! हे दुनिया वालों, जैन धर्म की अति विशेषतायें।
जिससे तुम्हें ज्ञान होगा आत्म उन्नति की विशेषतायें।।( 1 )
मिथ्यात्व है निम्न अवस्था, जिसमें न होता सत्य/( आत्म )विश्वास।
न होता है श्रद्धान इसमें, आत्म परमात्म व बन्ध व मोक्ष।।( 2 )
भौतिकता को ही जो सत्य मानते, तथाहि शरीर भोगोपभोग।
जन्म-मरण तक( ही )जीवन मानते, जीवन है भौतिक संयोग।।( 3 )
इसी भाव में जो जीव होते, वे होते निम्नस्तरीय जीव।
वनस्पति से कीट-पतंग, मानव पशु-पक्षी नारकी देव।।( 4 )
भले इनमें भिन्नता होती, नाम आयु गोत्र जाति देह से।
तथा वे सब समान होते, मिथ्यात्व भाव दृष्टिकोण से।।( 5 )
सम्यग्दृष्टि होते जो जीव, वे करते हैं सत्य/( आत्म )विश्वास।
पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव मानव तिर्यंच नारकी देव।।( 6 )
आयु नाम जाति गति से भले, इनमें होती भिन्नता।
तथापि सम्यक्त्व दृष्टिकोण से, इनमें नहीं कुछ भिन्नता।।( 7 )
सम्यग्दृष्टि तिर्यंच-नारकी, श्रेष्ठ होते देव/( मानव )से भी।
जो मिथ्यात्व गुणस्थान में, होते हैं देव मानव भी।।( 8 )
पंचमगुणस्थानवर्ती जो होते हैं तिर्यंचगण।
इनसे वे निम्न होते हैं स्वर्ग में स्थित देवगण।।( 9 )
छट्ठेगुणस्थानवर्ती जो होते हैं साधुगण।
इनसे वे निम्न होते हैं चक्रवर्ती व देवगण।।( 10 )
शत इन्द्र से पूजित होते हैं निर्ग्रन्थ प्रभु तीर्थंकर।
निर्ग्रन्थ साधुओं को भी, पूजते हैं चक्रधर।।( 11 )
केवल बाह्य लिंग परम्परा से यह नहीं है वर्णन।
अन्तरंग परिणाम/( गुणस्थान )से युक्त बाह्य लिंगादि कारण।।( 12 )
जैन धर्म की यह आत्मिक दृष्टि, आत्म विकास करने हेतु।
आत्मविकास से मिलता मोक्ष, अतएव बना 'कनक' साधु।।( 13 )

( डॉ. अग्रवाल ( भूतपूर्वक वैज्ञानिक अमेरिका ) का अनुरोध भी
इस कविता में कारण है। )

## ''स्व–विश्व दर्शन''

(स्व-परिज्ञानार्थे चाहिये अनन्त ज्ञान)

(राग : 1. तुम दिल की धड़कन....., 2. छोटी-छोटी गैया.....)

स्व-विज्ञान है विश्व-विज्ञान..... जिसमें समाहित समस्त ज्ञान।
आत्मा-परमात्मा व कर्म का ज्ञान..... संसार-भ्रमण व मोक्ष का ज्ञान।।
जो एक जानता है वह सर्व जानता..... जो सर्व जानता है वह एक जानता।
एक में होते ( हैं ) अनन्त गुण-पर्याय..... एक के ज्ञानार्थ अनन्त ज्ञान।।( 1 )
मैं सच्चिदानन्दमय जीव-द्रव्य..... अनन्त-गुण-पर्याय सहित।
अनन्तकाल से है मेरा अस्तित्व..... उत्पाद-व्यय व ध्रौव्य सहित।।
अनन्तकर्मों से हूँ मैं आबद्ध..... अनन्त जन्म-मरण से सम्बन्ध।
चौरासी लाख योनि व चतुर्गति में..... अनन्त-भ्रमण किया हूँ विश्व में।।( 2 )
द्रव्य-क्षेत्र-काल व भव-भाव में..... अनन्त-परिवर्तन किया विश्व में।
इसके भी ज्ञानार्थ अनन्तज्ञान..... मति-श्रुत नहीं है अनन्तज्ञान।।
मैं केवल नहीं हूँ शरीर मात्र..... इन्द्रिय मस्तिष्क मन मात्र।
सत्ता-सम्पत्ति-मात्र नहीं हूँ मैं..... सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ मैं।।( 3 )
स्व-स्वरूप की प्राप्ति के हेतु..... रत्नत्रय की साधना हेतु।
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र हेतु..... आध्यात्म ज्ञान के प्रमुख हेतु।।
इन सबका ज्ञान है स्वयं का ज्ञान..... इसी हेतु चाहिये अनन्तज्ञान।
इसी से बनता है मानव ज्ञानी..... 'कनक' बनना चाहे आत्मज्ञानी।।( 4 )

## पंचपरिवर्तन से मुझे प्राप्त शिक्षाएँ

( चाल : छोटी-छोटी गैया..... )

पंचपरिवर्तन से मुझे मिलती शिक्षा, आत्मोपलब्धि की महान् शिक्षा।
हर कार्य मैंने किया अनन्तबार, आत्मोपलब्धि न की मैंने एक भी बार।।
द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप में, अनन्त परिवर्तन हुए इस लोक में।
आत्मोपलब्धि न की मैंने एक भी बार, संसार भ्रमण हुए अनन्त बार।।
सर्व पुद्गलों को खाया अनन्त बार, त्याग कर के पुनः भी बारम्बार।
लोक के सभी पुद्गल मेरा उच्छिष्ठ, अतएव ग्रहण योग्य नहीं है श्रेष्ठ।।

हरक्षेत्र में जन्मा मैं अनन्त बार, हरक्षेत्र में मरा मैं अनन्त बार।
हरक्षेत्र न मेरे लिए अपरिचित, अतएव हरक्षेत्र से मैं बनूँ विरक्त।।
हरकाल में मेरे हुए जन्म-मरण, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी में हुआ भ्रमण।
अतएव हरकाल मैं होता विरक्त, स्वद्रव्यक्षेत्रकाल में होता निरत।।
चारों भवों में मैंने किया भ्रमण, चौरासी लक्ष्य योनी में किया भ्रमण।
चारों गति परे पंचमगति मैं चाहूँ, भव सम्बन्धी सुख-दुःख परे मैं चाहूँ।।
राग द्वेष मोह भाव किया अनन्त, अतएव दुःख भोगा मैंने अनन्त।
शुद्धात्मा स्वभाव को सदा मैं चाहूँ, विभावभावों को कभी न चाहूँ।।
मेरे ही स्वद्रव्यक्षेत्रकाल मैं चाहूँ, शुद्धात्मभाव में मैं रमना चाहूँ।
पर से निवृत्ति स्व में करूँ प्रवृत्ति, 'कनक' का लक्ष्य है स्वात्मोपलब्धि।।

## स्वरूप-चिन्तन

(राग : 1. तुम दिल की धड़कन में..... 2. सायोनारा..... 3. रघुपति राघव.....)

मैं हूँ अनन्त चिन्मय रूप, सत्य समता व शान्ति स्वरूप।
राग-द्वेष-मोह से भिन्न स्वरूप, अनन्त ज्ञान दर्शन सुख रूप।।( धृ. )
हानि-लाभ से रहित स्वरूप, शत्रु-मित्र से परे मम स्वरूप।
आकर्षण-विकर्षण परे स्वरूप, अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रिक्त।।
जन्म-जरा-मरण रहित रूप, कालातीत हूँ मैं शिव/( नित्य )स्वरूप।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश रिक्त, चिदानन्दमय हूँ मंगल रूप।।( 1 )
क्षमा मृदुता व सरल रूप, संयम आकिंचन्य शुचिता रूप।
आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र रूप, निर्द्वन्द्व निष्कलंक उदार रूप।।
आत्मवैभव से सहित रूप, दीन-हीन-अहंकार रहित।
श्रेष्ठ-ज्येष्ठ व वरिष्ठ रूप, भौतिक सत्तादि से मैं रहित।।( 2 )
स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण रहित, हल्का भारी रूप से मैं रहित।
तन-मन-वचन से भी रहित, अस्तित्व वस्तुत्व गुणों से युक्त।।
अच्छेद्य-अभेद्य हूँ अपराजित, अज्ञानी मोही से अपरिचित।
सत्य शिव सुन्दर अमृत रूप, 'कनक' नहीं, मैं हूँ शुद्धचित्त।।( 3 )

# मेरी अनन्त कहानी
## (संसार एवं मोक्ष)

**(चाल : 1. सुनो सुनो हे दुनिया वालो..... 2. आत्म शक्ति से ओतप्रोत.....)**

मेरे जीवन की महान् कहानी, जो विश्व के हर क्षेत्र में रची है।
अनादि अनन्त काल लग गई, कहानी जन्म व मरण की है।।स्थायी ।।

नित्य निगोद में जन्म लिया हूँ, अनन्तानन्त बार है।
एक श्वास में अठदश बार, जन्म मरण किया हूँ मैं।।
भाग्य उदय से त्रस में जन्मा हूँ, चतुर्गति में भी किया भ्रमण-2
चौरासी लाख योनि मध्य में, विश्व भर में किया भ्रमण।।( 1 )

इसी के द्वारा विश्व भर के, उत्थान-पतन किया अनन्त।
तन-मन-इन्द्रिय भोग के हेतु, हर पाप को किया अनन्त।।
अनन्त जीवों से सम्बन्ध हुआ, भाई बन्धु शत्रु-मित्र रूप में-2
माता-पिता पति-पत्नी रूप में, सधर्मी-विधर्मी बहु रूप में।।( 2 )

इसी हेतु क्रोध भी किया, माया लोभ व काम मोह भी।
हिंसा झूठ व कुशील परिग्रह, चोरी आक्रमण युद्ध हत्या भी।।
जिसके कारण निगोद में जन्मा, इतर/( चतुर्गति ) निगोद जिसे कहते-2
यह मेरी कथा सर्वज्ञ ही जानते, गणधर सूरी ग्रंथ में लिखते।।( 3 )

द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव रूपी, पंच परिवर्तन किया विश्व में।
कालादि लब्धि पाकर अभी मैं, संलग्न हुआ हूँ मोक्षमार्ग में।।
संसार मार्ग से विपरीत मार्ग, आत्मा में ही जो होता गमन-2
आत्मा से प्रारम्भ आत्मा में गमन, आत्मा में परिपूर्ण होता गमन।।( 4 )

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्रमय ( है ), जो मोह क्षोभ से रहित है।
सत्य समता व शान्ति स्वरूप है, पाप ताप द्वंद्व रहित है।।
आत्म साधना से ( मैं ) स्वयं को पाकर, बनूँगा सच्चिदानन्द मय-2
संसार की कथा होगी विनाश, 'कनक' का यह परम लक्ष्य।।( 5 )

# विषय एवं सन्दर्भ के अनुसार विभिन्न शब्दार्थ

(राग : शत-शत वन्दन.....)

ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध को यथार्थ जानो, वाच्य-वाचक सम्बन्ध को तथाहि मानो।
विषय व सन्दर्भ से होता है अर्थ, रूढ़ि से भी भिन्न होता यथार्थ अर्थ।।( 1 )
द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अर्थ-विभिन्न, निश्चय-व्यवहार से भी होता अर्थ-विभिन्न।
नाम-स्थापना-द्रव्य भाव से अर्थ-विभिन्न,
धर्म-दर्शन-विज्ञान से अर्थ-विभिन्न।।( 2 )
यथा 'योग' शब्द का होता अर्थ अनेक, गणित में होता है वृद्धि या अधिक।
कर्मास्रव में होता आत्म प्रदेश कम्पन,
ज्ञान/( ध्यान ) सन्दर्भ में होता है एकाग्र मन/( ध्यान )( ज्ञान )।।( 3 )

नाम 'भगवान्' है केवल सूचना-अर्थ, 'स्थापना' भगवान्' है मान्यता-अर्थ।
द्रव्य 'भगवान्' शक्ति की सूचना-अर्थ',
भाव 'भगवान्' है साक्षात् शक्ति सहित।।( 4 )
निश्चय से 'जीव' है चेतनामय, अभौतिक अमूर्तिक आनन्दमय।
व्यवहार से यह सब पूर्णत: नहीं, कर्म के कारण ये सब विकृत सही।।( 5 )
'धर्म द्रव्य' होता है गति माध्यम द्रव्य, 'धर्म' होता है वस्तु-स्वभावमय।
'अधर्म द्रव्य' होता स्थिति माध्यम द्रव्य, 'अधर्म' होता है विकृत स्वभावमय।।( 6 )

स्वभावत: होता है 'द्रव्य' षट् द्रव्य/( जीवादि ), व्यवहार से होता धन भी द्रव्य।
भौतिक वस्तु व पूजादि द्रव्य, द्रव्य क्षेत्रादि अन्तर्गत भी द्रव्य।।( 7 )
'भाव' होता है 'सद्भाव' स्वरूप, 'भाव' होता है 'परिणाम' स्वरूप।
'अशुभ' 'शुभ' 'शुद्ध' भाव त्रिविध, व्यवहारत: भौतिक मूल्य है 'भाव'।।( 8 )
'शाब्दिक' अर्थ व 'भावत:' अर्थ, 'नय सापेक्ष' व 'आध्यात्मिक' अर्थ।
'रहस्य' तथा 'शिक्षाप्रद' अर्थ, 'कनकनन्दी' का लक्ष्य है 'परमार्थ'।।( 9 )

## जैन दर्शन अपेक्षा (10) प्रकार के लोक
## (जैन दर्शन अपेक्षा नैसर्गिक अकृत्रिम लोक (विश्व))

सर्वज्ञ प्रणीत अनेकान्तात्मक जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक वस्तु अनेकान्तात्मक है। जैन धर्म के अनुसार लोक भी अनेक प्रकार के हैं।

**इगविहो खलु लोओ दुविहो तिविहो तहा बहुविहो वा।**
**दव्वेहिं पज्जएहिं चिंतिज्जो लोयसब्भावं।।( 713 )**

( मूलाचार ) ( कुन्दकुन्दाचार्य )

सामान्य की अपेक्षा लोक एक प्रकार का है। जिसमें पदार्थ ''लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते'' उपलब्ध होते हैं, उसको लोक कहते हैं। ''लोक्यते इति वा लोकः। सर्वज्ञेनाऽनन्तेऽप्रतिहत केवल दर्शनेन लोक्यते यः सः लोकः। तेन धर्मादिनामपि लोकत्वं सिद्धम्।।'' अर्थात् जो देखा जाता है वह लोक है। सर्वज्ञ के द्वारा अनन्त अप्रतिहत केवल दर्शन के द्वारा जो देखा जाता है वह लोक है। इससे धर्मादिकों का भी लोकत्व सिद्ध हुआ। ''यत्रपुण्यपापफलं लोकनं सः लोकः।'' अर्थात् जहाँ पुण्य-पाप के फल सुख-दुःख रूप में दिखायी देते हैं वह लोक है। ''लोकातीति वा लोकः। लोकति पश्यत्युपलभते अर्थानीति लोकः।'' अर्थात् जहाँ अर्थों का उपलभ्य होता है, उसे लोक कहते हैं।

अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के भेद से लोक दो प्रकार के होते हैं। अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और मध्यलोक के भेद से लोक के तीन भेद होते हैं, अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के भेद से लोक के तीन भेद हैं। नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देवगति के भेद से लोक चार प्रकार के हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाकशास्तिकाय, पुद्गलास्तिमाय, जीवास्तिकाय के भेद से लोक के 5 भेद हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इसी प्रकार षट्द्रव्य रूप से लोक के 6 भेद हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ऐसे पदार्थों के सात भेद होने से लोक के 7 भेद होते हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, आयु कर्म, नाम कर्म, गोत्र कर्म की अपेक्षा लोक के आठ भेद हैं। इसी प्रकार लोक के बहुभेद हैं। द्रव्य और पर्यायों की अपेक्षा से लोक बहु प्रकार के हैं, ऐसा चिंतन करना चाहिए।

**णामट्ठवणं दव्वं खेत्तं चिण्हं कसायलोओ य।**

**भवलोगो भावलोगो पज्जयलोगो य णादव्वो।।( 543 )( मूलाचार )**

लोक के निक्षेप द्वारा 9 भेद माने गये हैं - ( 1 ) नाम लोक, ( 2 ) स्थापना लोक, ( 3 ) द्रव्य लोक, ( 4 ) क्षेत्र लोक, ( 5 ) चिह्न लोक, ( 6 ) कषाय लोक, ( 7 ) भव लोक, ( 8 ) भाव लोक, ( 9 ) पर्याय लोक।

## 1. नाम लोक

**णामाणि जाणि काणि व सुहासुहाणि लोगम्हि।**

**णामलोगं विजाणाहि अणंत जिणदेसिदं।।( 544 )( मूलाचार )**

इस जीव लोक में जो कुछ शुभ-अशुभ नाम हैं, उन्हें नाम लोक समझो ऐसा अनन्त जिनेश ने कहा है।( जिनेश्वर अनन्त हैं, क्योंकि भूतकाल में अनन्त जिन हो गये और आगे भी अनन्त होंगे। )

## 2. स्थापना लोक

**ठविदं ठाविदं चावि जं किं वि अत्थि लोगम्हि।**

**ठवणालोगं वियाणाहि अणंत जिणदेसिदं।।( 545 )( मूलचार )**

स्थित लोक-अकृत्रिम लोक, स्थापित लोक-कृत्रिम घटपटादिक अर्थात् जो कुछ कृत्रिम और अकृत्रिम वस्तु इस लोक में है उसे अनन्त जिनेश्वर ने स्थापना लोक कहा है, ऐसा समझो।

## 3. द्रव्य लोक

**जीवाजीवं रूवारूवं सपदेसमप्पदेसं च।**

**दव्वलोगं वियाणाहि अणंत जिणदेसिदं।।( 546 )( मूलाचार )**

ज्ञान और दर्शन जिनका लक्षण है उन्हें जीव कहते हैं। काल, आकाश, धर्म, अधर्म और पुद्गल ये अजीव हैं। इनमें ज्ञान दर्शन अर्थात् चेतना नहीं हैं। रूपी-रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द जिसके हैं ऐसे पदार्थ को अर्थात् पुद्गल को रूपी कहते हैं। अरूपी-काल, आकाश, धर्म, अधर्म और जीवों को अरूपी कहते हैं। सप्रदेश-सर्व जीवादिक प्रदेश सहित हैं परन्तु अप्रदेश-कालाणु और पुद्गलाणु प्रदेश रहित हैं अर्थात् कालाणु में एक ही प्रदेश है और पुद्गलाणु जब तक अन्य पुद्गल से बद्ध नहीं होता है तब तक वह एक प्रदेशी ही है, अतः वे

अप्रदेशी होते हैं। ये सब द्रव्य लोक हैं।

### 4. काल लोक

**परियट्टणदो ठिदि अविसेसेण विसेसिदं दव्वं।**
**कालोत्ति त्तं हि भणिदं तेहि असंखेज्ज कालाणु।।( मूलाचार )**

प्रत्येक घटपटादिकों में नया पुराना इत्यादि परिवर्तन देखने से काल नामक पदार्थ का अस्तित्व सिद्ध होता है। प्रत्येक पदार्थ कुछ स्थिति को धारण करता है। अतः यह पदार्थ की स्थिति काल के बिना नहीं हो सकती है। अतः काल नामक पदार्थ द्रव्य है, ऐसा जिनेश्वर ने कहा है। यह काल असंख्यात द्रव्य है।

### 5. क्षेत्र लोक

**आयासं सपदेसं उड्ढ्महो तिरियलोगं च।**
**खेत्तलोगं वियाणाहि अणंतजिणदेसिदं।।( 548 )( मूलाचार )**

**आकाश, लोकाकाश की अपेक्षा से असंख्यात प्रदेशात्मक** है और अलोकाकाश की अपेक्षा से अनन्त प्रदेशी है। ऊर्ध्व लोक, मध्य लोक, तिर्यग्लोक, अधोलोक भी क्षेत्र लोक है। इस क्षेत्र लोक को अनन्त जिनेश्वरों को देखा है।

### 6. चिह्न लोक

**जं दिट्ठं संठाणं दव्वाणं गुणाणं पज्जयाणं च।**
**चिण्ह लोगं वियाणाहि अणंत जिणदेसिदं।।( 549 )( मूलाचार )**

द्रव्य संस्थान-धर्म, द्रव्य और अधर्म द्रव्य का संस्थान-आकार लोकाकार है। अर्थात् सम्पूर्ण लोकाकाश को व्याप्त कर ये दो द्रव्य रहते हैं, अतः वे लोकाकार हैं। कालाणु की आकृति आकाश का एक प्रदेशाकार है। आकाश केवल ज्ञान स्वरूपाकार है अर्थात् आकाश अनन्त है। लोकाकाश का आकार गुहागुहादि स्वरूप से है। पुद्गल द्रव्य का आकार लोकाकार है अर्थात् सर्व लोक में पुद्गल हैं, जहाँ वह नहीं है ऐसा लोक का एक भी प्रदेश नहीं है। पुद्गल द्रव्य का स्वरूप द्वीप, नदी, सागर, पर्वत, पृथ्वी आदि रूप हैं। जीव द्रव्य के समचतुरस्र, न्यग्रोध-परिमण्डल इत्यादि संस्थान है। गुणों का संस्थान द्रव्याकार है अथवा कृष्ण, नील, शुक्लादि स्वरूपाकार है। पर्यायों का आकार दीर्घ, ह्रस्व, गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण, नारकत्व, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवत्वादि है। द्रव्य,

गुण, पर्यायों का जो आकार दिखता है, वह चिह्न लोक है।

### 7. कषाय लोक

**कोधो माणो माया लोहो उदिण्णा जस्स जंतुणो।**
**कसाय लोग वियाणाहि अणंतजिणदेसिदं।।( 550 )( मूलाचार )**

जिस जन्तु ( प्राणी ) में क्रोध, मान, माया, लोभ उदय में आये हैं, उस जन्तु को कषाय लोक कहना चाहिए।

### 8. भव लोक

**णेरइय देव माणुस तिरिक्खजोणिं गदाय जे सत्ता।**
**णिययभवे वट्टंता भावलोगं तं विजाणहि।।( 551 )( मूलाचार )**

जो जीव नरक, देव, मनुष्य और तिर्यंच गति में पाये जाते हैं और उसमें अपनी आयु के प्रमाण तक रहते हैं, उनको भव लोक कहना चाहिए।

### 9. भाव लोक

**तिव्वो रागो य दोसो य उदिण्णा जस्स जंतुणो।**
**भावलोगं वियाणाहि अणंत जिणदेसिदं।।( 552 )( मूलाचार )**

जिस प्राणी को तीव्र राग-द्वेष अर्थात् प्रीति-अप्रीति उदय में आये हैं, उसको भाव-लोक कहना चाहिए।

### 10. पर्याय लोक

**दव्वगुणखेत्त पज्जय भवाणुभावो य भाव परिणामो।**
**जाण चउव्विहमेय पज्जय लोगं समासेण।।( 553 )( मूलाचार )**

ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, कर्तृत्व, भोक्तृत्व ये जीव द्रव्य के गुण हैं। कृष्ण, नील, शुक्ल, रक्त, पीत ये पुद्गल द्रव्य के गुण हैं। गति-हेतुत्व धर्म द्रव्य का गुण है। स्थिति हेतुत्व अधर्म द्रव्य का गुण है। वर्तमानादिक काल का गुण है। क्षेत्र पर्याय-सप्तम नरक की पृथ्वी का प्रदेश, पूर्व विदेह, अपर विदेह, भरत, ऐरावत, द्वीप, समुद्र, त्रेसठ, स्वर्ग पटल इत्यादि क्षेत्र के पर्याय हैं। भवानुभाव-आयु के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद भवानुभव है। भाव अर्थात् परिणाम है। वे असंख्यात लोक प्रमाण हैं, शुभाशुभ रूप हैं। उन परिणामों से आत्मा में नये कर्म आते हैं और पूर्व कर्म उदय में आकर नष्ट भी होते हैं अर्थात् शुभाशुभ परिणाम

आत्मा में कर्म लाना और उससे निकलना इत्यादि कार्य करते हैं। द्रव्य के गुण, पर्याय लोक है। क्षेत्र की पर्याय-पर्याय लोक हैं, भवानुभाव-पर्यायलोक है। भाव अर्थात् परिणाम यह भी पर्यायलोक है।ऐसे पर्याय लोक के चार भेद हैं।

लोक किसी परमात्मा के द्वारा रचित ( सृष्टि ) किया गया है, ऐसी मान्यता जैन दर्शन में नहीं हैं। लोक माया स्वरूप भी नहीं है। जगत में केवल ब्रह्म सत्य है एवं जगत् मिथ्या है। इस प्रकार की मान्यता को भी जैन दर्शन में स्थान नहीं है। जगत् की प्रत्येक क्रिया ईश्वराधीन है, इस प्रकार पराधीनता का शासन भी नहीं है। जगत् ब्रह्म के द्वारा सृष्टि, विष्णु के द्वारा पालित एवं रूद्र के द्वारा संहारित होता है, इस प्रकार के परकर्तृत्व को भी यहाँ आश्रय नहीं दिया है। जगत् की किसी कल्पकाल में सृष्टि हुई, ऐसी भी मान्यता नहीं है। असत् से सत् उत्पादन को मान्यता की धृष्टता भी जैन शासन में नहीं है।केवल जगत् जड़ स्वरूप है, इस प्रकार अविचारित चारूवाक् का प्रश्रय भी नहीं है। लोक, क्षेत्र दृष्टि से अनन्त है, इस प्रकार की मान्यता भी नहीं है।

**लोगो अकिट्ठिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।**
**जीवाजीवेहि फूड़ो सव्वागास अवयवो णिच्चो।।( त्रिलोक सार )( 4 )**

लोगो। अधिकाराण तस्य लोक पदस्य पुनरूपादान लोकमनद्य दूषणार्थं। लोकोस्तीति। अनेन विशेषणेन शून्यवाद निराकृति कृता। अकृत्रिमः खलु, अनेनेश्वर कर्तृकत्त्वं निराकृतम्। अनादि निधनः। अनेन सृष्टि संहार निराकरणं। स्वभाव निर्वृत्तः। अनेन परमाण्वारब्धतानिराकृतिः। जीवाजीवैस्फुटः अनेन मायावादि निराकरणं।र्स्वाकाशावयवः।अनेन अलोकाभाववादापहारः।नित्यः। अनेन क्षणिक मत निरासः।एतावता कथनेन लोक्यते इति लोकः इति षट् द्रव्य समवायस्य लोकत्वमुक्तम्।

निश्चय से लोक अकृत्रिम, अनादिनिधन, स्वभाव से निष्पन्न, जीवाजीवादि द्रव्यों से सहित, सर्वाकाश अवयव स्वरूप और नित्य है।

जैनाचार्य द्वारा प्रणीत प्रत्येक सूत्र एवं प्रत्येक शब्द अत्यन्त गंभीर अर्थ लिये हुए होते हैं।वे एक ही शब्द में सत् का निरूपण एवं असत् का निराकरण भी कर देते हैं। उपरोक्त गाथा में लोक के जो छः विशेषण दिये गये हैं, उसमें लोक के

सम्यक् स्वरूप का वर्णन एवं असम्यक् लोक का निराकरण भी किया गया है। प्रकरण प्राप्त लोक का वर्णन होने पर भी यहाँ जो 'लोग' शब्द को ग्रहण किया गया है उससे लोक की सिद्धि एवं शून्यवादी का निराकरण भी किया गया है अर्थात् वास्तविक सत् स्वरूप लोक है, लोक शून्य स्वरूप नहीं है। जो वस्तु अन्य के द्वारा बनायी नहीं जाती उसको प्राकृतिक अथवा अकृत्रिम कहते हैं। इसी प्रकार लोक भी अकृत्रिम अर्थात् ईश्वर के द्वारा बनाया गया नहीं है। जिसका आदि होता है उसका अन्त भी होता है। जिसका एक पार्श्व होता है उसका अन्य पार्श्व भी होता है। जो वस्तु किसी के द्वारा नहीं बनायी जाती है वह वस्तु अन्य के द्वारा नाश भी नहीं होती है। इस लोक को किसी ने बनाया नहीं, अतः किसी के द्वारा उसे नष्ट भी नहीं किया जा सकता है।

जिस प्रकार ईंट स्वतंत्र रहने पर अट्टालिका नहीं बनाती है, स्वतंत्र, स्वतंत्र जल बिन्दु से समुद्र नहीं बनता है, स्वतंत्र रूई से वस्त्र नहीं बनता है, किन्तु सम्यक् ईंट संयोजना से गृह, अनेक बिन्दु के संबंध में समुद्र एवं सम्यक् रूई के बंधन से वस्त्र बनता है, इस प्रकार बनने के पहले उस मौलिक वस्तु को करण कहते हैं और बनने के बाद उसको कार्य कहते हैं। इसी प्रकार विश्व में पहले केवल परमाणु था एवं उस परमाणु द्वारा लोक का प्रारम्भ हुआ इस प्रकार की मान्यता भी असंगत है। जिस प्रकार जादूगर अपनी माया के माध्यम से अनेक वस्तु दर्शकों को प्रदर्शित करता है किन्तु वह वस्तु माया स्वरूप है। स्वप्न में अनेक राज विभूतियों का अनुभव करते हुए देखने पर भी वह राज विभूति सत् या वास्तविक राज विभूति नहीं है, उसी प्रकार दृश्य जगत् केवल मायामय है, इस प्रकार की धारणा प्रत्यक्ष, आगम एवं तर्क विरुद्ध है। वैज्ञानिक सिद्धान्त से भी खण्डित है, किन्तु लोक जीवाजीव से लोग परिपूर्ण है। कुछ तत्त्वज्ञ, लोक को मानने पर भी लोक के बाद अलोक को नहीं मानते हैं। लोक के बाद अनन्त अलोक है एवं वह अलोक कहाँ समाप्त हुआ है ? इस प्रकार की जिज्ञासा भी कुछ विचारकों के मन में आती है। जब इस विचार का समाधान अल्पज्ञान द्वारा नहीं कर पाते हैं, तब वे अलोक को ही मानना छोड़ देते हैं। वस्तुतः लोक, अलोक की अपेक्षा बहुत छोटा है। इसको उदाहरण द्वारा बताना सहज नहीं है तो भी सम्यक्

ज्ञान कराने के लिये एक उदाहरण दे सकते हैं। विशाल गोल गुम्बज यदि अलोकाकाश मान लिया जाये तो लोकाकाश एक परमाणु स्वरूप होगा। प्रतिक्षण परिवर्तनशील विश्व को देखकर कुछ क्षणिकवादी मानते हैं कि विश्व क्षणिक है, किन्तु विश्व, पर्याय की अपेक्षा क्षणिक होने पर भी द्रव्य दृष्टि से नित्य है।

**भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।**
**गुण पज्जयेसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति।।( पंचास्तिकाय 15 )**

भाव का अर्थात् सत् द्रव्य का, द्रव्य रूप से विनाश नहीं होता है। अभाव का अर्थात् असत् द्रव्य कभी सत् द्रव्य रूप से उत्पन्न नहीं होता है। इस प्रकार सत् का उच्छेद तथा असत् का अभाव भाव रूप से नहीं होता है, किन्तु गुण पर्याय में विनाश, उत्पाद होता है, क्योंकि द्रव्य का स्वरूप ही उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक है।

**''उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्''।।( त.सू. )**

Sat is characterised by th econcomitant processes of Utpada, vyaya & dhrauvya. Utpada means coming into existence-birth. Vyaya means going out of existence-death & dhrauvya means permanence. Dhrauvya is further defined in the following sutra.

The word union is applied some how from the point of view of distinction even in the case of things which are not different. For instance, there is a usage that the pillar is united with (characterised by) strength. In that case it is proper to call the concomitance of origination, disappearance & permanence as existence. Or the word united (Yukta) means collected or combined, that is, of one's own nature. That is existence is of the nature of origination, disappearance & permanence. It comes to this. Origination and the other two are the distinguishing characteristics of a substance. Substance is the thing defined from the point of view of modes, these three characteristics (origination etc.) are mutually different from one another & are also different from the substance. From the point of view of substance, these three are not perceived separately from the substance. Hence they are not different and thus the defined and the definition are both established.

सत्, उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है अर्थात् सत् का स्वभाव-उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप है। उत्पाद का अर्थ नूतन पर्याय प्राप्त करना है। व्यय का अर्थ पूर्व पर्याय का नाश है। ध्रौव्य का अर्थ उत्पाद व्यय के मध्य में रहने वाले द्रव्य की नित्यता है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य में परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध होने से यहाँ 'युक्त' शब्द का प्रयोग किया गया है, अथवा यह 'युक्त' शब्द सम्बन्धवाची है। भाव यह है कि, युक्त समाहित और तादात्मक एकार्थवाची शब्द है, जिससे ''सत्, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से युक्त है'' इसका भाव सत्-उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यात्मक है, ऐसा सिद्ध होता है। उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि उत्पादादि द्रव्य के लक्षण हैं और द्रव्य लक्ष्य है। यदि इनका पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा विचार करते हैं तो, यह परस्पर में और द्रव्य से पृथक्-पृथक् है और यदि द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा विचार करते हैं तो, ये पृथक्-पृथक् उपलब्ध नहीं होने से अभिन्न हैं। इसी प्रकार इनमें और द्रव्य में लक्ष्य-लक्षण भाव की सिद्धि होती है।

**न सर्वथा नित्यमुदैत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।**
**नैवासतोजन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति।।( स्वयंभूस्तोत्र )**

सर्व प्रकार से वस्तु नित्य ही है, एक रूप ही रहने वाली है, ऐसा एकांत मान लेने से उसमें कोई नूतन अवस्था प्रकट नहीं हो सकती है, न ही प्राचीन अवस्था का नाश भी हो सकता है। यदि वस्तु में क्रिया एवं कारक होंगे, तो उत्पाद-व्यय स्वभावतः होना ही चाहिए, परन्तु सर्वथा नित्य मानने से किसी प्रकार की शुद्ध अथवा अशुद्ध रूप क्रिया नहीं हो सकती है तथा कर्त्ता, कर्म, करण आदि कारक की भी सिद्धि नहीं हो सकती है। जो जैसा है वैसा ही कूटस्थ नित्य ही रहेगा। क्रिया कारकत्व तो द्रव्य का स्वभाव है। यह स्वभाव ही नहीं रह सकेगा, तो स्वभाव के अभाव से द्रव्य का अभाव हो जायेगा। जो सोया है वह सोया ही रहेगा, जो जागता है वह जागता ही रहेगा, जो खाता है वह खाता ही रहेगा, जो पीता है वह पीता ही रहेगा। इस प्रकार सर्वथा नित्य मानने से दोष आता है। उसी प्रकार सर्वथा अनित्य एवं क्षणिक मानने से भी क्रिया कारकत्व सिद्ध नहीं होगा। जो वस्तु स्वरूप से आकाश-कुसुम के समान, वन्ध्या पुत्र के समान असत् है,

उसका जन्म भी नहीं हो सकता है। जो सत् पदार्थ है उसका सर्वथा अभाव नहीं हो सकता है। कुछ सामान्य व्यक्ति दीपक बुझ जाने के बाद उसका सर्वथा नाश हुआ मानते हैं, किन्तु वास्तविक दीपक के प्रकाश रूप पुद्गल पर्याय के नाश से अंधकार रूप पुद्गल पर्याय की उत्पत्ति हुई है। प्रकाश एवं अंधकार दोनों पुद्गल के पर्याय ही हैं। प्रकाश पर्याय की अवस्था में जो पुद्गल था, वही निमित्त पाकर अंधकार रूप पर्याय में परिणमन हुआ है। जैसे जल के गर्म करने से जल की शीत रूप पर्याय नष्ट हो जाती है एवं उष्ण पर्याय की उत्पत्ति होती है। अधिक गर्म करने पर जल वाष्प रूप पर्याय को प्राप्त होता है। वाष्प होकर पात्र का सम्पूर्ण जल विलय होने पर भी जल में मौजूद अणु नष्ट नहीं हुआ। वह अणु वाष्प रूप में वर्तमान में विद्यमान है। जैसे - एक छोटा-सा बालक, 20 वर्ष में युवक अवस्था को प्राप्त हो जाता है, 100 वर्ष में वृद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है। अवस्था तीन होने पर भी जीव एक ही है। जैसे एक जीव की मनुष्य रूप पर्याय नष्ट नहीं हुई एवं देव रूपी पर्याय प्राप्त हुई, अतः गति भिन्न होने पर भी जीव एक ही है। इसी प्रकार विश्व का समस्त सूक्ष्म, स्थूल, दृश्यमान, अदृश्यमान, शुद्ध, अशुद्ध परिणमन उस द्रव्य को छोड़कर नहीं होता है अर्थात् सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय, स्वभाव से द्रव्य में ही होता है। सम्पूर्ण विश्व सत् स्वरूप में एक, अभेद, अविनाशी, अनंत गुण-पर्यायात्मक एवं प्रतिपक्ष सहित है।

**सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।**
**भगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।।( 8 )( पञ्चास्तिकाय )**

जो अस्तित्व है सो सत्ता है। जो सर्वथा क्षणिक एवं नित्य है वह वस्तु नहीं हो सकती है। जो सत्ता को लिये हुए है, वही वस्तु है। वस्तु नित्यानित्य स्वरूप है। यदि वस्तु को सर्वथा नित्य ही माना जाये तो सत्ता का नाश हो जायेगा, क्योंकि नित्य वस्तु में क्षणवर्ती पर्याय के अभाव से परिणाम का अभाव हो जायेगा, परिणाम के अभाव से वस्तु का अभाव हो जायेगा। वस्तु में जितना कुछ विस्तार है, तो भी सत्ता में गर्भित है। वस्तु ही विश्व रूप को ( सम्पूर्ण रूप ) धारण करती है। पर्यायों के जो अनन्त भेद हैं, वे सब भी इस सत्ता में ही अन्वय होते हैं। उत्पाद-व्यय ध्रौव्य भी सत्ता में होता है। सामान्य रूप सत्ता, विशेष सत्ता की अपेक्षा

प्रतिपक्ष लिये हुए है। प्रत्येक वस्तु में प्रतिपक्ष गुण न रहने से वस्तु निरंकुश हो जायेगी। निरंकुश होना वस्तु का स्वरूप नहीं है। निरंकुश होने से वस्तु का लोप हो जायेगा। सत्ता, असत्ता का प्रतिपक्षी, अविलक्षणत्व, विलक्षण का प्रतिपक्षी, अनेकत्व, एक का प्रतिपक्षी है। इसी प्रकार प्रत्येक गुण, पर्याय, द्रव्यादि समस्त प्रतिपक्ष सहित है। सामान्य रूप से सामान्य स्वरूप, सत्ता विशेषता की अपेक्षा से प्रतिपक्ष होने के कारण सत्ता दो प्रकार की है, अर्थात् महासत्ता और अवान्तर सत्ता। जो सत्ता, उत्पाद-व्यय ध्रौव्य रूप त्रिलक्षण संयुक्त है तथा समस्त पदार्थों में रहती है, समस्त रूप है और अनन्त पर्यायात्मक है, वही महासत्ता है और जो इसकी ही प्रतिपक्षी है, वही अवान्तर सत्ता है। यह महासत्ता की अपेक्षा असत्ता है। इसमें उत्पादादि तीन लक्षण गर्भित नहीं है। यह अनेक हैं, एक पदार्थ में रहती है, एक स्वरूप है, एक पर्यायात्मक है। इस प्रकार प्रतिपक्षी अवान्तर सत्ता जानना चाहिए। इन दोनों में से जो समस्त पदार्थों में सामान्य रूप से व्याप्त रही है, वह तो महासत्ता है और जो दूसरी है सो अपने-अपने एक पदार्थ के स्वरूप में निश्चित विशेष स्वरूप से वर्तना करती है, इसी कारण से इसे अवान्तर सत्ता कहते हैं। महासत्ता, अवान्तर सत्ता की अपेक्षा से असत्ता है। अवान्तर सत्ता, महासत्ता की अपेक्षा से असत्ता है। इसी प्रकार से कथंचित् सत्ता की असत्ता है। उत्पादादि तीन लक्षण संयुक्त जो सत्ता है वही तीन लक्षण संयुक्त नहीं है, क्योंकि जिस स्वरूप से उत्पाद है, उस स्वरूप से उत्पाद ही है। जिस स्वरूप से व्यय है, उस स्वरूप से व्यय ही है। जिस प्रकार से ध्रौव्यता है, उस स्वरूप से ध्रौव्य ही है। इसी कारण जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वस्तु के स्वरूप हैं, उनमें एक-एक स्वरूप के उत्पादादि तीन लक्षण नहीं होते। इसी कारण तीन लक्षण रूप सत्ता के तीन लक्षण नहीं है और उस ही महासत्ता के अनेक भी हैं एक भी हैं, क्योंकि निज-निज में जो सत्ता है उससे पदार्थ का निश्चय होता है। इसी कारण सर्वव्यापी महासत्ता निज-निज एक-एक पदार्थ की अपेक्षा से एक-एक पदार्थ में रहता है। अतः अनेक महासत्ता सकल स्वरूप है वहाँ एक रूप है। इसी कारण सकल स्वरूप सत्ता को एक रूप कहा जाता है और जो महासत्ता अनन्त पर्यायात्मक है उसको एक पर्याय स्वरूप कहते हैं, क्योंकि अपने-अपने पर्यायों की अपेक्षा से

द्रव्यों की अनन्त सत्ता है। एक द्रव्य को निश्चित पर्याय की अपेक्षा से एक पर्याय रूप कहा जाता है। इस कारण अनन्त पर्याय स्वरूप सत्ता को एक पर्याय स्वरूप कहते हैं। यह जो सत्ता का स्वरूप है उसमें कोई विरोध नहीं है, क्योंकि भगवान् का उपदेश सामान्य व विशेष रूप में दो नयों के आधीन है, इसीलिए महासत्ता और अवान्तर सत्ता में कोई विरोध नहीं है।

**तत्त्वं सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिध्दम्।**
**तस्मादनादिनिधनं स्वहायं निर्विकल्पञ्च।।**

तत्त्व अर्थात् वस्तु सत् लक्षण वाली है अथवा सत् स्वरूप ही वस्तु है। वस्तु में जो अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व आदि अनन्त गुण हैं, उनमें से अस्तित्व गुण का नाम सत् है। सत् कहने से अस्तित्व गुण का ग्रहण होना चाहिये परन्तु सत् कहने से सम्पूर्ण वसतु का ग्रहण होता है, क्योंकि 'एकगुणमुखेनाऽशेषवस्तुकथन प्रमाणाधीनमिति वचनात्', अर्थात् एक गुण के वर्णन के माध्यम से सम्पूर्ण वस्तु का कथन करना प्रमाण वचन है। इसका कारण यह है कि अस्तित्व आदि सभी गुण अभिन्न हैं। अभिन्नता के कारण ही सत् के कहने से सम्पूर्ण गुण समुदाय रूप वस्तु का ग्रहण हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि वस्तु, कभी भी असत् नहीं थी एवं असत् से भी सत् उत्पन्न नहीं हुआ। यह विज्ञान सिद्ध सिद्धान्त है। अतः उपनिषदों में वर्णित असत् से जगत् की उत्पत्ति ( सृष्टि ) नहीं हो सकती। छान्दोग्यउपनिषद् के अनुसार सर्वप्रथम असत् था। असत् से सत् की उत्पत्ति हुई, सत् से अण्डे की उत्पत्ति हुई। जिसका, एक वर्ष के बाद पूर्णता को प्राप्त होकर विस्फोट हुआ, फलस्वरूप एक अंश सुवर्ण रूप एवं अन्य एक भाग रोप्य ( चाँदी ) रूप में परिणमित हुआ। सुवर्ण भाग से आकाश की सृष्टि हुई, रोप्य भाग से भूमि की सृष्टि हुई, रस भाग से समुद्र की सृष्टि हुई, रक्तवाहिनी अंश से नदियों की सृष्टि हुई, मोटे भाग से पर्वतों की सृष्टि हुई, पतले भाग से मेघों की सृष्टि हुई, हठात् एक अंश बाहर निकल सूर्य में परिणमित हुआ। इस प्रकार असत् से सत् की उत्पत्ति होती है। फूल के लिये बगीचे की, तेल के लिये तिलों की, सन्तान के लिये माता-पिता की क्या आवश्यकता नहीं होती है ?

तत्त्व स्वतः सिद्ध है, इसलिए अनादि निधन है। प्रत्येक वस्तु में अवश्य

परिणमन होता है, उस परिणमन में वस्तु अपने आप ही स्वयोग्यता के अनुसार स्वभाव से उपादान रूप से परिणमन करती है। प्रत्येक वस्तु अनन्त गुणों का पिण्ड होने के कारण निर्विकल्प अर्थात् वचनातीत है। यदि वस्तु में उपरोक्त स्वभाव को नहीं मानेंगे तो अनेक दोष उत्पत्ति की धारा को कोई भी रोक नहीं सकता है।

**इत्थं नो चेदसतः प्रादुर्भूतिर्निरङ्कुशा भवति।**
**परतः प्रादुर्भावो युतसिद्धत्वं सतो विनाशो वा।।( पञ्चाध्यायी )( 9 )**

वस्तु का उपरोक्त स्वरूप नहीं मानने पर असत् पदार्थ भी सत् होने लगेगा। जब वस्तु को सत् स्वरूप और स्वतः सिद्ध माना जाता है तब असत् की उत्पत्ति नहीं बन सकती है। ऐसा न मानने पर यह दोष बिना किसी अंकुश के प्रबलता से उपस्थित हो जायेगा। इसी प्रकार होने पर प्रत्येक क्षण असत् जीव, असत् पुद्गल, असत् जगत् की सृष्टि होने से जगत् में समावेश ही नहीं हो सकेगा। एक विश्व, अन्य विश्व में जाकर उपनिवेश करने लगेगा। यदि नितान्त असत् पदार्थ की उत्पत्ति मानी जाय तो और अनेक दोष उत्पन्न होंगे।

**असतः प्रादुर्भावे द्रव्याणामिह भवेदनन्तत्वम्।**
**को वारयितु शक्तः कुम्भोत्पत्तिं मृदाद्यभावेऽपि।( पञ्चाध्यायी )( 10 )**

यदि उन दोषों को स्वीकार किया जाय तो, और कौन-कौन दोष आते हैं, यह बतलाया जाता है। यदि असत् की उत्पत्ति मान ली जाय, अर्थात् जो वस्तु पहले किसी भी रूप में नहीं है और न उसके परमाणुओं की सत्ता ही है ऐसी वस्तु की उत्पत्ति मानने से वस्तुओं की कोई इयत्ता ( मर्यादा ) नहीं रह सकती है। जब बिना, अपनी सत्ता के ही, नवीन रूप से उत्पत्ति होने लगेगी तो संसार में अनन्त-अनन्त द्रव्य होते चले जायेंगे। ऐसी अवस्था में बिना मिट्टी के ही घड़ा बनने लगेगा। इसको कौन रोक सकेगा ? अर्थात् कोई नहीं।

असत् की उत्पत्ति मानने से वस्तुओं में जो वैज्ञानिक कार्य-कारण भाव है, वह भाव नहीं रहेगा। कार्य-कारण भाव के नहीं रहने पर कोई भी वस्तु किसी भी वस्तु से उत्पन्न हो जायेगी, आकाश भी पिघल कर बरसने लगेगा। सुवर्ण भी परिवर्तित होते-होते एक दिन मिट्टी स्वरूप हो सकता है एवं मिट्टी भी परिवर्तित

होते-होते वायु स्वरूप हो सकती  है, किन्तु असत् से सत्, चेतन से अचेतन, अमूर्तिक से मूर्तिक, किसी भी क्षेत्र में, किसी भी काल में, किसी भी प्रकार से उत्पन्न नहीं हो सकता है। सुवर्ण, मिट्टी एवं वायु एक ही पुद्गल की पर्याय होने से सुवर्ण परिवर्तित होकर के मिट्टी एवं वायु हो सकता है, किन्तु चेतन-अचेतन, मूर्तिक-अमूर्तिक स्वतंत्र भिन्न वस्तु होने से चेतन से अचेतन तथा मूर्तिक से अमूर्तिक की सृष्टि नहीं हो सकती है। इससे सिद्ध हुआ कि चेतन स्वरूप परम ब्रह्म से चेतना चेतनात्मक जगत् की सृष्टि नहीं हो सकती है एवं शून्य से भी अर्थात् असत् से भी जगत् की सृष्टि नहीं हो सकती है।

कोई एक स्वतंत्र वस्तु, अन्य कोई एक स्वतंत्र वस्तु से भी उत्पन्न नहीं हो सकती है। यदि स्वतंत्र वस्तु से उत्पन्न मानेंगे तो निम्न प्रकार से दोष उत्पन्न होंगे।

**परतः सिद्धत्वे स्यादनवस्थालक्षणो महान् दोषः।**

**सोऽपिपरः परतः स्यादन्यस्मादितियतश्चसोपिपरः।।( पञ्चाध्यायी )( 11 )**

वस्तु को पर से सिद्ध मानने पर अनवस्था नाम का दोष आता है। अप्रामाणिकाऽनन्तपदार्थकल्पनया-अविश्रान्तिरनवस्था। अप्रमाण रूप अनन्त पदार्थों की उत्तरोत्तर कल्पना करते चले जाने का नाम अनवस्था दोष है। यह दोष पदार्थ सिद्धि से सर्वथा बाधक है। एक पदार्थ की उत्पत्ति दूसरे पदार्थ से, दूसरे पदार्थ की उत्पत्ति तीसरे पदार्थ से, तीसरे पदार्थ की उत्पत्ति चौथे पदार्थ से, चौथे पदार्थ की उत्पत्ति पाँचवे पदार्थ से, इस प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनन्त पदार्थ तक कल्पना करते जाइये किन्तु उस कल्पना का कभी अन्त नहीं होगा। जहाँ उस कल्पना का अन्त होगा वहाँ पुनः प्रश्न खड़ा होगा कि यह कहाँ से उत्पन्न हुआ? उसके लिए पुनः दूसरे पदार्थ की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार कहीं भी उस कल्पना का वास्तविक साधन एवं विश्रांति नहीं होगी। इसी प्रकार जब पृथ्वी से जल की सृष्टि हुई, जल से तेज, तेज से वायु, वायु से आकाश, आकाश की ब्रह्म से सृष्टि हुई। पुनः प्रश्न होता है कि ब्रह्म की सृष्टि किससे हुई? उसका उत्तर ब्रह्म अनादि निधन है। उसकी न उत्पत्ति होती है न नाश होता है। तब अन्य द्रव्य को भी अनादि निधन मानने में अर्थात् स्वतः सिद्ध द्रव्य मानने में भी दोष क्या है? दोष के परिवर्तन में गुण ही देखाई देता है। वर्तमान वैज्ञानिकों की अपेक्षा भी यह

सिद्धान्त मान्य है। 'No' thing can be created, no, thing can be destroyed but the form only changes.

सत् वस्तु का नाश नहीं होता है असत् वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है, किन्तु द्रव्य में परिवर्तन ही होता रहता है। प्रत्येक सत् वस्तु किसी न किसी सत् वस्तु से उत्पन्न होती है। जिस एक वस्तु में दूसरी वस्तु उत्पन्न होती है, उसे द्रव्य कहते हैं। गुण और द्रव्यों का समुच्चय जगत् है। यह जगत् कार्य कारणों की सतत परम्परा है। प्रत्येक वस्तु या घटना अपने पूर्ववर्ती वस्तु या घटना का कार्य होती है तथा आगे की घटनाओं का कारण। प्रत्येक घटना कार्य-कारण भाव की अनादि एवं अनन्त माला ( मोती ) का एक मनका है। कार्य कारण भाव के विशिष्ट नियम से प्रत्येक घटना एक दूसरे के साथ बंधी रहती है।

ज्ञाता और ज्ञेय अथवा सद्-वस्तु नित्य परिवर्तनशील है। वस्तुओं का स्थान बदलता रहता है। उनके घटक बदलते हैं एवं गुण-धर्म बदलते रहते हैं, किन्तु परिवर्तन का अखण्ड प्रवाह चालू है।

प्रत्येक वस्तु में स्वभाव सिद्ध, गति, शक्ति या परिवर्तन शक्ति अवश्य रहती है। अणु द्रव्यों का जगत् बना रहता है। उन अणुओं का आपस में मिलना तथा एक-दूसरे से अलग-अलग होने के लिये जो गति मिलती रहती है वह उनका स्वभाव धर्म है। उनको परिचालन करने वाला, इकट्ठा करने वाला और अलग-अलग करने वाला अन्य कोई नहीं है। इस विश्व में जो प्रेरणा या गति है वह वस्तु मात्र के स्वभाव से निर्मित होती है। एक के बाद दूसरी गति की अनादि परम्परा इस विश्व में विद्यमान है। यह प्रश्न ठीक नहीं है कि प्रारम्भ में इस विश्व में किसने गति उत्पन्न की। प्रारम्भ में शब्दों का अभिप्राय उस काल से है जब गति नहीं थी अर्थात् किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं था। ऐसे काल की तर्कसंगत कल्पना नहीं की जा सकती, जब किसी प्रकार का परिवर्तन न रहा हो, ऐसे काल की कल्पना करने का अर्थ यह हुआ कि कोई भी वस्तु थी। यदि वस्तु थी तो वह निश्चित ही कार्य कारण भाव से बंधी रही है अर्थात् इसीलिए गति और परिवर्तन सहित थी। क्योंकि सर्वतः गति और परिवर्तन से रहित स्थिति में से कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता। प्रत्येक वस्तु की घटना में दो प्रकार का परिवर्तन होता है -

( 1 ) एक तो यह कि, वस्तु में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन होता है। ( 2 ) दूसरा यह कि, वस्तु का उसके चारों ओर की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ने से परिवर्तन होता है।

प्रत्येक वस्तु दूसरी वस्तु से जुड़ी या संलग्न रहती है। यह संलग्नता तीन प्रकार की होती है। एक वस्तु का चारों तरफ की वस्तुओं से सम्बन्ध रहता है। दूसरी वस्तु जिस वस्तु से उत्पन्न हुई है, उनके कार्य कारण भाव से जुड़ी रहती है। तीसरी उस वस्तु की घटना के गर्भ से दूसरी घटना रहती है और वह तीसरी घटना के गर्भ में रहती है। जो वस्तु सर्व सम्बन्ध है उसकी ठीक से जानकारी होने पर यह भ्रांति-आशंका दूर हो जाती है कि वस्तुओं की गति क्रिया के लिये कोई पहला प्रवर्तक चाहिए। कोई भी क्रिया पहले नहीं हो सकती। प्रत्येक गति से या क्रिया से पूर्व दूसरी गति और क्रिया रहती है। इस क्रिया का स्वरूप एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना ही नहीं होता। क्रिया, शक्ति का केवल स्थानान्तर होना या चलायमान होना ही स्वरूप नहीं है। बीज से अंकुर बनता है और अंकुर से वृक्ष बन जाता है। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन मिलकर पानी बन जाता है। प्रकाश से अणु अथवा लहरें बनती हैं। ये घटनाएँ भी क्रिया ही हैं। इस प्रकार की क्रिया वस्तु का मूल स्वभाव है। वह यदि न रहे तो जो पहली बार गति देता है उसके लिये भी वस्तु में गति उत्पन्न करना सम्भव नहीं हो सकता। विश्व स्वयं-प्रेरित है उसे किसी बाह्य प्रेरक की आवश्यकता नहीं है।

रचना, योजना, व्यवस्था, नियमबद्धता अथवा सुसंगति वस्तु का मूलभूत स्वभाव है। हम जब भी किसी वस्तु का वर्णन करते हैं तो वह व्यवस्था का ही होता है। यदि वस्तु में योजना या व्यवस्था नहीं हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तु ही नहीं है। 'वस्तु है' इस कथन का यह अर्थ निकलता है कि एक विशेष प्रकार की योजना और विशेष प्रकार की व्यवस्था है। वस्तु की योजना का आकलन होना ही वस्तु स्वरूप का आकलन है। विश्व की रचना अथवा योजना किसी दूसरे ने नहीं की है। अग्नि की उष्णता या जलना स्वाभाविक धर्म है। यह एक व्यवस्था योजना है। यह व्यवस्था या योजना उष्णता में किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा लाई हुई नहीं है। यह उष्णता के अस्तित्व का ही एक पहलू है। संख्या,

परिणाम एवं कार्य-कारण भाव वस्तु के अंग हैं। हम संख्या, वस्तु स्वरूप में उत्पन्न नहीं कर सकते। वह वस्तु में रहती ही है। वस्तुओं के कार्य कारण भाव को पहचाना जा सकता है, किन्तु निर्माण नहीं किया जा सकता है। सत्य पाया जाता है, बनाया नहीं जाता।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी वैज्ञानिक भौतिकवाद पुस्तक में भौतिकवाद के आधुनिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा - ''जगत् का प्रत्येक परिवर्तन जिन सीढ़ियों से गुजरता है वे सीढ़ियां वैज्ञानिक भौतिकवाद की त्रिपुटी हैं - ( 1 ) विरोधी समागम ( 2 ) गुणात्मक परिवर्तन और ( 3 ) प्रतिषेध का प्रतिषेध। वस्तु के उदर में विरोधी प्रवृत्तियाँ जमा होती हैं, इससे परिवर्तन के लिये सबसे आवश्यक चीज गति पैदा होती है। फिर हेगेल की द्वंद्ववादी प्रक्रिया के बाद और प्रतिवादी के संघर्ष से नया गुण पैदा होता है। इसे दूसरी सीढ़ी का गुणात्मक परिवर्तन कहते हैं। पहले जो वाद था उसको भी उसकी पूर्वगामी कड़ी में मिलाने पर वह किसी का प्रतिषेध हुआ तो वह प्रतिषेध का प्रतिषेध है। दो या अधिक एक-दूसरे से गुण और स्वभाव में विरोधी वस्तुओं का समागम दुनिया में पाया जाता है। यह बात हर एक आदमी को जब तब नजर आती है, किन्तु उसे देखकर यह ख्याल नहीं आता कि एक बार विरोधी समागम को मान लेने के बाद फिर विश्व के संचालक ईश्वर की जरूरत नहीं रहती। न किसी अभौतिक दिव्य रहस्यमय नियम की आवश्यकता है। विश्व के रोम-रोम में गति है। दो विरोधी शक्तियों का मिलना ही गति पैदा करने के लिए पर्याप्त है। गति का नाम विकास है। लेनिन के शब्दों में, ''विकास विरोधियों के संघर्ष का नाम है।'' विरोधी जब मिलेंगे तब संघर्ष जरूर होगा। संघर्ष नये स्वरूप, नई गति, नई परिस्थिति अर्थात् विकास को जरूर पैदा करेगा। यह बात साफ है कि विरोधियों के समागम को परस्पर अन्तर व्यापन या एकता कहते हैं। जिसका अर्थ यह है कि वे एक ही ( अभिन्न ) वास्तविकता के दोनों प्रकार के पहलू होते हैं। यह दोनों विरोध दार्शनिकों को परमार्थ की तराजू पर तुले सनातन काल से एक-दूसरे से सर्वथा अलग अवस्थित भिन्न-भिन्न तत्त्व के तौर पर नहीं रहते, बल्कि यह वस्तु रूपेण एक है - एक ही समय, एक ही स्थान पर अभिन्न होकर

रहते हैं। जो कर्जखोर के लिए ऋण है, वहीं महाजन के लिये धन है। हमारे लिए जो पूर्व का रास्ता है, वही दूसरे के लिए पश्चिम का रास्ता है। बिजली में धन और ऋण के छोर दो अलग स्वतंत्र तरल पदार्थ नहीं हैं। लेनिन ने विरोध के द्वंद्ववाद का सार कहा है।''

केवल परिणामात्मक परिवर्तन ही एक खास सीमा पार होने पर गुणात्मक भेदों में बदल जाता है।

कर्नल इअरसोल प्रसिद्ध विचारक और निरीश्वरवादी थे। वे अपने व्याख्यान में लिखते हैं कि, ''मेरा एक सिद्धान्त है और उसके चारों कोनों पर रखने के लिये मेरे पास चार पत्थर हैं। पहला शिलान्यास है कि पदार्थ रूप नष्ट नहीं हो सकता, अभाव को प्राप्त नहीं हो सकता। दूसरा शिलान्यास है कि गति-शक्ति का विनाश नहीं हो सकता, वह अभाव को प्राप्त नहीं हो सकती। तीसरी शिलान्यास है कि पदार्थ और गति पृथक्-पृथक् नहीं हो सकती, बिना गति के पदार्थ नहीं और बिना पदार्थ के गति नहीं। चौथा शिलान्यास है कि जिसका नाश नहीं, वह कभी पैदा भी नहीं हुआ होगा, जो अविनाशी है वह अनुत्पन्न है। यदि ये चारों बातें पदार्थ हैं तो उनका यह परिणाम अवश्य निकलता है कि पदार्थ और गति सदा से एक हैं और सदा रहेंगे। वे न बढ़ सकते हैं और न घट सकते हैं। इससे यह भी परिणाम निकलता है कि कभी कोई चीज उत्पन्न हुई है, न कभी उत्पन्न हो सकती है। न कभी कोई रचयिता हुआ है और न हो सकता है। इससे यह भी परिणाम निकलता है कि पदार्थ और गति के पीछे न कोई योजना हो सकती है और न कोई बुद्धि। बिना गति के बुद्धि नहीं हो सकती। बिना पदार्थ के गति नहीं हो सकती। इसलिए पदार्थ से पहले अन्य किसी भी पदार्थ की, किसी बुद्धि की, किसी गति की सम्भावना हो ही नहीं सकती। इससे यह परिणाम निकलता है कि प्रकृति से परे न कुछ है और न हो सकता है। यदि ये चारों शिलान्यास यथार्थ बातें हैं तो प्रकृति का कोई स्वामी नहीं है। यदि पदार्थ और गति अनादिकाल से अनन्त काल तक हैं तो यह अनिवार्य परिणाम निकलता है कि कोई परमात्मा नहीं जो प्रार्थनाएँ सुनता हो। दूसरे शब्दों में यह सिद्ध होता है कि आदमी को भगवान् से कोई सहायता नहीं मिली। तमाम प्रार्थनाएँ अनन्त आकाश में यों ही विलीन हो

गयीं.... यदि पदार्थ और गति सदा से चली आयी हैं तो इसका यह मतलब है कि जो सम्भव था वह हुआ है, जो सम्भव है वह हो रहा है, और जो सम्भव होगा वही होगा। विश्व में कोई भी बात यों ही अचानक नहीं होती। हर घटना जनित होती है। जो नहीं हुआ वह हो ही नहीं सकता था। वर्तमान तमाम भूत का अवश्यम्भावी परिणाम है और भविष्य का अवश्यम्भावी कारण है।''

यदि पदार्थ और गति सदा से हैं तो हम कह सकते हैं कि आदमी का कोई चेतन रचयिता नहीं हुआ है, आदमी किसी की विशेष रचना नहीं है। यदि हम कुछ जानते हैं तो यह जानते हैं कि उस दैवी कुम्हार ने, उस ब्रह्म ने कभी मिट्टी और पानी मिलाकर पुरुषों तथा स्त्रियों की रचना नहीं की और न उनमें जान फूँकी।

## समीक्षा और समन्वय

भौतिकवाद के उक्त मूल सिद्धान्तों के विवेचन से निम्नलिखित बातें फलित होती हैं –

1. विश्व अनन्त स्वतंत्र मौलिक पदार्थों का समुदाय है।
2. प्रत्येक मौलिक में विरोधी शक्तियों का समागम है, जिसके कारण उसमें स्वभावतः गति या परिवर्तन होता रहता है।
3. विश्व की रचना, योजना और व्यवस्था उसके अपने निजी स्वभाव के कारण हैं, किसी के नियंत्रण से नहीं।
4. किसी सत् का सर्वथा विनाश नहीं होता और असत् की उत्पत्ति नहीं होती।
5. जगत् का प्रत्येक अणु-परमाणु प्रतिक्षण गतिशील अर्थात् परिवर्तनशील है। ये परिवर्तन परिमाणात्मक भी होते हैं और गुणात्मक भी।
6. प्रत्येक वस्तु में सैकड़ों शक्तियों का समागम है।
7. **जगत् के परिणाम अनादि अनन्त हैं।**

वस्तु अनेक धर्मात्मक होने के कारण, उसे अनेक दृष्टि से भी देखा जा सकता है। जैसे एक व्यक्ति एक आम को रस की दृष्टि से, यह कहता है कि यह मधुर आम है। अन्य एक व्यक्ति वर्ण गुण की अपेक्षा से कहता है कि यह पीले रंग का है। उसी आम को एक अन्य व्यक्ति स्पर्श गुण की अपेक्षा से कहता है कि यह

कोमल आम है। जबकि एक अन्य व्यक्ति गंध गुण की अपेक्षा से कहता है कि यह सुगन्धित आम है। चारों व्यक्तियों के द्वारा एक ही आम के विषय में अलग-अलग प्रकार प्रतिपादित होने पर भी उसी एक आम का प्रतिपादन हुआ। इसी प्रकार लोक का अनेक प्रकार से, अनेक दृष्टिकोण से वर्णन आचार्यों ने किया है –

**परिणामी जीवमुत्तं सपदेसं एयखेत्त किरिओ य।**
**णिच्चं कारण कत्ता सव्वगदिदरम्हि अपवेसो।।( मूलाचार )**

1. परिणामी – यह लोक परिणमनशील स्वभाव वाला है। भिन्न रूप धारण करना अर्थात् व्यंजन पर्याय को यहाँ परिणमन कहा गया है। यह व्यंजन पर्याय जीव और पुद्गल में उत्पन्न होती है। जीव में नरनारकादि विभाव व्यंजन पर्याय उत्पन्न होती है। पुद्गल में घट, पटादि रूप व्यंजन पर्याय उत्पन्न होती है। अतः जीव और पुद्गल परिणामी हैं। धर्मादिक द्रव्य में जीव पुद्गल की तरह अशुद्ध परिणमन नहीं होता इसलिए वे अपरिणामी हैं। अर्थपर्याय की अपेक्षा सर्व जीवादि द्रव्य विजातीय परिणमन नहीं करने से अपरिणामी हैं। परन्तु अपने सजातीय परिणमन की अपेक्षा से सर्व द्रव्य परिणामी हैं। यथा –

**परिणामसहावादो पडिसमयं परिणमति दव्वाणि।**
**तेसिं परिणामादो लोयस्स वि मुणह परिणाम।।( कार्तिकेयानुप्रेक्षा )**

परिणमन स्वभाव होने के कारण प्रत्येक द्रव्य प्रत्येक समय में परिणमन करते रहते हैं। द्रव्यों का समूह ही लोक है। इसलिए द्रव्यों के परिणमन से लोक का परिणमन होता है। परिणमन स्वभाव वाले लोक को सांख्य मतानुयायी कूटस्थ-नित्य अर्थात् अपरिणामी मानते हैं वह युक्तियुक्त नहीं है। पूर्ण अपरिणामी मानने पर विश्व का छोटा-बड़ा कोई कार्य नहीं हो सकता है। वायु का गमन, पानी का बहना, जीव पुद्गल का गमन, वचन व्यापार भी नहीं हो सकता है, क्योंकि परिणमन से ही ये सब कार्य सम्भव हैं। अपरिणामी मानने से छोटा बालक, युवक, वृद्ध नहीं हो सकता एवं जन्म-मरण भी नहीं हो सकता है।

**2. अपरिणामी** – जिस प्रकार लोक एक दृष्टि से परिणमनशील है, अन्य एक दृष्टि से अपरिणमनशील भी है। यदि केवल परिणमनशील मानेंगे तो जीव-अजीव हो जायेगा एवं अजीव परिणमन होकर, जीव हो जायेगा।

आकाश, भूमि हो जायेगा, भूमि आकाश हो जायेगी, किन्तु इस प्रकार त्रिकाल में भी नहीं होता है। इस कारण लोक एक दृष्टि से अपरिणामी है। इसलिए जो भौतिकवादी, रासायनिक प्रक्रिया के कारण पुद्गल से जीव-सृष्टि हुई मानते हैं, वह अत्यन्त निराधार है। जो चेतन रूप ब्रह्म से अचेतन रूप जगत् की सृष्टि हुई मानते हैं, उनका सिद्धान्त भी मिथ्या है। इसी प्रकार अन्य द्रव्य रूप परिणमन नहीं होने के कारण द्रव्य में रहने वाला अपरिणामी स्वभाव है।

**3. जीव–अजीव –** जीव अर्थात् आत्मा चेतन स्वरूप है। चेतन अर्थात् ज्ञान और दर्शन आत्मा को छोड़कर अन्य धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल में नहीं है, क्योंकि वे अचेतन हैं। उनमें ज्ञातृत्व, दृष्टत्व शक्ति नहीं है। इस प्रकार लोक चेतनाचेतनात्मक है। लोक चेतनाचेतनात्मक है यह आबाल, वृद्ध, वनिता के अनुभव गम्य हैं। इसलिए ''ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या है'' ऐसा सिद्धान्त प्रत्यक्ष एवं अनुमान बाधित है। 'सर्व खल्वेदं ब्रह्म' अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ( परमशुद्धमय चैतन्यात्मा ) स्वरूप ही है, ऐसा मानना भी बाल चेष्टित है। यदि सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप ही होता तब लकड़ी को जलाने से ब्रह्म भस्म रूप हो जाता, भोजन करने से ब्रह्म का भोजन होता। इससे जड़वादियों का भी निरसन हो जाता है। यदि सम्पूर्ण विश्व जड़ स्वरूप है तब मैं भौतिकवादी हूँ ऐसा अनुभव करने वाला कौन है ? यदि जड़ अनुभव करने वाला है तो जड़वादियों का शव क्यों भौतिकवादियों का प्रतिपादन नहीं करता ? यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश से जीव सृष्टि होती है, तब दाल-भात बनाते समय चूल्हे पर रखी हंडियों से पाँच महाभूतों का संसर्ग होने पर जीव की उत्पत्ति हो जानी चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं होता। भौतिकवादियों की अपेक्षा जैसे भौतिक वस्तु सत्य है, अनादि निधन है, परिणमनशील है, उसी प्रकार जीव भी जानना चाहिये। जीव सत्य है इसका प्रमाण निम्न प्रकार से आचार्यों ने दिया है –

**वच्छक्खर भवसारित्थ सग्गणिरय पियराय।**
**युल्लियहंडयि पुण मयउ णव दिट्ठंता जाय।।**
**वत्स अक्षर भव सादृश्य स्वर्ग नरक पित्राराधः।**
**चूल्लिस्थ हांडी पुनः मृतकः नव दृष्टांतः यावत्।।**

**1. वत्स** – जन्म लेते ही बछड़ा बिना किसी के सिखाये अपने आप अपनी माता का स्तनपान करने लगता है। यहाँ मनोवैज्ञानिक पद्धति से जब विचार करते हैं, तब पता चलता है कि यह कार्य पूर्व भव के संस्कार के माध्यम से होता है। यदि जड़ से बनने वाला एक नूतन पर्याय जीव है तब जड़ से बनने वाले मेज, कुर्सी आदि भी अपने आप कार्य करने लगेंगे ? जड़ात्मक जल से बनने वाला मेघ भी जीव के समान क्रिया करने लगेगा ? इस पूर्व जन्म सिद्धान्त को अब वैज्ञानिक लोग भी मानने लगे हैं। वैज्ञानिकों ने एक यंत्र बनाया है जिससे कोई वस्तु बाहर नहीं जा सकती है। उसमें जन्म एवं मरण के समय में आत्मा में एक विद्युत्-चक्र मालूम पड़ा। यह विद्युत् चक्र मृत्यु के बाद नहीं रहता है ऐसा मानते हैं। इसके शोध के लिये एक अन्य यंत्र तैयार हो रहा है। यह विद्युत् चक्र अन्य कुछ नहीं है, किन्तु जीव के साथ अनादि से सम्बन्धित तैजस शरीर है। सर ओलिवर लाज ( Sir Oliver Loz ) मानते हैं कि आत्म तत्त्व निश्चित है। भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बोस ने उच्च स्तरीय मनुष्यादि के समान ही निम्न श्रेणी वृक्षादि को भी जीव माना है। विज्ञान से उसने सिद्ध किया है आत्मा शरीर के अनुसार संकोच या विस्तार करता है।

**2. अक्षर** – अक्षरों का उच्चारण जीव जानकारी के साथ आवश्यकतानुसार करता है। जड़ पदार्थ में इस प्रकार अनुभूति-मूलक शब्द उच्चारण की आवश्यकता नहीं होती। कोई कह सकता है कि रेडियो-टेलीविजन भी तो शब्द उच्चारण करते हैं ? किन्तु वे अनुभूति मूलक शब्द उच्चारण नहीं करते। जिस प्रकार जीव अपने भाव को स्वतः प्रवृत्त प्रकाशित करता है उसी प्रकार यंत्रादि नहीं करते। प्रत्येक जीव में ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति समान नहीं होती है। किसी व्यक्ति को बिना सिखाये भी विशेष कला, ज्ञानादि हो जाता है। अन्य को सिखाने पर भी वह उसमें कृतकार्य नहीं हो पाता है। इसका कारण पूर्व भव का संस्कार-असंस्कार है। कोई प्रश्न कर सकता है कि मेघादि स्वतः प्रवृत्त गर्जना करते हैं, किन्तु वह गर्जना अनुभूतिमूलक नहीं है। केवल पुद्गल स्कन्ध के घर्षण के माध्यम से उत्पन्न होने वाला शब्द, अनुभूति रहित जड़ शब्द है।

3. भव - आत्मा यदि क्षणिकवाद के समान अस्थिर पदार्थ होती तब बुद्धदेव

की पूर्व भव की जातक कथा ही कैसे सत्य होती ? यदि पुनर्भव नहीं होता तब परलोक के लिये सुकृत कार्य का आलम्बन का क्या प्रयोजन होता ? आत्मा यदि स्थिर नहीं होती तब कृत कार्य का भागी कौन होता ? 'जीवन क्षण भंगुर है', इस प्रकार का उपदेश देने वाले महात्मा बुद्ध ने कठोर चातुर्याम का स्वयं अनुकरण एवं उपदेश क्यों दिया ? इस प्रकार भव ग्रहण से सिद्ध होता है कि आत्मा शाश्वत अनादि निधन द्रव्य है। विज्ञान की अपेक्षा भी कोई वस्तु सर्वथा नष्ट नहीं होती, तब विश्व के सर्वश्रेष्ठ आत्मवस्तु का मूल छेद कैसे हो जायेगा ?

**4. सादृश्य** – प्रायः निम्न श्रेणीय 'एककोशीयप्राणी-अमीबा' से लेकर विश्व के सर्वश्रेष्ठ बुद्धिजीवी-मनुष्य पर्यन्त, प्रत्येक प्राणी में आहार, भय, परिग्रह, मैथुन, हर्ष-विषाद, सुख-दुःख आदि समान रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार की सामान्य क्रियाओं के माध्यम से ज्ञात होता है कि एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों में जो एक सामान्य शक्ति विशेष है, वही शक्ति जीव-शक्ति अर्थात् चेतना-शक्ति है। निम्न श्रेणी एककोशीय अमीबा, एकेन्द्रिय-पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, वनस्पति जीव भी यथायोग्य आहार ग्रहण करते हैं, शत्रु से भयभीत होते हैं, उपकार करने वाले के साथ प्रीति भी करते हैं, अपने लिये एवं अपनी संतान के लिए ( भावी समय के लिए ) आहारादि संग्रह करते हैं, अधिक प्रतिकूल परिस्थिति में दुःखी होते हैं, काम भोग भी यथायोग्य अंग से करते हैं, वंश परम्परा स्थाई रखने के लिए वंश वृद्धि भी करते हैं, यथायोग्य श्वासोच्छवास ग्रहण करते हैं। अन्त में ईह लीला भी संभरण करते हैं। जैसे - वनस्पति सूर्य से किरण, वायुमण्डल से वायु, भूमि से रस आहार के रूप में ग्रहण करती है, उसी प्रकार अग्नि अपना आहार लकड़ी, तेल आदि ईंधन से ग्रहण करती है। उपरोक्त वस्तु के अभाव से उनका मरण भी होता है, जैसे - पानी आदि के अभाव से वनस्पति का ईंधन, ऑक्सीजन के अभाव में अग्नि का मरण होता है। लाजवन्ती पौधे को स्पर्श करने से, भय के कारण, लाजवन्ती संकुचित हो जाती है। मौलसिरी आदि कुछ वृक्ष के फूल सुन्दर स्त्री को देखकर विकसित हो जाते हैं। कुछ फल वाले वृक्ष रजस्वला स्त्री के स्पर्श से एवं उनकी छाया से मर जाते हैं। अदरक, आलू, प्याज, लहसून आदि का जो मोटा भाग है, वह उनके

आहार का संचय करता है। मरुभूमि के कुछ वृक्ष भी वर्षा ऋतु में अधिक पानी, ग्रीष्म ऋतु के लिए संचित करते हैं। यह उनकी परिग्रह संज्ञा है। उसी प्रकार समस्त निम्न श्रेणीय प्राणियों में आहारादि क्रिया समान पायी जाती है। उच्चस्तरीय द्वि-इन्द्रियादि प्राणी में यह क्रिया अत्यन्त स्पष्ट है। इससे यह सिद्ध होता है कि इनमें जो एक समानता पायी जाती है उसका कारण एक साधारण शक्ति है, वह शक्ति ही आत्मा है। आधुनिक वैज्ञानिक भी इस बात को स्पष्ट मानते हैं।

**5. स्वर्ग–नरक** – जीव यदि स्वतंत्र एवं अनादि निधन पदार्थ नहीं होता तब पाप करने पर उसका फल भोगने के लिए नरक कौन जाता है और पुण्य का फल भोगने के लिए स्वर्ग कौन जाता? स्वर्ग-नरक का वर्णन केवल भौतिकवादी एवं चार्वाक् को छोड़कर विश्व के समस्त दर्शन मानते हैं। यदि इस प्रकार माने कि स्वर्ग-नरक का अस्तित्व ही नहीं है, तब असत् का विचार ही नहीं हो सकता है, क्योंकि ज्ञान का विषय ज्ञेय है। जब ज्ञेय ही नहीं है तो ज्ञान का विषय कैसे हो सकता है? जब ज्ञान ही नहीं होगा तब नित्यांत असत् का अन्तर-जल्प रूप वचन एवं बाह्य प्रवृत्ति रूप शब्द का प्रयोग कैसे होगा? "**विशेष्य वाच्यस्य विशेषण वचो यतो विशेष विनियम्यते च यत्।**" अर्थात् जिससे जिस विशेष्य का नियम किया जाता है वह वचन विशेष्य है। जो वाच्य है अर्थात् जिसको खास करके बताना है वह विशेषण होता है। कोई कहेगा कि आकाश कुसुम रूपी पदार्थ नहीं है, किन्तु आकाश कुसुम शब्द है, इससे सिद्ध हुआ कि पदार्थ के बिना भी उसका कथन होता है। किन्तु यह सत्य नहीं है, क्योंकि 'आकाश कुसुम' नहीं होने पर भी आकाश का अस्तित्व है एवं कुसुम का अस्तित्व वृक्ष में है, इसलिए 'आकाश कुसुम' शब्द अर्थात् वाचक, वाच्य के पदार्थ के बिना प्रवृत्त नहीं हुआ है। इससे सिद्ध हुआ कि नरक एवं स्वर्ग वाचक शब्द के वाच्य पदार्थ, स्वर्ग-नरक है।

**6. पितर** – अनेक मनुष्य मरकर भूतादि हो जाते हैं और फिर अपने पुत्र, पत्नी आदि को कष्ट, सुख आदि देकर अपने पूर्वभव का हाल बताते हैं। जाति स्मरण होने के बाद अपना पूर्वभव पिता, माता एवं ग्राम का नाम बताने वाले अभी भी पाये जाते हैं। देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी घटनाएँ प्रकाशित होती

रहती है। वर्तमान भारत क्षेत्र में काल के प्रभाव से विशेष जाति स्मरण, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान एवं केवलज्ञान का अभाव है। जाति स्मरणादि ज्ञान की उत्पत्ति के लिए विशेष भाव शुद्धि की आवश्यकता है। मरण के समय में यदि निर्मल परिणाम रहते हैं तो परभव में जाति स्मरण हो सकता है। किन्तु पंचम काल के प्रायः सभी जीव अशुभ परिणाम से च्युत होकर अन्य गतियों में उत्पन्न होते हैं, इसलिए वर्तमान काल में विशेष जाति स्मरण आदि ज्ञान नहीं पाया जाता है।

वैज्ञानिक सर ओलिवर लॉज ने मरण के बाद आत्मा का अस्तित्व सिद्ध किया है। अंग्रेज कवि ड्राइडन ने आत्मा को विनाशी माना है।

**"Death had no power immortal soul to stay,**
**That when its present body turns to day.**
**Seeks a fresh home and with unlessoned might,**
**Inspires another form with life and light".**

अविनाशी आत्मा को नष्ट करने वाली शक्ति मृत्यु में भी नहीं है। जब यह शरीर मिट्टी रूप में परिणमन होता है उस समय आत्मा अपने योग्य एक अन्य शरीर का अन्वेषण करता है और उसमें जीवन ज्योति प्रकाशित करता है।

वैज्ञानिक टेस्टटूलियन के अनुसार, "Soul is a simple and indivisible substance" अर्थात् आत्मा सादा एवं खण्डविहीन वस्तु है। इसलिए आत्मा अविनाशी होना चाहिए। अखण्ड असयुंक्त मूल पदार्थ, कभी भी नष्ट नहीं होता है। आत्मा में उत्पन्न होने वाला ज्ञान अखण्डित होकर रहता है, समीष्टि रूप में रहता है। जैसे Dog ( कुत्ता ) शब्द तीन अक्षरों से मिलकर बना है, किन्तु उसका वाच्य पृथक्-पृथक् तीन स्वरूप न होकर एक ही स्वरूप है। इसलिए जब हम Dog शब्द सुनते हैं तो उस समय Dog का अखण्ड ज्ञान एक साथ होता है। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान खण्ड-खण्ड में नहीं है, बल्कि अखण्ड है। यह ज्ञान भौतिक वस्तु से निर्मित मस्तिष्क से उत्पन्न नहीं हो सकता है। इस ज्ञान का पुनरावर्तन भी होता है। इस कारण से जड़त्व से भिन्न आत्म-तत्त्व मानना पड़ेगा। ऐसा डॉ. एलिजाबेथ फेसर भी कहते हैं। दार्शनिक कवि वर्ड्सवर्थ मरण को एक निद्रा जैसा मानते हैं।

"Our birth is but a sleep and a forgetting,

The soul that rises with us, our life's star,
Hath and else where is setting,
And cometh from after....." (Ode on Intimations of Immortality)

हमारा जन्म निद्रा से जाग्रत होने के समान है। इस निद्रा में पूर्व जन्म की अनुभूति का विस्मरण हो जाता है। शरीर सहित जन्म लेने वाली आत्मा एक अन्य स्थल में अस्तगत होने वाले नक्षत्र के समान होता है एवं वह बहुत दूर से आता है।

**7. चूल्हा–हांडी** – जीव यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन पाँच महाभूतों से बन जाता है तो दाल, भात, खिचड़ी आदि बनाते समय चूल्हे पर हंडियों में पाँच महाभूतों का संसर्ग होने के कारण वहाँ भी जीव उत्पन्न हो जाना चाहिए। ऐसा होने पर सन्तान उत्पत्ति के लिए माता-पिता के सम्पर्क की क्या आवश्यकता है? जो बाँझ है, उसके भी सुलभता से पुत्र उत्पन्न होना चाहिए। जो सती, विधवा स्त्री है, उसके भी सन्तान उत्पन्न होनी चाहिए। इस प्रकार समवाय से जीव उत्पन्न होना सम्भव है क्या? ऐसा विचारक विचारिये। ऐसा कह सकते हैं कि यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक समस्त जीव सम्मूर्च्छन ही होते हैं।

**उववादा सुरणिरया, गब्भजसम्मुच्छिमा हु णरतिरिया।**
**सम्मुच्छिमा मणुस्साऽपज्जत्ता एयवियलक्खा।।**
**पंचक्खतिरिक्खाओ गब्भजसम्मुच्छिया तिरिक्खाणं।**
**भोगभुमा गब्भभवा नरपुण्णा गब्भजा चेव।।( गो.जी. )( 90-91 )**

Instaneous rise appertains to celestial & hellis soul; uterine birth & spontaneous generation to human & sub-human souls; & one (sensed) & incomplete sensed (sub-human souls) have spontaneous generation (only).

Five-sensed sub-human souls are either of uterine birth or of spontaneous; Aunan souls of the enjoyment region (Bhoga-Bhumi) are all of uterine birth; & development human souls also are always of uterine birth.

देवगति और नरकगति में उपपाद जन्म ही होता है। मनुष्य तथा तिर्यंचों में यथासम्भव गर्भज एवं सम्मूर्च्छन दोनों जन्म होता है किन्तु लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य

और एकेन्द्रिय, द्वि-इन्द्रिय, त्रि-इन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय का सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है।

कर्म भूमि पंचेन्द्रिय, तिर्यंच, गर्भज एवं सम्मूर्च्छन ही होते हैं। तिर्यंचों में जो भोग भूमि तिर्यंच हैं, वे गर्भज ही होते हैं और जो पर्याप्त मनुष्य हैं, वे गर्भज ही होते हैं।

**उववादगब्भजेसु य लद्धिअपज्जतगा ण णियमेण।**
**णरसम्मुच्छिमजीवा लद्धिअपज्जत्तगा चेव।।( गो.जी. )( 92 )**

Absolutely non-developable souls, by rule, never have instantaneous rise or uterine birth, while human souls of spontaneous generation are only absolutely non-developable.

**COMMENTARY :** Human souls of spontaneous generation are born in the armpits, womb & breasts of female in Arya Khanda, excepting those of the prime queen of Chakravarti. They are also born in dirty places where urine, night-soil & such like things are laid. They are born & they die 18 times in one pulse-beat, which is 3772nd part of muhurta i.e. 48 minutes.

उपपाद और गर्भ जन्म वालों में नियम से लब्धपर्याप्तक नहीं होते और सम्मूर्च्छन मनुष्य नियम से लब्धपर्याप्तक होते हैं। सम्मूर्च्छन मनुष्य चक्रवर्ती की पटरानी को छोड़कर अन्य कर्म भूमिज आर्य खण्ड की स्त्रियों की योनि, काँख, स्तन, मल-मूत्रादि में उत्पन्न होते हैं। देव एवं नारकी का अपने-अपने योग्य यथाक्रम पलंग-शैय्या एवं घटादि विकृताकार वाली उत्पत्ति स्थान में उत्पन्न होना, उपपाद जन्म है। जो माता-पिता के रजवीर्य के बिना चारों ओर से पुद्गल को ग्रहण कर और गन्दे स्थान पर, जहाँ कि मूत्र-वीर्यादि पड़ा हुआ है, उत्पन्न होते हैं, वे सम्मूर्च्छन हैं। वे मनुष्यों की आँखों के द्वारा दिखायी नहीं देते। उनका जीवन अत्यन्त क्षुद्र जीवन है। वे एक श्वासोच्छवास में 18 बार जन्म और 18 बार मरण करते हैं। एक श्वासोच्छवास एक मुहुर्त का 3772वां भाग है। मुहुर्त प्रायः 48 मिनट का होता है।

**विशेषार्थ** - आत्मा जिसके द्वारा शरीर, आहार और इन्द्रियों के योग पुद्गलों को ग्रहण करता है, उसको जन्म कहते हैं। जन्म तीन प्रकार के हैं - ( 1 )

सम्मूर्च्छन जन्म, ( 2 ) गर्भज जन्म ( 3 ) उपपाद जन्म। माता-पिता के रजवीर्य के मिश्रण से स्त्री के उदर में जो संतान उत्पन्न होती है, उसे गर्भज जन्म कहते हैं। देव और नारकियों का अपने-अपने योग्य यथाक्रम पलंग-शैय्या एवं घटादि विकृताकार वाले उत्पत्ति स्थान से उत्पन्न होना, उपपाद जन्म है। माता-पिता के रज के बिना चारों ओर से पुद्गलों को ग्रहण कर अवयवों की रचना कर उत्पन्न होना, सम्मूर्च्छन जन्म कहलाता है।

**त्रिषु लोकेषुर्ध्वम धस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छनं सम्मूर्च्छनमवयव प्रकल्पम्।**

In the three worlds- the upper, the lower and the middle, there is spontaneous generation of the body in all directions, that is formation of limbs by the surrounding matter.

तीनों लोकों में ऊपर, नीचे और तिरछे देह के चारों ओर से मूर्च्छन अर्थात् ग्रहण होना सम्मूर्च्छन है। उपयुक्त जल, वायु, उष्णता एवं शरीरादि के योग्य पुद्गल परमाणुओं का समवाय जब एक स्थान में होता है, उस समय अन्य स्थान से विग्रह गति से आकर जीव उत्पन्न होता है। इसको सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं। जैसे शीत ऋतु में सेम आदि लता के ऊपर सायंकाल कोई जीव नहीं रहते हैं किन्तु रात्रि में यदि कोहरा आदि हो जाता है, तब उसमें अनेक जीव हो जाते हैं। ये जीव कैसे उत्पन्न हुए हैं? यहाँ तो माता-पिता का संयोग नहीं है। वैज्ञानिक कृत रासायनिक मिश्रण भी नहीं है। यह जीवों की जो उत्पत्ति है, वे सम्मूर्च्छन जीव हैं। उनका सम्मूर्च्छन जन्म होता है। इसी प्रकार मर्यादा रहित दही में, आहार में, आटे में, पापड़ में, आचार में जो जीव उत्पन्न होते हैं वे सब सम्मूर्च्छन जीव हैं। बीज को उपर्युक्त जलवायु मिलने पर जो अंकुर उत्पन्न होता है वह भी सम्मूर्च्छन जीव है। गोबर में, मल में, पेट में, जो कृमि उत्पन्न होते हैं, वे भी सम्मूर्च्छन जीव हैं। कुछ जलचर जीव तथा मत्स्य भी सम्मूर्च्छन होते हैं। चींटी, लट, पतंगा, खटमल, जोंक, बिच्छू, पटेर, शंख, सीप, तितली आदि सम्मूर्च्छन जीव हैं। इतना ही नहीं, मनुष्य भी सम्मूर्च्छन उत्पन्न होते हैं, किन्तु उनका आकार एवं आयु अत्यन्त कम हैं। उनकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्द्रियों के द्वारा

उनका ग्रहण नहीं हो सकता है। इनको लब्धपर्याप्तक जीव कहते हैं। दृश्यमान समस्त मनुष्य पर्याप्तक हैं। क्या कोई वैज्ञानिक एवं भौतिकवादी केवल रासायनिक प्रक्रिया से पर्याप्त मनुष्य की सृष्टि कर सकता है ? यदि कर सकता है तो उसे विश्व के सामने प्रदर्शित करना चाहिए।

डार्विन आदि वैज्ञानिक मानते हैं कि पहले पृष्ठ में जीव नहीं था, किन्तु रासायनिक प्रक्रिया के माध्यम से क्रमशः निम्न श्रेणीय जीवों की सृष्टि हुई। इस जीव जाति में क्रमशः परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन के फलस्वरूप मनुष्य जाति की सृष्टि हुई। यदि जाति समुदाय परिवर्तित हो करके, अन्य जाति रूप में परिणमन होता तो अभी तक पहले की अनेक जातियाँ पृथ्वी पृष्ठ में कैसे दिखाई देती है ? यदि बन्दर जाति ही परिवर्तित होकर मनुष्य हुआ तब वर्तमान में भी बन्दर से मनुष्य जाति की सृष्टि क्यों नहीं होती है ? खाद्य, आहरण आदि संचार के कारण बन्दरों की पूँछ कटते-कटते जब पूर्णतः कट गयी, तब वर्तमान में भी बंदरों की पूँछ कैसे उपलब्ध होती है ? अभी भी बन्दर खाद्य आहरण के लिए संचार करते हैं तो क्या उनकी पूँछ घिसने का प्रकरण प्राप्त होता है या नहीं ? जिराफ अभी भी ऊँचे वृक्ष से पत्ते खाते हैं तो उनकी गर्दन पहले से अभी अधिक बड़ी क्यों नहीं होती है ?

कोई कह सकता है कि जैसे चावल, गुड़ आदि अनशीली ( अमादक ) वस्तु भी संयोग के कारण कुछ समय के बाद नशा उत्पन्न करने वाले हो जाते हैं, उसी प्रकार अचेतन रूप वस्तुओं के संयोग से, चेतना शक्ति भी उत्पन्न हो सकती है। किन्तु यह सिद्धान्त सम्पूर्ण अमूलक है, क्योंकि जो चावल, गुड़ आदि में अप्रगट रूप से अचेतन रूप नशा था, वही नशा संयोग के कारण अचेतन शक्ति-रूप नशा के रूप में प्रगट हो गया। मद्य का नशा, चेतनात्मक नहीं है, क्योंकि इस नशे में चेतना गुण नहीं है। इस नशे में सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, विवेक-अविवेक, मनःशक्ति, आहार, भय, मैथुन, संज्ञादि जो जीव के गुण हैं, वे पाये नहीं जाते हैं। इसलिए सिद्ध हुआ कि पुद्गल के संयोग से जो शक्ति उत्पन्न होती है, वह पौद्गलिक ही है। पदार्थ में वस्तुतः परिणमन शक्ति है, किन्तु वह परिणमन अपने द्रव्यत्व एवं गुण को छोड़कर अन्यत्व रूप में परिणमन नहीं करता है। एक

समय में मिट्टी विद्युत् रूप परिणमन कर सकती है, किन्तु किसी भी प्रकार से निर्जीव रसायन की शक्ति से उसमें चेतन शक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि द्रव्य-दृष्टि से मिट्टी एवं विद्युत् शक्ति एक ही है इसलिए मिट्टी परिवर्तित होकर विद्युत् शक्ति रूप हो सकती है, किन्तु, निर्जीव रसायन शक्ति एवं जीव की चेतना शक्ति दोनों द्रव्य एवं गुण दृष्टि से अत्यन्त पृथक् हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि निर्जीव से सजीव की सृष्टि नहीं हो सकती है।

**8. मृतक** – यदि भौतिक पदार्थों के मिश्रण से ज्ञानादि गुण प्रकट होते हैं एवं पंचभूत का समुदाय ही जीव है, तब मृतक शरीर से पाँचों भूत पाये जाते हैं तो भौतिक मृतक शरीर क्यों भौतिकवाद का प्रतिपादन नहीं करता है। भौतिक मृतक शरीर के अपने भौतिकवाद की पुष्टि करने के लिए एवं प्रत्यक्ष प्रमाण दर्शाने के लिए प्रत्यक्ष से वाद-विवाद करना चाहिए। मृतक शरीर में पौद्गलिक इन्द्रियादि होने पर भी इन इन्द्रियों का कार्य क्यों नहीं होता है ? और तो और जब उस शरीर को ज्वलन्त अग्नि में डालते हैं तब अपनी रक्षा करने के लिए वह विरोध क्यों नहीं करता है, एवं वहाँ से भाग क्यों नहीं जाता है ? भौतिक वस्तु के संयोग से चेतन शक्ति उत्पन्न होने पर जब शव को अग्नि किंवा जल में डालते हैं, उस समय भौतिक वस्तु के संयोग के कारण चेतन-शक्ति की और अधिक वृद्धि होनी चाहिए, जैसे अग्नि में घृत डालने से अग्नि वृद्धि को प्राप्त होती है। इस प्रकार समस्त सिद्धान्तों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जीव एक अनादि निधन अकृत्रिम चेतन स्वरूप वस्तु है।

**9. मूर्त-अमूर्त** - यह लोक मूर्तिक एवं अमूर्तिक स्वरूप भी है। पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा यह लोक मूर्तिक है। पुद्गल द्रव्य में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण रहने के कारण इसको मूर्तिक कहते हैं। दृश्यमान तथा पाँचों इन्द्रियों एवं यंत्रादि के द्वारा ग्रहणीय लोक के समस्त पदार्थ मूर्तिक ही है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, उल्का, निहारिका, आकाश-गंगा, पृथ्वी, जल, वायु आदि समस्त वस्तुएँ मूर्तिक ही हैं, इसलिए लोक इनकी अपेक्षा मूर्तिक ही है। लोक केवल मूर्तिक ही नहीं है किन्तु धर्म, अधर्म, आकाश, काल एवं जीव की अपेक्षा अमूर्तिक भी है। इससे, जो आकाश एवं जीव को मूर्तिक मानते हैं, उनके सिद्धान्त का निरसन हुआ।

**10. सप्रदेश–अप्रदेश** – धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल बहुप्रदेशी होने के कारण लोक इसकी अपेक्षा बहुप्रदेशी है परन्तु कालाणु और द्रव्य दृष्टि से पुद्गलाणु बहुप्रदेशी नहीं है। इस कारण लोक इसकी अपेक्षा अप्रदेशी है।

**11. एक रूप–अनेक रूप** – धर्म, अधर्म और आकाश एक रूप है और इनके प्रदेशों का कभी विघटन नहीं होता है। इसकी अपेक्षा लोक एक रूप है। संसारी जीव, पुद्गल एवं काल अनेक रूप हैं, क्योंकि उनके प्रदेश में भेद दिखते हैं। लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश एवं स्वतंत्र रूप से एक-एक कालाणु हैं। वे कभी भी मिलकर एक नहीं होते, इसलिए अनेक रूप हैं। लोक में अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु हैं। वस्तुतः शुद्ध पुद्गल, परमाणु स्वरूप है। वे शुद्ध परमाणु अनन्तानन्त हैं और इनकी अशुद्ध पर्यायें भी अनन्तानन्त हैं, इसलिए पुद्गल अनेक रूप हैं। संसार में स्वतंत्र-स्वतंत्र सत्ता को लिए हुए अनन्तान्त जीव हैं। मुक्त जीव गुणादि की अपेक्षा परस्पर समान होने पर उनकी सत्ता स्वतंत्र-स्वतंत्र है। इससे जो केवल एक परम ब्रह्म के अंश रूप जीव समूह मानते हैं, उनके मत का निरसन हुआ। कैवल्य प्राप्त होने के बाद जीवात्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है और उसमें ही एकमेक हो जाता है, उनके मत का भी यहाँ निरसन हुआ, क्योंकि कैवल्य प्राप्त होने के बाद अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व आदि गुणों के कारण, एक आत्मा में अनन्तानन्त आत्मा समावेश होने पर भी उनकी अपनी सत्ता, ज्ञान-दर्शन, सुखादि गुण, स्वतंत्र-स्वतंत्र रहते हैं। अपनी सत्ता, ज्ञान-दर्शन आदि गुण किसी अन्य परमात्मा में समाविष्ट नहीं होते हैं इसलिए कैवल्य प्राप्त अनन्तानन्त जीव हैं। संसारी जीव भी अनन्तानन्त हैं। संसार में गति, जाति, आदि कर्म की भिन्नता के कारण अनेक रूप ही पाये जाते हैं। यह संसारी जीव भी स्वतंत्र-स्वतंत्र एक-एक जीव द्रव्य हैं। यह संसारी जीव भी परमात्मा के अंश स्वरूप नहीं हैं, किन्तु वे प्रत्येक स्वयं पूर्ण अप्रगट रूप परमात्मा है। जीवात्मा को परमात्मा का अंश मानने पर परमात्मा पूर्ण नहीं रह सकता है एवं जीवात्मा भी पूर्ण नहीं हो सकता है। जीवात्मा यदि परमात्मा का अंश है तब जीवात्मा को कष्ट, सुख-दुःख होने पर परमात्मा को भी कष्ट-सुख-दुःख होना चाहिए,

किन्तु परमात्मा पूर्णानन्द स्वरूप है वे समस्त सांसारिक सुख-दुःख से रहित हैं। कुछ लोग कहते हैं कि परमात्मा पूर्ण हैं। पूर्ण से पूर्ण ऋण करने पर पूर्ण रहते हैं। जैसे -

( 1 ) शून्य से शून्य ऋण करने पर भी शून्य ही रहता है।( 0-0=0 )

( 2 ) शून्य के द्वारा शून्य का गुणन करने पर शून्य ही होता है।( 0x0=0 )

( 3 ) शून्य को शून्य के द्वारा विभाजन करने पर शून्य ही होता है।( 0÷0=0 )

( 4 ) शून्य में शून्य मिलाने पर शून्य ही होता है।( 0+0=0 )

साधारणतः उपरोक्त चारों प्रक्रिया से प्राप्त 'शून्य' सामान्य होने पर भी क्या सूक्ष्म गणित दृष्टि से चारों शून्य समान हैं? चारों शून्य में परिमाण की अपेक्षा कम या ज्यादा है। पहले समीकरण में जो शून्य का मूल्य है, वह दूसरे शून्य के परिमाण से कम ( ऋण ), प्रथम शून्य के परिमाण ( मूल्य ) के समान हैं। दूसरे समीकरण में जो शून्य है, वह शून्य प्रथम समीकरण से प्राप्त मूल्य से अत्यन्त अधिक है। इस शून्य मूल्य का प्रथम शून्य के परिमाण में दूसरे शून्य के परिमाण के द्वारा गुणित फल के समान हैं। तीसरे समीकरण में भाग के फलस्वरूप प्राप्त शून्य, दूसरे समीकरण से प्राप्त शून्य से परिमाण से कम है। चतुर्थ समीकरण से प्राप्त शून्य का मूल्य तीसरे समीकरण से प्राप्त शून्य के मूल्य से अधिक है। इसका मूल्य दोनों शून्य के योगफल स्वरूप है। इस बीजगणितीय पद्धति को अंकगणितीय पद्धति में परिवर्तित करने पर उनका फल स्पष्ट मालूम होता है। मान लीजिए शून्य का मूल्य 4 है। तब उपरोक्त चारों समीकरण निम्न प्रकार के होंगे -

(1) 0-0=0
4-4=0

(2) 0x0=0
4x4=16

(3) 0÷0=0
4÷4=1

(4) 0+0=0
4+4=8

यहाँ जब पहले समीकरण का मूल्य शून्य है, उस समय, दूसरे समीकरण का मूल्य 16 है, तीसरे समीकरण का मूल्य 1 है एवं चतुर्थ समीकरण का मूल्य 8 है। अर्थात् पहले समीकरण से प्राप्त शून्य का मूल्य शून्य है, दूसरे समीकरण से प्राप्त शून्य का मूल्य 16 है, तीसरे समीकरण से प्राप्त शून्य का मूल्य 1 है और चतुर्थ

समीकरण से प्राप्त शून्य का मूल्य 8 है। बीजगणितीय पद्धति से प्राप्त शून्यों का मूल्य साधारण दृष्टि से समान होने पर भी उनका मूल्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न है। एक साधारण उदाहरण के लिए, मान लजिए पूर्ण समुद्र से एक अणु का रूप जल कम किया गया। क्या साधारण दृष्टि से समुद्र का जल स्तर कम दिखाई देगा ? समुद्र के जल के निम्न चाप एवं समुद्र के जल के भार में कुछ कमी मालूम पड़ेगी ? स्थूल दृष्टि से समुद्र के जल का स्तर भार एवं चाप में कमी नहीं दिखाई देने पर भी वस्तुतः वैज्ञानिक गणितीय पद्धति से एक परमाणु के घन परिमाण जल कम होने पर जो जल स्तर कम होता है उतना निश्चित रूप से कम हुआ। भले ही सूक्ष्म यंत्र माध्यम से भी हम इसे नहीं माप सकते हैं। समुद्र के जल का भार एवं चाप भी एक परमाणु के समान भार एवं चाप कम हो गया। यह हम क्षुद्र इन्द्रिय ज्ञान के द्वारा एवं यंत्रों के द्वारा स्पष्ट मालूम नहीं पड़ने पर भी अनुमान, वस्तुत्व के ज्ञान, गणितीय ज्ञान के द्वारा जान सकते हैं। केवल ज्ञानी तो इसको स्पष्ट रूप से जानते हैं। इसी प्रकार परमात्मा अनन्त शक्ति वाला होने पर भी उसमें से जितना अंश शक्ति का पृथक् होगा, उतने अंश में उसमें निश्चित रूप से अपूर्णता होगी। जब परमात्मा अपूर्ण होगा तब उसको पूर्ण ब्रह्म नहीं कह सकते हैं। अनुभूति से प्रत्येक जीव स्वतंत्र सिद्ध होता है, क्योंकि एक जीव की अनुभूति सुख-दुःख, अन्य जीव में नहीं पाये जाते हैं। परमात्मा का सुख, जीवात्मा को प्राप्त नहीं है एवं जीवात्मा का दुःख परमात्मा को प्राप्त नहीं है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि परमात्मा भिन्न-भिन्न अनन्तानन्त है एवं जीवात्मा भी अनन्तानन्त है।

'एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' ( ऋग्वेद ) अर्थात् एक परम ब्रह्म है, वही अनेक रूप धारण करने के बाद ज्ञानी पुरुषों के द्वारा अनेक नामों से पुकारा जाता है। जैसे सूर्य एक होने पर भी, उसका प्रतिबिम्ब अनेक जलपात्र में पड़ने पर अनेक सूर्य दिखायी देते हैं, किन्तु वस्तुतः सूर्य एक है किन्तु यह कथन अयुक्तियुक्त है। क्या जलपात्र में प्रतिबिम्बित वास्तविक सूर्य है ? यदि वास्तविक सूर्य होता तब विशाल सूर्य छोटे से जलपात्र में कैसे समा जाता है ? यदि सूर्य, पात्र में प्रवेश कर लेता है तो पात्र का जल प्लावन हो जाता, एवं अत्यन्त उष्ण भी हो जाता। यदि कहा जाए कि जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब पात्र में है उसी प्रकार परमात्मा

का प्रतिबिम्ब जीवात्मा है तब जीवात्मा में वास्तविक ज्ञान सुखादि गुण कैसे प्राप्त हुआ ? यदि हम कहेंगे कि परम ब्रह्म सर्वगत है तो पुनः स्वतंत्र रूप में एक अंश जीवात्मा में प्रवेश क्यों किया ? जीवात्मा यदि अपना ही अंश है तब अपने अंश को क्यों मोह में ग्रस्त करके सुख-दुःख प्राप्त करता है। यदि जीवात्मा कैवल्य प्राप्त करने के बाद अपनी सत्ता एवं सुखादि को खो देता है तो विचारिये कि कौन बुद्धिमान व्यक्ति स्वज्ञान एवं सुखादि गुणों को नष्ट करने के लिए पुरुषार्थ करेगा ?

**12. क्षेत्र–अक्षेत्र** - आकाश को क्षेत्र कहते हैं, क्योंकि वह समस्त पदार्थों को अवकाश देता है। आकाश की अपेक्षा लोक, क्षेत्र स्वरूप है। जीव, पुद्गल, धर्म और अधर्म अक्षेत्र है, क्योंकि उनमें अवगाहन लक्षण का अभाव है। यदि आकाश को एक स्वतंत्र द्रव्य नहीं मानेंगे तो समस्त द्रव्य किसके आधार पर रहेंगे। आकाश के समस्त द्रव्यों का आधार होने के कारण अन्य एक विराट् स्वरूप परम ब्रह्म की आवश्यकता नहीं है, जिसके गर्भ में समस्त जगत् समावेश है।

**13. क्रिया–अक्रिया** – जीव और पुद्गल क्रियावान् है, क्योंकि उनमें गति पायी जाती है। यहाँ पर एक स्थान से अन्य स्थान पर प्राप्त रूप कार्य को क्रिया कहा गया है। इस अपेक्षा से लोक क्रियावान् है। यदि जीव ( पुरुष ) को एकान्त से, निष्क्रिय, कूटस्थ, नित्य, सांख्य सिद्धान्त के समान मानेंगे तब संसार का ही अभाव हो जायेगा, क्योंकि संसारी जीव-क्रिया रहित कोई भी नहीं है। यदि कहा जाए, प्रकृति के संयोग से जीव क्रियाशील हो जाता है, तो भी युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि जिसमें स्वतः क्रिया रूप परिणमन की शक्ति नहीं है, उसको बाह्य अनेक कारण मिलने पर भी वह क्रियाशील नहीं हो सकता है। जैसे - आकाश स्वतः क्रिया रहित होने के कारण आकाश के एक प्रदेश को भी चलायमान करने के लिए एक दो नहीं कोटि-कोटि शक्तिशाली बम भी क्रियाशील करने में समर्थ नहीं है इससे सिद्ध हुआ कि पुद्गल के समान जीव भी क्रियावान् है। धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल अक्रिया अर्थात् क्रिया रहित हैं। इनकी अपेक्षा लोक भी क्रिया रहित है।

**14. नित्य–अनित्य** – धर्म-अधर्म आकाश और निश्चय काल नित्य है, क्योंकि विभाव व्यंजन पर्याय उनमें नहीं हैं। अतः उनके नाश न होने से वे नित्य हैं। इनकी अपेक्षा लोक भी नित्य है। इसलिए नित्य क्षणिकवादी-बौद्धों का सिद्धान्त भ्रांतिपूर्ण है। जीव और पुद्गल अनित्य है, क्योंकि विभाव व्यंजन पर्याय उनमें दिखाई देती है। इनकी अपेक्षा लोक अनित्य है। एकान्ततः लोक को नित्य मानने पर किसी भी प्रकार की क्रिया नहीं हो सकती है। व्यंजन पर्याय की अपेक्षा जीव पुद्गल अनित्य होने पर भी द्रव्य की अपेक्षा नित्य हैं, इसलिए विश्व नित्यानित्यात्मक है।

**15. कारण–अकारण** – पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल ये द्रव्य कारण हैं, क्योंकि जीवों के उपकारक हैं। इनकी अपेक्षा लोक भी कारण स्वरूप है। ये द्रव्य जीव का उपकार करने पर भी वे स्वयं जीव रूप परिणमन नहीं करते हैं। इन द्रव्यों के कारण स्वरूप होने के कारण अन्य परम ब्रह्म को कारण मानना अनावश्यक है। जीव अकारण है, क्योंकि वह स्वतंत्र है। जीव-पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश के लिए कारण भी नहीं होता है। जीव-चेतन स्वरूप, अखण्ड स्वरूप, अमूर्तिक होने के कारण संसार का कारण नहीं हो सकता है। ''एष योनिः सर्वस्य''( मांडुकोपनिषद् ) अर्थात् यह परमात्मा सम्पूर्ण जगत् का कारण है। इस प्रकार जो उपनिषद् में वर्णित है, उसका यहाँ खण्डन हुआ। यदि ब्रह्म जगत् का कारण होता तब सम्पूर्ण जगत जड़ स्वरूप नहीं होता, बल्कि चेतन स्वरूप होता, क्योंकि कारण के अनुसार कार्य होता है।

**16. कर्त्ता–अकर्त्ता** – जीव कर्त्ता है, क्योंकि शुभाशुभ कर्मों का भोक्ता है। जो कर्त्ता होता है, वही भोक्ता होता है। शुभाशुभ कर्मों का कर्त्ता होने के कारण जीव स्वयं अपने प्रपंच का कर्त्ता है। प्रपंच का कर्त्ता होने के कारण वह प्रपंच से प्राप्त सुख-दुःख का भोक्ता स्वयं ही है। जीव स्वयं अपने संसार का कर्त्ता होने पर भी समस्त जीवों का एवं समस्त अजीवों का कर्त्ता नहीं है। जैसा कि आचार्यों ने कहा है -

**पुद्गल कम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।**
**चेदण कम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं।।( 8 )( द्रव्य संग्रह )**

"According to Vyavahara Naya, Jiva is the doer of the Pudgala karmas. According to Nischaya Naya, Jiva is the doer of thought Karmas. According to Suddha Naya, Jiva is the doer of Suddha Bhavas".

**अर्थात् आत्मा व्यवहार नय की अपेक्षा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, आयु, नाम गोत्र रूप पुद्गल कर्म का कर्त्ता है। निश्चय से क्रोध, मान, माया, लोभ एवं मोहादि, चेतन कर्म का कर्त्ता है और शुद्ध नय से शुद्ध ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि, भावों का कर्त्ता है। अनादिकालीन मोहादि भाव-संसार के कारण स्वयं के द्रव्य-संसार का सृष्टि कर्त्ता स्वयं जीव है। यह मोहादि भावों की सृष्टि शुद्ध परमात्मा में नहीं हो सकती है, क्योंकि शुद्ध आत्मा का स्वरूप मोहादि परिणमन रूप नहीं है, इसलिए परम ब्रह्म जगत् का कर्त्ता नहीं है, और जो जगत् का कर्त्ता है, वह शुद्ध परमात्मा नहीं हो सकता है। यदि करुणामय, दयासागर, अनन्त ज्ञानी परमात्मा सृष्टि के कर्त्ता होते तब संसार में निष्करुणा, निर्दयी, अज्ञानी जीवों की उपलब्धि नहीं होती। भगवान् दयाशील होकर भी एक को सुखी क्यों करते हैं और अन्य को दुःखी क्यों करते हैं? यदि इस प्रकार भेदभाव है तो उनमें पक्षपात है। जो पक्षपाती हैं, वे रागीद्वेषी हैं। जो रागीद्वेषी हैं वे परमात्मा नहीं हो सकते हैं। यदि हम कहे कि परमात्मा जीव के कर्म के अनुसार फल देते हैं, इसलिए उनमें पक्षपात नहीं है तो भी, यदि कर्म के अनुसार जीव को फल प्राप्त होता है, तब परमात्मा सृष्टि का कर्त्ता कैसे होगा? इतना ही नहीं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि भी जब कर्म के अधीन हैं तब वे कैसे स्वतंत्र रूप से जगत् की सृष्टि कर सकते हैं।**

**ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे,**
**विष्णुर्येन दशावतारगहने, क्षिप्तो महा संकटे।**
**रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः।**
**सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गमने तस्मै नमः कर्मणे।।( 96 )**

**( भर्तृहरि नीतिशतक )**

हम लोग देवताओं को नमस्कार करते हैं, पर वे भी दुष्टविधि के ही अधीन

हैं। इसलिए यदि हम विधाता को नमस्कार करते हैं तो वह विधाता भी स्वतंत्रतया हमको फल देने में समर्थ नहीं है, वे कर्म के अनुसार ही फल देते हैं इसलिए जब फल कर्म के अनुसार ही मिलता है, तब हमें क्या मतलब देवताओं से और क्या मतलब विधाता से ? उस कर्म को ही क्यों न नमस्कार करे, जिस पर विधाता का भी कोई वश नहीं चलता।

परम-ब्रह्म, जीवात्मा पर दया करके भी सुख देने में समर्थ नहीं है। पूर्व जन्म में किया हुआ सुकृत ही जीव की रक्षा करता है। विष्णु भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है। स्वयं विष्णु ( श्रीरामचन्द्र ) की पत्नी ( सीता ) को भी रावण हरण करके ले गया और उसको रामचन्द्र नहीं जान पाये एवं हठात् सीता का उद्धार नहीं कर पाये। स्वयं विष्णु ( श्रीकृष्ण ) को जरत कुमार ने बाण मारा एवं उस बाण के घात से प्राण का अपहरण हुआ तो भी अपनी रक्षा नहीं कर पाये। भस्मासुर जब रूद्र को जलाने के लिये दौड़ा, उस समय रूद्र भी अपनी रक्षा नहीं कर पाये और भस्मासुर को भी नष्ट नहीं कर पाये। इससे सिद्ध होता है कि अन्य कोई शक्ति है जिससे जीव की रक्षा होती है। जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है -

**वने रणे शत्रुजलाग्नि मध्ये, महार्णवे पर्वत मस्तके वा।**
**सुप्तं प्रगतं विषमस्थितेवा, रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि।( 98 )( नीतिशतक )**

पूर्व जन्म में किया हुआ पुण्य ही पुरुष को वन में, रण में, शत्रुओं से घिर जाने पर अग्नि में, जल में महासमुद्र के पर्वत की चोटी पर सुप्तावस्था में, असावधानी में और संकट-काल आ जाने पर रक्षा करता है।

स्वयं कृष्ण नारायण ने भी अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भागवत्गीता में, 'लोक का कोई कर्त्ता नहीं है' इस प्रकार बताया है -

**न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु।**
**न कर्मफलं संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।।**

परमेश्वर भी भूत-प्राणियों के न कर्त्तापने को और न कर्मों को तथा न कर्मों के फल के संयोग को वास्तव में रचता है, किन्तु परमात्मा के सकाश ( कारण ) से प्रकृति ही वर्तती है अर्थात् गुण ही गुणों में वर्त रहे हैं।

**नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकुतं विभुः।**

**अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेज मुह्यन्ति जन्तवः ।।**

सर्वव्यापी परमात्मा न किसी के पाप कर्म को और न किसी के शुभ कर्म को भी ग्रहण करता है, किन्तु माया के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है। इससे सब जीव मोहित हो रहे हैं।

स्याद्वाद मंजरी में आचार्य हेमचन्द्र ने भी, जगत् का कोई कर्त्ता नहीं है, ऐसा बताया है एवं कर्त्तावाद का भी खण्डन किया है।

**कर्तास्ति कश्चिज्जगतः स चैकः स सर्वगः स स्ववशः स नित्यः**
**इमाः कुहेवाक्विडम्बनाः स्युस्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ।।**

हे नाथ! जो अप्रमाणिक लोग, जगत् का कोई कर्त्ता है - ( 1 ) वह एक है, ( 2 ) सर्वव्यापी है, ( 3 ) स्वतंत्र है, और ( 4 ) नित्य है, आदि दुराग्रह से परिपूर्ण सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं। उनके आप अनुशासक नहीं हो सकते हैं।

बैरिस्टर चम्पतराय जैन, 'की ऑफ नॉलेज' में सृष्टि कर्त्तावाद का निष्कर्ष निम्न प्रकार से बताते हैं -

To sum up consciousness is a reality independent of matter, and, in no sense its product. It is ....., having neither beginning nor end. The universe is eternal too & contains, material forms which are subject to evolution & change. Matter is also uncreate and eternal. The material istic theory, culminating in the grand doctrine of evolution is necessarily imperfect, one sided and undignified. It is imperfect, because it ignores the existence of spirit, one sided, because it confines its survey to the objective side of things & undignified, because it insuits the living reality by treating it as a product of dead matter. The theologian is wrong, because he has no true conception of God, because he ascribes an origin to the universe & because he insists on the creation of things out of nothing. It is he who is responsible for making religion a built of ridicule & contempt for the scientific world. When property understood, religion and science would work hand in hand, without a possibility of friction, which is always the result of unreasonableness on the part of the former and of a hasty and for that reason, necessarily imperfect investigation, on that of the

latter.

संक्षिप्त में, चैतन्य, पुद्गल से एक स्वतंत्र द्रव्य है। इसको उत्पन्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह चैतन्य द्रव्य अन्य द्रव्य से उत्पन्न नहीं हुआ है। यह एक शाश्वतिक अनादि निधन द्रव्य है। लोक भी शाश्वत है। लोक में रहने वाला पौद्गलिक द्रव्य परिगमनशील है। पौद्गल द्रव्य भी अकृत्रिम एवं शाश्वतिक है। भौतिक सिद्धान्त का जो अत्यन्त मान्य विकासवाद का सिद्धान्त है वह भी एकान्त रूप एवं असम्पूर्ण होने के कारण सत्य सिद्धान्त नहीं है। इस सिद्धान्त में आत्मा के अस्तित्व के बारे में ज्ञान नहीं होने के कारण अपूर्ण है। एकान्त पक्ष होने के कारण एवं असम्पूर्ण साक्षात्कार होने के कारण असत्य है। निर्जीव वस्तु से आत्म तत्त्व उत्पन्न हुआ, इस प्रकार मानकर आत्म तत्त्व का अपमान करता है। ईश्वरवादी मत के शास्त्र भी भ्रांतिपूर्ण है इसका कारण वे भगवान् को विश्व का उपादान कारण मानते हैं एवं वे असत्य से सत्य के उत्पन्न होने के बाद को पोषण करते हैं। धर्म एवं विज्ञान परस्पर अनुपूरक एवं परिपूरक रूप से कार्य करते हैं अर्थात् समन्वय से कार्य करते हैं। इस कार्य के लिए अन्य कारणान्तर की आवश्यकता नहीं होती है। जब स्वयं द्रव्य कार्य करने में समर्थ है, उस समय में अन्य कर्त्ता की आवश्यकता ही नहीं रहती है। कविवर दौलतराम जी ने इस भाव को इस प्रकार स्पष्ट किया है –

**किनहूँ न करौ न धरे को षट्द्रव्यमयी न हरे को।**
**सो लोकमांहि बिन समता दुख सहे जीव नित भ्रामता।।( छहढ़ाला )**

इस षड्द्रव्यमयी लोक को न किसी ने बनाया है, और न किसी के द्वारा धारण किया गया है और न ही किसी के द्वारा नष्ट किया जा सकता है, किन्तु जीव बिना समता के कारण कर्त्ता, धर्त्ता एवं हर्त्ता होकर, संसार में परिभ्रमण करते हुए दुःख अनुभव कर रहा है।

धर्म, अधर्म, आकाश, काल एवं पुद्गल अकर्त्ता हैं, क्योंकि शुभाशुभ कर्मों का भोक्तृत्व नहीं है। सांख्य मत जो केवल प्रकृति जड़ को कर्त्ता मानते हैं उसका निरसन हुआ क्योंकि जड़ से चेतन शक्ति नहीं होने के कारण वह कर्त्ता नहीं हो सकता है। यदि केवल प्रकृति ही कर्त्ता होती तो प्रकृति को ही फल

भोगना पड़ता, किन्तु प्रकृति जड़ होने के कारण उसमें भोक्तृत्व शक्ति नहीं है।

**17. सर्वगत–असर्वगत –** आकाश सर्वगत है क्योंकि वह सर्वत्र है। इस अपेक्षा से लोक भी सर्वगत है। धर्म, अधर्म, काल, जीव, पुद्गल सर्वगत नहीं है, क्योंकि वे सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं। इसकी अपेक्षा लोक असर्वगत है। केवलज्ञान की अपेक्षा केवली भगवान् सर्वगत होने पर भी द्रव्य की अपेक्षा सर्वगत नहीं है। **वे 'स्वात्म स्थितः सर्वगतः'** अर्थात् स्वात्मा में स्थित होने पर भी केवलज्ञान के माध्यम से लोक-अलोक को जानते हैं, इसलिए सर्वगत हैं। जो आत्म द्रव्य की अपेक्षा परमात्मा को सर्वगत मानते हैं, उनके मत का यहाँ खण्डन प्राप्त हुआ। आत्मा सर्वगत होने पर गमनादि एवं सृष्टि प्रक्रिया आदि क्रिया उनके द्वारा नहीं हो सकती है। ईश्वर का सर्वगत शरीर की अपेक्षा है या ज्ञान की अपेक्षा? प्रथम पक्ष में ईश्वर का अपना शरीर ही सर्वगत तीन लोक में व्याप्त हो जायेगा, फिर दूसरे बनाने योग्य ( निर्मेय ) पदार्थों के लिए कोई स्थान ही नहीं रहेगा। ज्ञान की अपेक्षा मानने का तो जैन समुदाय को ही श्रेय है। परन्तु ईश्वर के ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत मानने पर वेद से विरोध आता है। वेद में ईश्वर को शरीर की अपेक्षा सर्वव्यापी कहा है **'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतः पारिरुत विश्वतः पात'** अर्थात् ईश्वर सर्वत्र नेत्रों का, मुख का, हाथों का पैरों का धारक है। यदि कहो कि ईश्वर को नियत स्थानवर्ती माना जाय तो तीन लोक में अनियत स्थानों के पदार्थों की उत्पत्ति यथावत् नहीं हो सकेगी। तो यहाँ प्रश्न होता है कि त्रैलोक्य की सृष्टि करने वाला ईश्वर बढ़ई की तरह साक्षात् शरीर की सहायता से जगत् को बनाता है अथवा संकल्प मात्र से? प्रथम पक्ष स्वीकार करने में पृथ्वी, पर्वत आदि का निर्माण करने में अत्यन्त कालक्षेप की सम्भावना होने से बहुत समय लगेगा। इसलिए बहुत समय तक तीन लोक की रचना नहीं हो सकेगी। यदि संकल्प मात्र से ही सृष्टि बनती है तो एक स्थान में रहकर भी ईश्वर जगत् को बनाये तो उसमें भी कोई दोष दृष्टिगोचर नहीं होता, क्योंकि नियत देश में रहने वाले सामान्य देव भी संकल्प मात्र से ही उन-उन कार्यों का सम्पादन करते हैं।

ईश्वर को शरीर की अपेक्षा सर्वव्यापी मानने पर वह ईश्वर अशुचि पदार्थों में और निरन्तर महान्धकार से व्याप्त नरकादि में रहा करेगा और यह मानना ईश्वरवादियों को ईष्ट नहीं है। यदि कहे कि भगवान् ज्ञान की अपेक्षा सर्वव्यापी

है अर्थात् उन भगवान् को भी अशुचि पदार्थों के रसास्वादन का ज्ञान होता है तथा नरकादि दुःखों का अनुभव होता है। किन्तु यह युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि जानने वाला ज्ञान अपने स्थान में स्थित होकर ज्ञेय को जानता है। ज्ञेय के स्थान को प्राप्त होकर के नहीं। इसलिए यह दूषण नहीं लगता है। केवल अशुचि पदार्थ के ज्ञान से ही रसास्वादन की अनुभूति नहीं होती। यदि ऐसा होने लगा तो माला, आहार, चंदन, स्त्री और मनोज्ञ चिंतन मात्र से तृप्ति होनी चाहिए और मालादि के लिए प्रयत्न करना भी निष्फल होगा।

**एवमिह नाणसत्ती आपत्था चेव हदि लोगंतं।**

**जइ परिछिंदइ सम्मं कोणु विरोहो भवे एत्थं।।**

इस प्रकार ज्ञान शक्ति आत्मा में ही रहकर लोक के पदार्थों को भली-भांति जानती है, उसमें कोई विरोध नहीं है।

**18. प्रवेश-अप्रवेश** – जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अपने द्रव्य छोड़कर अन्य के धर्म में प्रवेश नहीं करते हैं। इसलिए धर्मादि अप्रवेश है। एक ही आकाश प्रदेश में छहों द्रव्य परस्पर अवगाहित होकर रहते हैं इसलिए लोक इसकी अपेक्षा प्रवेश है।

**अण्णोणं पविसंता दिंता उग्गासमण्णमण्णस्स।**

**मेलंताविय णिच्चं सगं सगं भावं ण विजहंतिं।।( पंचास्तिकाय 7 )**

एक दूसरे को अवगाहन देकर परस्पर प्रवेश होकर के अथवा मिलकर रहने पर भी अपने-अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप में परिणमित होने पर जीव अजीव एवं अजीव जीव द्रव्य हो सकता है। किन्तु द्रव्य अपने भाव को त्रिकाल में भी नहीं छोड़ते हैं। इसलिए एक द्रव्य रूप में परिणमन नहीं करते हैं। यदि कहे कि द्रव्य ऐसा परिणमन क्यों नहीं करते हैं एवं उनमें इस प्रकार स्वभाव क्यों है ? इसके उत्तर स्वरूप में यह है कि **"यदीयं स्वयमर्थेभ्यो रोचते तत्र के वयम्"** अर्थात् यह समस्त धर्म स्वयं वस्तु को रुचता है। अर्थात् इस धर्म में रहना पदार्थों को पसन्द है। यदि यह सर्वधर्म स्वयं वस्तु को रुच रहे हैं तो हम कहने वाले कौन हैं ? किसी व्यक्ति द्वारा वस्तु के स्वभाव को मानने पर किंवा नहीं मानने पर वस्तु अपने स्वभाव का त्याग नहीं करता है।

# ब्रह्माण्ड और सौर तंत्र

ब्रह्माण्ड को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि यह वह सबकुछ है, जो भौतिक रूप से अस्तित्व में है, जिसमें शामिल है अंतरिक्ष और समय की संपूर्णता, सभी तरह के पदार्थ, ऊर्जा, संवेग एवं भौतिकी नियम तथा स्थिरांक, जो ब्रह्माण्ड का संचालन करते हैं। लेकिन 'ब्रह्माण्ड' शब्दावली को कुछ अन्य संदर्भों में भी प्रयोग किया जाता है, जैसे कॉस्मोस, विश्व ( वर्ल्ड ) या प्रकृति ( नेचर )।

खगोलिकी प्रेक्षण बतलाते हैं कि ब्रह्माण्ड 13.7±0.12 अरब वर्ष पुराना है। इसका व्यास 93 अरब प्रकाश वर्ष या $880x10^{24}$ मीटर है। तुलनात्मक दृष्टि से एक विशिष्ट आकाशगंगा का व्यास 30,000 प्रकाश वर्ष है तथा दो पड़ोसी आकाशगंगाओं के बीच की विशिष्ट दूरी 30 लाख प्रकाश वर्ष है। उदाहरणार्थ, हमारी 'मिल्की वे' आकाशगंगा का व्यास 1,00,000 प्रकाश वर्ष है तथा हमारी सबसे नजदीकी सिस्टर आकाशगंगा एंड्रोमेडा आकाशगंगा 25 लाख प्रकाश वर्ष दूर है।

ब्रह्माण्ड में प्रेक्षणीय पदार्थ सामान्य रूप से औसत 300 मिलियन प्रकाश वर्ष दूरियों में फैला हुआ है। यह प्रेक्षणीय पदार्थ ब्रह्माण्ड में समदैशिक रूप से भी फैला हुआ है। लघु पैमाने पर पदार्थ पिंडो ( क्लम्प ) का निर्माण करता है, जिन्हें पारम्परिक रूप से क्लस्टर कहते हैं, जहाँ अनेक परमाणु संघनित होकर स्टार में परिवर्तित हो जाते हैं। अधिकांश स्टार आकाशगंगाओं में, अधिकांश आकाशगंगाएँ क्लस्टरों और सुपर क्लस्टरों में और आखिर में विशालकाय पैमानेवाले स्ट्रक्चरों ( जैसे आकाशगंगाओं की विशाल दीवार ) में परिवर्तित हो जाते हैं। ब्रह्माण्ड उच्च आइसोट्रॉपिक माइक्रोवेव विकिरण से प्रताड़ित होता रहता है तथा ये विकिरण 2.725 केल्विन तापक्रम वाले तापीय संतुलित ब्लैक बॉडी स्पेक्ट्रम से संबंधित होते हैं। यह संकल्पना कि विशाल पैमाने पर ब्रह्माण्ड समांगी और समदैशिक होता है, 'ब्रह्माण्डिकी सिद्धान्त' कहलाता है तथा इसे खगोलिकी प्रेक्षणों का समर्थन प्राप्त है।

वर्तमान में ब्रह्माण्ड का घनत्व लगभग $9.9x10^{-30}$ ग्राम प्रति घन से.मी. है। इस भार-ऊर्जा में 73 प्रतिशत डार्क ऊर्जा, 23 प्रतिशत कोल्ड डार्क मैटर और 4 प्रतिशत साधारण पदार्थ है। इस तरह परमाणुओं का घनत्व प्रत्येक घन मीटर आयतन के लिए अकेला हाइड्रोजन परमाणु है। डार्क ऊर्जा और डार्क मैटर के गुण अधिकांश रूप से अज्ञात हैं।

## ब्रह्माण्ड के विभिन्न मॉडल

### ऐतिहासिक मॉडल

कॉस्मोस तथा इसकी उत्पत्ति के ऊपर अनेक मॉडल प्रस्तावित किए गए हैं, जो उपलब्ध आँकड़ों और संकल्पनाओं पर आधारित हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रह्मांडिकी और ब्रह्मांडोत्पत्ति ( कॉस्मोजोनीज ) विभिन्न रूपों में ईश्वर के विभिन्न रूपों पर आधारित थे। भौतिक नियमों पर आधारित अवैयक्तिक ( इमपर्सनल ) ब्रह्माण्ड की संकल्पनाएँ पहली बार ग्रीक और भारत के निवासियों द्वारा प्रस्तावित की गई थी। सदियों के लंबे अंतराल में खगोलिकी प्रेक्षणों तथा गति और गुरुत्व की नई-नई संकल्पनाओं के आविष्कारों ने ब्रह्माण्ड का और भी अधिक विस्तृत और परिशुद्ध स्वरूप प्रस्तुत किया। ब्रह्मांडिकी का आधुनिक युग सन् 1915 में आइंस्टीन की सामान्य सापेक्षता के सिद्धान्त से प्रारम्भ हुआ, जिसने परिमाणात्मक रूप से तथा संपूर्णता के साथ ब्रह्मांड की उत्पत्ति, विकास और निर्णायक जानकारी के संसूचन का रास्ता प्रशस्त किया। ब्रह्मांडिकी की आधुनिकतम स्वीकृत संकल्पनाएँ सामान्य सापेक्षता के सिद्धान्त पर तथा विशिष्ट रूप से भविष्यवाणी की गई कि 'बिग बैंग' संकल्पना पर आधारित है, लेकिन सूक्ष्म मापन इसलिए तथा यह जानने के लिए नितांत आवश्यक है कि कौन सी संकल्पना सही है।

### दार्शनिक मॉडल

ब्रह्माण्ड के प्रारम्भिक दार्शनिक मॉडल वेदों में पाए जाते हैं, जो द्वितीय सहस्राब्दी ई.पू. के समय भारतीय और हिंदू दर्शनशास्त्र में उपलब्ध हैं। वे प्राचीन हिंदू ब्रह्मांडिकी का वर्णन करते हैं, जिसमें ब्रह्माण्ड बार-बार निर्माण, विनाश

और पुनः जन्म-चक्र से गुजरता है तथा प्रत्येक चक्र 43,20,000 वर्ष का होता था। प्राचीन हिंदू और बौद्ध दार्शनिकों ने 5 संस्थापित तत्त्वों की संकल्पना विकसित की। ये तत्त्व थे - वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश। छठी शताब्दी ई.पू. में कणाद मुनि के वैशेषिक दर्शन के आधार पर परमाण्विकी संकल्पना विकसित हुई, जिसके अनुसार प्रकाश और ताप उसी पदार्थ के दो अलग रूप हैं। दार्शनिक मॉडलों में पाँचवी सदी में बौद्धिक दर्शनशास्त्री दिग्नाग, छठी सदी में प्री-सुकरात दार्शनिकों इत्यादि ने भी ब्रह्माण्ड के ऊपर अपने अलग दार्शनिक विचार रखे।

कुछ अन्य दार्शनिकों - ल्यूसिपस और डेमोक्रेटस ने यह प्रस्ताव दिया कि ब्रह्माण्ड का निर्माण अलग-अलग परमाणुओं से बना है, जो खाली स्थान में घूमते हैं, जिसे 'निर्वात' कहते हैं। अरस्तू ने इस संकल्पना का विरोध किया। उनका तर्क था कि घनत्व के साथ गति में व्यवधान बढ़ता है। खाली अंतरिक्ष को गति के मार्ग में बाधा नहीं डालनी चाहिए तथा इसमें अनंत गति होनी चाहिए।

इन सबसे हटकर ग्रीक के दार्शनिकों का विश्वास था कि ब्रह्माण्ड का एक अनंत भूतकाल है ( बिना प्रारम्भ के )। मेडीवल दार्शनिकों और ब्रह्म-विज्ञानियों ने ब्रह्माण्ड की ऐसी संकल्पना विकसित की, जिसका भूतकाल सीमित था तथा उसका एक प्रारम्भ भी था। इस विचार की प्रेरणा अनेक धर्मों से प्रेरित थी।

### खगोलिकी मॉडल

ब्रह्माण्ड के खगोलिकी मॉडल प्रस्तावित किए गए, जब बेबीलोनियन खगोलशास्त्रियों ने खगोलशास्त्र की शुभारम्भ किया तथा उनके अनुसार ब्रह्माण्ड समुद्र में तैरते हुए एक फ्लैट डिस्क के समान हैं। बाद में ग्रीक दार्शनिकों ने ब्रह्माण्डीय पिंडों की गतिजता के प्रेक्षण से अनुभवाश्रित प्रमाणों के आधार पर ब्रह्माण्ड के मॉडल को विकसित करने का चिंतन किया। इस संदर्भ में प्रथम संसक्त ( कोहेरेंट ) मॉडल 'यूडोक्सस ऑफ निडोस' के द्वारा प्रस्तावित किया गया। इस मॉडल के अनुसार अंतरिक्ष और समय अनंत और शाश्वत है, पृथ्वी गोलाकार और स्थिर है तथा बाकी सब पदार्थ संकेन्द्रित गोलाकार स्थिति में घूमते हैं।

यह मॉडल कैलीपस और अरस्तू के द्वारा रिफाइन किया गया तथा इसमें प्टोलेमी के द्वारा किए गए खगोलिकी प्रेक्षणों से काफी समानता थी। इस मॉडल की सफलता का श्रेय उस गणितीय तथ्य को जाता है, जिसके अनुसार कोई भी फंक्शन ( जैसे किसी ग्रह की स्थिति ) उनके वृत्तीय फंक्शनों में परिवर्तित किया जा सकता है। लेकिन सभी ग्रीक वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड के ज्यामितीय मॉडल को स्वीकार नहीं किया। सैमोस के अरिस्टार्कस प्रथम खगोलशास्त्री थे, जिन्होंने ब्रह्माण्ड की 'सूर्य-केन्द्री संकल्पना' का प्रस्ताव किया।

ब्रह्माण्ड से संबंधित अरस्तू का मॉडल पाश्चात्य देशों में दो सहस्राब्दी तक माना जाता रहा, जबकि बाद में कोपरनिकस ने इसे नवजाग्रत किया। उन्होंने बताया कि सूर्य केन्द्र में होता है तथा पृथ्वी उसका चक्कर लगाती है। कोपरनिकस के सूर्य-केन्द्री मॉडल के अनुसार स्टार अनंत अंतरिक्ष में एक समान स्थापित है, जिनके चारों ओर ग्रह चक्कर लगाते हैं। खगोलशास्त्री गिवोर्डैनी ब्रूनो ने इस विचारधारा को स्वीकार किया कि अंतरिक्ष अनंत है तथा हमारे सौर तंत्र की भाँति के इसमें अनेक सौर तंत्र हैं। इस ब्रह्माण्डिकी विज्ञान को न्यूटन और क्रिश्चियन हाईगंश के द्वारा स्वीकारा गया तथा बाद के वैज्ञानिकों ने भी इसे स्वीकार किया। इस मॉडल में अठारहवीं सदी में एक महत्त्वपूर्ण सुधार आया, जिसे वैज्ञानिक थॉमस राइट और इममैनुएल कांट तथा अन्य वैज्ञानिकों ने प्रस्तुत किया कि ब्रह्माण्ड में स्टार समान रूप से वितरित नहीं है बल्कि वे आकाशगंगाओं के रूप में ग्रुपों में बँटे हुए हैं।

भौतिक ब्रह्माण्डिकी का आधुनिक युग सन् 1917 से प्रारम्भ हुआ, जब अल्बर्ट आइंस्टीन ने ब्रह्माण्ड की गतिजता और स्ट्रक्चर का मॉडल बनाने के लिए सामान्य सापेक्षता के सिद्धान्त का प्रयोग किया।

### ब्रह्माण्ड का बिग बैंग मॉडल

वर्तमान में प्रचलित ब्रह्माण्ड के 'बिग बैंग' मॉडल में अनेक प्रायोगिक प्रेक्षणों को शामिल किया गया है, जैसे - आकाशगंगाओं की रेडशिफ्ट और दूरी के बीच का अन्योन्याश्रय ( कोरिलेशन ), सार्वभौम अनुपात ( हाइड्रोजन और हीलियम परमाणु का ) तथा सर्वव्यापक और सार्वदेशिक माइक्रोवेव

विकिरण पृष्ठभूमि। जैसा कि ऊपर वर्णित हुआ है, रेड-शिफ्ट अंतरिक्ष के मेट्रिक प्रस्तरण से जनित होती है। जब अंतरिक्ष प्रस्तरित होता है तो फोटानो की तरंगदैर्ध्य ( अंतरिक्ष से गमन करते हुए ) बढ़ती है तथा इनकी ऊर्जा घटती है। कोई फोटान जितना अधिक गमन करता है उसका उतना ही अधिक प्रस्तरण होता है, इसलिए सुदूर आकाशगंगाओं के फोटानों में रेड-शिफ्ट अधिक होती है।

**हमारा सौर तंत्र**

हमारे सौर तंत्र में एक औसत तारा है, जिसे हम सूर्य कहते हैं तथा ग्रह हैं जिनके नाम हैं - बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्च्यून। इसके अलावा इसमें शामिल हैं ग्रहों के उपग्रह, अनेक पुच्छल तारे, क्षुद्र ग्रह और उल्काएँ तथा अंतरातारकीय माध्यम। सूर्य सौर तंत्र में विद्युत् चुम्बक ऊर्जा का सबसे समृद्धि पूर्ण ऊर्जा ( अधिकांश रूप से ताप और प्रकाश रूप में ) स्रोत हैं। सौर तंत्र के सम्पूर्ण भार का 99.85 प्रतिशत पदार्थ सूर्य में है। सौर तंत्र के विभिन्न पिंडों में भार का वितरण सारणी-2.1 में दिया गया है। सूर्य और खगोलिकी पिंडों के अन्य विवरण सारणी 2.2 में दिए गए हैं।

सारणी - 1

हमारे सौर तंत्र के अंदर भार का वितरण ( प्रतिशत रूप में )

| | | |
|---|---|---|
| 1. | सूर्य | 99.85% |
| 2. | ग्रह | 0.135% |
| 3. | पुच्छल तारे | 0.01% |
| 4. | उपग्रह ( चंद्रमा ) | 0.00005% |
| 5. | लघु ( माइनर ) ग्रह | 0.0000002% |
| 6. | उल्काएँ | 0.0000001% |
| 7. | अंतरातारकीय माध्यम | 0.0000001% |

सूर्य का सबसे नजदीकी तारकीय पड़ोसी एक रेड ड्वार्फ स्टार है, जिसका नाम प्रोक्सिमा सेंटोरी है, जो कि इससे 4.3 प्रकाश वर्ष दूर है। स्पष्ट रात्रि में दृष्टिगोचर स्थानीय स्टार तथा सम्पूर्ण सौर तंत्र हमारी घरेलू आकाशगंगा के

केन्द्र को ( जो कि 200 अरब स्टारों की एक स्पाइरल डिस्क है ), जिसे हम 'मिल्की वे' कहते हैं, का चक्कर लगाती हैं तथा दक्षिणी गोलार्द्ध से दृष्टिगोचर होती हैं। इन्हें 'लार्ज मैगलेनिक क्लाउड' और 'स्माल मैगलेनिक क्लाउड' कहते हैं। 'मिल्की वे' आकाशगंगा के सबसे नजदीक की आकाशगंगा का नाम 'एंड्रोमेडा आकाशगंगा' है। यह 'मिल्की वे' आकाशगंगा की भांति की स्पाइरल आकाशगंगा है, लेकिन यह चार गुना भारी और 20 लाख प्रकाश वर्ष दूर है। एक अरब ज्ञात आकाशगंगाओं में हमारी आकाशगंगा अंततः गैलेक्टिक अंतरिक्ष क्षेत्र से गमन करती है।

सभी ग्रह, उनके उपग्रह ( या चंद्रमा ) तथा क्षुद्र ग्रह उसी दिशा में लगभग वृत्तीय कक्षा में सूर्य का चक्कर लगाते हैं। अगर हम सूर्य के उत्तरी ध्रुव से नीचे देखें तो पाएंगे कि ग्रह काउंटर-क्लॉक दिशा में सूर्य का चक्कर लगाते हैं। ग्रह समीप से अथवा उसी प्लेन में सूर्य का चक्कर लगाते हैं,जिसे हम कांतिवृत ( इक्लिप्टिक ) कहते हैं। प्लूटो एक विशिष्ट केस है कि इसकी कक्षा काफी झुकी हुई ( 18 डिग्री ) है तथा अत्यधिक दीर्घवृत्तीय ( सभी ग्रहों की तुलना में ) है। इसके कारण कक्षा के कुछ समय में प्लूटो नेप्च्यून की तुलना में सूर्य के अधिक समीप पहुँच जाता है। अधिकांश ग्रहों की रोटेशन कक्षा कांतिवृत्त के लगभग लंबाकार है। इस संदर्भ में यूरेनस और प्लूटो अपवाद हैं।

### अंतराग्रही अंतरिक्ष

आयतन की दृष्टि से लगभग सभी सौर तंत्र खाली शून्य प्रतीत होते हैं। अंतरिक्ष की इस रिक्तता में अंतरातारकीय माध्यम होता है। इसमें विभिन्न प्रकार की ऊर्जा होती है तथा साथ-ही-साथ दो प्रकार के पदार्थ अवयव होते हैं, जिनके नाम हैं - अंतराग्रहीय धूल और अंतराग्रहीय गैस। अंतराग्रहीय धूल में माइक्रोस्कोपिक ठोस कण होते हैं। अंतराग्रहीय गैस गैसों का पतला प्रवाह होता है, जिसके आवेशित कण भी होते हैं, जिनमें अधिकांश रूप से प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन अर्थात् प्लाज्मा के रूप में होते हैं। यह प्लाज्मा सूर्य से निकलता है, जिसे 'सौर पवन' कहते हैं।

सारणी - 2

सूर्य और ग्रहों के खगोलिकी विवरण

| | पिंड का नाम | सूर्य से दूरी ( खगोलिकी इकाई ) | अर्द्धव्यास ( पृथ्वी सापेक्ष ) | भार ( पृथ्वी सापेक्ष ) | रोटेशन ( पृथ्वी सापेक्ष ) दिन | चंद्रमा की संख्या | कक्षीय झुकाव | कक्षीय उत्केंद्रता | घनत्व ग्राम प्रति घन से.मी. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | सूर्य | 0 | 109 | 332,800 | 25-36 | 9 | - | - | 1.410 |
| 2. | बुध | 0.39 | 0.38 | 0.05 | 58.8 | 0 | 7 | 0.2056 | 5.43 |
| 3. | शुक्र | 0.72 | 0.95 | 0.89 | -244 | 0 | 3.394 | 0.0068 | 5.25 |
| 4. | पृथ्वी | 1.0 | 1.00 | 1.00 | 1.00 | 1 | .000 | 0.0167 | 5.52 |
| 5. | मंगल | 1.5 | 0.53 | 0.11 | 1.029 | 2 | 1.850 | 0.0934 | 3.95 |
| 6. | बृहस्पति | 5.2 | 11 | 318 | 0.411 | 16 | 1.308 | 0.0483 | 1.33 |
| 7. | शनि | 9.5 | 9 | 95 | 0.428 | 18 | 2.488 | 0.0560 | 0.69 |
| 8. | यूरेनस | 19.2 | 4 | 17 | -0.748 | 15 | 0.774 | 0.0461 | 1.29 |
| 9. | नेप्च्यून | 30.1 | 4 | 17 | 0.802 | 8 | 1.774 | 0.0097 | 1.64 |
| 10. | प्लूटो | 39.5 | 0.18 | 0.002 | -0.267 | 1 | 17.15 | 0.2482 | 2.03 |

सौर पवन का मापन अंतरिक्ष यान से किया जा सकता है तथा पुच्छल तारों की पूँछों पर इसका काफी प्रभाव होता है। इसका अंतरिक्ष यानों की गति पर भी प्रभाव होता है। सौर पवन की गति पृथ्वी कक्षा की समीपता में 400 कि.मी. प्रति सेकंड होती है। वह बिंदु, जहाँ पर सौर पवन अंतरातारकीय माध्यम से मिलती है, ( जो कि अन्य स्टार की सौर पवन होती है ) उसे 'हीलियोपाज़' कहते हैं। संकल्पनात्मक दृष्टि से 'हीलियोपाज़' एक बाउण्ड्री होती है, जो लगभग वृत्ताकार या अश्रु-बिंदु के आकार की होती है, जो सूर्य के प्रभाव का आखिरी छोर होता है तथा यह सूर्य से लगभग 100 खगोलिकी इकाई दूर होता है। 'हीलियोपाज़' की बाउंड्री के अंदर के अंतरिक्ष क्षेत्र को, जिसके अंदर सूर्य और सौर तंत्र होते हैं, 'हीलियोस्फीयर' कहते हैं।

सौर चुम्बकीय फील्ड बाहर निकलती हुई अंतरातारकीय क्षेत्र में प्रवेश करती है तथा पृथ्वी में यह एक अंतरिक्ष यान के द्वारा मापित की जा सकती है। सौर चुम्बकीय फील्ड सम्पूर्ण अंतराग्रहीय क्षेत्र में ( सौर तंत्र के ) सबसे अधिक प्रबल होती है।

### पार्थिव ग्रह

सौर तंत्र के सबसे अंदर के चार ग्रहों को पार्थिव ग्रह कहते हैं। ये ग्रह हैं - बुध, शुक्र, पृथ्वी और मंगल। इन्हें पार्थिव ग्रह इसलिए कहते हैं, क्योंकि पृथ्वी की भाँति इनकी सतह सघन और चट्टानी होती है। शुक्र, पृथ्वी तथा मंगल ग्रहों का पर्याप्त वायुमण्डल होता है; जबकि बुध ग्रह का वायुमण्डल लगभग नगण्य है।

### बृहस्पति ग्रह की भाँति के ग्रह

बृहस्पति, शनि, यूरेनस और नेप्च्यून ग्रहों को बृहस्पति ग्रह की भाँति के ( जोवियन ) ग्रह कहते हैं, क्योंकि ये पृथ्वी की तुलना में सभी विशाल हैं तथा इनकी संरचना गैसयुक्त हैं। इसीलिए 'गैस जायंट' के नाम से भी इन्हें सम्बोधित किया जाता है।

## हमारे सौर तंत्र के 10 अनुत्तरित रहस्य

हम सभी किसी-न-किसी बिंदु पर इस बात से आश्चर्यचकित होते रहे हैं कि हमारा सौर तंत्र किन-किन गूढ़ रहस्यों से भरा हुआ है ? सर्वविदित है कि 8 ग्रह ( इसके अलावा प्लूटो और अन्य दूसरे ड्वार्फ ग्रह ) सौर मण्डल ( सूर्य के प्रभाव से प्रभावित अंतरिक्ष का आयतन ) के बहुत थोड़े से आयतन के अंदर चक्कर लगाते हैं, लेकिन बाकी आयतन वाले भाग में क्या हो रहा है ? जैसे-जैसे हम अधिक संख्या में रोबोट अंतरिक्ष में भेजते हैं, अपनी प्रेक्षण क्षमताओं को बढ़ाते हैं तथा स्वयं ही अंतरिक्ष का अनुभव करते हैं वैसे-वैसे हम इस बात के प्रति जाग्रत होते हैं कि हम कहाँ से आए तथा ग्रहों का आविर्भाव कैसे हुआ ? लेकिन उच्च स्तरीय ज्ञान के बावजूद हम सहज नहीं हो पाते हैं कि हमारे पास सारे प्रश्नों के उत्तर हैं। यहाँ पर सौर तंत्र के दस रहस्य दिए जा रहे हैं, जिनका तार्किक समाधान अभी तक नहीं हो पाया है। इस वार्तालाप को बीच से ही ( अर्थात् सूर्य से ) प्रारम्भ किया जा रहा है। लेकिन हाँ, यह भी सच है कि इन रहस्यों को 'डार्क मैटर' संकल्पना के आधार पर वर्णित नहीं किया जा सकता है।

### सूर्य का दक्षिणी ध्रुव उत्तरी ध्रुव से क्यों अधिक ठंडा है ?

सत्रह वर्षों तक सौर प्रोब 'उलायसेस' ने सूर्य का अपूर्व दृश्य प्रस्तुत किया है। सन् 1990 में स्पेस शटल डिस्कवरी के द्वारा प्रमोचित होने के बाद 'उलायसेस' प्रोब ने बहुत चौकन्ने रूप में सौर तंत्र के अंदर विचरण किया तथा यह सूर्य की ध्रुवीय कक्षीय से भी गुजरी, जबकि सामान्यतः अंतरिक्ष यान ( सूर्य के लिए भेजे जाने वाले ) सूर्य की भूमध्य रेखा के ऊपर से गुजरते हैं। 'उलायसेस' प्रोब लगभग दो दशकों तक सूर्य की ध्रुवीय कक्षा में घूमती रही तथा सौर पवनों और हमारे स्टार 'सूर्य' के ध्रुवों के विषय में अप्रत्याशित जानकारी दी, लेकिन अफसोस कि 'उलायसेस' मिशन भी जीवन के आखिरी छोर पर रहकर 1 जुलाई, 2009 को मिशन समाप्त हो गया।( यद्यपि इस अंतरिक्ष यान से

थोड़ा-बहुत सम्पर्क अब भी है )। इतने लम्बे अंतराल के उलायसेस प्रेक्षणों से यह बात सामने आई है कि सूर्य का दक्षिणी ध्रुव उत्तरी ध्रुव की तुलना में 80,000 डिग्री केल्विन अधिक ठंडा है। वैज्ञानिक समुदाय इस असमानता में भ्रमित है, क्योंकि यह प्रभाव सूर्य की चुम्बकीय ध्रुवणता ( पोलैरिटी ) पर अनाश्रित ( इंडिपेंडेंट ) प्रतीत होता है। उलायसेस प्रोब ने सूर्य के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों से 300 मिलियन कि.मी. की दूरी से सौर तापमान का मापन किया था।

**मंगल ग्रह के उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्धों ( हेमीस्फीयर ) में इतना अधिक मूल अंतर क्यों है ?**

यह भी एक रहस्य है, जिसने वैज्ञानिकों को वर्षों से उलझन में डाल रखा है। मंगल ग्रह का उत्तरी गोलार्द्ध आकृतिहीन निम्न भू-क्षेत्रों ( लो-लैंड्स ) से भरा हुआ है, जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध पहाड़ी शृंखलाओं और अधिकांश उच्च स्तर भूखंडों से आच्छादित है। मंगल ग्रह के प्रारम्भिक अध्ययन की थ्योरी कि यह ग्रह प्रारम्भ में किसी अति विशाल पिंड से टकराया होगा जिसके फलस्वरूप निम्नस्तरीय स्थल ( लोलैंड ) और उच्चस्तरीय स्थल ( हाइलैंड ) बने होंगे, भी अब अमान्य हो गई है।

**तुंगुस्का की घटना कैसे हुई ?**

सन् 1908 में रूस में तुंगुस्का नदी के ऊपर के क्षेत्र में सौर तंत्र से निकलकर कोई चीज आकर गिरी; लेकिन अभी तक यह नहीं पता चला है कि यह क्या चीज थी। यह आज भी एक रहस्य बना हुआ है। उस समय के एक प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार, एक चमकीली फ्लैश सैकड़ों मील के क्षेत्रमें देखी गई। जाँच के बाद पता चला कि एक विशाल क्षेत्र प्रभावित हुआ था, लगभग 80 मिलियन पौधे 2,000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में ऐसे गिरे हुए पड़े थे जैसे माचिस की तीलियाँ। प्रभावित क्षेत्र समतल हो चुका था, लेकिन कोई क्रेटर नहीं बना था। लेकिन यह आसमान से क्या गिरा था ? यह रहस्य आज भी एक पहेली बना हुआ है, यद्यपि

अनुसंधानकर्त्ता किसी पुच्छल तारे अथवा उल्का के पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश के समय 'एयर बर्स्ट' से पृथ्वी के ऊपर हुए विस्फोट से इस घटना को जोड़ रहे हैं। लेकिन न्यायसंगत तर्क अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है।

**यूरेनस ग्रह की विचित्रता**

यूरेनस एक आश्चर्यजनक ग्रह है। एक तरफ जहाँ सौरतंत्र के अन्य ग्रह जब सूर्य का चक्कर लगाते हैं तो दीर्घवृत्तीय प्लेन में उनकी अक्ष रेखा 'ऊपर' अर्थात् ऊर्ध्वाधर दिशा में होती है, लेकिन यूरेनस ग्रह का मामला काफी हटकर है। इसकी अक्ष रेखा ऊर्ध्वाधर ( वर्टिकल ) न होकर 98 डिग्री झुकी होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसके उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव के कुछ बिंदु बड़ी लम्बी अवधियों ( एक समय में 42 वर्ष ) के लिए सूर्य की ओर सीधे उन्मुख रहते हैं। सभी ग्रह काउंटर क्लॉक वाइज दिशा में घूमते हैं, यदि उन्हें सौर तंत्र के ऊपर से देखा जाए, लेकिन शुक्र ग्रह इसके विपरीत चलता है। यह विपरीतता इस बात की द्योतक है कि यह प्रारम्भिक निर्माण प्रक्रिया में एक आघात ( इंपैक्ट ) का शिकार हुआ होगा।

यूरेनस के विषय में भी वैज्ञानिकों का ऐसा विश्वास है कि प्रारम्भिक निर्माण प्रक्रिया में यह भी किसी कॉस्मिक आक्रमण का शिकार हुआ होगा। इसके लिए काफी अनुसंधान किए जाने की आवश्यकता है - यह जानने के लिए कि क्या किसी पृथ्वी आकार की चट्टान ने यूरेनस को टक्कर दिया था या क्या बृहस्पति और शनि ग्रह इसके जिम्मेदार हैं ?

**शनि ग्रह के चंद्रमा टाइटन में वायुमण्डल क्यों है ?**

शनि ग्रह का चंद्रमा टाइटन सौर तंत्र का पहला चंद्रमा है, जिसका एक महत्त्वपूर्ण वायुमंडल होता है। यह सौर तंत्र का दूसरे नंबर का सबसे बड़ा चंद्रमा ( बृहस्पति ग्रह के चन्द्रमा गैनीमेड के बाद ) है तथा पृथ्वी के चंद्रमा की तुलना में यह 80 प्रतिशत भारी है। पार्थिव ( टेरिस्ट्रियल ) मानकों की तुलना में यद्यपि यह छोटा है, लेकिन यह पृथ्वी से अधिक मिलता-जुलता है। मंगल ग्रह और शुक्र ग्रह

को पृथ्वी का सहोदर माना जाता है, लेकिन उनके वायुमंडल क्रमशः 100 गुना पतले और 100 गुना सघन होते हैं। इसके साथ ही साथ टाइटन का वायुमंडल पृथ्वी के वायुमंडल की तुलना में केवल डेढ़ गुना सघन है तथा इसके अलावा इसमें नाइट्रोजन की बहुतायत है। नाइट्रोजन गैस पृथ्वी के वायुमंडल में भी अपना वर्चस्व रखती है तथा टाइटन के वायुमंडल में भी। लेकिन इतनी नाइट्रोजन कहाँ से आती है, यह भी एक रहस्यमय बात है।

टाइटन एक दिलचस्पपूर्ण चंद्रमा है तथा जीवन को पता करने के लिए यह प्रमुख लक्ष्य है। इसका केवल सघन वायुमंडल ही नहीं है, बल्कि इसकी सतह हाइड्रो कार्बनों से भरी हुई है जिनमें प्रमुखता से 'थोलिंस' या प्रीबायोटिक रसायनों की प्रबलता है। लेकिन आज तक यह नहीं पता लग पाया कि टाइटन का वायुमंडल कहाँ से आया।

**सूर्य का वायुमंडल सूर्य की सतह की तुलना में क्यों अधिक गरम है ?**

अब यह एक ऐसा प्रश्न है जिसने सौर भौतिक-शास्त्रियों को आधी सदी से भी अधिक समय से भ्रमित कर रखा है। सूर्य के कोरोना के प्रारम्भिक प्रेक्षणों ( स्पेक्ट्रोस्कोपिक प्रेक्षण ) ने कुछ विचित्र बातें बताईं। सूर्य का वायुमण्डल इसके फोटोमंडल ( फोटोस्फीयर ) की तुलना में अधिक गरम है। वास्तव में यह इतना अधिक गरम है कि इन तापमानों की तुलना सूर्य के कोरोना से की जा सकती है। लेकिन यह कैसे हो सकता है ? अगर आप एक बिजली के बल्ब को 'ऑन' करें तो बल्ब के ग्लास के चारों ओर की गैस बल्ब के ग्लास से अधिक गरम नहीं हो सकती तथा जैसे-जैसे आप गरमी के स्रोत के नजदीक जाएंगे वैसे-वैसे आप गरम होते जाएंगे, न कि ठंडे। लेकिन ठीक यही चीज सूर्य कर रहा है। सौर फोटोमंडल का तापक्रम 6,000 डिग्री केल्विन है, जबकि उससे ( अर्थात् फोटोमंडल से ) केवल कुछ हजार कि.मी. दूर स्थित प्लाज्मा का तापक्रम 10 लाख डिग्री केल्विन से भी अधिक है तथा इस प्रकार ऐसा लगता है कि भौतिकी के सभी नियमों का उल्लंघन हुआ है।

लेकिन सौर भौतिक-शास्त्री इस गुत्थी पर नजर गड़ाए हुए हैं कि इस रहस्यमय कोरोनल हीटिंग का क्या कारण है ? जैसे-जैसे प्रेक्षण तकनीकों में सुधार हो रहा है तथा थ्योरेटिकल मॉडल अधिक-से-अधिक परिष्कृत होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे भूतकाल की तुलना में आज सौर वायुमंडल का अध्ययन अधिक गहराई से किया जा सकता है। आज ऐसा विश्वास किया जाता है कि कोरोनल हीटिंग यांत्रिकी सौर वायुमंडल में चुंबकीय प्रभावों के संयुक्तीकरण का परिणाम है। कोरोना हीटिंग के दो प्रमुख दावेदार हैं - नैनो प्रज्वाल और तरंग मापन ( वेव हीटिंग )। यद्यपि तरंग तापन संकल्पना को अहमियत दी जाती है, लेकिन नैनो प्रज्वाल के पक्ष में भी मजबूत साक्ष्य है कि वे कोरोनल तापन को प्रभावित करते हैं और शायद इसके लिए दोनों संकल्पनाएँ कंधे-से-कंधा मिलाकर कार्य करती हैं।

**जमे हुए ( फ्रोजेन ) पुच्छल तारों से भीषण तापमानों पर धूल का निर्माण कैसे होता है ?**

पुच्छल तारे सौर तंत्र के बर्फीले, धूल-धूसरित खनाबदोश घुमक्कड़ होते हैं। यद्यपि इनका आविर्भाव अंतरिक्ष के सबसे बाह्य क्षेत्र कूपियर बेल्ट ( प्लूटो की कक्षा के चारों ओर ) या एक रहस्यमय क्षेत्र ( जिसे 'ऊर्ट क्लाउड' कहते हैं ) से हुआ, लेकिन ये पिंड यदा-कदा ही टकराकर सूर्य के निम्न खिंचाव क्षेत्र में गिरते हैं। जब ये आंतरिक सौर तंत्र में गिरते हैं तो सूर्य की गरमी बर्फ को वाष्पीकृत कर देती है तथा एक पूँछ का सृजन करती है, जिसे 'कोमा' कहते हैं। अनेक पुच्छल तारे सीधे सूर्य के ऊपर गिरते हैं, लेकिन इनमें कुछ भाग्यशाली होते हैं, जो संक्षिप्त अवधि में ( यदि उनका उद्‌गम कूपियर बेल्ट से हुआ है ) तथा दीर्घ अवधि में ( यदि उनका उद्‌गम ऊर्ट क्लाउड से हुआ है ) सूर्य का चक्कर लगाते हैं। लेकिन नासा के सन् 2004 में प्रमोचित 'स्टारडस्ट' पुच्छल तारा मिशन ( पुच्छल तारा वाइल्ड-2 के लिए भेजा गया ) के द्वारा संचित धूल ( डस्ट ) में कुछ खास बात पाई गई है। इस जमे हुए पिंड के धूलकणों का निर्माण

उच्च तापमान पर हुआ प्रतीत होता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पुच्छल तारा वाइल्ड-2 का आरंभ और विकास कूपियर बेल्ट में हुआ होगा, इसलिए इन सैंपुलों का निर्माण एक पर्यावरण के रूप में किस प्रकार हुआ होगा जिसका तापमान 1,000 डिग्री केल्विन से अधिक हो।

सौर तंत्र का विकास 4.6 अरब वर्ष पहले एक नेब्युला से हुआ तथा ठंडा होने पर इससे एक विशाल डिस्क बन गई। वाइल्ड-2 पुच्छल तारे से संचित सैंपुल उस डिस्क के केन्द्रीय भाग से बने होंगे ( युवा सूर्य के पास ) तथा किसी तरह वे सौर तंत्र के दूरस्थ स्थानों तक स्थानांतरित हुए होंगे, और फलतः कूपियर बेल्ट में समाप्त हुए होंगे। लेकिन किस यांत्रिकी ने यह किया, उसके विषय में हम लोग निश्चित नहीं हैं।

**कूपियर बेल्ट अचानक कैसे समाप्त होता है ?**

कूपियर बेल्ट सौरतंत्र का एक विशाल रीजन है, जो नेप्च्यून की कक्षा के बाहर सूर्य के चारों ओर एक रिंग बनाता है। यह काफी हद तक मंगल ग्रह और बृहस्पति ग्रह के बीच एक क्षुद्र ग्रह के समान है। कूपियर बेल्ट में कई लाख लघु चट्टानी और धात्वीय पिंड हैं; लेकिन यह 200 गुना अधिक भारी है। इसमें विशाल मात्रा में पानी, मीथेन और अमोनिया बर्फ है। कूपियर बेल्ट सौर तंत्र का आविष्कृत रीजन है ( इस क्षेत्र में 2015 में पहुँचने वाले न्यू होरिजंस प्लूटो मिशन का इंतजार किया जा रहा है ) लेकिन इसने एक विचित्र पहेली बना रखी है। सूर्य से 50 खगोलिकी इकाई दूर कूपियर बेल्ट पिंडों की संख्या में अचानक गिरावट आती है, जो कि एक विचित्र बात है; क्योंकि सैद्धान्तिक मॉडलों के अनुसार इसमें वृद्धि होनी चाहिए। यह गिरावट भी इतनी नाटकीय है कि इस गुण को 'कूपियर क्लिक' की संज्ञा दी गई है।

वर्तमान में हमारे पास 'कूपियर क्लिक' का कोई भी स्पष्टीकरण नहीं है, लेकिन इस संदर्भ में कुछ संकल्पनाएँ मौजूद हैं। एक थ्योरी यह कहती है कि सूर्य से 50 खगोलिकी इकाई दूरी के बाद काफी कूपियर बेल्ट पिंड मौजूद हैं तथा इन

पिंडों ने मिलकर बड़े पिंडों का चूंकि निर्माण नहीं किया है, इसलिए इनका प्रेक्षण नहीं किया जा सकता है। एक अन्य विवादास्पद थ्योरी यह है कि 'कूपियर क्लिक' के बाहर कूपियर बेल्ट पिंड किसी ग्रहीय पिंड ( संभवत: पृथ्वी और मंगल ग्रह के बराबर का ) के द्वारा साफ कर दिए गए होंगे। अनेक खगोलशास्त्री इस तर्क के विरोध में बोलते हैं। इस प्रकार अभी तक हम कोई भी कारण नहीं प्रस्तुत कर पाए हैं कि 'कूपियर क्लिक' के अस्तित्व का राज क्या है ?

**पायनियर प्रोबें असामान्य रूप से क्यों ड्रिफ्ट हो रही हैं ?**

खगोल भौतिक-शास्त्रियों के लिए यह काफी जटिल प्रश्न है और शायद सौर तंत्र प्रेक्षण का सबसे मुश्किल प्रश्न है, जिसका उत्तर खोजा जाना है। पायनियर 10 और 11 का प्रमोचन सन् 1972 और 1973 में सौर तंत्र के बाह्य पहुँच के स्थलों के अन्वेषण के लिए किया गया था। इन अंतरिक्ष प्रोबों की यात्रा के दौरान वैज्ञानिकों ने नोटिस किया कि दोनों प्रोबें कुछ खास विचित्र बातें अनुभव कर रही थीं और वह यह था कि वे अप्रत्याशित एक सूर्य की ओर उन्मुख ( सन-वार्ड ) त्वरण का अनुभव कर रही थीं। यद्यपि खगोलिकी मानकों के अनुसार यह डेविएशन ( विचलन ) बहुत अधिक नहीं था ( जो कि 10 अरब कि.मी. की यात्रा के बाद मात्र 3,86,000 कि.मी. था ) लेकिन डेविएशन तो था तथा खगोल भौतिकी विशेषज्ञ आज तक इसका स्पष्टीकरण नहीं दे पाए हैं।

इस संदर्भ में एक संकल्पना यह बताई जा रही है कि प्रोबों के चारों ओर असामान्य ( नॉन-यूनीफॉर्म ) इन्फ्रारेड विकिरण प्रोबों के शरीर के एक तरफ फोटानों का विकिरण कर रही होंगी जिससे प्रोबों को सूर्य की तरफ पुश मिल रहा होगा। वैसे इस थ्योरी पर पूरा विश्वास नहीं किया जा रहा है। अन्य संकल्पनाएँ विलक्षण हैं तथा शायद डीप अंतरिक्ष की लंबी यात्राओं में आइंस्टीन की सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त में कुछ तब्दीली की आवश्यकता पर बल देती है अथवा इसमें कृष्ण द्रव्य ( डार्क मैटर ) की कुछ भूमिका है, जो पायनियर अंतरिक्ष यानों पर एक मद्धिम प्रभाव दर्शाता है।

**हम कैसे जान सके कि 'ऊर्ट क्लाउड' का अस्तित्व है ?**

मान्यता है कि 'ऊर्ट क्लाउड' एक विशाल गोलाकार बादल है, जो ग्रहीय तंत्र को घेरे हुए है तथा 3 प्रकाश वर्ष तक ( लगभग सूर्य से 30 ट्रिलियन कि.मी. ) फैला हुआ है। जहां तक सौर तंत्र के रहस्यों का प्रश्न है, पायनियर प्रोबों के संबंध में ऊपर वर्णित गूढ़ रहस्य काफी जटिल है, लेकिन 'ऊर्ट क्लाउड' का रहस्य तो सबसे अधिक रहस्यमय है। कम-से-कम कूपियर बेल्ट में हम विशालकाय कूपियर बेल्ट पिंडों का प्रेक्षण करके यह तो पता कर सकते हैं कि वे कहाँ पर हैं, लेकिन 'ऊर्ट क्लाउड' तो बहुत ही अधिक दूर है। प्रथम तो 'ऊर्ट क्लाउड' के विषय में यह अनुमान है कि यह सूर्य से 50,000 खगोलिकी इकाई ( लगभग एक प्रकाश वर्ष दूर ) से भी अधिक दूर है। इस प्रकार 'ऊर्ट क्लाउड' बहुत-बहुत दूर है तथा यह सौर तंत्र के आखिरी छोर में आता है। इस दूरी पर कई अरब 'ऊर्ट क्लाउड' लूज गुरुत्व बल से सूर्य से अटके हुए होते हैं। इस प्रकार वे नाटकीय रूप से पास से गुजरने वाले तारों से प्रभावित हो सकते हैं। यह माना जाता है कि 'ऊर्ट क्लाउड' के विघटन से बर्फीले पिण्ड अंदर की ओर पीरियाडिक रूप से गिर सकते हैं तथा इससे दीर्घकालीन अवधियों के पुच्छल तारों ( जैसे हेली का पुच्छल तारा ) का निर्माण हो सकता है। वास्तव में यह केवल एक कारण है कि खगोलशास्त्री क्यों विश्वास करते हैं कि 'ऊर्ट क्लाउड' का अस्तित्व है तथा यह दीर्घ-पीरियड वाले बर्फीले पुच्छल तारों का स्रोत भी है। यह चीज यह भी बतलाती है कि यह सौर तंत्र को घेरे हुए है। लेकिन यह भी सत्य है कि ऐसा लगता है कि 'ऊर्ट क्लाउड' है, लेकिन हम सीधे इसका प्रेक्षण नहीं कर सकते। इस प्रकार इसको वास्तविक रूप से सिद्ध किया जाना सौर तंत्र का सबसे बड़ा रहस्य है।

**(साभार - ब्रह्माण्ड और टेलीस्कोप)**

## अनुच्छेद-1 (पद्य विभाग)

# षट्द्रव्यमय वैश्विक व्यवस्था एवं मोक्षावस्था

**(चाल : 1. सायोनारा..... 2. आधा है चन्द्रमा.....)**

करता हूँ वर्णन द्रव्यरूपम्, गुण व पर्याय युक्त रूपम्।।( टेक )
उत्पाद व्यय व ध्रौव्य रूपम्, अनादि-अनन्त सत्य रूपम्।
अकृत्रिम अविनाशी रूपम्, अस्तित्व वस्तुत्व गुण रूपम्।
द्रव्यत्व क्षेयत्व प्रदेशत्व, अगुरुलघुत्व चेतनत्व।।1।।
अचेतन व मूर्त रूपम्, अमूर्तत्व आदि बहुरूपम्।
जीव है चेतनमय रूपम्, ज्ञान-दर्शन व सुख रूपम्।
वीर्यत्व व अव्याबाध रूपम्, सूक्ष्मत्व व अमूर्त रूपम्।।2।।
पुद्गल अचेतन रूपम्, स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण युक्तम्।
धर्मद्रव्य अमूर्त रूपम्, गतिहेतुभूत अचेतनम्।
अधर्मद्रव्य अचेतनम्, स्थितिहेतुभूत सार्वभौमम्।।3।।
आकाश है सर्वव्यापी द्रव्यम्, अवगाहनहेतु अचेतनम्।
कालद्रव्य है अचेतनम्, परिणमनत्व हेतुभूतम्।
षड्द्रव्यमय यह विश्वम्, सत्य सनातन सत्य रूपम्।।4।।
कर्मबन्ध से युक्त जीव, संसारी विमुक्त मोक्ष रूपम्।
राग-द्वेष-मोह बन्ध रूपम्, इसी से विमुक्त मोक्ष रूपम्।
बन्ध है विविध दुःख रूपम्, विमुख अनन्त सुख रूपम्।।5।।
यह है विश्व का सार तत्त्व, आत्म-परमात्म व निज तत्त्व।
गहन व्यापक सूक्ष्म तत्त्व, सर्वज्ञ प्रणीत सर्व तत्त्व।
'कनक' का लक्ष्य मोक्षभूत/( रूप ), उसी हेतु ही दत्तचित्त।।6।।

## विश्व की व्यवस्था

(राग : सुनो सुनो ऐ दुनियाँ वालों.....)

सुनो सुनो हे ! दुनियाँ वालों, विश्व-व्यवस्था की सही पद्धति ।
जिसे सुनकर तुम जानोगे, विश्व-व्यवस्था की उच्च पद्धति ।।ध्रु. ।।
विश्व है अनादि अकृत्रिम मय, अविनाशी षट् द्रव्य प्रमाण ।
परिणमनशील है सतत जानो, उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त भी मानो ।।1 ।।
जीव पुद्गल धर्म-अधर्म, आकाश काल षट् द्रव्य ही जानो ।
जीव तो चेतनामय ही जानो, शेष द्रव्य अचेतन ही होते/( मानो ) ।।2 ।।
जीव पुद्गल होते ( है ) अशुद्ध-शुद्ध, शेष द्रव्य होते सदा ही शुद्ध ।
मूर्तिक होता पुद्गल जानो, शेष द्रव्य तो अमूर्त मानो ।।3 ।।
कर्म पौद्गलिक युक्त संसारी, व्यवहार से होते मूर्तिक सम ।
तथापि शुद्ध निश्चय दृष्टि से, अमूर्तिक है संसारी जीव ।।4 ।।
शुद्ध जीव तो अमूर्तिक होते, स्पर्श रस गन्ध वर्ण रहित ।
इन्द्रिय तथा यंत्रों से ज्ञात, हर वस्तु तो पुद्गल/को मूर्तिक मानो ।।5 ।।
जीव पुद्गल गति-शक्ति युक्त, शेष द्रव्य गतिरहित होते ।
गति-क्रिया युक्त दोनों द्रव्यों को, धर्मद्रव्य सहायक भी होता ।।6 ।।
हर द्रव्य परिणमनशील, शुद्ध या अशुद्ध होने पर भी ।
इसी के लिये काल निमित्त, निश्चय व्यवहार दोनों भी ।।7 ।।
आकाश देता अवकाश है, पाँचों द्रव्यों को तथा स्वयं को ।
अवकाश जहां पाँचों द्रव्यों का, लोकाकाश कहे उसी भाग को ।।8 ।।
लोकाकाश सम धर्म-अधर्म, असंख्य प्रदेश एक जीव के ।
अनन्तप्रदेश आकाश के होते, अनन्त होते जीव लोक के ।।9 ।।
जीव से भी अनन्त गुणा, पुद्गलाणु होते पूर्ण लोक के ।
धर्म अधर्म तथा आकाश, एक-एक द्रव्य होते लोक/विश्व के ।।10 ।।
लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण, कालाणु द्रव्य होते लोक के ।
हर कालाणु तो पृथक्-पृथक्, स्थिर रहते हैं शुद्ध रूप से ।।11 ।।

कालाणु से परिणमन होता, लोक तथा अनन्त अलोक।
लोक आकाश के केन्द्र में स्थित, लोक परे अनन्त अलोक।।12।।
लोकाकाश के मध्य में स्थित, त्रसनाली जहाँ रहते त्रस।
इसी से परे त्रस न रहते, सर्वत्र लोक में स्थावर वास।।13।।
सूक्ष्म स्थावर सर्वत्र भरे हैं, निर्बाध रूप से बिना आधार।
बादर स्थावर निवास करते, जहाँ उनको मिले आधार।।14।।
त्रसनाली के सर्व निम्न में, निवास करते नित्य निगोद।
निगोद से निकलकर जीव, त्रस बनकर करे संचार।।15।।
चारों गति में भ्रमण करते, चौरासी लाख योनी मध्य में।
द्रव्य क्षेत्र काल भाव को पाकर, विकास करते क्रमाक्रम से।।16।।
सम्यग्दृष्टि जो होते जीव, करते विकास आत्म दृष्टि से।
जिससे परम विकास के द्वारा, सिद्ध अवस्था को पाते अन्त में।।17।।
इनसे भिन्न अन्य जीवों के, उत्थान पतन होते अनन्त।
त्रस अवस्था के अन्त में पुनः, निगोद जन्म मिले अनन्त।।18।।
अनन्त जीव सिद्ध भी हुए, अनन्त हैं नित्य निगोद मध्ये।
चतुर्गति में भी अनन्त जीव, अक्षय अनन्त ब्रह्माण्ड मध्ये।।19।।
नवीन जीवों की न उत्पत्ति होती, नाश न होता है कभी जीवों का।
देह की उत्पत्ति तथा विलय, होता रहता है बन्ध जीवों का।।20।।
देह तो भौतिक इसकी उत्पत्ति, होना संभव है रसायनों से।
जीव अमूर्तिक अकृत्रिम सत्य, सम्पूर्ण भिन्न है रसायनों से।।21।।
अनन्त गुण पर्याय युक्त, हर द्रव्य होते शक्ति रूप से।
अन्य द्रव्यों के निमित्त पाकर, कार्य करते हैं व्यक्त रूप से।।22।।
वट बीज यथा निमित्त पाकर, विशाल वृक्ष होता क्रम से।
तथाहि द्रव्य निमित्त पाकर, विश्वरूप धरे निज शक्ति से।।23।।
इन्हीं कार्य कारण द्वारा, ब्रह्माण्ड की हर व्यवस्था होती।
'कनक' स्व-शक्ति विकास द्वारा, शुद्धात्मा प्राप्ति में सतत रति।।24।।

## महासत्तात्मक विश्व–प्रतिविश्व

( जैन दर्शन, अन्यान्य दर्शन एवं विज्ञान की दृष्टि में )

( राग : 1. तुम दिल की धड़कन..... 2. छोटी-छोटी गैया..... 3. रघुपति राघव... )

महासत्ता है एक ही सत्ता..... जिससे बना है विश्व।
महास्कन्ध है एक ही स्कन्ध..... जो है भौतिक विश्व।।ध्रु.।।

महासत्तामय सभी द्रव्य है..... जीव-अजीव सभी द्रव्य।
जीव पुद्गल धर्म-अधर्म..... आकाश कालमय द्रव्य।।
जीव द्रव्य होता है चेतनमय..... संसारी व मुक्त दो भेद।
कर्म सहित है संसारी जीव..... कर्म से रिक्त है मुक्त।।( 1 )

चारों गति के जीव संसारी ( हैं )..... चौरासी लाख योनि प्रभेद।
एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक..... चौदह गुणस्थान प्रभेद।।
इसी से परे होते मुक्त जीव..... जो है सच्चिदानन्दमय।
अनन्तज्ञान दर्शन सुखमय..... अविनाशी अनन्तवीर्यमय।।( 2 )

अणु से लेकर तारा ग्रह तक..... ब्लेक होल व निहारिकायें।
विश्व तथा समानान्तर विश्व..... सभी होते पुद्गलमय।।
ये सभी महास्कन्ध में गर्भित..... ये सभी हैं भौतिकमय।
आधुनिक विज्ञान ज्ञात सभी तत्त्व..... होते हैं भौतिकमय।।( 3 )

धर्म द्रव्य होता गति सहायक..... अधर्म है स्थिति सहायक।
गतिमान जीव व पुद्गल को..... होते हैं क्रमशः सहायक।।
आकाश सभी को देता अवकाश..... सभी द्रव्य को व स्व को।
लोक-अलोक में व्याप्त है आकाश..... अनन्त है सर्वगतमय।।( 4 )

समस्त ब्रह्माण्ड लोक में गर्भित..... ब्रह्माण्ड परे अलोक स्थित।
ब्रह्माण्ड परे भी अनन्त आकाश..... विज्ञान को जो अभी न ज्ञात।।
परिणमन में सहायक कालद्रव्य..... परिणमनशील है हर द्रव्य।
परस्पर सहयोगी होते द्रव्य..... अनादि अनिधन हर द्रव्य।।( 5 )

हर द्रव्य होते हैं अकृत्रिम..... स्वतन्त्र मौलिक सत्यमय।
परिणमन करते हैं हर दम..... अन्य द्रव्य/( रूप ) में न होते परिणमन।।
जीव ही चेतन अन्य अचेतन..... चेतन है ज्ञानसुखमय।
पुद्गल होता है भौतिकमय..... अन्य द्रव्य होते अभौतिक।।( 6 )

जीव-पुदगल शुद्धाशुद्ध होते..... अन्य द्रव्य नित्य शुद्ध होते।
अशुद्ध जीव तो शुद्ध होते..... शुद्ध जीव अशुद्ध नहीं होते।।
सम्पूर्ण विश्व के यह सिद्धान्त..... केवलज्ञानी द्वारा ज्ञात सिद्धान्त।
अल्पज्ञ द्वारा यह न ज्ञात..... 'कनक' मान्य यह परम सत्य।।( 7 )

''एकं सत्य विप्रा बहुधा वदन्ति''..... यह है वेद का मत।
भौतिकमय है समस्त विश्व..... यह है चार्वाक का मत।।
विज्ञान मानता सिंगुलरटी से..... महाविस्फोट से विश्व बना।
समस्त विश्व है भौतिकमय..... जो ( है ) भौतिक ऊर्जा द्रव्यमय।।( 8 )

हिंगस्बोसन है मूलकण..... जिसे गॉडपार्टिकल कहते हैं।
जिससे अणु में भार आया..... जिससे तारादि विश्व बना।।
मदर-थ्योरी अभी खोज रहा..... एकसूत्र में विश्व को बांध रहा।
विभिन्न मतों के यह भाव..... 'कनकनन्दी' मान्य सद्भाव।।( 9 )

**Master Theory**

**Unified Theory of Universe (Theory of Everything)**

## अनेकान्त वन्दन (स्याद्वाद का स्वरुप)

( Theory of Relativity - सापेक्ष सिद्धान्त, एकीकृत सिद्धान्त )

**(तर्ज : 1. बिन गुरु ज्ञान नहीं..... 2. चालीसा..... 3. मन तड़पत हरि दर्शन को...)**

विश्व गुरु अनेकान्त से, हो व्यापक विचार,
लोकालोक में व्याप्त है, जिसकी महिमा अपार।
एकान्तवादी तुम जगो, कर लो अपना सुधार,
सापेक्षवाद सतवाद से, हो जाओ भव पार।।
हे अनेकान्त सत्य स्वरूप, हे सनातन विश्व स्वरूप,
जीव-अजीव में व्याप्त स्वरूप, समस्त नय प्रमाण स्वरूप।
लोकालोक में व्याप्त, मूर्तिक अमूर्तिक तेरा स्वरूप।
एकानेक व अनन्त रूप, सर्वव्यापी है शिव स्वरूप।।
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप, खण्ड विखण्डित एक स्वरूप,
अस्ति-नास्ति अव्यक्त रूप, सप्तभंग मय तेरा रूप।
सर्वत्र व्याप्त है तेरा रूप, सार्वभौम है नित्य स्वरूप,
बन्ध मोक्ष भी तेरा रूप, सापेक्षवाद है तेरा स्वरूप।।
निरापेक्ष है मिथ्या रूप, सापेक्ष दृष्टि, सत्य स्वरूप,
तेरी कृपा से होता सम्यक्, मिथ्यात्व है तुमसे पृथक्।
तेरे वियोगे अनन्त भव, जन्म-मरणे दुःख ही भोग,
कुवाद समस्त नाशन कर्त्ता, समाधान के तुम हो भर्त्ता।।
तुम बिन है न लौकिकाचार, तुम बिन है न सदाचार,
तुम बिन है सब तर्क-कुतर्क, तुम बिन है स्वर्ग भी नर्क।
तुम बिन है न न्याय प्रणाली, तुम बिन है न कार्य प्रणाली,
तुम बिन है न सम्यक् मार्ग, तुम बिन है न मोक्षमार्ग।।

तुम तो आदि अन्त रहित, सर्व सत्य में सर्वत्र व्याप्त,
चेतन में तुम चेतन रूप, अचेतन में उसी ही रूप।
सर्वज्ञ द्वारा तुम सुज्ञात, सुदृष्टि द्वारा तुम पूजित,
तुम्हें न माने मिथ्यादृष्टि, तुम बिन न चलती है सृष्टि।।
सूर्य न देखे जन्मान्ध व्यक्ति, अज्ञानी न जाने तुम्हारी शक्ति,
'कनकनन्दी' के साध्य-साधन, तुमसे ही मैं होता हूँ धन्य।
त्रैलोक्यनाथ के शासन तन्त्र, तुम्हें नमूँ मैं हे विश्वतन्त्र।।

## ईश्वर का वैश्विक स्वरुप (ईश्वर मीमांसा)

## विश्व के हर शुद्ध द्रव्य ईश्वर है! (सत्य ही ईश्वर)

( दार्शनिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, रहस्यवादी कविता )

**(राग : शायदतेरी.....)**

सत्य ही ईश्वर ईश्वर भी सत्य..... यह रहस्य है अति गूढ़ ज्ञान।
जो इस रहस्य का वेदन करेगा..... ईश्वत्व पायेगा वह निदान।।( 1 )
ईश्वत्व गुण से युक्त जो होता..... वह ही ईश्वर सच्चा मान।
अस्तित्व-वस्तुत्व-प्रभुत्व गुण युत..... होने वाला है ईश्वर जान/( महान् )।।( 2 )
शुद्ध द्रव्य जो होते हैं विश्व में..... वे सब ईश्वत्व गुण युक्त।
इसी हेतु वे अनादि अविनाशी..... शाश्वतिक व शक्ति युक्त।।( 3 )
अस्तित्वादि अनन्त गुण युत, होने से वे अनन्तवान्।
अस्तित्व गुण युक्त होने से..... सत्य सनातन अनाशवान्।।( 4 )
वस्तुत्व गुण से युक्त होने से..... विभु-वैभवशाली-विशालमान्।
प्रभुत्व गुण से युक्त होने से..... प्रभु-प्रभावशाली-प्रतापवान्।।( 5 )
प्रमेय गुण से युक्त होने से..... अन्तःप्रज्ञा से ज्ञेयवान्।
अगुरुलघु गुण युक्त होने से..... अनन्त हानि-वृद्धि युक्तवान्।।( 6 )
प्रदेशत्व गुण युक्त होने से..... सप्रदेशी या आकारवान्।
सूक्ष्मत्व गुण से युक्त होने से..... अल्पज्ञ से अदृश्यवान्।।( 7 )

चेतन-अचेतन द्रव्य होने से..... जीव-अजीव में व्याप्तवान्।
मूर्तिक-अमूर्तिक द्रव्य होने से..... दृश्य-अदृश्य उभयवान्।।( 8 )
अनन्त शक्ति अवस्था सहित..... ईश्वर स्वरूप अचिन्त्यमान्।
स्व-स्व श्रद्धा ज्ञान युक्तजन..... दर्शन करते स्व-शक्ति समान्।।( 9 )
जीव तो चेतन ईश्वरमय..... बन्ध अवस्था में अशुद्धमय।
मुक्त अवस्था में शुद्ध ईश्वर..... अन्य द्रव्य सर्व अचेतनमय।।( 10 )
अगम्य-आगम-सर्वज्ञ गोचर..... श्रद्धा-प्रज्ञा से दृष्टिमान्।
स्व-ईश्वरत्व की प्राप्ति हेतु..... 'कनकनन्दी' सदा प्रयत्नवान्।।( 11 )

## द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः का यथार्थ एवं व्यंग्यात्मक कथन

(राग : 1. शत-शत वन्दन..... 2. नरेन्द्रछन्द.....)

'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः'..... मुझे सिखाता है पाठ अनेक।
हर द्रव्य में होते ही हैं..... स्वभाव से गुण अनेक।। ध्रु.।।
एक गुण अन्य गुण न होता..... हर गुण स्वतन्त्र होता है।
हर द्रव्य में अनन्त गुण..... गुणसमूह ही द्रव्य होता है।।
अनादिकाल से हर द्रव्य हैं..... रहेगा भी अनन्त तक।
ऐसा ही है हर गुण रहता..... अनादिकाल से अनन्त तक।।( 1 )
अस्तित्व वस्तुत्व आदि गुण..... हर द्रव्य में होते हैं स्थित।
चेतनादि जीव गुण हैं तो..... अजीव में अचेतन स्थित।।
यह वर्णन आगम कथित है..... जो हैं वस्तु स्वभावगत।
कुछ वर्णन करूँ व्यंग्यात्मक..... जिसका वर्णन है निम्नोक्त।।( 2 )
द्रव्य अर्थात् धन आश्रय से..... निर्गुणी भी गुणी होता है।
'सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते'..... लौकिक में देखा भी जाता।।
धनवान् निर्गुणी जन भी..... समाज राष्ट्र में मान्य होता।
धनरहित सुगुणी जन भी..... समाज राष्ट्र में अमान्य/( तुच्छ ) होता।।( 3 )
शरीर रूपी द्रव्य जिसका..... सुन्दर लचीला होता है।
अश्लील-कामुक नाच गान से..... लाखों लोगों को दास बनाता है।।
उसे देखने-सुनने को तो..... लाखों की भीड़ उमड़ जाती है।
समय साधन धन खर्च कर..... नैतिकता को खोती है।।( 4 )
हीरो-हीरोइन खिलाड़ी नेता..... जो सुगुण से भी रहित होते।
ऐसे निर्गुणी कुजन भी..... सुगुणी से अधिक मान्य भी होते।।

सत्ता-सम्पत्ति प्रसिद्धि डिग्री..... मोही मानवों के गुण ही होते।
सत्य अहिंसा क्षमा मार्दव..... आत्मिक गुण भी अमान्य होते।।( 5 )
षट् द्रव्यसंग्रह नहीं द्रव्यसंग्रह..... धनसंग्रह है द्रव्यसंग्रह।
इन कुप्रवृत्ति के कारण ही जीव..... संसार चक्र में करे भ्रमण।।
सत्य-तथ्य के परिज्ञान हेतु..... 'कनकनन्दी' द्वारा यह रचना हुई।
हेय-त्याग कर उपादेय गहे..... जिनकी मति सुमति हुई।।( 6 )

करणानुयोग सम्बन्धी वैश्विक कविता

## सर्वत्र समन्वय-सम्बन्ध

(चाल : 1. मन है छोटा-सा..... 2. तुम दिल की धड़कन में.... 3. सायोनारा....)

देखो! देखो! देखो! सर्वत्र देखो!
समन्वय का स्वरूप देखो!
द्रव्यों में देखो! गुणों में देखो!
ज्ञान-ज्ञेय में सम्बन्ध देखो!.....( ध्रुव ).....
वाच्य-वाचक सम्बन्ध देखो!..... द्रव्य-गुण-पर्यायों में देखो!.....
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में देखो!..... द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावों में देखो!.....
पर्यावरण-पारिस्थितिकी देखो!..... परस्पर उनके उपकार देखो!.....
माता-पिता-भाई-बन्धु को देखो!..... समाज राष्ट्रीय वैश्विक देखो!.....
वर्णमाला-मात्रा-शब्दों को देखो!..... पद वाक्य व ग्रंथों को देखो!.....
संख्या-गणित व वस्तु/( सत् ) को देखो!..... अंक-अक्षरी-विद्या को देखो!.....
'अ' से अनादि-अनन्त देखो!..... 'क्ष' से मोह के क्षय/( मोक्ष ) को देखो!.....
प्रत्येक अक्षर के रहस्य देखो!..... शब्द-पद-वाक्य रहस्य देखो!.....
वाच्य-वाचक सर्वत्र देखो!..... कार्य-कारण सम्बन्ध देखो!.....
अनेकान्त व स्याद्वाद देखो!..... निश्चय-व्यवहार नय को देखो!.....
निगोद से सिद्ध पर्यन्त देखो!..... स्वयं से सम्बन्ध कर के देखो!.....
सर्वत्र सम्बन्ध व स्वतन्त्र देखो!..... भिन्न-अभिन्न व इतर देखो!.....
यथा शरीर के अंग-सम्बन्ध!..... भिन्न-अभिन्न व अन्तःसम्बन्ध!.....
तथाहि सर्वत्र यह विधान!..... 'कनक' चाहे ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध!.....

## षट् गुण हानि वृद्धि (एकीकृत सिद्धान्त)

### चौपाई

षट् गुण हानि वृद्धि पहिचानो,
शुद्ध द्रव्यों का स्वरूप जानो।
अगुरु लघु गुण इसी के कारण,
शुद्ध द्रव्यों में होता हर क्षण।।1।।
अगुरु लघु गुण के ही कारण,
एक गुण न होता अन्य गुण।
उत्पाद व्यय ध्रौव्य होने पर भी,
द्रव्य न विनष्ट होता कभी भी।।2।।
यथा समुद्र में तरंगें होती/(आती),
उत्पन्न होती विलय होती।
जलराशि समुद्र की समान रहती,
हानि वृद्धि में भी समान रहती।।3।।
यह सब सर्वज्ञ ज्ञान गोचर,
छद्मस्थ द्वारा नहीं गोचर।
तर्क से अखण्डित नहीं गोचर,
आज्ञा सिद्ध ग्राह्य यह विचार।।4।।
स्वभाव गुण पर्याय ये गुण जानो,
अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद मानो।
सूक्ष्म अर्थ पर्यायमय जानो,
प्रतिसमय परिणमन मानो।।5।।
रत्न ज्योति यथा हानिवृद्धि होती,
रत्न की स्थिति तथावत् होती/(रहती)।
रत्न न छोटा बड़ा भी होता,
तथाहि द्रव्यों में यह सब होता।।6।।
अनन्त भाग वृद्धि असंख्यात वृद्धि,
तथाहि संख्यात भाग वृद्धि।
संख्यात गुण वृद्धि असंख्य वृद्धि,
अनन्त वृद्धि युत षट् वृद्धि।।7।।
अनन्त भाग हानि असंख्य हानि,
तथाहि संख्यात भाग हानि।
संख्यात गुण हानि असंख्य हानि,
अनन्त हानि युत षट् होती हानि।।8।।
यह गुण इलास्टिक सम जानो,
हानि वृद्धि में समान मानो।
स्थिति स्थापकत्व इसी से होता,
विस्मयकारी यह गुण होता।।9।।
प्रतिच्छेद में हानि वृद्धि होती,
अविभागी शक्त्यांश प्रतिच्छेद होती।
अनन्त प्रतिच्छेद जब वृद्धि होती,
अनन्त गुण वृद्धि तब ही होती।।10।।
ऐसा ही अन्य हानि वृद्धि (में) जानो,
सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट मानो।
इसी से द्रव्य बिखरता नहीं,
यह सब वर्णन मतान्तरे नहीं।।11।।
विज्ञान (है) अभी तो शोधरत,
एकीकृत सिद्धान्त रूप में रत।
परिकल्पनामय विज्ञान मत,
समस्त/(पूर्ण) ब्रह्माण्ड में जो अनुसृत।।12।।
विज्ञान को भी नहीं है ज्ञात,
वह सब वर्णन शास्त्र लिखित।
सर्वज्ञ होते हैं महावैज्ञानिक,
परम ज्ञाता व हितोपदेशक।।13।।
यह सब वर्णन शास्त्र में निहित,
मेरी कृति में भी विस्तृत लिखित।
'कनकनन्दी' इसे विश्वास करें,
शिष्यगणों को भी पाठन करें।।14।।

## पुद्गल द्रव्य की व्यापकता

( आध्यात्मिक-कर्मसिद्धान्त एवं वैज्ञानिक दृष्टि की रहस्यवादी कविता )

**(तर्ज : देखो! देखो! देखो! टेलिस्कोप देखो!.....)**

देखो! देखो! सर्वत्र देखो!..... भौतिक सम्राट के वैभव देखो!
स्वर्ग में देखो! नर्क में देखो!..... मध्यलोक व ऊर्ध्व में देखो! ।।ध्रु.।।
निगोदिया के शरीर देखो!..... महामत्स्य के तन में देखो!
नर-नारकी देवों में देखो!..... कीट पतंग पशु में देखो! ।।1।।
तन को देखो! मन को देखो!..... भोजन पानी धन को देखो!
वचन शब्द संगीत देखो!..... वसन आसन भवन देखो! ।।2।।
सोना चाँदी व मिट्टी को देखो!..... रत्न आभूषण नोटों को देखो!
टी.वी. को देखो! बीवी को देखो!..... घर परिवार समाज देखो! ।।3।।
मंत्री को देखो! तंत्री को देखो!..... हीरो हीरोईन खिलाड़ी देखो!
साक्षरी देखो! शहरी देखो!..... नौकर चाकर मालिक देखो! ।।4।।
इन्द्र चक्री के वैभव देखो!..... राजमहल व सैनिक देखो!
उद्योगपति व नौकर देखो!..... कल-कारखाना उद्योग देखो! ।।5।।
वैज्ञानिकों के कामों को देखो!..... वैज्ञानिक उपकरण देखो!
पेन पेंसिल पुस्तकें देखो!..... कम्प्यूटर व रेडियो देखो! ।।6।।
सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र देखो!..... प्रकाश अन्धेरा विद्युत् देखो!
नदी तालाब समुद्र देखो!..... बादल वर्षा बिजली देखो! ।।7।।
अणु स्कन्ध व वर्गणा देखो!..... ग्राह्य अग्राह्य व मिश्र को देखो!
वैज्ञानिक मान्य तत्त्वों को देखो!..... चार्वाक् मान्य तत्त्वों को देखो! ।।8।।
कर्म को देखो! नोकर्म देखो!..... जन्म-मरण व जरा को देखो!
मार्गणा गुणस्थानों को देखो!..... पुद्गल तेईस वर्गणा देखो! ।।9।।
आस्रव को देखो! बन्ध को देखो!..... संवर निर्जरा स्थिति को देखो!
उदय को देखो! निधत्ती देखो!..... कर्म की दश अवस्था देखो! ।।10।।
समवसरण की रचना देखो!..... अरिहंतों के शरीर देखो!
अष्ट प्रातिहार्य कमल देखो!.... नाट्यशाला व रत्नों को देखो! ।।11।।
इन्द्रिय लेश्या कषाय देखो!..... पुण्य-पाप घाती-अघाती देखो!

मोह राग द्वेष वैरत्व देखो!..... भोग-उपभोग आसक्ति देखो! ।।12।।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि देखो!..... निन्दा अपमान कुख्याति देखो!
स्पर्श रस गन्ध वर्ण भी देखो!..... हल्का भारी व आकार देखो! ।।13।।
सर्व ये भौतिक सम्राट वैभव, जिससे शासित संसारी जीव।
स्व-वैभव माने मोहासक्त जीव, जिससे उत्पन्न होता है विभाव।।14।।
विभाव से कर्म बन्धन करता, जिससे अनन्त दुःख को पाता।
भौतिक वैभव त्याग जो करेगा, स्व-आत्म वैभव वो प्राप्त करेगा।।15।।
सच्चिदानन्द है आत्मिक वैभव, भौतिक वैभव से विपरीत भाव।
इसी हेतु सदा 'कनक' प्रयत्न, सर्व जीव करे ऐसा प्रयत्न।।16।।

## चेतनमय जीव में भी होते हैं अनेक अचेतन गुण

**('द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः' की समीक्षा)**

( आगम एवं अनेकान्त की रहस्यपूर्ण कविता )

**(राग : 1. इतनी शक्ति हमें....., 2. धन्य हमारे भाग्य जगे.....)**

जीव में अनन्त होते हैं गुण, प्रमुख होता है चेतना गुण।
चेतना है ज्ञान-दर्शनमय, अन्य गुण हैं अचेतनमय।।ध्रु.।।
अनेकान्त से होता है सिद्ध, 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः' प्रसिद्ध।
हर गुण स्वतंत्र मौलिक होता, द्रव्य आश्रय से निवास करता।।( 1 )
अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व गुण, अगुरुलघु अव्याबाधत्व गुण।
सूक्ष्मत्व अवगाहनत्व गुण, सामान्य व अचेतनत्व गुण।।( 2 )
'प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा', अकलंक स्वामी ने कहा।
'ज्ञानदर्शनतस्तस्मात्चेतना', चेतन-अचेतनमय भी कहा।।( 3 )
नानास्वभाव ( होने ) से एकानेक ( भी ) भाव, अचिन्त्य अनन्त विचित्र भाव।
सर्वज्ञज्ञान गम्य यह स्वभाव, आगम वर्णित स्वभाव भाव।।( 4 )
तथापि जीव न होता अचेतन, चैतन्य अनुश्रुत सम्पूर्ण गुण।
एकक्षेत्रावगाही अनादिनिधन, भिन्न होते संज्ञा संख्यादि लक्षण।।( 5 )
चेतन से ज्ञात होते अन्य गुण, ज्ञान-ज्ञेय भाव आत्मा का गुण।
अस्तित्वादि होते सामान्य गुण, जीवाजीव व्यापी स्वभाव गुण।।( 6 )
यथा स्पर्श रस गन्ध व वर्ण, पुद्गल के होते प्रमुख गुण।
तथापि स्पर्श रसादि न होता, रस भी स्पर्शादि गुण न होता।।( 7 )

तथापि पुद्गलद्रव्य में होते, एक ही क्षेत्र में सदा रहते।
तथाहि चेतन-अचेतन गुण, अभिन्न-भिन्न प्रत्येक गुण।।( 8 )
अतएव कर्म भी विभिन्न होते, दो तीन आठ संख्यात होते।
असंख्यात आदि अनन्त होते, जीव के अनन्त गुण को ढाकते/( नाशते )।।( 9 )
अनुजीवी नशते घाती कर्म से, प्रतिजीवी गुण अघाती से नशते।
केवली बनते घाती कर्म नाश से, मुक्त बनते सर्व कर्म नाश से।।( 10 )
( अष्ट/सर्व ) कर्म नाश हेतु हो प्रयत्न, जिससे प्रगट होंगे गुण अनन्त।
इसी हेतु 'कनक' प्रयासरत, सर्व जीव प्राप्त करे मोक्ष।।( 11 )

## भौतिकमय कर्म का विश्वरुप

### (कर्म का जड़मय होने का कारण एवं प्रमाण)

**(राग : 1. दिल है छोटा-सा..... 2. चौपाई..... 3. सुनो सुनो हे दुनिया वालों!....)**

देखो! देखो! देखो! कर्म को देखो!..... जीव व पुद्गल बन्ध को देखो!
जीवों के योग-कषाय देखो!..... आस्रव-बन्ध के कारण देखो!( ध्रु. )
द्रव्य व भाव भेदों को देखो!..... आस्रव-बन्ध-संवर देखो!
निर्जरा-मोक्ष तत्त्वों को देखो!..... पुण्य व पाप कर्म को देखो!( 1 )
तेईस वर्गणा मध्य में देखो!..... आहार तैजस भाषा को देखो!
मनो व कार्माण प्रत्येक देखो!..... बादर सूक्ष्म ग्राह्य को देखो!( 2 )
आहार वर्गणा कार्य को देखो!..... इसी से बनते शरीर देखो!
श्वासोच्छ्वास भी इसी से देखो!..... तैजस शरीर तेजो से देखो!( 3 )
भाषा वर्गणा से भाषा को देखो!..... मनोवर्गणा से मन को देखो!
कर्मवर्गणा से कर्म को देखो!..... बादर सूक्ष्म की वर्गणा देखो!( 4 )
अनादिकालीन द्रव्यकर्म देखो!..... कर्म उदय से भाव को देखो!
त्रियोग से आत्मकम्पन देखो!..... जिससे कर्मों का आस्रव देखो!( 5 )
कषाय भाव से बन्ध को देखो!..... उदय प्राप्त फल को देखो!
भौतिक कर्म के रूपों को देखो!..... शरीर से मृत्यु तक को देखो!( 6 )
संसारी जीवों के शरीर देखो!..... पाँचों ही शरीर भौतिक देखो!
सूक्ष्म व बादर शरीर देखो!..... पुद्गलमय ही शरीर देखो!( 7 )
श्वासोच्छ्वास तो प्रत्यक्ष देखो!..... प्राणवायु तो पुद्गल देखो!
शुभ-अशुभ तैजस देखो!..... सुभिक्षकारी शुभ को देखो!( 8 )

अशुभकारी तैजस देखो!..... प्रखर अग्निमय को देखो!
द्वीपायन मुनि क्रोध को देखो!..... द्वारिका दहन रूप को देखो!( 9 )
भाषा को पुद्गलमय ही देखो!..... शब्द तरंग के रूप में देखो!
ध्वनि-प्रतिध्वनि रूप को देखो!..... घात-प्रतिघात तीव्रता देखो!( 10 )
मन भी पुद्गलमय ही देखो!..... अष्टदलमय कमल देखो!
हृदयस्थान में निवास देखो!..... घात-प्रतिघात विकल्प देखो!( 11 )
ज्ञानावरणादि कर्म को देखो!..... आस्रव बन्ध स्थिति को देखो!
उदय प्राप्त फल को देखो!..... सुख-दुःखमय फल को देखो!( 12 )
उपशम भाव क्षयोपशम....., क्षायिक भाव व क्षय को देखो!
कर्म के वैश्विक रूप को देखो!..... जड़ की विचित्र शक्ति को देखो!( 13 )
शुद्ध चैतन्य जीव को दखो!..... जड़ से भिन्न अमूर्त देखो!
सच्चिदानन्द है जीव को देखो!..... 'कनक' का शुद्ध रूपरूप देखो!( 14 )

## ''जीवों के विश्वरुप दर्शन''

आध्यात्मिक कर्मसैद्धान्तिक एवं जीवविज्ञान की रहस्यवादी कविता

( गोम्मटसार जीवकाण्ड एवं द्रव्यसंग्रह का सार )

**(तर्ज : 1. दिल है छोटा-सा..... 2. बंगला उडिया.....)**

देखो! देखो! देखो! जीवों को देखो!..... जीवों के विश्वरूपों को देखो!
निगोद से सिद्ध पर्यन्त देखो!..... निम्न से सर्वोच्च पर्यन्त देखो! ।।ध्रु.।।
सूक्ष्म निगोदिया जीवों को देखो!..... अमूर्तिक सिद्ध जीवों को देखो!
अनन्त दुःखी जीवों को देखो!..... अनन्त सुखी जीवों को देखो! ।।1।।
पंचस्थावर सूक्ष्म को देखो!..... महाकाय महामत्स्य को देखो!
सूक्ष्म वायरस जीवों को देखो!..... विशालकाय वृक्षों को देखो! ।।2।।
पृथ्वी जल वायु अग्नि में देखो!..... अनन्त वनस्पति में देखो!
एक द्वि त्री चतुः इद्रिय देखो!..... पंच इन्द्रिय जीवों को देखो! ।।3।।
मानव देव नारकी देखो!..... तिर्यंचों के बहुभेद भी देखो!
मार्गणा गुणस्थानों में देखो!..... जीवसमास व लेश्या में देखो।।4।।
त्रसनाली में त्रसों को देखो!..... सर्वलोक में सूक्ष्मों को देखो!

नरक के नीचे निगोद देखो!..... लोक शिखर में सिद्धों को देखो! ।।5।।
सातों नरकों में नारकी देखो!..... स्वर्ग लोक में देवों को देखो!
मध्य लोक में मानव देखो!..... सर्व तिर्यंच भी यहां ही देखो! ।।6।।
क्रोध मान माया लोभ में देखो!..... मोह से मोहित जीवों को देखो!
अशुभ शुद्ध शुद्ध में देखो!..... पुण्य पापमय पावन देखो! ।।7।।
धनी गरीब व निर्ग्रन्थ देखो!..... दाता पात्र व भिखारी देखो!
शोषक-शोषित संभ्रान्त देखो!..... शासक-शासित श्रमण देखो! ।।8।।
जन्म-जरा-मृत्यु सहित देखो!..... भ्रूण बालक व वृद्ध भी देखो!
अधर्मी विधर्मी कुधर्मी देखो!..... अज्ञानी कुज्ञानी सुज्ञानी देखो! ।।9।।
संकीर्ण स्वार्थी कुटिल देखो!..... फैशनी-व्यसनी-असभ्य देखो!
उदार त्यागी सरल देखो!..... सादा शीलवन्त सभ्य देखो! ।।10।।
ज्ञानी विज्ञानी महाज्ञानी देखो!..... सिद्ध सर्वज्ञ सर्वदर्शी देखो!
शुद्ध-बुद्ध अमूर्तिक जीव को देखो!..... सच्चिदानन्दमय जीव को देखो! ।।11।।
स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण बिन जीव, भौतिक आकार भार शून्य जीव।
तन-मन इन्द्रिय विरहित रूप, मार्गणा गुणस्थान परे स्वरूप।।12।।
यह ही सर्व जीव का स्वरूप, 'कनकनन्दी' का निज स्वरूप।
इसी हेतु सतत है दत्तचित्त, अन्य सर्वरूप अशुद्ध चित्त।।13।।

## विविध विकासवाद

### विविध विकासवाद की धार्मिक एवं वैज्ञानिक समीक्षा

( वैज्ञानिक विकासवाद आंशिक सत्य अधिक असत्य )

सुनो सुनो हे! दुनियाँ वालो..... विकासवाद की सच्ची कहानी।
भौतिकता से जैविक तक की..... तन-मन-आत्मा की अच्छी कहानी।।
'सत् द्रव्य लक्षणम्' होने के कारण..... हर द्रव्य अनादि-अनन्त होता।
उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त से..... परिणमनशील हो स्थित रहता।।
इसी हेतु है अणु से ब्रह्माण्ड..... जीव-अजीव सब अस्तित्ववान्।
नवीन रूप से न उत्पन्न होते..... विनाश न होते निश्चित प्रमाण।।

तो भी विकास व परिणमन होता..... स्व-स्वभाव व गुण-पर्याये।
जीव न होता अजीव स्वरूप..... अजीव न होता जीव रूप में।।
जीव पुद्गल धर्म अधर्म..... आकाश काल ये षट् द्रव्य जानो।
जीव पुद्गल होते शुद्ध-अशुद्ध..... अन्य द्रव्य होते सदा ही शुद्ध।।
शुद्ध में शुद्ध विकास होता..... अगुरुलघुगुण कारण होता।
षड्गुणहानि वृद्धि स्वरूप..... संख्य असंख्य अनन्त रूप।।
अशुद्ध जीव पुद्गल दोनों.... विकास करते भिन्न-अभिन्न।
पुद्गल-पुद्गल बन्ध रूप में..... जीव-पुद्गल भी बन्ध रूप में।।
द्विअणुक से अनन्त तक..... पुद्गल बनते एक-अनेक।
जिससे ब्रह्माण्ड की रचना हुई..... वायु से सूर्य तक रचना हुई।।
जीव पुद्गल की मिश्रणावस्था.... जिसे कहते हैं संसारावस्था।
सूक्ष्म निगोदिया से मानव तक..... क्रम विकास संसारावस्था।।
अनादिकाल से जीव निबद्ध..... आठों कर्म से निविड़बद्ध।
जिससे संसार भ्रमण होता..... जन्म-मरण व दुःख सहता।।
द्रव्य-भाव-नोकर्म सहित..... उत्थान-पतन होता सतत।
निगोद से त्रस पर्याय पाता..... द्वीन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय ( भी ) होता।।
नर नारकी व तिर्यंच देव..... पंचेन्द्रिय में होता है जीव।
इसी में मानव होता है श्रेष्ठ..... संसारी जीवों में सर्व उत्कृष्ट।।
श्रेष्ठ भाव जब करे मानव..... मानव से बने महामानव।
आध्यात्म विकास जब करता..... मोक्ष प्राप्त कर शुद्धात्मा होता।।
यदि कुकर्म है करे मानव..... मरकर बने निम्न के जीव।
निगोद तिर्यंच नारकी होता..... उत्थान के बाद पतन होता।।
ऐसा ही उत्थान-पतन होता..... मोक्ष प्राप्ति पूर्व होता रहता।
मोक्ष के बाद न होता पतन..... परम विकास मोक्ष ही जान।।
अतएव आत्म विकास करो..... मानव जन्म को सार्थक करो।
भौतिक विकास परे भी सोच..... 'कनकनन्दी' का यह प्रयास।।

## जीवों के उत्थान–पतन

**( चाल : दे दी हमें आजादी..... )**

जीवों के उत्थान-पतन होते रहते, मोक्ष के पहिले ये होते रहते।
अनन्त पञ्च परिवर्तन वे करते रहते, चारों गतियों में वे घूमते रहते।।
चौरासी लक्ष योनियों में घूमते रहते, मिथ्यात्व से युक्त वे करते रहते।
अनन्त बार वे ये करते रहते, सांसारिक सुख-दुःख भोगते रहते।।
देव च्युत होकर भी स्थावर बनते, श्वान मरकर भी देव बनते।
नर मरकर भी नारकी बनते, नारकी मरकर भी नर बनते।।
रंक भी राव उसी भव में बनते, राव भी रंग उसी भव में बनते।
पतित भी पावन उसी भव में बनते, पावन भी पतित कोई बनते।।
उपशम सम्यक्त्व तो छूट भी जाता, उपशम श्रेणी वाला गिर ही जाता।
गुणस्थान ग्यारह से नीचे गिरता, उपशम श्रद्धानी मिथ्यात्वी भी होता।।
पुनः श्रेणी आरोहण जब करता, क्षायिक होकर जब श्रेणी चढ़ता।
चार घाती नाशकर सर्वज्ञ होता, अष्ट कर्म नाशकर मोक्ष को पाता।।
क्षायिक होने पर नष्ट न होता, मोक्ष के अनन्तर बन्ध न होता।
अतएव क्षायिक व मोक्ष विधेय, अन्यथा पतन होना संभाव्य।।
यथा है पतित गेंद उछल जाती, क्रिया की प्रतिक्रिया यथा है होती।
पतन से शिक्षा ले उत्थान करो, बच्चों सम शिक्षा लो उत्थान करो।।
पतित को उत्थान करे भी अन्य, पतित को उठाना महान् काम।
महान् पुरुष जो ऐसा है करते, 'कनक' को ऐसा काम अत्यन्त भाते।।

## विश्व संसार एवं मोक्ष स्वरुप

**( राग : छोटी-छोटी गैया..... )**

हर द्रव्य अतुलनीय मौलिक होता, स्व-स्व गुण धर्मों से सहित होता।
एक द्रव्य न अन्य द्रव्य स्वरूप होता, एक गुण न अन्य गुण स्वरूप होता।।ध्रु.।।
जीव न होता अजीव, अजीव न जीव, अमूर्तिक न होता मूर्तिक, मूर्तिक न अमूर्तिक।
धर्म न होता अधर्म, अधर्म न धर्म, आकाश न होता काल, काल न आकाश।।( 1 )
स्व-स्व में ही परिणमन होता सर्वदा, अशुद्ध जीव शुद्ध होता शुद्ध न अशुद्ध।
पुद्गल शुद्ध होता पुनः होता अशुद्ध, धर्माधर्म आकाश काल नित्य ही शुद्ध।।( 2 )
तथापि है परस्पर होते सहयोगी, गति स्थिति हेतु धर्माधर्म सहयोगी।

आकाश अवकाश में होता सहयोगी, काल द्रव्य परिणमन में होता सहयोगी।।( 3 )
जीव है सभी का ज्ञाता व दृष्टा, पुद्गल है संसार का निर्माण कर्त्ता।
जीव पुद्गल जब है सम्बन्ध होते, संसार का निर्माण तब करते।।( 4 )
संसार भ्रमण ही इसी से होता, सम्बन्ध विच्छेद से मोक्ष हो जाता।
राग-द्वेष-मोह से संसार होता, इसी की मुक्ति से मोक्ष हो जाता।।( 5 )
मोक्ष है शुद्ध स्वरूप जीव द्रव्य का, सच्चिदानन्दमय निज रूप का।
यह है जीव का परम लक्ष्य, 'कनकनन्दी' का यह सर्वस्व।।( 6 )

## जीवों के उत्थान-पतन एवं मोक्ष

**( चाल : छोटी-छोटी गैया..... )**

जीवों के उत्थान-पतन होते रहते, मोक्ष के पहले ये होते रहते।
ये हैं कर्मों के फल, नहीं स्वभाव, सत्य शिव सुन्दर है शुद्ध स्वभाव।।
पंच परिवर्तन को तो करते रहते, चारों गतियों में जीव जाते रहते।
चौरासी लक्ष योनियों में जन्म ( भी ) लेते, निगोद से देव तक भ्रमण करते।।
कभी राजा कभी रंक देव-मानव, कीट-पतंग नारकी व वन-मानव।
सत्ता सम्पत्ति प्रसिद्धि युक्त मानव, दीन-हीन अहंकारी क्रूर मानव।।
अनन्त बार जन्म-मरण ( को ) करते जीव,
अनन्त सुख-दुःखों को भी भोगते जीव।
शत्रु-मित्र-भाई-बन्धु बने अनन्त, पाप-ताप-संताप से होते संत्रस्त।।
किन्तु आत्महित हेतु न करते काम, जिससे मिलता है मोक्ष का धाम।
जितने ये संसार में दुःख सहते, सर्वज्ञ बिना न कोई कह सकते।।
आत्महित हेतु यदि वे काम करते, संसार भ्रमण कार्य के अनन्तवां करते।
अनन्तसुख सम्पन्न वे मोक्ष को पाते, कृतकृत्य होकर शुद्ध-बुद्ध बनते।।
रागी द्वेषी मोही जीव ये न कर पाते, सांसारिक कार्य में ही वे व्यस्त रहते।
आत्म-उत्थान हेतु भव्य करो हैं! कार्य, 'कनकनन्दी' का लक्ष्य आध्यात्म कार्य।।

करणानुयोग सम्बन्धी वैश्विक कविता

## सर्वत्र भरा हुआ ब्रह्माण्ड / (लोक)

**( चाल : 1. मन है छोटा-सा..... 2. तुम दिल की..... 3. रघुपति राघव..... )**

देखो ! देखो ! देखो ! ब्रह्माण्ड देखो, सर्वत्र भरित ब्रह्माण्ड देखो !

छहों द्रव्यों से भरित देखो ! वर्गणा तेईस भरित देखो !

पंच स्थावरों से भरित देखो ! निगोदिया से भरित देखो !

सूक्ष्मकायिक जीवों को देखो ! सर्वत्र भरे ये जीवों को देखो !

स्थूल स्कन्ध न सर्वत्र व्याप्त, स्थूल जीव न सर्वत्र व्याप्त ।

आधार में स्थूल जीव ही स्थित, आधार रहित सूक्ष्म संव्याप्त ।।

जल स्थल नभ सर्वत्र व्याप्त, किसी से न सूक्ष्म जीव बाधित ।

तथाहि विग्रह गति के जीव, केवली / ( लोकपूरण ) समुद्घात में जीव ।।

क्षेत्र परिवर्तन होता सर्वलोक में, कर्मबन्ध होता ( भी ) है सर्वलोक में ।

गति-अगति जीव सर्वत्र करते, लोक-अलोक भी सर्वज्ञ जानते ।।

आकाश में नहीं शून्य स्थान स्थित, स्वयं आकाश भी है घनीभूत ।

अन्य को भी देता है अवकाश, सर्वत्र भरित है लोकाकाश ।।

अन्तराल में होते ग्रह-नक्षत्र, तथाहि स्थूल भौतिक द्रव्य ।

नहीं अन्तराल सूक्ष्म जीवों में, ये सब वर्णन है आगम में ।।

अल्पज्ञ न जाने ये सर्व सत्य, विज्ञान को भी नहीं है ज्ञात ।

सर्वज्ञ जानते सम्पूर्ण / ( परम ) सत्य, 'कनक' को मान्य परम सत्य ।।

## प्राचीन परग्रही (देव) प्राचीन एवं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

**( राग : आत्मशक्ति से ओतप्रोत..... )**

प्रस्तुत कृति का मैं कर रहा हूँ यहाँ पर वर्णन।
जिससे विज्ञ पाठकों को होगा पूर्व का ज्ञान।।
भारतीय ग्रंथों में मिलता देवों का है ज्ञान।
अभी वैज्ञानिक जन कर रहे हैं अनुसंधान।।( 1 )
जैन, हिन्दू, बौद्ध ग्रन्थों में मिलता प्रचुर वर्णन।
जैन ग्रंथों में क्रमबद्ध मिलता वैज्ञानिक ज्ञान।।
वैज्ञानिक जन अभी तो कर रहे हैं अनुसंधान।
किन्तु सत्य-तथ्य से अभी उन्हें नहीं हैं परिज्ञान।।( 2 )
किन्तु प्रबल संभावना मानते हैं वैज्ञानिक जन।
करोड़ों-अरबों ग्रहों में उन्नत परग्रही जन।।
'एलिएन' उन्हें कहते मानते उन्हें विशेष सभ्य।
धरती के मानव से भी अधिक प्राचीन व श्रेष्ठ सभ्य।।( 3 )
ज्ञान-विज्ञान टेक्नोलॉजी में अधिक हमसे ( वे ) दक्ष।
अति तीव्र-गति-विमान द्वारा पार करते अन्तरिक्ष।।
धरती में भी आते हैं करने हेतु विभिन्न काम।
मानव की सहायता हेतु अथवा करने अनुसंधान।।( 4 )
वैज्ञानिक मानते हैं अधिक आते थे वे प्राचीन काल में।
ज्ञान-विज्ञान प्रदान हेतु करने निर्माण के काम।।
उन्होंने हमें सिखाया मन्दिर मूर्ति निर्माण।
विशाल भवन निर्माण व गणित आयुर्विज्ञान।।( 5 )
यह सब ( जब ) मैं विज्ञान की चैनल में देखा व सुना।
वैज्ञानिक जनों को मैं अधिक सत्यग्राही माना।
उनके प्रति आदर अनुग्रह भाव बढ़ा मेरा विशेष।
प्रस्तुत कृति के लेखन हेतु भाव हुआ है विशेष।।( 6 )
मेरी प्राचीन कृति में जो वर्णन किया था विषय/( विशेष )।
उसे सब संकलन किया ( व ) काव्य रचा है विशेष।।
इसी कृति से पाठक गण पाओगे विशेष परिज्ञान।
आधुनिक वैज्ञानिकों जो है परिकल्पना का ज्ञान।।( 7 )
तुलनात्मक अध्ययन होगा जानोगे भारतीय ज्ञान।
वैज्ञानिक परिकल्पना का यथार्थ प्राचीन ज्ञान।।
भारतीय तुम भी जागो करो हे! वैश्विक ज्ञान।
स्व-पर-विश्व हित हेतु 'कनक' करे आह्वान।।( 8 )

## प्राचीनतम एलिएन (परग्रही–देव)

**( राग : सुनो सुनो हे दुनियाँवालों..... )**

सुनो हे ! बच्चों तुम्हें सुनाऊँ..... ' एलिएन ' की प्राचीन गाथा ।
जिसका वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में.... पाई जाती है विस्तृत गाथा ।।ध्रु. ।।
जैन हिन्दू बौद्ध ग्रंथों में..... इनका वर्णन मिलता विस्तृत ।
इन्हें कहते देव सुर अमर..... निर्जर विबुध अमर्त्य ।।
इनका निवास स्वर्ग होता..... जिसे कहते हैं अलकापुरी ।
देवलोक अमरावती सुरलोक.....द्यूलोक या इन्द्रपुरी ।।( 1 )
इनके प्रमुख होते इन्द्र..... जिन्हें कहते हैं देवेन्द्र भी ।
सुरेश पुरन्दर महेन्द्र शचिपति..... ( सुरपति ) देवराज सुरेन्द्र भी ।
भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष..... वैमानिक होते हैं चार भेद ।
दश आठ पाँच और बारह होते हैं..... क्रमशः इनके भेद-प्रभेद ।।( 2 )
इन्द्र[1] सामानिक[2] त्रायस्त्रिंश[3] ..... पारिषद[4] आत्मरक्ष[5] लोकपाल[6] ।
अनीक[7] प्रकीर्णक[8] आभियोग्य[9] ..... किल्विषिक[10] सामान्य प्रकार ।।
इनकी आयु हैं देवआयु..... गति होती है देवगति ।
शरीर होता है वैक्रियिक..... मानव शरीर से भिन्न प्रकृति ।।( 3 )
निम्नतम आयु होती इनकी..... दश हजार वर्ष प्रमाण ।
अधिकतम आयु होती हैं..... इनकी तैंतीस सागर वर्ष प्रमाण ।।
अकाल मरण न होता इनका..... न होते हैं वृद्ध व रोगी ।
कंठ से झरता इनका अमृत..... न होते हैं कवल-भोगी ।।( 4 )
मति श्रुत व अवधिज्ञान सहित..... होते हैं प्रत्येक देव ।
कुज्ञान सहित होते कुदृष्टि..... सुज्ञान सह होते सुदृष्टि देव ।।
अणिमा महिमा आदि ऋद्धि/( शक्ति ) से..... प्रत्येक देव होते सम्पन्न ।
अतिमानवीय कार्य करने में..... होते हैं प्रत्येक देव सम्पन्न ।।( 5 )
छोटा बड़ा व हल्का भारी..... दृश्य अदृश्य करते देह ।
तीव्र गति से कार्य करते..... धारण करके विभिन्न देह ।।
अनेक प्रकार विमान द्वारा..... करते गमन तथाहि क्रीड़ा ।
विभिन्न ग्रहों में गमन करते..... करने हेतु विविध क्रीड़ा ।।( 6 )

पृथ्वी पर भी आते वे देव..... पंचकल्याणक मनाने हेतु।
उपकार हेतु आते सुदेव..... कुदृष्टि आते अनिष्ट हेतु।।
धार्मिक सज्जन साधु-साध्वी के..... रक्षण हेतु भी आते हैं देव।
समवसरण की रचना करते..... उपदेश भी सुनते देव।।( 7 )
वैज्ञानिक अभी शोधरत हैं..... 'एलिएन' इन्हें मान रहे हैं।
शोध-बोध व निर्णय हेतु..... अभी भी असमर्थ हो रहे हैं।।
वैज्ञानिकों के उपकार व ..... बच्चों के परिज्ञान के हेतु।
'कनकनन्दी' ने कविता रची..... धर्म-विज्ञान को जोड़ने हेतु।।( 8 )

## देव की आत्मकथा

**( राग : 1. जीना यहाँ मरना यहाँ..... 2. छोटू मेरा नाम है..... )**

अमर मेरा नाम है, स्वर्ग मेरा धाम है।
पुण्यकर्म से देवगति में, हुआ मेरा जन्म है।।ध्रु.।।
उपपाद में ( मेरा ) होता जन्म, अन्तर्मुहूर्त में बनूँ जवान।
दिव्य वस्त्र अलंकार सहित, क्रीड़ारत रहूँ दीर्घ जीवन।।
दीर्घकाल में भोजन करूँ मैं, मेरे कण्ठ से झरे सुधारस।
श्वास भी लेता हूँ दीर्घकाल में, पुण्य-फल का लेता हूँ रस।।( 1 )
वैक्रियिक ( है ) मेरा दिव्य शरीर, अष्ट ऋद्धि से युक्त शरीर।
मल-मूत्र से शून्य शरीर, धातु-उपधातु रिक्त शरीर।।
विक्रिया से रूप धारण करूँ, अनेक विध रूप को धरूँ।
छोटा बड़ा भी धारण करूँ, दृश्य-अदृश्य शरीर धरूँ।।( 2 )
तीन ज्ञान को धारण करूँ, रत्नमहलों में निवास करूँ।
देवांगनाओं के साथ मैं रहूँ, पंचकल्याण की पूजा भी करूँ।।
पुण्य-फल का भोग मैं भोगूँ, रोग व आतंक कभी न भोगूँ।
अकालमरण रहित जीऊँ, कृषि व्यापारादि कभी न करूँ।।( 3 )
यह सब पूर्वजन्म सुफल, दान-दया-सेवा पुण्य का फल।
हिंसा-झूठ-चोरी रहित फल, सरल-सहज-मार्दव फल।।
तथापि यहाँ से न मिले मोक्ष, संयम बिना न मिले मोक्ष।
मानव में ( ही ) पूर्ण संयम होता, आत्म-साधना से मोक्ष मिलता।।( 4 )
अतएव मैं मानव बनना चाहूँ, संयमी बन के मोक्ष मैं चाहूँ।
संयम का यहाँ सुख कहाँ है, तृष्णा ईर्ष्या जन्य दुःख यहाँ है।
अतएव ( हे ) मानव! शिक्षा तू लो, तृष्णा ईर्ष्या से मुक्त तू हो।
अतएव 'कनक' ( श्री ) रची कविता, शिक्षा लेने हेतु जीवन गाथा।। ( 5 )

## भोग–भूमिजों से प्राप्त शिक्षाएँ

**( राग : 1. छोटी-छोटी गैया..... 2. सायोनारा..... )**

भोग-भूमिजों से ( मुझे ) मिलती है शिक्षा, सरल जीवन की नैतिक शिक्षा।
प्राकृतिक जीवन व निर्द्वन्द्व भाव, असंग्रह वृत्ति व अद्रोह भाव।।( 1 )
बुद्धि शक्ति व कला सम्पन्न, निरोग तथा अति सुन्दर वदन।
अस्थि भी होती वज्र समान, तथापि जीते वे शान्त जीवन।।( 2 )
जीवन जीते वे सुदीर्घ काल, भोला-भाला व मृदु सरल।
अन्याय अत्याचार कुशील रिक्त, कलह विसंवाद तनाव रिक्त।।( 3 )
शोषक-शोषित नहीं मालिक-भृत्य, धनी-गरीब व उच्च व नीच।
अपना-पराया रिक्त स्वतंत्र-भाव, नहीं सामाजिक बन्धन भाव।।( 4 )
मुक्त परिवार व राष्ट्र बन्धन, नहीं क्षेत्र की सीमा बन्धन।
एकाधिकार का न कोई बन्धन, आवास-निवास-भोजन-भूषण।।( 5 )
नहीं आक्रमण सीमा लंघन, युद्ध हत्या या अपहरण।
नहीं है बलात्कार शीलहरण, चोरी डकैती व दुराचरण।।( 6 )
प्रकृति का नहीं करते शोषण, पशु-पक्षियों का न करते हनन।
होते हैं भद्र व मन्द कषायी, शुभ लेश्या युक्त सहज विनयी।।( 7 )
कानून संविधान शिक्षा के बिना, प्रलोभन दबाव भय के बिना।
इन गुणों से वे होते ( हैं ) सम्पन्न, शिक्षादि से युक्त हमें होना विधेय।।( 8 )
मिथ्यादृष्टि भी जब ( वे ) होते हैं, मरकर के वे स्वर्ग जाते हैं।
जो मानव-पशु दान देते हैं, मरकर के वे आर्य बनते हैं।।( 9 )
इन सब गुणों को मुझे पाना है, उपलब्धि का न गर्व करना है।
रत्नत्रय से भी मोक्ष पाना है, 'कनक' को निज भाव पाना है।।( 10 )

## ज्ञान–ज्ञेय–ध्येय–हेय

( आगम निष्ठ कविता )

**( राग : 1. आरती कीजे हनुमान लला की..... 2. चौपाई**
**3. शत-शत वन्दन..... 4. नरेन्द्र छन्द..... )**

विश्व के चतुर्विध तत्त्व को जानो, ज्ञान-ज्ञेय-ध्येय-हेय को मानो।
ज्ञान स्वरूप है जीव स्वरूप, ज्ञेय स्वरूप है विश्व स्वरूप।।
ध्येय स्वरूप है मोक्ष स्वरूप, हेय स्वरूप है अनात्म रूप।
ज्ञेय को जानना ज्ञान-स्वभाव, ज्ञान होता है चेतना रूप।।( 1 )

सुज्ञान-कुज्ञान ज्ञान के भेद, पाँच व तीन क्रमशः प्रभेद।
सम्यक्त्व सहित होता सुज्ञान, मिथ्यात्व सहित होना कुज्ञान।।
ज्ञेय ध्येय हेय जाने सुज्ञान, अयथार्थ जाने वह कुज्ञान।
ध्येय प्राप्ति में सुज्ञान हेतु, कुज्ञान संसार भ्रमण हेतु।।( 2 )
जीव-अजीव होता है ज्ञेय, ज्ञान भी होता है स्वयं भी ज्ञेय।
अजीव के होते पंच प्रभेद, जीव के संसारी मुक्त प्रभेद।।
ध्येय होता है मोक्ष स्वरूप, जीव द्रव्य का शुद्ध स्वभाव।
हेय से युक्त होता अशुद्ध, हेय रहित होता है शुद्ध।।( 3 )
राग-द्वेष-मोह होते हैं ज्ञेय, पंच पाप सप्त व्यसन हेय।
भाव-द्रव्यकर्म होते हैं हेय, हेय त्याग से मिलता ध्येय।।
हेय त्याग हेतु उपाय करो, रत्नत्रय रूपी मार्ग स्वीकारो।
ध्यान अध्ययन समता धरो, 'कनक' आत्मा में रमण करो।।( 4 )

## स्व-विश्व दर्शन

### (स्व-परिज्ञानार्थे चाहिये अनन्त ज्ञान)

**( राग : 1. तुम दिल की धड़कन..... 2. छोटी-छोटी गैया..... )**

स्व-विज्ञान है विश्व-विज्ञान..... जिसमें समाहित समस्त ज्ञान।
आत्मा-परमात्मा व कर्म का ज्ञान..... संसार-भ्रमण व मोक्ष का ज्ञान।।
जो एक जानता है वह सर्व जानता..... जो सर्व जानता है वह एक जानता।
एक में होते ( हैं ) अनन्त गुण-पर्याय..... एक के ज्ञानार्थे अनन्त ज्ञान।।( 1 )
मैं सच्चिदानन्दमय जीव-द्रव्य..... अनन्त-गुण-पर्याय सहित।
अनन्तकाल से है मेरा अस्तित्व..... उत्पाद-व्यय व ध्रौव्य सहित।।
अनन्तकर्मों से हूँ मैं आबद्ध..... अनन्त जन्म-मरण से सम्बन्ध।
चौरासी लाख योनि व चतुर्गति में..... अनन्त-भ्रमण किया हूँ विश्व में ।।( 2 )
द्रव्य-क्षेत्र-काल व भव-भाव में..... अनन्त-परिवर्तन किया विश्व में।
इसके भी ज्ञानार्थे अनन्तज्ञान..... मति-श्रुत नहीं है अनन्तज्ञान।।
मैं केवल नहीं हूँ शरीर मात्र..... इन्द्रिय मस्तिष्क मन मात्र।
सत्ता-सम्पत्ति-मात्र नहीं हूँ मैं..... सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ मैं।।( 3 )
स्व-स्वरूप की प्राप्ति के हेतु..... रत्नत्रय की साधना हेतु।
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र हेतु..... आध्यात्म ज्ञान के प्रमुख हेतु।।
इन सबका ज्ञान है स्वयं का ज्ञान..... इसी हेतु चाहिये अनन्तज्ञान।
इसी से बनता है मानव ज्ञानी..... 'कनक' बनना चाहे आत्मज्ञानी।।( 4 )

## स्व–अनन्त गुण–गण स्मरण–ध्यान

(राग : 1. भावे वन्दू तो अरिहंत..... 2. रघुपति राघव..... 3. सायोनारा.....
4. तुम दिल की धड़कन.....)

सच्चिदानन्द स्वरूप मैं हूँ..... अनन्त गुण-गण सहित मैं हूँ।
अक्षय अव्यय अविनाशी हूँ..... शुद्ध-बुद्धमय ध्रुवरूप हूँ।।ध्रु.।।
समस्त विकार भाव रहित हूँ..... द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित हूँ।
तन-मन-इन्द्रिय रहित रूप हूँ..... सत्य-समता शान्ति स्वरूप हूँ।।
अनन्तज्ञान दर्शनमय हूँ..... अनन्तसुख वीर्य स्वरूप हूँ।
अनन्तसूक्ष्मत्व अवगाही हूँ..... अनन्त अव्याबाध स्वरूप हूँ।।( 1 )
अनन्त अगुरु लघु स्वरूप हूँ..... अनन्त अस्तित्व वस्तुत्व रूप हूँ।
अनन्त प्रमेयत्व अवगाही हूँ..... अनन्त गुण-पर्याय रूप हूँ।।
अनन्त अहिंसा सत्यरूप हूँ..... अनन्त अचौर्य अपरिग्रह हूँ।
अनन्त ब्रह्मचर्य स्वरूप हूँ..... अनन्त धैर्य संतोष रूप हूँ।।( 2 )
अनन्त क्षमा मार्दव रूप हूँ..... अनन्त आर्जव शौच स्वरूप हूँ।
अनन्त संयम तप त्याग हूँ..... अनन्त आकिञ्चन्यमय हूँ।।
विश्व में सर्वश्रेष्ठ ज्येष्ठ हूँ..... अमृत सनातन विश्वनाथ हूँ।
दीन-हीन अहंकार रिक्त हूँ..... शत्रु-मित्र भेद-भाव रहित हूँ।।( 3 )
स्पर्श-रस-गन्ध वर्ण रहित हूँ..... छोटा-बड़ा भार रहित हूँ।
आदि-अन्त-मध्य रिक्त हूँ..... स्वयंभू अकृत्रिम दिव्य रूप हूँ।।
गुण स्थानातीत चिन्मय रूप हूँ..... उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हूँ।
अल्पज्ञ/( छद्मस्थ ) अगम्य यंत्रातीत हूँ.....
'कनक' संवेदन स्वरूप/( स्वसंवेदनरूप/उपयोगमय ) हूँ।।( 4 )

## स-श-ष से प्रारम्भ पद प्रयोगमय कविता

## स्व–स्वरुप–स्मरण

**( चाल : 1. आत्मशक्ति..... 2. सायोनारा..... 3. भावे वन्दू तो अरिहन्त..... )**

सत्य सनातन सुख स्वरूप, स्व-द्रव्य का मैं करूँ स्वागत।
समता स्वरूप सर्वोदयमय, सच्चिदानन्द का करूँ ( मैं ) स्वागत।।( 1 )
सत्व-रज-तम से शून्य स्व-स्वरूप ( शुद्ध ) का मैं करूँ सम्मान।
सत्य-शिव-सुन्दर सर्व शुभंकर, शुद्ध शरण का करूँ सम्मान।।( 2 )
संसार संसरण सम्पूर्ण शून्य को, करता हूँ मैं सदा स्मरण।
शौच संतोष संयम स्वरूप को, करता हूँ मैं सदा स्मरण।।( 3 )
सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्रमय, सार्वभौम शुद्धात्मा ही मेरी शरण।
सोऽहं स्वरूप स्वयंभू रूप, शिव रूप ही मम शरण।।( 4 )
सप्त तत्त्व में सर्वोच्च तत्त्वमय, शुद्ध-बुद्ध रूप ही मेरा स्वरूप।
षट् द्रव्य में सर्वोच्च द्रव्यमय, सिद्धात्म रूप ही मेरा स्वरूप।।( 5 )
स्याद्वाद कथन सप्तभंग में, सापेक्ष-स्वरूप की होती समीक्षा।
सर्व-संकल्प-संक्लेश संक्षय से, स्वरूप सम्प्राप्ति ही 'कनक' की शिक्षा।।( 6 )

## बन्ध एवं मोक्ष डगर

**( चाल : कौन दिशा में तुझे..... )**

कौन दिशा में तुझे जाना है रे! मनुआ.....2
एक मोक्ष की डगर, एक बन्ध की डगर, जरा सोच तो तू.....2
अज्ञान मोह स्वार्थ काम क्रोध मय होता है बन्ध डगर।
इसी से विपरीत सत्य समतामय, होता है मोक्ष डगर।।
विवाह बन्धन परिवार सर्जन, होता है बन्ध डगर।
महाव्रत धारण व ध्यान-अध्ययन होता है मोक्ष डगर।।( 1 )
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि, प्रपंच होता है बन्ध डगर।
निस्पृह निराडम्बर एकान्त मौन, ध्यान होता ( है ) मोक्ष डगर।।
तेरा मेरा भेद-भाव शत्रु-मित्र प्रभेद, होता है बन्ध डगर।
मैत्री प्रमोद व माध्यस्थ कारुण्य, होता है मोक्ष-डगर।।( 2 )

आर्त रौद्र ध्यान चंचल/( मलिन ) चिन्तन, होता है बन्ध डगर।
धर्म शुक्ल ध्यान निर्मल परिणाम, होता है मोक्ष डगर।।
पर में प्रवृत्ति चित्त/( भोग ) में आसक्ति, होता है बन्ध डगर।
स्वयं में प्रवृत्ति चित्त/( भोग ) निवृत्ति, होता है मोक्ष डगर।।( 3 )
मोह क्षोभ क्षय अष्ट कर्म क्षय, होता है मोक्ष स्वरूप।
यह ही निज रूप स्वशुद्धात्मा रूप, 'कनक' का शुद्ध( भावी ) रूप।।
मोक्ष से मिलते हैं अनन्त सुख, वीर्य ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व हैं।
अव्याबाधमय अनन्त वैभव, जो चिदानन्दमय रूप हैं।।( 4 )

## सत्य परिज्ञान की श्रेष्ठतम पद्धतियाँ

( प्रमाण, नय, निक्षेप, अनेकान्त, स्याद्वाद का सार )

**(राग : चौपाई.....)**

प्रमाण नय निक्षेप को जानो..... अनेकान्त सिद्धानत स्याद्वाद मानो।
इसी से सत्य का परिज्ञान होगा..... जिससे सम्पूर्ण विकास होगा।।( 1 )
केवलज्ञान है पूर्ण प्रमाण..... सम्यग्ज्ञान भी होता प्रमाण।
प्रमाण अंश नयज्ञान भी होता..... निक्षेप वस्तु विधान होता।।( 2 )
अनेकान्त है वस्तु स्वरूप..... जिसके होते अनन्त रूप।
स्याद्वाद होता कथन रूप..... अनन्त सप्तभंग स्वरूप।।( 3 )
पाँच भेद हैं सम्यग्ज्ञान..... सकल प्रत्यक्ष है केवलज्ञान/( अनन्तज्ञान )।
मनःपर्यय अवधि श्रुत..... मन देश प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान।।( 4 )
मनःपर्यय तथा अवधिज्ञान..... देश प्रत्यक्ष व असंख्य ज्ञान।
श्रुत मतिज्ञान परोक्ष ज्ञान..... संव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान।।( 5 )
नाम स्थापना द्रव्य भाव..... न्यास चार प्रकार होता निक्षेप।
गुणादि रहित नाम निक्षेप..... गुण आरोपित स्थापना न्यास।।( 6 )
अवर्तमान पर्याय न्यास..... द्रव्य में होना द्रव्य निक्षेप।
प्रवर्तमान पर्याय युक्त..... द्रव्य सो होता भाव निक्षेप।।( 7 )
नय के अनेक भेद-प्रभेद..... ज्ञाता अभिप्राय नय के भेद।
निश्चय-व्यवहार नय के भेद..... शुद्ध-अशुद्ध तथाहि भेद।।( 8 )

सम्पूर्ण नय ही सापेक्ष होता..... अन्य नय को नहीं काटते।
निरपेक्ष नय ही मिथ्या होते..... जो अन्य नय को नहीं मानते।।( 9 )
व्यवहार बिना भी निश्चय नहीं..... बन्ध बिन यथा मोक्ष भी नहीं।
निश्चय बिना भी व्यवहार नहीं..... अग्नि बिना यथा धुआँ भी नहीं।।( 10 )
अनेकान्त से इसे भी जानो..... स्याद्वाद से इसे बखानो।
इसी से सर्व समाधान मानो..... विश्वगुरु अनेकान्त है जानो।।( 11 )
द्रव्य में होते अनन्त गुण..... सत्य अनेकान्त अतः प्रमाण।
एक गुण ग्रहण नय का..... ज्ञान स्याद्वाद होता तत् कथन।।( 12 )
अस्ति नास्ति अवक्तव्य तीनों..... परस्पर मिलन से सप्तभंग जानो।
अनन्त गुण होते द्रव्य में जानो..... अनन्त सप्तभंग इसी से मानो।।( 13 )
इसी से हठाग्रह दूर होता..... सत्यग्राहीपना प्रगट होता।
कलह विसंवाद नहीं होते..... समस्त समाधान इसी से होते।।( 14 )
यह है आगम तर्क पद्धति..... वैज्ञानिक व्यवहार पद्धति।
स्व-पर-विश्व हितकर पद्धति..... 'कनकनन्दी' की श्रेय पद्धति।।( 15 )

## संकीर्ण भौतिकता परे भी जानो मानो!

( परम सत्य को नहीं जानते हैं वैज्ञानिक )
( आधुनिक वैज्ञानिक नहीं है सर्वज्ञ )

**( राग : तुम दिल की धड़कन..... )**

धन्य वैज्ञानिक धन्य हो तुम!..... कितनी खोज करते हो?!
बुद्धि इन्द्रिय यंत्रों के द्वारा..... ये सब खोज करते हो।। ध्रु.।।
तुम्हारे कारण हुए शोध-बोध..... भौतिक क्षेत्र में विविध प्रकार।
रोगोपचार व जीव सुरक्षादि.....यान वाहन यंत्र अनेक प्रकार।।
संकीर्ण धर्म जाति क्षेत्र परे..... करते शोध-बोध विविध।
बुद्धि इन्द्रिय यंत्रों से परे..... नहीं करते ( हो ) शोध-बोध विविध।।( 1 )
बुद्धि इन्द्रिय व यंत्रों में नहीं..... असीम अनन्त सही क्षमता।

इसलिये तेरी खोज भी नहीं होती..... असीम अनन्त सत्य पूर्णता।।
भौतिक में भी तुम खोज न पाये..... पचानवे प्रतिशत ( 95% ) अभी तक भी।
डार्क मेटर व डार्क एनर्जी सह..... ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कारण सह।।( 2 )
नहीं जान पाये किन कारणों से..... महाविस्फोट हुआ कब है।
किस क्षेत्र पर हुआ बिग बैंग..... कितने बार हुए अभी तक हैं।।
किन करणों से हुई जीव सृष्टि..... जीवों के मूल रूप/( शुद्ध रूप ) क्या है।
कहाँ से जीव आये कहाँ हुई उत्पत्ति..... मृत्यु के परे अवस्था क्या है।।( 3 )
नहीं जान पाये अभी तक शुद्ध अणु..... उसके आकार प्रकार व गुण।
उसकी शक्ति उत्पत्ति परिस्थिति..... स्पर्श रस गन्ध वर्ण व भार।।
कहाँ तक है ब्रह्माण्ड की सीमा..... कितने ब्रह्माण्ड हैं कहाँ-कहाँ पर।
आकाश काल का स्वरूप न जानते..... नहीं जानते हो अमूर्तिक द्रव्य।।( 4 )
किन कारणों से जीव है चेतनामय..... नहीं जानते सुख-दुःख के कारण।
नहीं जानते हो जन्म-मृत्यु के कारण..... नहीं जानते हो आदि व अन्त।।
कहाँ-कहाँ हैं जीव ब्रह्माण्ड में..... नहीं जानते हो उसका स्वरूप।
स्व-स्वरूप भी नहीं जानते हो..... नहीं जानते हो अनन्त सत्य।।( 5 )
कार्य-कारण सम्बन्ध ( तो ) मानते हो.....
परन्तु अकारण/( अचानक ) भी मानते हो।
महाविस्फोट व जीवों की उत्पत्ति..... अचानक-अकरण मानते हो।।
जड़ से चेतन ( जीव ) को मानते हो..... आकाश-काल भी मानते हो।
जड़-चेतन भेद न जानते हो..... मोक्ष तत्त्व को न जानते हो।।( 6 )
तुम मानते हो स्वयं को अल्पज्ञ..... सत्य जानने का करते प्रयास।
किन्तु भौतिक साक्ष्य को ही मानते..... जिससे श्रेष्ठ न होता प्रयास।।
भौतिक परे भी अभौतिक मानो..... अचेतन परे मानो चेतन।
इससे तुम्हारा होगा सर्वोदय..... 'कनकनन्दी' का तुम्हें आशीष।।( 7 )

## विश्व कल्याण के लिए भौतिकता (से श्रेष्ठ) < आध्यात्मिकता

भौतिकता से कम विकास, अधिक विनाश
तो आध्यात्मिकता से अनन्त विकास

**(चौपाई.....)**

भौतिक विकास सीमित होता — आत्मिक विकास अनन्त होता।
इहलोक तक भौतिक जानो — मोक्ष तक है आत्मिक मानो।।( टेक )

तन मन धन भौतिक होता — आत्मिक इससे परे होता।
जड़मय सर्व भौतिक होता — सच्चिदानन्द आत्मिक होता।।

अष्टकर्म भी भौतिक होते — संसार भ्रमण के कारण होते।
भौतिक प्रति जो ममत्व होता — उसी से कर्मों का बन्धन होता।।

अणु से विश्व/( ब्रह्माण्ड )तक होता भौतिक..... मिट्टी से रत्न तक सर्व भौतिक।
धन-धान्य आदि सर्व भौतिक — वैज्ञानिक यंत्र आदि भौतिक।।

इसे जो अपना रूप मानता — उसी के लिए यत्न करता।
उसी के विकास विनाश द्वारा — अपना ही होता जो मानता।।

वह होता है भौतिकवादी — चार्वाक अनुयायी लौकिकवादी।
आत्मतत्त्व शून्य मिथ्यावादी — नास्तिक दृष्टि संकीर्णवादी।।

भौतिक अर्जन संरक्षण हेतु — न्याय-अन्याय भी कार्य करता।
व्यापार शोषण मिलावट तथा — भ्रष्टाचार चोरी आदि करता।।

विनिवेश तथा उपनिवेश — आक्रमण युद्ध लूट करता।
पशु से लेकर मनुष्य तक को — गुलाम बनाकर राज करता।।

इसी हेतु हुए लाखों भी युद्ध — प्राचीनकाल से अभी तक में।
भरत बाहुबली से लेकर — राजा महाराजा चक्री तक में।।

महाभारत व सिकन्दर तथा — चँगेज खाँ से अकबर तक।
स्वार्टा युद्ध उपनिवेशवाद — सब के कारण भौतिकवाद।।

दो विश्वयुद्ध या बाजारवाद
शिक्षा राजनीति कानून धर्म में

सबके जनक है भौतिकवाद।
घुसपैठ किया है भौतिकवाद।।

इससे परे है आत्मविकास
भौतिक से भी अनन्त गुणा

आत्मकेन्द्रित होता विकास।
आत्मिक विकास सर्वज्ञ जाना।।

अनन्त आत्म सुख के हेतु
तदनुकूल भी पुरुषार्थ होता

लक्ष्य भी होता है तदनुकूल।
भौतिकवाद दूर हो जाता।।

भौतिकवाद दूर होने से
इसीलिए तो आत्मपुरुष

उसके दोष हो जाते दूर।
भौतिकवाद से होते दूर।।

ये ही बनते तीर्थंकर बुद्ध
दिव्यज्ञान सुख प्राप्त कर

ऋषि मुनि साधु-सन्त प्रवर।
विश्व को देते ज्ञान भण्डार/( अमर )।।

ऐसे ही व्यक्ति होते पूजित
भौतिकवादी नेता सेठ आदि

मानव जाति के पथ दर्शक।
न होते पूज्य पथ दर्शक।।

आत्म विकास के कारक जानो
अहिंसा अचौर्य ब्रह्मचर्य गुण

सत्य समता शान्ति को मानो।
निर्मल भावना उदार गुण।।

सर्वजीव में मित्रता भाव
धैर्य सहिष्णुता आत्मचिंतन

आत्मविश्वास व आत्मविज्ञान।
अनासक्ति भाव आत्म रमण।।

धर्म के नाम जो हुए युद्धादि
वह तो है धर्म उन्माद

उसमें नहीं है आध्यात्मवाद।
संकीर्ण स्वार्थ भौतिकवाद।।

विश्व इतिहास व वर्तमान में
स्व-पर-विश्व कल्याण भाव

जो कुछ पाया लिखा पद्य में।
'कनकनन्दी' के भरे पद्य में/( दिल में )।।

## सत् < चित् < आनन्द या आनन्द > चित् > सत्

आगमनिष्ठ आध्यात्मिक कविता

( सत् से श्रेष्ठ चित् चित्त से श्रेष्ठ आनन्द )

**( राग : 1. एक परदेशी मेरा..... 2. रघुपति राघव..... 3. सायोनारा.....**
**4. ऊँकार स्वरूपा..... )**

'सच्चिदानन्द' है मेरा स्वरूप, 'सत्यशिवसुन्दर' मेरा ही रूप।
'शुद्ध बुद्ध आनन्दकन्द' स्वरूप, 'आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र' रूप।।
श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर गुण सहित, सत् से श्रेष्ठतर चित्त सहित।
चित्त से श्रेष्ठतम आनन्द युक्त, तथाहि सत्यशिवसुन्दर युक्त।।
शुद्ध से श्रेष्ठतर बुद्ध स्वरूप, बुद्ध से श्रेष्ठतम आनन्द रूप।
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र तथा, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ ( तर ) श्रेष्ठतम कथिता।।
सत् होने से मैं ( हूँ ) अस्तिवान्, अनन्त स्वगुणों की मैं हूँ खान।
चित्त होने से मैं हूँ ज्ञानवान्, आनन्द होने से हूँ आल्हादवान्/( सौख्यवान् )।।
'शुद्ध' होने से मैं बन्धन मुक्त, 'बुद्ध' होने से मैं ज्ञान से युक्त।
'आनन्द' होने से मैं सुख स्वरूप, इसलिए अन्य द्रव्यों से श्रेष्ठ।।
'सत्य' तो अन्य द्रव्य भी होते, 'चित्त' रहित वे निर्जीव होते।
इसलिए वे न भोगते सुख, 'चिदानन्द' होने से मैं हूँ प्रमुख।।
'शुद्ध' भी चारों द्रव्य भी होते, 'चिदानन्द' शून्य निर्जीव होते।
'आनन्द' रिक्त यदि मैं होता है 'बुद्ध', जानने का फल न होता समृद्ध।।
'बुद्ध' सहित यदि होता है दुःख, 'बुद्ध' से यदि न मिलता सुख।
'बुद्ध' तो अधिक होगा दुःखद, अधिक ज्ञान से अधिक दुःख।।
अतएव श्रेष्ठगुण होता 'आनन्द', 'आनन्द' हेतु बनना शुद्ध बुद्ध।
'आनन्द' रिक्त शुद्ध/बुद्ध/( ज्ञान ) नहीं है श्रेष्ठ,
'आनन्द' रिक्त बुद्ध नहीं है ज्येष्ठ।।
'आनन्द' प्रमुख गुण जीवों का, 'आनन्द' लक्ष्य हर जीवों का।
आनन्द हेतु ही हर कार्य करते, पुण्य पाप या मोक्ष करते/( चाहते )।।
मुझे चाहिये शुद्ध बुद्ध आनन्द, न चाहिए मुझे बन्ध/( भोग ) आनन्द।
स्व-स्वरूप का मैं आनन्द चाहूँ, 'कनक' अशुद्ध या पर न चाहूँ।।

आगम एवं आगमनिष्ठ कविता

## मैं ही मेरे परमद्रव्य–सत्य–धर्म–तीर्थ हूँ

**( चाल : कसमें वादे..... )**

मैं ही मेरा परम द्रव्य हूँ, मैं ही मेरा हूँ परम सत्य।
मैं ही मेरा परम धर्म हूँ, मैं ही मेरा परम तीर्थ।।
मैं हूँ जीव द्रव्य होने से, मेरे गुण ही मुझ में स्थित।
मेरी पर्याय भी मुझ में, अतः मेरा मैं ही सत्य।।
'सद्द्रव्य' लक्षण होने से, मेरा मैं हूँ द्रव्य ( व ) सत्य।
'वस्तुस्वभाव' धर्म होने से, मेरा धर्म भी मुझ में स्थित।।
स्वधर्म ही है परम तीर्थ, जिससे संसार तिरा जाता।
अन्य सभी द्रव्य व सत्य, तीर्थ भी सहयोगी/( निमित्त ) होते।।
मेरी गति व स्थिति हेतु, धर्माधर्म सहयोगी ( भी ) होते,
आकाश व काल द्रव्य भी, अवगाहन परिणमन के हेतु ( होते )।।
पुद्गल द्रव्य मेरे हेतु, संसार के कारण भी होते।
दोनों के ( सं ) योग-वियोग से, बन तथा ही मोक्ष होते।।
आस्रव-बन्ध ( व ) संवर-निर्जरा, मोक्ष पुण्य व पाप पदार्थ।
जन्म-मरण व सुख-दुःख भी, दोनों के संयोग-वियोग ( मात्र )।।
शुद्ध स्वरूप ही मेरा होता ( है ), मेरा ही परम धर्म रूप।
रत्नत्रय ही मेरा शुद्ध रूप ( है ), ( अतः ) मैं ही मेरा परम तीर्थ।।
राग द्वेष मोह काम रहित हूँ, मैं हूँ मेरा शुद्धस्वरूप।
सच्चिदानन्द घन स्वरूप ( हूँ ), अनन्तानन्तगुण सहित।।
द्रव्य भावनोकर्म रहित हूँ, तन मन धन रिक्त रूप हूँ।
जन्मजरामृत्यु रिक्त रूप हूँ, शुद्धबुद्ध आनन्दरूप हूँ।।
यह ही मेरा ( है ) शुद्ध द्रव्य ( व ), सत्य धर्म ( व ) परम तीर्थ।
इसी से शून्य मेरा नहीं है रूप, मुझ में मेरा पूर्ण अस्तित्व/( स्थित )।।
मेरे अस्तित्व बिन विश्व, मेरे लिए तो शून्य रूप।
अतएव ही 'कनकनन्दी' भी, आत्मोपलब्धि हेतु दत्त चित्त।।

## वैभाविक 'मैं' एवं स्वाभाविक 'मैं'

( वैभाविक 'मैं' मिथ्या-मोह-ममत्व-अहंकार है तो स्वाभाविक 'मैं'
मैं सत्य-सम्यक्त्व-वीतरागता-सोऽहंभाव-स्वाभिमान-स्वानुभूति..... )

**चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....**

अज्ञानी-मोही की परिणति जानो, सुदृष्टि-ज्ञानी की परिणति सुनो।
श्रद्धा-प्रज्ञा से होता महान् अन्तर,
अज्ञानी की बाह्य ज्ञानी की अन्दर/( अन्तर )।।ध्रुवपद।।
कर्मजनित विभाव भावों को, पर्याय गति व स्थिति लाभ को।
तनमनधनजनगृह को, अपना मानता है मोही इनको।।
रागद्वेषमोहकामक्रोध को, मानमाया लोभ ईर्ष्या घृणा को।
सत्तासम्पत्ति व प्रसिद्धि डिग्री को, माता-पिता भाई बंधु जनों को।।1।।
पतिपत्नी कुटुम्ब पुत्रपुत्री को, जन्म-मरण-रोग-भूख-प्यास को।
सांसारिक सुख-दुःख हानि-लाभ को, अपना मानता मोही शत्रु-मित्र को।।
अपना मानकर ही 'ममत्व' करता, ममत्व भाव से ही 'अहंकार' करता।
इसी मय ही वह स्वयं ( मैं ) को मानता, रागद्वेषमोह भी इसी में करता।।2।।
ऐसा 'मैं' में ही होते हैं ( मिथ्या ) मोह, ममत्व आसक्ति अहंकार स्नेह।
अनात्म भाव को ही अपना मानता, परद्रव्य को ही अपना मानता।।
सुदृष्टि इन्हें न अपना मानता, इसी में स्वयं/( मैं ) को नहीं मानता।
मोह ममत्व अहंकार नहीं करता, सोऽहंभाव स्वाभिमान भी न करता।।3।।
कर्मजनित इन्हें श्रद्धान करता, कर्म संयोग की परिणति/( के परिणाम ) मानता।
आत्म-स्वभाव से परे ये मानता, इसी में मैं या ममत्व न करता।।
इन्हीं भावों से परे होना चाहता, अणुव्रत या महाव्रत धारता।
ध्यान अध्ययन से कर्मों को हनता, इन्हीं भावों से भी परे हो जाता।।4।।
इसे ही कहते हैं मोक्ष अवस्था, स्वात्मोपलब्धि रूप निज अवस्था।
इसे ही ज्ञानी माने स्व-स्वरूप, सोऽहं भाव रूप 'मैं' स्वरूप।।
जब तक शुद्ध भाव न प्राप्त होता, निजात्म भाव में श्रद्धान करता।
उसे ही अपना या 'मैं' मानता, उसी का ध्यान अध्ययन मनन करता।।5।।
नैतिक कर्त्तव्य भी पालन करता, आत्मिक धर्म में गौरव करता।
दीन-हीन-अहंभाव न करता, अन्याय-अत्याचार पाप न करता।।
शोषण मिलावट चोरी न करता, फैशन-व्यसनों से दूर रहता।
अन्धानुकरण आडम्बर न करता, अनर्थ कार्यों से दूर रहता।।6।।
कमल समान निर्लिप्त होता, सोऽहं का 'स्वाभिमान' करता।
अष्टमद से भी रहित होता, 'कनक' अन्त में सोऽहं को पाता।।7।।

## अनुच्छेद - 2
## परिणमनशील विश्व

अनाद्यनिधनं कालं संवृत्तं सर्वपर्ययैः ।
पश्यतः प्रणिपत्येशान् वक्ष्ये कालगतिक्रमम् ।।1 ।।
कालोऽवसर्पिणीत्येक उत्सर्पिण्यपरोऽपि च ।
एते समाहृते कल्पो विभागा द्वादशानयोः ।।2 ।।
सुषमा सुषमान्ता च द्वितीया सुषमेति च ।
सुषमा दुःषमान्तान्या सुषमान्ता च दुःषमा ।।3 ।।
पञ्चमी दुःषमेत्येव समा षष्ठ्यतिदुःषमा ।
विभागा अवसर्पिण्यामितरस्यां विपर्ययः ।।4 ।।
चतस्रश्च ततस्तिस्रो द्वे च तासां क्रमात् स्मृताः ।
सागरोपमकोटीनां कोट्यो वै तिसृणामपि ।।5 ।।
सा4000000000000000 ।सा3000000000000000 ।सा2000000000000000 ।
द्विचत्वारिंशता न्यूना सहस्रैरब्दसंख्यया ।
कोटीकोटी भवेदेका चतुर्थ्यां तु प्रमाणतः ।।6 ।।
सा 100000000000000 ।42000 ।
पञ्चम्यब्दसहस्राणामेकविंशतिरेव सा ।
तावत्येव समा षष्ठी कोटीकोट्यो दशैव ताः ।।7 ।।
21000 ।21000 ।सा 10 को 2 ।
आदावाद्यसमायाश्च नरा उद्यद्रविप्रभाः ।
आहरन्त्यष्टमे भक्तं त्रिगव्यूतिसमुच्छ्रिताः ।।8 ।।
प्रारम्भे च द्वितीयाया नराः पूर्णशशिप्रभाः ।
आहरन्ति च षष्ठेऽन्नः द्विगव्यूतिसमुच्छ्रयसाः ।।9 ।।
आदावपि तृतीयायाः प्रियगश्यामवर्णकाः ।
चतुर्थ भक्तेनाहारमेकां गव्यूर्तिमुच्छ्रिता ।।10 ।।

समस्त पर्यायों से उपलक्षित अनादि-निधन काल को देखने वाले जितेन्द्रों को नमस्कार करके काल की गति के क्रम का वर्णन करता हूँ।।1 ।। एक अवसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी इस प्रकार से सामान्य रूप से काल के दो भेद हैं। इन दोनों को सम्मिलित रूप में कल्प काल कहा जाता है। इन दोनों के

बारह ( 6+6 ) विभाग हैं।।2।। सुषमासुषमा, दूसरा सुषमा, सुषमादुःषमा, दुःषमासुषमा, पांचवा दुःषमा और छठा अतिःदुषमा; इस प्रकार ये छह अवसर्पिणी काल के विभाग हैं। उत्सर्पिणी काल के विभाग इनसे विपरीत ( अतिदुःषमा, दुःषमा, दुःषमासुषमा, सुषमा-दुःषमा, सुषमा और सुषमासुषमा ) हैं।।3-4।। इनमें प्रथम तीन कालों का प्रमाण यथाक्रम से चार, तीन और दो कोड़ाकोड़ि सागरोपम माना गया है - सुषमासुक्षमा 400000000000000 सागरोपम, सुषमा 300000000000000 सा., सुषमदुःषमा 200000000000000 सा.।।5।। चतुर्थ ( दुःषमसुषमा ) कालका प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ि सागरोपक है 100000000000000 सा. - 42000 वर्ष।।6।। पांचवे ( दुःषमा ) कालका प्रमाण इक्कीस हजार ( 21000 ) वर्ष मात्र ही है। इतने ही ( 21000 ) वर्ष प्रमाण छठा काल भी है। इस प्रकार से उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के उक्त छहों कालों का प्रमाण सम्मिलित रूप से दस ( 10 ) कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र होता है।।7।।

प्रथम काल के प्रारम्भ में उदित होते हुए सूर्य के समान प्रभा वाले मनुष्य तीन कोस शरीर की ऊंचाई से सहित होते हुए अष्टम भक्त में अर्थात् चौथे दिन आहार करते हैं।।8।। द्वितीय काल के प्रारम्भ में मनुष्यों की प्रभा पूर्ण चन्द्र के समान और शरीर की ऊँचाई दो कोस प्रमाण होती है। वे षष्ठ भक्त में अर्थात् दो दिन के अन्तर से आहार ग्रहण करते हैं।।9।। तीसरे काल के प्रारम्भ में प्रियंगु पुष्प के समान प्रभा वाले मनुष्य एक कोस प्रमाण शरीर की ऊंचाई से सहित होते हुए चतुर्थ भक्त से अर्थात् एक दिन के अन्तर से आहार करते हैं।

उन तीन कालों में मनुष्यों की पृष्ठास्थियां क्रम से दो सौ छप्पन ( 256 ); एक सौ अट्ठाईस ( 128 ) और चौंसठ ( 64 ) होती हैं। इन कालों में मनुष्यों की आयु का प्रमाण यथाक्रम से तीन पल्य, दो पल्य और एक पल्य होता है। उक्त कालों में मनुष्य युगल रूप से ही उत्पन्न होकर कल्पवृक्षों से आजीविका करते हैं अर्थात् उन्हें समस्त भोगोपभोग की सामग्री कल्पवृक्षों से ही प्राप्त होती है। इन तीन कालों में कल्पवृक्षों के मृदंगांग ( तूर्यांग ), भृगांग ( भाजनांग ), रत्नांग ( भूषणांग ), पानांग ( मद्यांग ), भोजनांग, पुष्पांग ( मालांग ), ज्योतिरंग, आलयांग और वस्त्रांग ये दस प्रकार के वृक्ष होते हैं।

पानांग, तूर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और ज्योतिरंग; इस तरह वे कल्पवृक्ष दस प्रकार के हैं।

तूर्यांग कल्पवृक्ष पुष्कर, पटह, भेरी, दुंदुभि, पणव ( ढोल ) आदि, वीणा, बांसुरी और मृदंग वाद्यों को देते हैं। भृंग नामक कल्पवृक्ष भृंगार, कलश, थाली, थाल, वृत्तक, शुक्तिक, कुच और करक ( जलपात्र ); इन पात्रों को देते हैं। रत्नांग कल्पवृक्ष पुरुषों के सोलह प्रकार के और स्त्रियों के चौदह प्रकार के उत्तम विविध आभरणों को नित्य ही देते हैं। पानांग कल्पवृक्ष वीर्यवर्धक श्रेष्ठ रस से संयुक्त, सुगन्धित और प्रीति को पूर्ण करने वाले बत्तीस प्रकार के पान को उत्पन्न करते हैं। भोजनांग कल्पवृक्ष सोलह प्रकार के स्वादिष्ट अन्न भेदों को, सोलह प्रकार के ओदन ( भात ) को; चौदह प्रकार की दालों को, एक सौ आठ प्रकार के स्वाद्य भोजन को तथा रसना इन्द्रिय को प्रिय ऐसे तीन सौ तिरेसठ ( 363 ) शाक के भेदों को; इस प्रकार चक्रवर्ती के अन्न से स्वादिष्ट भोजन को देते हैं। मालांग वृक्ष वेलों, झाड़ियों एवं वृक्षों से उत्पन्न सोलह हजार ( 16000 ) प्रकार के पुष्पों को उत्पन्न करते हैं। चन्द्र एवं सूर्य जैसी प्रभा से संयुक्त होकर दस दिशाओं को प्रकाशित करने वाले ज्योतिरंग वृक्ष निरन्तर प्रकाश करते हुए स्थित रहते हैं। आलयांग जाति के कल्पवृक्ष नंद्यावर्त आदि सोलह प्रकार के रत्नमय एवं सुवर्णमय उत्तम भवनों को नित्य ही प्रदान करते हैं। वस्त्रांग वृक्ष क्षौभ ( सनका वस्त्र ), कौशेय ( रेशमी ), कार्पास ( कपास निर्मित ) वस्त्र तथा चीनदेशीय आदि वस्त्रों के साथ कोमल एवं चिक्कण विचित्र वस्त्रों को देते हैं। वल्ली, गुल्म ( झाड़ी ), क्षुप ( छोटी शाखाओं एवं मूलों वाला ) और द्रुम ( वृक्ष ) रूप रमणीय छाया वाले मनोहर कल्पवृक्ष वहां अभीष्ट मूलों, पुष्पों और फलों के साथ सब ओर होते हैं।

इन तीन कालों में प्रमाणयुक्त सब अवयवों से संयुक्त तथा बत्तीस लक्षणों से चिह्नित नर-नारी इक्कीस ( 21 ) दिनों में यौवन से परिपूर्ण हो जाते हैं। ये नर-नारी मार्दव एवं आर्जव से सहित, सत्य व मधुर भाषण करने वाले, मृदंग अथवा मेघ के समान ध्वनि से संयुक्त, नौ हजार ( 9000 ) हाथियों के बराबर पराक्रम से सहित, स्वभावतः धीर और गंभीर, निपुण, स्थिर सौहार्द से सम्पन्न, अदृष्ट ललित आचार वाले प्रसन्न, प्रीतिबुद्धि तथा क्रोध, लोभ, भय, द्वेष, मान एवं मत्सरता से रहित होते हैं। वे ईर्ष्या, असूया और परनिन्दा के आनन्द को कभी नहीं जानते हैं।

तीनों ही कालों में उन नर-नारियों के सेवा का दुःख, परनिन्दा, अभीष्ट की प्राप्ति तथा प्रिय पदार्थों का वियोग नहीं होता। इन कालों में न राजा होते हैं, न पाखण्डी होते हैं, न चोर होते हैं, न शत्रु होते हैं, न कर्म ( कृषि आदि ) होते हैं, न शिल्पकार्य होते हैं, न दरिद्रता होती है और न रोग भी होते हैं।

इन कालों में स्त्रियां सुन्दर रूप से सहित, सुभग, गीत व वादित्र में निपुण सदा एक ही पति के सुख का अनुभव करने वाली, निःस्वार्थ सौहार्द से सम्पन्न, रत्नों व आभरणों से देदीप्यमान, सुगन्धित मालाओं से विभूषित, दिव्य वस्त्रों से अलंकृत और रतिराग में परायण होती है। परस्पर के दर्शन में आसक्त, परस्पर की इच्छानुसार प्रवृत्ति करने वाले और परस्पर के हित के इच्छुक वे युगल एक-दूसरे को नहीं छोड़ते हैं। अन्त में वे ( नर-नारी ) क्रमशः छींक और जृंभा मात्र से अपने जीवित को छोड़कर अल्प कषाय से संयुक्त होने के कारण सौधर्मादिक विमानवासी देवों में अथवा व्यन्तरादिकों में उत्पन्न होते हैं। त्रिलोकसार में कहा भी है -

उत्तम आदि तीन भोगभूमियों में उत्पन्न हुए नर-नारी क्रम से बेर, बेहड़ा और आंवले के प्रमाण कल्पवृक्षों से दिये गये दिव्य आहार करने वाले; मन्दकषायी और मल-मूत्र से रहित होते हैं। इन उत्पन्न हुए युगलों में अंगूठे के चूसने, उठकर खड़े होने, अस्थिर गमन, स्थिर गमन, कला-गुणग्रहण, यौवनग्रहण और सम्यग्दर्शनग्रहण में सात-सात दिन व्यतीत होते हैं, अर्थात् वे उनचास ( 49 ) दिन में यौवन को प्राप्त होकर सम्यग्दर्शनग्रहण के योग्य हो जाते हैं। उन दम्पत्तियों के प्रथम ( वज्रर्षभवज्रनाराच ) संहनन और प्रथम ( समचतुरस्र ) संस्थान होता है। आर्य इस नाम से संयुक्त उन दम्पत्तियों को पंचेन्द्रियजनित विषयों के सुलभ होने पर भी तृप्ति नहीं होती है। अन्त में वे नर-नारी क्रम से छींक और जृंभा के वश शरत्कालीन मेघ के समान विलीन होकर यदि मिथ्यादृष्टि हुए तो भवनत्रिक देवों में और यदि सम्यग्दृष्टि हुए तो सौधर्मादिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

पांच नील पर्वतों पर, पांच निषधपर्वतों पर और पांच कुरुक्षेत्रों में भी वर्धमान उभय अन्तों से प्रथम ( सुषमासुषमा ) काल नियत है। हिमवान् पर्वतों पर, रुक्मि पर्वतों पर, रम्यक क्षेत्रों में और हरिक्षेत्रों में भी वर्धमान उभय अन्तों से द्वितीय ( सुषमा ) काल नियत है। शिखरी पर्वतों पर, क्षुद्र हिमवान् पर्वतों

पर उनकी पार्श्वभूमियों ( हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रों ) में तथा अन्तरद्वीपों में भी सदा तृतीय ( सुषमादु:खमा ) काल रहता है। तृतीय काल में पल्योपमका आठवां भाग ( 1/8 ) शेष रह जाने पर ( भरत और ऐरावत क्षेत्रों के भीतर ) चौदह ( 14 ) कुलकर पुरुष उत्पन्न होते हैं। उनके पश्चात् भरतक्षेत्र में आदिनाथ भी जन्म लेते हैं। आर्ष ( आदिपुराण ) में कहा भी है -

तत्पश्चात् अनुक्रम से इस तृतीय काल के बीतने पर जब उसमें पल्योपमका आठवां भाग ( 1/8 ) शेष रहता है तब क्रम से कल्पवृक्षों की शक्तियों के क्रमशः क्षीण हो जाने पर ज्योतिरंग कल्पवृक्ष मंद प्रकाशरूपता को प्राप्त हो जाते हैं। तदनन्तर आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सायंकाल में आकाश के उभय ( पूर्व-पश्चिम ) भागों में प्रभा से प्रकाशमान वे पुष्पदंत ( सूर्य व चन्द्र ) प्रकट हुए। उस समय अलौकिक तेज को धारण करने वाला, प्रतिश्रुति इस नाम से प्रसिद्ध प्रथम कुलकर प्रजा के नेत्र के समान सुशोभित हुआ। जिन भगवान् के द्वारा उसकी आयु पल्यके दसवें भाग ( 1/10 ) प्रमाण तथा शरीर की ऊंचाई एक हजार आठ सौ ( 1800 ) धनुष मात्र निर्दिष्ट की गई है। उस प्रतिश्रुति कुल करने पूर्व में कभी न देखे गये उन सूर्य-चन्द्र को देखकर भयभीत हुए प्रजानन के भय को उक्त सूर्य-चन्द्र के स्वरूप को इस प्रकार से बतलाकर दूर किया। ये सूर्य-चन्द्र ग्रह अब काल की हानि के प्रभाव से ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों की प्रभा के विनष्ट हो जाने से आकाश में दिखने लगे हैं। अतिशय तेज के धारक वे दोनों सदा ही आकाश में भ्रमण करते हैं। उनसे आप लोगों को कुछ भी भय नहीं होना चाहिये। अतएव हे भद्र पुरुषों! आप लोग इनसे भयभीत न हो।

प्रतिश्रुति कुलकर के इन वचनों से उन भोगभूमिज प्रजाजनों को बड़ी सांत्वना मिली। इस कुलकर के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् क्रम से काल के व्यतीत होने पर असंख्यात करोड़ वर्षों को बिताकर उत्तम बुद्धि का धारक सन्मति नाम का दूसरा कुलकर हुआ। उसकी आयु अमम के बराबर असंख्यात वर्ष और शरीर की ऊंचाई एक हजार तीन सौ ( 1300 ) धनुष प्रमाण थी। एक दिन रात्रि में जब बेला ( काल ) सघन अन्धकार से मलिन नहीं हुई थी तब तारागण आकाशरूपी आंगन को पूर्ण करके प्रकाशित हुए। उस समय अकस्मात् ताराओं को देखकर उत्पन्न हुए भय ने उन भोगभूमिजों को इस

प्रकार विचलित कर दिया जैसे कि प्राणिहिंसा योगियों को विचलित कर देती है। तब सन्मति कुलकर ने क्षणभर विचार कर उन आर्यों से कहा कि हे भद्र पुरुषों! यह कोई उपद्रव नहीं प्राप्त हुआ है। इसलिये आप लोग उनसे भय को प्राप्त न हो। निरन्तर आकाशमार्ग में अवस्थित रहने वाला यह ज्योतिर्मण्डल इस समय ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों की प्रभा के क्षीण हो जाने से स्पष्टतया दृष्टिगोचर होने लगा है। विद्वानों में श्रेष्ठ उस सन्मति कुलकर ने उन्हें ज्योतिषी देवों विषयक ज्ञान के कुछ बीज भी बतलाये। उसके इस कथन से आर्यगण शीघ्र ही भय से निर्मुक्त हो गये।

तत्पश्चात् असंख्यात करोड़ वर्ष मात्र अन्तर को बिताकर यहां क्षेमंकर नाम का तीसरा कुलकर हुआ। उस महान् तेजस्वी कुलकर की आयु अटट प्रमाण और शरीर की ऊंचाई आठ सौ ( 800 ) धनुष मात्र थी। जो भद्र मृग ( पशु ) पहिले प्रजा के हाथों द्वारा परिपालित थे, वे उस समय मुंह फाड़कर भयानक शब्द को करते हुए विकार को प्राप्त हो चुके थे। उनके इस अन्तर्गर्जना युक्त विकार से प्रजाजन भयभीत होने लगे।( तब उन्होंने क्षेमंकर कुलकर से निवेदन किया कि ) ये भद्र मृग पहिले यहां बिना किसी प्रकार के उपद्रव के रहते थे, किन्तु अब वे आकरण ही हम लोगों को सींगों से अभिभूत करते हैं। इस प्रकार के उन आर्यों के वचनों से सौहार्द को प्राप्त होकर वह कुलकर बोला कि अब इनके विषय में विश्वास न करो, इनकी यदि उपेक्षा की जाएगी तो वे बाधा पहुंचा सकते हैं। तब उसके इन वचनों को सुनकर आर्यजन उन मृगों का परिहार करने लगे।

अनन्तर असंख्यात करोड़ वर्षों प्रमाण मन्वन्तर का अतिक्रमण करके सज्जनों में श्रेष्ठ क्षेमंधर नाम का चौथा कुलकर उत्पन्न हुआ। उस महात्मा की आयु त्रुटित वर्ष प्रमाण और शरीर की ऊंचाई सात सौ पचहत्तर ( 775 ) धनुष मात्र थी। जब ये क्रूर प्राणी अतिशय क्रोधित होकर प्रबलता ( क्रूरता ) को प्राप्त होने लगे तब क्षेमंधर कुलकर ने उनसे दण्ड व लाठी आदिकों के द्वारा अपनी रक्षा करने की विधि बतलायी।

तत्पश्चात् पहिले के समान क्रम से असंख्यात करोड़ वर्षों प्रमाण मन्वन्तर हुआ अर्थात् क्षेमंधर कुलकर के स्वर्गस्थ हो जाने पर असंख्यात करोड़ वर्षों तक कोई कुलकर नहीं हुआ। उसके पश्चात् प्रजाजनों के पुण्योदय से

सीमंकर नाम का पांचवां कुलकर हुआ। उस महाबुद्धिमान् कुलकर की आयु 'कमल' प्रमाण और शरीर की ऊंचाई सात सौ पचास ( 750 ) धनुष मात्र मानी गई है। उस समय जब कल्पवृक्ष विरल हो गये अर्थात् जहां-तहां संख्या में वे थोड़े से रह गये तथा फलों से मंद भी पड़ गये तब उनके विषय में इन आर्यगणों के बीच परस्पर में विवाद होने लगा। तब उस कुलकर ने इस विवाद को देखकर वचन मात्र से उनकी सीमा का विधान बना दिया, अर्थात् उनके उपयोग के लिये उसने कुछ अलग-अलग वृक्षों का निर्देश कर दिया। इसी कारण उन आर्यगणों ने इसका 'सीमंकर' यह सार्थक नाम प्रसिद्ध कर दिया।

तत्पश्चात् फिर से पहिले के ही समान असंख्यात करोड़ वर्षों तक कोई कुलकर नहीं हुआ। तब कहीं इतने अन्तर के पश्चात् अभ्युदय से सम्पन्न पवित्र बुद्धि सीमंधर नाम का छठा कुलकर उत्पन्न हुआ। कमल के समान मुख एवं नेत्रों की कांति से सुशोभित उस कुलकर की आयु 'नलिन' प्रमाण तथा शरीर की ऊंचाई पांच के वर्ग ( 5x5=25 ) से अधिक सात सौ ( 725 ) धनुष मात्र थी। उस समय जब कल्पवृक्ष बहुत ही थोड़े रह गये और उनकी फलदान शक्ति भी अतिशय मंद पड़ गई तब उन भोगभूमिज मनुष्यों के बीच केवल महाविसंवाद ही नहीं छिड़ा, बल्कि आपस में एक-दूसरे के बालों को खींचकर मारपीट की भी वृद्धि होने लगी। तब उस विद्वान् कुलकर ने उन आर्यों के कल्याण को महत्त्व देकर उक्त कल्पवृक्षों की सीमाओं को, जिन्हें सीमंकर कुलकर ने वचन मात्र से ही बद्ध किया था, अन्य वृक्ष एवं झाड़ी आदि को चिह्नित कर दिया।

तत्पश्चात् फिर से भी असंख्यात करोड़ वर्ष प्रमाण मन्वन्तर हुआ, तब कहीं इतने अन्तर के बीत जाने पर विमलवाहन नाम का सातवां कुलकर प्रादुर्भूत हुआ। लक्ष्मी से आलिंगित ऐसे सुन्दर शरीर को धारण करने वाले इस कुलकर की आयु 'पद्म' प्रमाण तथा शरीर की ऊंचाई सात सौ ( 700 ) धनुष मात्र कही गई है। इस समय विमलवाहन कुलकर के उपदेशानुसार कुदार, अंकुश, पलान और मुखभाण्ड ( तोबरा ) आदि की प्रवृत्तिपूर्वक हाथी आदिकों की सवारी प्रारम्भ हो गई थी।

इसके पश्चात् यहां फिर से भी असंख्यात करोड़ वर्ष प्रमाण अन्तर हुआ, तब कहीं चक्षुष्मान् नाम का आठवां कुलकर उत्पन्न हुआ। वह उन्नत शोभा

का धारक कुलकर 'पद्मांग' प्रमाण आयु से संयुक्त तथा छह सौ पचत्तर ( 675 ) धनुष मात्र ऊंचे शरीर वाला था। उसके समय में जिन आर्यगणों ने ( प्रसव के साथ ही मरण को प्राप्त हो जाने के कारण ) पहिले कभी संतान का मुख नहीं देखा था, वे अब क्षणभर जीवित रहकर उसका मुख देखने लगे थे। यह उन्हें महान् भय का कारण बन गया था। इस कारण उस समय चक्षुष्मान् कुलकर ने शीघ्र ही भय से संत्रस्त उन आर्यगणों को संतान विषयक यथार्थता का उपदेश देकर उनके भय को दूर कर दिया था।

उसके बाद फिर से भी उतने ( असंख्यात ) करोड़ वर्षों प्रमाण कुलकर विच्छेद को बिताकर यशस्वान् नाम का कीर्तिशाली नौवां कुलकर उत्पन्न हुआ। उस तेजस्वी महापुरुष की उत्कृष्ट आयु 'कुमुद' प्रमाण और शरीर की ऊंचाई छह सौ पचास ( 650 ) धनुष मात्र थी। उसके समय में प्रजानन संतान के मुख को देखकर और क्षणभर स्थित रहकर 'जीव, नन्द' आदि आशीर्वचनों को कहते हुए परलोक को प्राप्त होते थे।

तत्पश्चात् उसके योग्य अर्थात् असंख्यात करोड़ वर्षों प्रमाण कुलकर विच्छेद को बिताकर चन्द्रमा के समान सौम्य मुखवाला अभिचन्द्र नाम का दसवां कुलकर हुआ। चमकते हुए मुकुट एवं कुण्डलों से विभूषित वह कुलकर 'कुमुदांग' प्रमाण आयु का धारक तथा पांच के वर्ग ( 25 ) से अधिक छह सौ ( 625 ) धनुष मात्र ऊंचे देदीप्यमान शरीर से सुशोभित था। उसके समय में प्रजानन कौतूहलपूर्वक संतान के मुख को देखकर और आशीर्वाद देकर रात्रि में चन्द्रमा आदि को दिखाते हुए उसको खिलाने लगे थे।

तत्पश्चात् फिर भी उसके योग्य सैकड़ों वर्षों प्रमाण मनुविच्छेद को लांघकर चन्द्र के समान सुन्दर मुख वाला समयज्ञ ( समय की गति का जानकार ) चन्द्राभ नामक ग्यारहवां प्रसिद्ध कुलकर हुआ। सुन्दर लक्षणों से उज्ज्वल एवं उदित होते हुए सूर्य के समान कान्ति वाला वह कुलकर 'नयुत' प्रमाण आयु का धारक और छह सौ ( 600 ) धनुष ऊंचा था। उसके समय में प्रजाजन पुत्रों के दर्शन एवं आश्वासन से अतिशय प्रीति को प्राप्त होकर संतान के साथ कुछ दिन जीवित रहने लगे थे।

उसके पश्चात् अपने योग्य मन्वन्तर को लांघकर प्रजाजनों के नेत्रों को आनन्दित करने वाला रमणीय मरुद्देव नाम का बारहवां कुलकर उत्पन्न हुआ।

यह कुलकर सूर्य के समान तेजस्वी था। उसके शरीर की ऊंचाई पांच सौ पचत्तर ( 575 ) धनुष और आयु 'नयुतांग' प्रमाण थी। उसके समय में प्रजाजन अपनी संतान के साथ बहुत समय तक स्थित रहकर उसके मुखावलोकन और अंग स्पर्श रूप उत्सवों से अतिशय प्रीति को प्राप्त होते थे। उसने जलमय दुर्गम स्थानों ( नदी-समुद्र आदि ) में जाने के लिये नाव, द्रोणी ( छोटी नाव ) एवं पुल आदि का पर्वतादि रूप दुर्गम स्थानों के ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियों की प्रणाली का निर्माण कराया।

तत्पश्चात् धीरे-धीरे कर्मभूमि की स्थिति के निकट होने पर महान् प्रभावशाली प्रसेनजित नाम का तेरहवां कुलकर उत्पन्न हुआ। इस कुलकर की आयु निश्चयतः पर्व प्रमाण और शरीर की ऊंचाई पांच सौ पचास ( 550 ) धनुष मात्र थी। उस समय संतान की उत्पत्ति जरायुपटल से वेष्टित होने लगी थी, इसलिये उसने प्रजाजनों को उक्त जरायुपटल के छेदने का उपाय निर्दिष्ट किया था।

उसके अनन्तर ही युगादि पुरुषों ( पूर्व कुलकरों ) के द्वारा धारण किये गये भार को धारण करने वाला बुद्धिमान् नाभिराय नाम का चौदहवां कुलकर हुआ। उसकी उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटि प्रमाण तथा शरीर की ऊंचाई पांच के वर्ग ( 25 ) से अधिक पांच सौ ( 525 ) धनुष मात्र थी। उसके समय में संतान की उत्पत्ति के समय नाभिनाल दिखाई देने लगा था। चूंकि उसके छेदने का उपाय इस कुलकर ने बतलाया था, अतः वह 'नाभि' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। आकाशमण्डल में इन्द्रधनुष के साथ कर्वुर ( भूरा रंग ) कान्ति वाले काले घने मेघों का प्रादुर्भाव उसके ही समय में हुआ था। उस समय खेतों में सब ओर अनेक प्रकार के धान्य ( अनाज ) के अंकुर बिना जोते व बिना बोये ही धीरे-धीरे सघन रूप में वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे। वे समयानुसार प्रजाजनों के पूर्व पुण्य के वश तथा उस प्रकार के काल के ही प्रभाव से भी पक करके फल देने के योग्य हो गये थे। उस समय पिता के स्वर्गस्थ होने पर जैसे संतान उसके स्थान को ग्रहण कर लेती है वैसे ही उन अनाजों ने पूर्वोक्त कल्पवृक्षों का उचित स्थान ग्रहण कर लिया था।

उस समय न अतिवृष्टि होती थी और न अवृष्टि ( वर्षाभाव ) भी, किन्तु मध्यम वृष्टि होती थी; जिससे बिना किसी प्रकार के उपद्रव के समस्त अनाजों

की फल प्राप्ति होती थी। षष्ठिक ( साठ दिनों में पककर तैयार होने वाली साठी धान ), कलम, ब्रीहि, जौ, गेहूँ, कंगु ( कांगणी ), श्यामाक ( समा ), कोद्रव ( कोदों ), उदार नीवार, वरक, तिल, अलसी, मसूर, सरसों, धनियां, जीरा, मूंग, उड़द, आढकी ( अरहर ), रोंसा, निष्पावक ( मोठ ), चना, कुलथी और तेवरा ये अनाज के भेद माने गये हैं। कुसुम्भ और कपास के साथ ये सब प्रजाजनों की आजीविका के कारण माने गये हैं। उपभोग के योग्य इन अनाजों के होने पर भी उनके उपाय को न जानने वाली प्रजा उस समय बार-बार मोह को प्राप्त होती थी। युग के इस परिवर्तन में जब कल्पवृक्ष पूर्णतया नष्ट हो गये तब निराश्रय होकर प्रजा के लोग आकुलता को प्राप्त हुए। उस समय आहार संज्ञा की उदीरणा से तीव्र भूख के लगने पर जीवित रहने के उपाय के विषय में संदेह को प्राप्त हुए उन प्रजाजनों के चित्त अत्यन्त व्याकुल हो उठे थे। तब उन सबने युग के नेता स्वरूप अंतिम कुलकर नाभिराय के समीप जाकर दीन वचनों में उनसे इस प्रकार निवेदन किया -

हे नाथ! जो कल्पवृक्ष कल्पित ( इच्छित ) वस्तुओं के देने वाले थे और इसीलिये जिनको कल्पकाल पर्यंत कभी भुलाया नहीं जा सकता है; उनके बिना आज हम अनाथ हुए पापीजन किस प्रकार से जीवित रहे ? हे देव! इधर जो ये कितने ही विभिन्न जाति के पेड़ उत्पन्न हुए हैं वे फलभार से नम्रीभूत हुई अपनी शाखाओं के द्वारा मानो इस समय हमें बुला ही रहे हैं। क्या इनको छोड़ा जाय, अथवा इनके फलों का उपयोग किया जाय ? फलों के ग्रहण करने पर ये हमारा निग्रह करेंगे अथवा पालन करेंगे ? इधर उन वृक्षों के समीप की भूमि में सब ओर फलों से नम्र हुई शिखाओं से सुशोभित जो ये कितने ही क्षुद्र झाड़ियां शोभायमान हो रही हैं उनका क्या उपयोग हो सकता है और किस प्रकार से वे काम में लायी जा सकती हैं, क्या इनका इच्छानुसार संग्रह किया जा सकता है अथवा नहीं; इन सब बातें को आज हमें बतलाइये। हे नाभिराय देव! आप इस सभी को जानते हैं और हम इससे अनभिज्ञ हैं, इसीलिये हम आज दुखित होकर आपसे पूछ रहे हैं। अतएव आप प्रसन्न होकर इन सब बातों को हमें समझाइये।

इस प्रकार कर्तव्य-अकर्तव्य के विषय में विमूढ़ होकर अत्यन्त भय को प्राप्त हुए उन आर्यपुरुषों को 'आप लोग भयभीत न हों' ऐसा कहकर

नाभिराय इस प्रकार बोले। कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर फलों के भार से नम्रीभूत हुए ये जो वृक्ष उत्पन्न हुए हैं वे आप लोगों का इस समय उसी प्रकार से उपकार करेंगे जिस प्रकार कि पहिले कल्पवृक्ष किया करते थे। इसलिये हे भद्र पुरुषों! इनका उपयोग कीजिए, इनके विषय में आप किसी प्रकार का संदेह न करें। परन्तु ये जो सामने विषवृक्ष हैं, उनका दूर से ही परित्याग कीजिये। इनके अतिरिक्त ये स्तम्बकरी आदि औषधियां मानी गई हैं। व्यंजन आदिकों से सुसंस्कृत किये गये इनके अन्न आदि का भोजन करना चाहिए। स्वभाव से मीठे ये जो दण्ड के समान लम्बे पौंडा और ईख के पेड़ हैं उनको दांतों से अथवा कोल्हू आदि यंत्रों से पीड़ित करके रस निकालना चाहिए और उसका पान करना चाहिए। उन दयालु नाभिराय कुलकर ने हाथी के कुम्भ-स्थल पर थाली आदि अनेक प्रकार के पात्रों को मिट्टी से निर्मापित कराया। तब इनको आदि लेकर और भी अनेक उपायों के बतलाने से प्रसन्नता को प्राप्त हुए प्रजा के लोग उक्त नाभिराय कुलकर का सत्कार करके उसके द्वारा निर्दिष्ट समयोचित आजीविका को करने लगे।

भोगभूमि अवस्था का विनाश होने पर प्रजा के हितैषी होकर उत्पन्न हुए नाभिराय कुलकर उस समय कल्पवृक्ष की अवस्था को प्राप्त हुए। अभिप्राय यह है कि भोगभूमि अवस्था के वर्तमान होने पर जिस प्रकार अभीष्ट सामग्री को देकर कल्पवृक्ष उन प्रजाजनों का साक्षात् उपकार करते थे, उसी प्रकार चूंकि नाभिराय कुलकर ने तब भोगभूमि अवस्था के विनष्ट हो जाने पर उक्त प्रजाजनों को आजीविका के उपाय बतलाकर उनका महान् उपकार किया था, अतएव वे उन्हें कल्पवृक्ष जैसे प्रमाणित हुए। जिन-जिन प्रतिश्रुति आदि कुलकर पुरुषों का पूर्व में क्रम से वर्णन किया गया है वे पूर्व जन्म में विदेह क्षेत्रों के भीतर महान् कुलों में उत्पन्न हुए थे। वे सम्यक्त्व ग्रहण करने के पहिले यथायोग्य पात्रदानादि स्वरूप पुण्यबंधक अनुष्ठानों के द्वारा भोगभूमिजों की आयु को बांधकर और फिर जिन भगवान् के समीप में क्षायिक सम्यक्त्व को ग्रहण करके पूर्वश्रुत के धारी होते हुए आयु के अन्त में यहां उत्पन्न हुए थे। उनमें कितने ही जाति स्मरण से सहित थे और कितने ही अवधि ज्ञानरूपी नेत्र के धारक थे। इसीलिये उन्होंने स्मरण करके प्रजाजनों के लिये इस नियोग का उपदेश दिया था। ये प्रजाजनों की आजीविका के उपाय का मनन करने अर्थात्

जानने के कारण 'मनु' तथा आर्यजनों के कुलों की रचना करने से 'कुलकर' माने गए हैं। इसी प्रकार ये कुलों के धारण करने से 'कुलधर' माने गए हैं, तथा युग के आदि में उत्पन्न होने के कारण 'युगादिपुरुष' भी कहे गए हैं। वृषभदेव तीर्थंकर भी माने गये हैं और कुलकर भी माने गये हैं। भरत राजा चक्रवर्ती भी कहे गए हैं और कुलधर भी।

इनमें से आदि के पांच कुलकर पुरुषों ने अपराध करने वाले पुरुषों के लिये उस समय 'हा' इस प्रकार का दण्ड स्थापित किया था, जिसका अभिप्राय कृत अपराध के प्रति केवल खेद मात्र प्रगट करना या उसका अनौचित्य बतलाना था। आगे के अन्य पांच कुलकरों ने अपराध करने वालों के लिये 'हा-मा' इस प्रकार के दण्ड का उपयोग किया था। इसका अभिप्राय करने वाले अपराध कार्य का अनौचित्य प्रगट करके आगे के लिये उसका निषेध करना था। शेष पांच कुलकर पुरुषों ने उनके लिए 'हा-मा-धिक्' इस प्रकार का दण्ड स्थापित किया था। इसका अभिप्राय कृत कार्य का अनौचित्य प्रगट करके झिड़की देते हुए आगे के लिए उसका निषेध करना था। भरत चक्रवर्ती ने महान् अपराध करने वाले मनुष्यों के लिए ताड़ना करने एवं बन्धन में डालने आदि रूप शारीरिक दण्ड भी नियुक्त किया था।

इन कुलकरों की पहिले जो 'अमम' आदि के प्रमाण से आयु बतलायी गई है उसका निश्चय करने के लिये उन परिभाषाओं का वर्णन किया जाता है - चौरासी लाख ( 8400000 ) वर्षों का एक पूर्वांग होता है। उसको वर्गित करने पर ( $8400000^2$ = 70560000000000 ) एक पूर्व, तथा उसे एक करोड़ से गुणित करने पर एक पूर्वकोटि कहा जाता है। चौरासी से गुणित पूर्व को पर्वांग कहा जाता है और उस पूर्वांग को पूर्वांग से ( 84 लाख ) गुणित करने पर जो संख्या प्राप्त हो वह पर्व मानी जाती है। आगे के संख्या भेदों में भी निराकुल होकर क्रम से इसी गुणाकार विधि की योजना करना चाहिये ( जैसे पर्व को चौरासी ( 84 ) से गुणित करने पर वह नयुतांग तथा इस नयुतांग को चौरासी लाख ( 8400000 ) से गुणित करने पर वह नयुत कहा जाता है, इत्यादि। विशेष के लिये देखिये ति.प.गा. 4, 295-308 ) यहां उन संख्या भेदों के इन नामों का यथाक्रम से निर्देश किया जाता है जिस प्रकार से कि वे प्रवाह स्वरूप से अनादि आगम के पदों में प्रसिद्ध है। पूर्वांग, पूर्व, पर्वांग, पर्व, नयुतांग,

नयुत, कुमुदांग, कुमुद, पद्मांग, पद्म नलिनांग, नलिन, कमलांग, कमल, तूट्यंग, तुटित, अटटांग, अटट, अममांग, अमम, हाहांग, हाहा, हूहू-अंग, हूहू, लतांग, लता, महालतांग, महालता, शिरःप्रकम्पित, हस्तप्रहेलित और अचलात्मक; इस प्रकार की पर्यायों स्वरूप वह काल संख्येय कहा जाता है। इससे आगे के गणना रहित उस काल को असंख्येय काल जानना चाहिए। उपर्युक्त कुलकरों की आयु यथासम्भव इन्हीं भेदों में जानना चाहिये। इस संख्याज्ञान का जानकार पुराण का वेत्ता ( पण्डित ) होता है।

तृतीय काल के अन्त में थोड़ा-सा ही काल शेष रह जाने पर क्रमशः कल्पवृक्षों की फलदान शक्ति के नष्ट हो जाने से मनुष्यों में लोभादि की वृद्धि होती है और इस प्रकार के कर्मभूमि का प्रारम्भ होता है। असि ( शस्त्रधारण ), मसि ( लेखन कार्य ), कृषि ( खेती ), विद्या ( संगीत, नृत्य एवं अध्यापन आदि ), वाणिज्य व्यवहार ( क्रय-विक्रय आदि ) तथा शिल्प ( कारीगरी ), ये कर्मभूमि में महात्मा नाभिराय के द्वारा आजीविका के योग्य छह कर्म कहे गए थे। उस समय अहिंसा आदि गुणों से संयुक्त, त्याग व इन्द्रिय निग्रह के आश्रित; सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्रस्वरूप धर्म बतलाया गया था।

कर्मभूमि का प्रारम्भ होने पर इस पृथिवी पर भगवान् आदिनाथ ने ग्रामाध्यक्ष आदि के व्यवहार के साथ ही पुरों, ग्रामों, आवासों, आकरों एवं पत्तनों की भी रचना की थी। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण और प्रतिनारायण; ये तिरेसठ शलाकपुरुष कर्मभूमियों में उत्पन्न होते हैं; सुषमसुषमा आदि पूर्व के तीन कालों में वे नहीं उत्पन्न होते। चतुर्थ काल के प्रारम्भ में मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि ( 7056 शून्य 17 ) प्रमाण, प्रतिदिन आहार ग्रहण और शरीर की ऊंचाई पांच सौ धनुष प्रमाण होती है। उस काल ( चतुर्थ ) के शरीरों का वर्ण ( द्रव्य लेश्या ) पांच प्रकार का होता है तथा प्रजाजन धर्म एवं अधर्म दोनों में उपस्थित होने पर ही निरत होते हैं, अर्थात् उनमें बहुत-से धर्मात्मा भी होते हैं और बहुत-से पापिष्ठ भी होते हैं। उस समय निकृष्ट पाखण्डी नहीं रहते हैं।

पांचों ही विदेहों में चतुर्थ काल के प्रारम्भ जैसा युग स्थित रहता है। ( पांच भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों में ) क्रमशः बुद्धि व आयु आदि गुणों के हीयमान होने

पर चतुर्थ काल के बाद पंचम काल उपस्थित होता है। उसके प्रारम्भ में शरीर की ऊंचाई सात हाथ और आयु एक सौ बीस वर्ष प्रमाण होती है। इस काल में उत्पन्न हुए मनुष्य रूखे वर्णयुक्त शरीर से संयुक्त होते हुए प्रचुरता से भोजन करने वाले होते हैं। पंचम काल में उत्पन्न हुए मनुष्य प्रायः करके कुण्ठित, लोभी, कृतघ्न, पापिष्ठ, प्रायः करके दुष्ट, रूखे, क्रूर, जड़, मूर्ख, मर्यादा से रहित, अधार्मिक, हिंसा, चोरी एवं असत्य में उद्युक्त ( प्रवर्तमान ), कातर, परनिन्दक, पिशुन, क्रोधी और धूर्त होते हैं। इस काल के मनुष्य विप्लव ( उपद्रव ) को सहने वाले, कृश, रोगों से पीड़ित और बाधाओं से भग्न होते हैं। काल के प्रभाव से वे उस समय किसी रक्षक और भरण-पोषण करने वाले को नहीं पाते हैं। इस काल में ईति, चोर एवं ठग आदि से सहित तथा वर्षा से रहित रूखी पृथ्वी शोभायमान नहीं होती है। उस समय इस पृथिवी के ऊपर व्याधों के द्वारा स्त्रियों का अपहरण किया जाता है। इस काल में व्याल ( सर्प ) कीड़े, मृगादि पशु, व्याध ( शिकारी ), अन्याय व अयोग्य आचरण करने वाले तथा कपटी लोगों के द्वारा प्रजाजनों को मनमाना कष्ट पहुंचाया जाता है।

पंचम काल के अंत में तथा छठे काल के आदि में आयु बीस वर्ष से अधिक तथा मनुष्यों के शरीर दो हाथ ऊंचे एवं धूम के समान श्यामवर्ण होकर कुरूप होते हैं। पंचम काल के अंत में एक ही दिन में क्रम से सूर्योदय के समय ( प्रातःकाल ) में धर्म, मध्याह्न काल में राजशासन तथा सूर्य के अस्त होते समय अग्नि का नाश होता है। लोक के गुरुस्वरूप धर्म के, पिता के समान प्रजा की रक्षा करने वाले राजा के तथा महान् आधारभूत अग्नि के विनष्ट हो जाने पर जगत् अनाथ हो जाता है। तब कालदोष से विनाश को प्राप्त होकर नीच कर्म करने वाले अज्ञानियों में धर्म को छोड़कर पशुवत् आचरण प्रवृत्त होता है। तत्पश्चात् काल के प्रभाव से और प्रजाजनों की पीड़ा से भयानक संवर्तक नामक वायु का प्रादुर्भाव होता है। वह पर्वतों और वृक्षों को चूर्णित करके तथा पृथिवी तलों को भेदकर प्राणियों के लिये भयंकर पीड़ा उत्पन्न करता हुआ दिशाओं में घूमता है। वायु से प्रेरित होकर घूमते हुए वृक्षखण्डों और शिलाभेदों के द्वारा सब ओर प्राणी विलाप करते हुए मूर्च्छा को प्राप्त होते और मरते हैं। इस उपद्रव को देखकर भय को प्राप्त हुए प्राणी विजयार्ध के निकट पहुंचते हैं। उनमें मरने से बचे हुए गंगा-सिंधु नदियों के पास में स्थित वे प्राणी बड़े कष्ट से उन

नदियों के किनारे जाकर बिलों में प्रविष्ट होते हैं। उनमें बहत्तर युगल बीज के समान जीवित रहते हैं। त्रिलोकप्रज्ञप्ति में कहा भी है -

इस समय पृथक्-पृथक् संख्यात जीव तथा युगल के रूप में सम्पूर्ण बहत्तर जीवयुगल गंगा-सिंधु नदियों तथा विजयार्ध पर्वतनों के वनों के मध्य में प्रविष्ट होते हैं। कुछ दयालु देव एवं विद्याधर उक्त मनुष्यों और तिर्यंचों में से संख्यात जीव राशि को पूर्वोक्त प्रदेशों में स्थापित करते हैं।

उस समय क्रम से शीत ( बर्फ ), क्षार, विष, परुष ( पाषाणादि ), अग्नि, धूलि और धूम की वर्षा करने वाले मेघ बरसते हैं। इनमें से एक-एक मेघ क्रम से सात-सात दिन पर्यन्त उपर्युक्त हिम आदि की वर्षा करता है। जो जीव देवों व विद्याधरों के द्वारा सुरक्षित स्थान में पहुंचाये जाते हैं उनको छोड़कर शेष जीव उक्त मेघों के द्वारा अपने पाप के उदय से नाश को प्राप्त होते हैं। काल के प्रभाव से विष एवं अग्नि की वर्षा से निःशेष जली हुई भूमि स्थावर व जंगम ( त्रस ) जीवों के साथ नीचे एक योजन पर्यन्त चूर-चूर हो जाती है। उस काल में यहां तीस के आधे अर्थात् पन्द्रह वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आयु वाले प्राणी मत्स्य, मेंढक और मूल आदि के आहार से जीवित रहते हैं। ऊपर जो ये छहों काल बतलाये गये हैं वे यहां भरत और ऐरावत क्षेत्रों में अवसर्पिणी काल में इसी क्रम से तथा उत्सर्पिणी काल में विपरीत ( अतिदुःषमा व दुःषमा आदि ) क्रम से प्रवर्तमान होते हैं। अवसर्पिणी काल में जो छठा ( अतिदुःषमा ) काल अंत में कहा गया है वही छठा काल उत्सर्पिणी का प्रथम काल होता है। इस प्रकार इन दोनों कालों की गति समझना चाहिये। शेष कालों का भी निर्देश इसी प्रकार से करना चाहिये।

उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ में समस्त लोक का भला करने वाले पुष्कर नामक मेघ प्रगट होकर पूर्वोत्पन्न उष्णता को शान्त करने के लिये सात दिन पर्यन्त बरसते हैं। तत्पश्चात् भूमि को सफेद करने वाले क्षीरमेघ बरसते हैं, अनन्तर चिक्कणता को देने वाले धृतमेघ भी पृथिवी को स्निग्ध कर देते हैं। फिर वे प्रसिद्ध अमृतमेघ भी अमृत के समान जल की वर्षा करके औषधियों को उत्पन्न करते हैं, तत्पश्चात् रसमेघ उन औषधियों में अनेक प्रकार के रस को उत्पन्न करते हुए स्मरण किये गये हैं। उस समय नाना रसों से संयुक्त जल

के द्वारा भूमि मृष्ट ( मधुर ) स्वाद वाली हो जाती है और तब अनेक आकार वाली बेलें, झाड़ियां, लताएं और वृक्ष उत्पन्न होने लगते हैं। जो मनुष्य पहिले गुफाओं और नदियों के आश्रित हुए थे वे सब अब शीतल गन्ध गुण को ग्रहण करते हुए वहां से निकलकर पृथिवी पर आ बसते हैं। उस समय भूमि बढ़ने वाली फलों की उत्पत्ति से संयुक्त हो जाती है। मनुष्य और तिर्यंच भूमि ( मिट्टी ), मूल और फलों का आहार किया करते हैं। तत्पश्चात् पृथिवी के ऊपर धान्य ( गेहूँ व चना आदि ) शीघ्र ही उत्पन्न होने लगता है। उत्सर्पिणी काल में दुःषमा के एक हजार वर्ष शेष रह जाने पर क्रम से पन्द्रह कुलकर पुरुष उत्पन्न होते हैं। त्रिलोकसार में कहा भी है -

उत्सर्पिणी के द्वितीय ( दुःषमा ) काल में एक हजार वर्ष शेष रह जाने पर ये कुलकर उत्पन्न होते हैं - कनक, कनकप्रभ, कनकराय, कनकध्वज, कनकपुंगव; इसी प्रकार से नलिन, नलिनप्रभ, नलिनराय, नलिनध्वज, नलिनपुंगव, पद्म, पद्मप्रभ, पद्मराय, पद्मध्वज, पद्मपुंगव और महापद्म। उन सोलह कुलकरों के द्वारा कुलाचार और अग्नि से भोजन पकाने आदि का प्रारम्भ होने लगता है। इसी उत्सर्पिणी के तृतीय काल में तिरेसठ ( 63 ) शलाकपुरुष उत्पन्न होते हैं। इनमें प्रथम तीर्थंकर भूतपूर्व श्रेणिक राजा का जीव होगा।

उन कुलकरों को आदि लेकर इस पृथिवी पर क्रम से सर्वज्ञ, बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण और चक्रवर्ती भी होते हैं। इस प्रकार ईति से रहित, मर्यादा से सहित, गुणवान् पुरुषों से मण्डित और धर्म-कर्म से संयुक्त यह तीसरा सुकाल भी बीत जाता है। तत्पश्चात् चौथा ( सुषमादुःषमा ), पांचवां सुषमा और छठा दो बार कहा गया सुषमा अर्थात् सुषमासुषमा ये तीन काल क्रम से प्रवर्तमान होते हैं। इस प्रकार उत्सर्पिणी में कालों की प्रवृत्ति मानी गई है।( लोक विभाग, पंचम विभाग )

## अनुच्छेद–3

## लोकाकाश / (विश्व, ब्रह्माण्ड का स्वरुप)

**सव्वायासमणंतं तस्सय बहु-मज्झ-संठियो लोओ।**

**सो केणवि णेव कओ ण य धरिओ हरि-हरा दीहिं।। (115) का. अनु.**

**सर्वाकाशमनन्तं तस्य च बहुमध्यसंस्थितः लोकः।**

**स केनापि नैव कृतः न च धृतः हरिहरादिभिः।।**

यह समस्त आकाश अनन्तप्रदेशी है। उसके ठीक मध्य में भले प्रकार से लोक स्थित है। उसे किसी ने बनाया नहीं है और न हरि, हर आदि उसे धारण ही किये हुए हैं।

लोक का घनफल सात राजू का घन अर्थात् 343 घन राजू-प्रमाण है। अतः आकाश के बहु मध्य भाग में 343 घन राजू क्षेत्र में यह जगत् स्थित है। उसे चारों ओर से घनोदधि, घनवात एवं तनुवात नामक तीन वायु वलय घेरे हुए हैं। वे ही लोक को धारण करती हैं। त्रिलोकसार ग्रंथ में 'बहुमज्झदेसभागम्हि' लिखा है एवं उसका अर्थ किया है - ''आकाश के असंख्यात प्रदेश वाले मध्य भाग में'', क्योंकि लोकाकाश - जितने आकाश में लोक स्थित हैं आकाश का उतना भाग-असंख्यात प्रदेशी है। इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी किया है - 'बहु' अर्थात् ''आठ गौ स्तन के आकार के आकाश के मध्यप्रदेश जिस भाग में पाये जाते हैं, उस भाग में''। आशय यह है कि लोक के ठीक मध्य में सुमेरुपर्वत के नीचे गौ स्तन के आकार आठ प्रदेश स्थित हैं। जिस भाग में वे प्रदेश स्थित हैं, वही लोक का मध्य है एवं जो लोक का मध्य है, वही समस्त आकाश का मध्य है, क्योंकि समस्त आकाश के मध्य में लोक स्थित है एवं लोक के मध्य में वे प्रदेश स्थित हैं। अन्य दार्शनिक मानते हैं कि यह जगत् महेश्वर आदि का बनाया हुआ है एवं विष्णु आदि देवता उसे धारण किये हुए हैं। उनका निराकरण करने के लिए ग्रंथकार कहते हैं कि इस जगत् को न किसी ने बनाया है और न कोई इसे धारण किये हुए है। वह अकृत्रिम है और वायु उसको धारण किये हुए है। त्रिलोकसार में लोक का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है -

**सव्वागाससमणंते तस्स य बहुमज्झदेसभागम्हि।**
**लोगोसंखपदेसो जगसेढिघणप्पमाणो हु।।( 3 )**

सर्व आकाश अनन्तप्रदेशी है, उसके बहुमध्य देश भाग में लोक है। वह असंख्यात प्रदेशी है एवं जगत् श्रेणी के घन प्रमाण से 343 घन राजू हैं।

## लोकाकाश की विशेषता

समस्त आकाश के मध्य में लोकाकाश है, इत्यादि विशेषता का क्या कारण है, यह वर्णन करते हैं।

**अण्णोण्ण-पवेसेण य दव्वाणं अच्छणं हवे लोओ।**
**दव्वाणं णिच्चत्तो लोयस्स वि मुणह णिच्चत्तं।।( 116 )**
**अन्योन्यप्रवेशेन च द्रव्याणाम आसनं भवेत् लोकः।**
**द्रव्याणां नित्यत्वतः लोकस्यापि जानीत नित्यत्वम्।।**

द्रव्यों की परस्पर में एक क्षेत्रावगाह रूप स्थिति को लोक कहते हैं। द्रव्य नित्य है, अतः लोक को भी नित्य जानो।

जितने आकाश में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल - ये छहों द्रव्य पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं। छहों द्रव्य अनादि एवं अनन्त हैं। अतः लोक को भी अनादि व अनन्त जानना चाहिये। त्रिलोकसार में भी लिखा है -

**लोगो अकिट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।**
**जीवाजीवेहिं फुढो सव्वागासवयवोणिच्चो।।( 4 )**

लोक अकृत्रिम है, अनादि अनन्त है, स्वभाव से निष्पन्न है, जीव-अजीव द्रव्यों से भरा हुआ है, समस्त आकाश का अंग है और नित्य है।

## लोक की परिणमनशीलता के कारण

ननु यदि लोकस्य सर्वथा नित्यत्वं तर्हि स्याद्वादमत भंगः स्यात् इति वदन्तं प्रति प्राह -

यदि लोक सर्वथा नित्य है तो स्याद्वाद मत का भङ्ग होता है, क्योंकि स्याद्वादी किसी भी वस्तु को सर्वथा नित्य नहीं मानते हैं। इसका उत्तर -

**परिणाम-सहावादो पडिसमयं परिणमंति दव्वाणि।**
**तेसिं परिणामादो लोयस्स वि मुणह परिणामं।।( 117 )**
**परिणामस्वभावतः प्रतिसमयं परिणमन्ति द्रव्याणि।**
**तेषां परिणामात् लोकस्यापि जानीत परिणामम्।।**

परिणमन करना वस्तु का स्वभाव है अतः द्रव्य प्रतिसमय परिणमन करते हैं। उनके परिणमन से लोक का भी परिणमन जानो।

जो पर्यायों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं या पर्यायों को प्राप्त करते हैं, उन्हें द्रव्य कहते हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल इन छहों द्रव्यों में

उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य रूप से प्रतिसमय परिणमन होता रहता है। प्रतिसमय छहों द्रव्यों की पूर्व पूर्व पर्याय नष्ट होती हैं, उत्तर उत्तर पर्याय उत्पन्न होती है एवं द्रव्यता ध्रुव रहती है। इस तरह भूत, भविष्यत् एवं वर्तमानकाल में अनन्त पर्याय रूप से परिणमन करना द्रव्य का स्वभाव है। जो इस तरह परिणमनशील नहीं है, वह कभी सत् हो ही नहीं सकता। अतः नित्य होने पर भी जीव, पुद्गल आदि द्रव्य अनेक स्वभाव पर्याय तथा विभाव पर्याय रूप से प्रतिसमय परिणमन करते रहते हैं। परिणमन करना उनका स्वभाव है। स्वभाव के बिना कोई वस्तु स्थिर रह ही नहीं सकती। उन्हीं परिणामी द्रव्यों के समुदाय को लोक कहते हैं। अतः जब द्रव्य परिणमनशील है तो उनके समुदाय रूप लोक का परिणामी होना सिद्ध ही है, अतः द्रव्यों की तरह लोक को भी परिणामी नित्य जानना चाहिये। गो. जीवकाण्ड में द्रव्यों की स्थिति बतलाते हुए लिखा है –

**एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया विणयपज्जया चावि।**
**तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं।।( 551 )**

एक द्रव्य में त्रिकाल सम्बन्धी जितनी अर्थ पर्याय एवं व्यंजन पर्याय हैं, उतना ही द्रव्य है। अर्थात् त्रिकालवर्ती पर्यायों को छोड़कर द्रव्य कोई चीज नहीं है।

शंका - जो नित्य है, वह अनित्य किस प्रकार हो सकता है? नित्यता व अनित्यता में परस्पर में विरोध है।

उत्तर - वस्तु अनेक धर्मात्मक होती है, क्योंकि वह सत् है। यदि एक वस्तु में उन अनेक धर्मों को अपेक्षा भेद के बिना यों ही मान लिया जाये तो उनमें विरोध हो सकता है। किन्तु भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से विरोधी दिखाई देने वाले धर्म भी एक स्थान पर बिना किसी विरोध के रह सकते हैं। जैसे पिता, पुत्र, भ्राता, जामाता आदि लौकिक सम्बन्ध परस्पर में विरोधी प्रतीत होते हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न सम्बन्धियों की अपेक्षा से यह सभी सम्बन्ध एक ही मनुष्य में पाये जाते हैं। एक ही मनुष्य अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र है, अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता है, अपने भाई की अपेक्षा से भ्राता है एवं अपने श्वसुर की अपेक्षा से जामाता है। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य द्रव्य रूप से नित्य है, क्योंकि द्रव्य का कभी भी नाश नहीं होता किन्तु प्रतिसमय उसमें परिणमन होता रहता है, जो पर्याय एक समय में होती है, वही पर्याय दूसरे समय में नहीं होती, जो दूसरे समय में होती है वह तीसरे समय में नहीं होती, अतः पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। पर्याय दो प्रकार की होती है, एक व्यंजन पर्याय और दूसरी अर्थ

पर्याय। इन दोनों प्रकारों के भी दो-दो भेद होते हैं - स्वभाव एवं विभाव। जीव द्रव्य की नर, नारक आदि पर्याय विभाव व्यंजन पर्याय है एवं पुद्गल द्रव्य की शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, खण्ड, अन्धकार, छाया, धूप, चाँदनी आदि पर्याय विभाव व्यंजन पर्याय है।

प्रदेशत्व गुण के विकार को व्यंजन पर्याय एवं अन्य शेष गुणों के विकार को अर्थ पर्याय कहते हैं तथा जो पर्याय परसम्बन्ध के निमित्त से होती है उसे विभाग, तथा जो परसम्बन्ध के निमित्त के बिना स्वभाव से ही होती है, उसे स्वभाव पर्याय कहते हैं। हम चर्मचक्षुओं से जो कुछ देखते हैं, वह सब विभाव व्यंजन पर्याय है।

सारांश यह है कि द्रव्यों के समूह का ही नाम लोक है। द्रव्य नित्य है, अतः लोक भी नित्य है। द्रव्य परिणामी है, अतः लोक भी परिणामी है।

## लोक का आकार

**सत्तेक्क-पंच इक्का मूले मज्झे तहेव बंभंते।**
**लोयंते रज्जूओ पुव्वावरदो य वित्थारो।।( 118 )**
**सप्तैकपञ्चैकाः मूले मध्ये तथैव ब्रह्मान्ते।**
**लोकान्ते रज्जवः पूर्वापरतश्च विस्तारः।।**

पूरब-पश्चिम दिशा में लोक का विस्तार मूल में अर्थात् अधोलोक के नीचे सात राजू है। अधोलोक से ऊपर क्रमशः घटकर मध्यलोक में एक राजू का विस्तार है। पुनः क्रमशः बढ़कर ब्रह्मलोक स्वर्ग के अन्त में पाँच राजू का विस्तार है। पुनः क्रमशः घटकर लोक के अन्त में एक राजू का विस्तार है।

लोक पुरुषाकार है। कोई पुरुष दोनों पैर फैलाकर और दोनों हाथों को कटिप्रदेश के दोनों ओर रखकर यदि खड़ा हो तो उसका जैसा आकार होता है, वैसा ही आकार लोक का जानना चाहिये। अतः पुरुष का आकार लोक के समान कल्पना करके उसका पूरब-पश्चिम विस्तार इस प्रकार जानना चाहिये। पञ्जों के अन्तराल का विस्तार सात राजू है। कटिप्रदेश का विस्तार एक राजू है। दोनों हाथों का - एक कोनी से लेकर दूसरी कोनी तक का - विस्तार पाँच राजू है तथा ऊपर, शिरोदेश का विस्तार एक राजू है।

## लोक का दक्षिण–उत्तर में विस्तार

**अथ दक्षिणोत्तरतः कियन्मात्र इत्युक्तेप्राह –**

अब लोक का दक्षिण-उत्तर में विस्तार कहते हैं।

**दक्खिण-उत्तरदो पुण सत्त वि रज्जू हवंति सव्वत्थ।**
**उड्ढं चउद्दह रज्जू सत्त वि रज्जू घणो लोओ।।( 119 )**
**दक्षिणोत्तरतः पुनः सप्तापि रज्जवः भवन्ति सर्वत्र।**
**ऊर्ध्वः चतुर्दश रज्जवः सप्तापि रज्जवः घनः लोकः।।**

दक्षिण-उत्तर दिशा में सब जगह लोक का विस्तार सात राजू है। ऊँचाई चौदह राजू है एवं क्षेत्रफल सात राजू का घन अर्थात् 343 घन राजू है।

पूरब-पश्चिम दिशा में जैसा घटता बढ़ता विस्तार है, वैसा दक्षिण-उत्तर दिशा में नहीं है। दक्षिण-उत्तर दिशा में सब जगह सात राजू विस्तार है तथा लोक की नीचे से ऊपर तक ऊँचाई चौदह राजू है और लोक का घनफल सात राजू घन है। तीन समान राशियों को परस्पर में गुणा करने से घन आता है। अतः सात राजू का घन 7x7x7=343 घन राजू होता है। इस क्षेत्र/( घन ) फल की रीति निम्न प्रकार है। पहिले अधोलोक का क्षेत्रफल/( घनफल ) निकालते हैं। त्रिलोकसार में कहा है कि –

**जोगदले पदगुणिदे फलं घणो वेधगुणिदफलं।( 114 )**

मुख और भूमि को जोड़कर उसका आधा करो एवं उस आधे को पद से गुणा कर दो तो क्षेत्रफल होता है और क्षेत्रफल को ऊँचाई से गुणा करने पर घन फल होता है। इस रीति के अनुसार मुख 1 राजू, भूमि 7 राजू, दोनों को जोड़कर 7+1=8 का आधा करने से 4 होते हैं। इस 4 राजू को पद-दक्षिण उत्तर विस्तार 7 राजू से गुणा करने पर 4x7=28 राजू क्षेत्रफल होता है एवं इस क्षेत्रफल को अधोलोक की ऊँचाई सात राजू से गुणा करने पर 28x7=196 राजू अधोलोक का घनफल होता है। इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक का भी घनफल निकाल लेना चाहिये। अर्थात् मुख 1 राजू, भूमि 5 राजू, दोनों का जोड़ 6 राजू, उसका आधा 3 राजू, इस 3 राजू को पद 7 राजू से गुणा करने पर 7x3=21 राजू आधे ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल होता है। इसे ऊँचाई साढ़े तीन राजू से गुणा करने पर 21x7/2=147/2 राजू आधे ऊर्ध्वलोक का घनफल होता है। इसको दूना कर देने से 147 राजू पूरे ऊर्ध्वलोक का घनफल होता है। अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के घनफलों को जोड़ने से 196+147=343 घन राजू पूरे लोक का घनफल होता है। गाथा में आये क्षेत्रफल शब्द से घन क्षेत्रफल ही समझना चाहिये।

## तीनों लोकों की ऊँचाई

**अथ त्रिलोकस्योद्यं विभजति -**

तीनों लोकों की ऊँचाई का विभाग करते हैं -

**मेरुस्स हिट्ठ-भाए सत्त वि रज्जू हवेइ अह-लोओ।**
**उड्ढमि उड्ढ-लोओ मेरु-समो मज्झिमो लोओ।।( 120 )**
**मेरोः अधोभागे सप्तापि रज्जवः भवति अधोलोकः।**
**ऊर्ध्वे ऊर्ध्वलोकः मेरुसमः मध्यमः लोकः।।**

मेरुपर्वत के नीचे सात राजू प्रमाण अधोलोक है। ऊपर ऊर्ध्वलोक है। मेरु प्रमाण मध्यलोक है।

'मेरु' शब्द का अर्थ 'माप करने वाला' होता है। जो तीनों लोकों का माप करता है, उसे मेरु कहते हैं।

**''लोकत्रयं मिनातीति मेरुरिति।''( राजवार्तिक, पृ. 127 )**

जम्बूद्वीप के बीच में एक लाख योजन ऊँचा मेरुपर्वत स्थित है। वह एक हजार योजन पृथ्वी के अन्दर है तथा 99 हजार योजन बाहर।

जम्बूद्वीपे महामन्दरो योजनसहस्रावगाहो भवति नवनवतियोजन सहस्रोच्छ्रायः। तस्याधस्तादधोलोकः। बाहुल्येन तत्प्रमाणः र्तियक् प्रसृतस्तिर्यग्लोकः। तस्योपरिष्टादूर्ध्वलोकः। मेरुचूलिका चत्वारिंश-द्योजनोच्छ्राया तस्या उपरिकेशान्तरमात्रे व्यवस्थित मृजुविमानमिन्द्रकं सौधर्मस्य।( सवार्थसिद्धि पृ. 157 )

उसके ऊपर 40 योजन की चूलिका है। रत्नप्रभा नाम की पहली पृथिवी के ऊपर यह स्थित है। इस पृथिवी के नीचे शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्-कप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा एवं महातमप्रभा नाम की छह पृथिवियाँ और हैं। सातवीं पृथिवी के नीचे 1 राजू में निगोद स्थान है। ये सभी पृथिवियाँ घनोदधि, घनवात एवं तनुवात नाम के तीन वातवलयों से वेष्टित हैं। मेरु से नीचे का सात राजू प्रमाण यह सब क्षेत्र, अधोलोक कहलाता है तथा ऊपर सौधर्म स्वर्ग के ऋजु विमान के तल से लेकर लोक के शिखरपर्यन्त सात राजू क्षेत्र को ऊर्ध्वलोक कहते हैं।( मेरुपर्वत की चूलिका एवं ऋजुविमान में एक बाल मात्र का अन्तर है )। सोलह स्वर्ग,नौ ग्रैवेयक, पाँच अनुत्तर तथा सिद्धशिला, ये सब ऊर्ध्वलोक में सम्मिलित है तथा अधोलोक एवं ऊर्ध्वलोक के बीच में

सुमेरुपर्वत के तल से लेकर उसकी चूलिका पर्यन्त एक लाख चालीस योजन प्रमाण ऊँचा क्षेत्र मध्यलोक कहलाता है।

शंका - लोक की ऊँचाई चौदह राजू बतलाई है। उसमें सात राजू प्रमाण अधोलोक बताया है एवं सात राजू प्रमाण ऊर्ध्वलोक बताया है। ऐसी दशा में मध्यलोक की ऊँचाई एक लाख चालीस योजन अधोलोक में सम्मिलित है या ऊर्ध्वलोक में या दोनों से पृथक् ही है ?

उत्तर - मेरुपर्वत के तल से नीचे सात राजू प्रमाण अधोलोक है तथा तल से ऊपर सात राजू प्रमाण ऊर्ध्वलोक है। अतः मध्यलोक की ऊँचाई ऊर्ध्वलोक में सम्मिलित है। सात राजू की तुलना में एक लाख योजन ऐसे ही है, जैसे पर्वत की तुलना में राई। अतः उन्हें अलग नहीं किया है। यथार्थ में ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई एक लाख चालीस योजन कम सात राजू जाननी चाहिये।

## लोक शब्द की निरुक्ति

लोकशब्दस्य निरुक्तिमाह -

लोक शब्द की निरुक्ति कहते हैं -

**दीसंति जत्थ अत्था जीवदीया स भण्णदे लोओ।**
**तस्स सिहरम्मि सिद्धा अंत-विहीणा विरायंते।।( 121 )**
**दृश्यन्ते यत्र अर्थाः जीवादिकाः स भण्यते लोकः।**
**तस्य शिखरे सिद्धाः अन्तविहीना विराजन्ते।।**

जहाँ पर जीव आदि पदार्थ देखे जाते हैं, उसे लोक कहते हैं। उसके शिखर पर अनन्त सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं।

'लोक' शब्द 'लुक' धातु से बना है, जिसका अर्थ देखना होता है। अतः जितने क्षेत्र में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये छहों द्रव्य देखे जाते हैं, उसे लोक कहते हैं।

''धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोकः।''( सर्वार्थ., पृ. 176 )

लोक के मस्तक पर तनुवातवलय में कर्म और नोकर्म से रहित तथा सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से सहित सिद्धपरमेष्ठी विराजमान हैं। जो अन्तरहित - अविनाशी हैं अथवा जो अन्तरहित-अनन्त हैं।

## जीवों से भरा हुआ विश्व

अत्र च कैः कैर्जीवैर्भृतो लोक इति चेदुच्यते -

जिन जीवों से यह लोक भरा हुआ है, उन्हें बतलाते हैं -

**एइंदिएहिं भरिदो पंच-पयारेहिं सव्वदो लोओ।**
**तस-णाडीए वि तसाण बाहिरा होंति सव्वत्थ।।( 122 )**
**एकेन्द्रियैः भृतः पञ्चप्रकारैः सर्वतः लोकः।**
**त्रसनाड्याम् अपि त्रसा न बाह्या भवन्ति सर्वत्र।।**

यह लोक पांच प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों से सर्वत्र भरा हुआ है। किन्तु त्रसजीव त्रसनाली में ही होते हैं, उसके बाहर सर्वत्र नहीं होते।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक, ये पांच प्रकार के एकेन्द्रिय जीव 343 घन राजू प्रमाण सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं। किन्तु त्रस अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय एवं पञ्चेन्द्रिय जीव त्रसनाली में ही पाये जाते हैं। उदूखल ( कोशकारों ने उदूखल का अर्थ ओखली एवं जूगुलवृक्ष किया है। यहां वृक्ष लेना सही प्रतीत होता है, क्योंकि त्रिलोकप्रज्ञप्ति तथा त्रिलोकसार में त्रसनाली की उपमा वृक्ष के सार अर्थात् छाल आदि के मध्य में रहने वाली लकड़ी से दी है ) के बीच में छेद कर के उसमें रखी हुई बाँस की नली के समान लोक के मध्य में चौकोर त्रसनाली है। उसी में त्रसजीव रहते हैं।

**उववाद मारणंतिय परिणद तस मुज्झिऊण सेस तसा।**
**तसणालि बाहिरम्हि य णत्थि ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।( 192 ) गो.जी.**

उपपाद तथा मारणान्तिक समुद्धात के सिवाय त्रसजीव उससे बाहर नहीं रहते हैं, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

त्रसनाली से बाहर का कोई एकेन्द्रिय जीव त्रसनामकर्म का बन्ध करके, मृत्यु के पश्चात् त्रसनाली में जन्म लेने के लिए गमन करता है, तब उसके त्रस

नाम कर्म का उदय होने के कारण उपपाद की अपेक्षा से त्रसजीव त्रसनाली के बाहर पाया जाता है तथा जब कोई त्रसजीव त्रसनाली से बाहर एकेन्द्रिय पर्याय में जन्म लेने से पहिले मारणान्तिक समुद्धात करता है, तब त्रस पर्याय में होते हुए भी उसकी आत्मा के प्रदेश त्रसनाली के बाहर पाये जाते हैं।। ''ण बाहिरा होंति सव्वत्थ'' के स्थान में ''ण बादरा होंति सव्वत्थ'' ऐसा भी पाठ है। इसका अर्थ होता है कि बादर जीव अर्थात् स्थूल पृथिवीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीव तथा त्रसजीव सर्वलोक में नहीं रहते हैं। क्योंकि जीवकाण्ड में लिखा है - ''आधारे थूलाओ'' ( 193 ) - ''स्थूल जीव आधार से ही रहते हैं।''

शंका - क्या त्रसनाली में सर्वत्र त्रसजीव रहते हैं ?

उत्तर - त्रसनाली में त्रसजीव रहते हैं, यह सामान्य कथन है। त्रिलोकप्रज्ञप्ति में इसका विशेष कथन किया है -

**लोयबहुमज्झदेसे तरुम्भि सारं व रज्जुपदरजुदा।**
**तेरस रज्जुत्सेहा किंचूणा होदि तसणाली।।( 6 ) द्वि.अधि.**

उसमें कहा है - ''वृक्ष में उसके सार की तरह, लोक के ठीक मध्य में एक राजू लम्बी, एक राजू चौड़ी एवं कुछ कम तेरह राजू ऊँची त्रसनाली है।''

शंका - त्रसनाली को कुछ कम तेरह राजू ऊँची कैसे कहा है ?

उत्तर - सातवी महातमः प्रभा नाम की पृथिवी आठ हजार योजन की मोटी है ( देखो त्रिलोकसार गाथा 174 की टीका )। उसके ठीक मध्य में नारकियों के श्रेणीबद्ध बिल बने हुए हैं। उन बिलों की मोटाई 4/3 योजन है। इस मोटाई की समच्छेद करके पृथिवी की मोटाई में घटाने से 2400/3 - 4/3 = 23996/3 योजन शेष बचता है। इसका आधा 11998/3 योजन होता है। भाग देने पर 3999 1/3 योजन आते हैं। इतने योजनों के 31994666 2/3 धनुष होते हैं। यह तो नीचे की गणना हुई। अब ऊपर की लीजिये। सर्वार्थ सिद्धि विमान से ऊपर 12 योजन पर ईषत्प्राग्भार नाम की आठवीं पृथिवी है। जो आठ योजन मोटी है। त्रिलोकसार में कहा है -

**तिहुवणमुड्ढारूढा ईसिपभारा धरट्ठमी रुंदा।**

**दिग्धा इगिसगरज्जू अडजोयण पमिदवाहल्ला।।( 566 )**

''तीनों लोकों के मस्तक पर आरूढ़ ईषत्प्राग्भार नाम की आठवीं पृथिवी है। उसकी चौड़ाई एक राजू, लम्बाई 7 राजू एवं मोटाई आठ योजन है।'' 12 योजन के 96000 धनुष होते हैं तथा आठवीं पृथिवी के 8 योजन के 64000 धनुष होते हैं।

**कोसाणं दुगमेक्कं देसूणेक्कं च लोय सिहरम्मि।**

**ऊणधणूण पमाणं पणुवीसज्झ हियचारिसयं।।( 126 )त्रि.सार**

''लोक के शिखर पर तीनों वातवलयों का बाहुल्य दो कोस, एक कोस एवं कुछ कम एक कोस है। कुछ कम का प्रमाण 425 धनुष है।'' अतः तीनों वातवलयों का बाहुल्य 4000+2000+1575=7575 धनुष होता है, क्योंकि एक कोस के 2000 धनुष होते हैं। उसके ऊपर तीनों वातवलयों की मोटाई 7575 धनुष है। इन सब धनुषों का जोड़ 32162241 2/3 धनुष होता है।

**ऊणपमाणं दंडा कोडितियं एक्कवीस लक्खाणं।**

**वासट्ठि च सहस्सा दुसमा इगिदाल दुतिभाया।।( 7 )त्रि.प्रज्ञ.**

कम धनुषों का प्रमाण 32162241 2/3 है। इतने धनुष कम तेरह राजू प्रमाण त्रसनाली में त्रसजीव रहते हैं। सारांश यह है कि लोक की ऊँचाई 14 राजू है। इतनी ही ऊँचाई त्रसनाली की है। उसमें से सातवें नरक के नीचे एक राजू में निगोदिया जीव ही रहते हैं। अतः एक राजू कम होने से 13 राजू रहते हैं। उनमें भी सातवीं पृथ्वी के मध्य में ही नारकी रहते हैं। नीचे के 3999 1/3 योजन प्रमाण पृथ्वी में कोई त्रस नहीं रहता है तथा ऊर्ध्वलोक में सर्वार्थसिद्धि विमान तक ही त्रसजीव रहते हैं। सर्वार्थसिद्धि से ऊपर के क्षेत्र में कोई त्रसजीव नहीं रहता है। अतः सर्वार्थसिद्धि से लेकर आठवीं पृथ्वी तक का अन्तराल 12 योजन, आठवीं पृथ्वी की मोटाई 8 योजन तथा आठवीं पृथ्वी के ऊपर 7575 धनुष प्रमाण क्षेत्र त्रसजीवों से शून्य है। अतः नीचे और ऊपर के उक्त धनुषों से कम 13 राजू प्रमाण त्रसनाली में त्रसजीव जानने चाहिये।

## सब द्रव्यों में श्रेष्ठतम है जीव

अथ सर्वेषु द्रव्येषु जीवस्य परमतत्त्वं निगदति –
आगे कहते हैं कि सब द्रव्यों में जीव ही परम तत्त्व है –

**उत्तम-गुणाण धामं सव्व दव्वाण उत्तमं दव्वं।**
**तच्चाण परम-तच्चं जीवं जाणेह णिच्छयदो।।( 204 )**

जीव ही उत्तम गुणों का धाम है, सब द्रव्यों में उत्तम द्रव्य है तथा सब तत्त्वों में परम तत्त्व है, यह निश्चय से जानो।

निश्चय नय से अपनी आत्मा को जानो। यह आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख, अनन्तवीर्य आदि गुणों का, अथवा सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व, वीर्य व अव्याबाध इन आठ गुणों का, अथवा चौरासी लाख गुणों का, अथवा अनन्त गुणों का आधार है। सब द्रव्यों में यही उत्तम द्रव्य है, क्योंकि अजीव द्रव्य - धर्म, अधर्म, काल, आकाश तथा पुद्गल तो जड़ है, अचेतन हैं किन्तु जीव द्रव्य चेतन है, वह वस्तुओं का प्रकाशक अर्थात् जानने देखने वाला है क्योंकि उसका लक्षण उपयोग है। इसी से जीव द्रव्य ही सर्वोत्तम है तथा जीव ही सब तत्त्वों में परम-तत्त्व है।

## जीव ही उत्तम व परम तत्त्व क्यों ?

जीवस्यैवोत्तम द्रव्यत्व परमत्वं कथमिति चेदाह –
आगे कहते हैं कि जीव ही उत्तम व परमतत्त्व क्यों हैं ?

**अंतर-तच्चं जीवो बाहिर-तच्चं हवंतिसेसाणि।**
**णाण-विहीणं दव्वं हियाहियं णेय जाणेदि।।( 205 )**
**अन्तस्तत्त्वं जीवः बाह्यतत्त्वं भवन्ति शेषाणि।**
**ज्ञानविहीनं द्रव्यं हिताहितं नैव जानाति।।**

जीव ही अन्तस्तत्त्व है, शेष सर्व बाह्य तत्त्व हैं। वे बाह्य तत्त्व ज्ञान से रहित हैं अतः वे हित अहित को नहीं जानते।

आत्मा अभ्यन्तर तत्त्व है, इसके अतिरिक्त के अजीव, आस्रव, बन्ध आदि पुत्र, मित्र, स्त्री, शरीर, मकान आदि चेतन और अचेतन द्रव्य बाह्य तत्त्व हैं। एक जीव ही ज्ञानवान् है शेष सब द्रव्य अचेतन होने के कारण ज्ञान से शून्य हैं।

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल द्रव्य हित-अहित, हेय-उपादेय, पुण्य-पाप, सुख-दुःख आदि को नहीं जानते। अतः शेष सब द्रव्यों के अज्ञस्वभाव होने से एवं जीव के ज्ञान स्वभाव होने से जीव ही उत्तम हैं। परमात्म प्रकाश में कहा भी है - ''जो आत्म पदार्थ से भिन्न जड़ पदार्थ है, उसे परद्रव्य जानो तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं पाँचवा काल द्रव्य ये सब परद्रव्य जानो।''

## पुद्गल द्रव्य का स्वरुप

**सव्वो लोयायासो पुग्गल देव्वेहिँ सव्वदो भरिदो।**
**सुहूमेहिँ बायरेहि य णाणा-विह-सत्ति-जुत्तेहिं।।( 206 )**
**सर्वः लोकाकाशः पुद्गलद्रव्यैः सर्वतः भृतः।**
**सूक्ष्मैः बादरैः च नानाविधशक्ति युक्तैः।।**

अनेक प्रकार की शक्ति से सहित सूक्ष्म और पुद्गल द्रव्यों से समस्त लोकाकाश पूरी तरह भरा हुआ है।

यह लोकाकाश जगतश्रेणी के घनरूप अर्थात् 343 राजू प्रमाण है। सो यह पूरा का पूरा लोकाकाश शरीर आदि अनेक कार्य करने की शक्ति से युक्त तेईस प्रकार की वर्गणा रूप पुद्गल द्रव्यों से, जो सूक्ष्म भी है और स्थूल भी हैं, भरा हुआ है। उन पुद्गलों के सूक्ष्म और बादर भेद इस प्रकार कहे हैं - ''जिनवर देव ने पुद्गल द्रव्य के छः भेद बतलाये हैं - पृथ्वी, जल, छाया, चक्षु के सिवा शेष चार इन्द्रियों का विषय, कर्म और परमाणु। इनमें से पृथ्वीरूप पुद्गल द्रव्य बादर बादर है; क्योंकि जो छेदा भेदा जा सके तथा एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सके उसे बादर बादर कहते हैं। जल बादर है; क्योंकि जो छेदा भेदा तो न जा सके किन्तु एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सके उसे बादर कहते हैं। छाया बादर सूक्ष्म है; क्योंकि जो न छेदा भेदा जा सके और न एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सके, उसे बादर सूक्ष्म कहते हैं। चक्षु के सिवा शेष इन्द्रियों का विषय जो बाह्य द्रव्य है, जैसे, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द ये सूक्ष्म बादर हैं। कर्म सूक्ष्म हैं; क्योंकि जो द्रव्य देशावधि और परमावधि का विषय होता है वह सूक्ष्म है और परमाणु सूक्ष्म सूक्ष्म है; क्योंकि

सर्वावधि ज्ञान का विषय है।'' और भी कहा है - ''जो सब तरह से पूर्ण होता है उस पुद्गल को स्कन्ध कहते हैं। स्कन्ध के आधे भाग को देश कहते हैं और उस आधे के भी आधे भाग को प्रदेश कहते हैं तथा जिसका दूसरा भाग न हो सके उसे परमाणु कहते हैं। अर्थात् जो आदि और अन्त विभाग से रहित हो, यानी निरंश हो, स्कन्ध का उपादान कारण हो यानी जिसके मेल से स्कन्ध बनता हो और जो इन्द्रिय गोचर न हो, उसे अखण्ड अविभागी द्रव्य को परमाणु कहते हैं। आचार्य नेमीचन्द्र वगैरह ने पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् विकास इस प्रकार कहे हैं - ''शब्द, बन्ध, सौक्ष्म्य, स्थौल्य, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत थे, पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं। इन पर्यायों का विस्तृत वर्णन करते हैं। शब्द के दो भेद हैं - भाषात्मक और अभाषात्मक। भाषात्मक शब्द के भी दो भेद हैं - अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक। संस्कृत भाषा, प्राकृत भाषा, अपभ्रंस भाषा, पैशाचिक भाषा आदि के भेद से अक्षरात्मक शब्द अनेक प्रकार का है, जो आर्य और म्लेच्छ मनुष्यों के व्यवहार में सहायक होता है। दो इन्द्रिय आदि तिर्यंच जीवों में तथा सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में अनक्षरात्मक भाषा का व्यवहार होता है। अभाषात्मक शब्द भी प्रायोगिक और वैस्रसिक के भेद से दो प्रकार का है। जो शब्द पुरुष के प्रयत्न करने पर उत्पन्न होता है उसे प्रायोगिक कहते हैं। उसके चार भेद हैं - तत, वितत, घन और सुषिर। वीणा वगैरह के शब्द को तत कहते हैं। ढोल वगैरह के शब्दों को वितत कहते हैं। काँसे के बाजे के शब्द को घन कहते हैं और बांसुरी वगैरह के शब्द को सुषिर कहते हैं। जो शब्द स्वभाव से ही होता है उसे वैस्रसिक कहते हैं। स्निग्ध और रूक्ष गुण के निमित्त से जो बिजली, मेघ, इन्द्रधनुष आदि बन जाते हैं, उनके शब्द को वैस्रसिक कहते हैं जो अनेक प्रकार का होता है। इस प्रकार शब्द पुद्गल का ही विकार है। अब बन्ध को कहते हैं। मिट्टी के पिण्ड आदि रूप से जो अनेक प्रकार का बन्ध होता है, वह केवल पुद्गल पुद्गल का बन्ध है। कर्म और नोकर्म रूप में जो जीव और पुद्गल सयोगरूप बन्ध होता है, वह द्रव्य बन्ध है और रागद्वेष आदि रूप में भाव बन्ध होता है। बेर वगैरह की अपेक्षा बेल वगैरह सूक्ष्म होते हैं और सबसे सूक्ष्म परमाणु होता है। बेर वगैरह की अपेक्षा बेल वगैरह स्थूल होता है और सबसे स्थूल जगतव्यापी महास्कन्ध होता है। जीवों के समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान और हुण्डक संस्थान के भेद से जो

छः प्रकार का संस्थान होता है वह पौद्गलिक है। इसके सिवा तिकोर, चौकोर आदि भेद से मेघपटल वगैरह में बनने वाले अनेक प्रकार के व्यक्त और अव्यक्त आकार भी पुद्गल के ही संस्थान हैं। भेद के छः प्रकार हैं - उत्कर, चूर्ण, खण्ड, चूर्णिका, प्रतर और अणु चटन। लकड़ी को आरे से चीरने पर जो बुरादा झड़ता है वह उत्कर है। जौ, गेहूँ वगैरह के आटे और सत्तु वगैरह को चूर्ण कहते हैं। घड़े के ठीकरों को खण्ड कहते हैं। उड़द मूंग वगैरह के छिलकों को चूर्णिका कहते हैं। मेघपटल को प्रतर कहते हैं। तपाये हुए लोहे को हथोड़े से पीटने पर जो फुलिंग निकलते हैं, उन्हें अणुचटण कहते हैं। दृष्टि को रोकने वाले अंधकार को तम कहते हैं। वृक्ष वगैरह का आश्रय पाकर प्रकाश का आवरण होने से जो प्रतिकृति पड़ती है, उसे छाया कहते हैं। वह छाया दो प्रकार की होती है। एक तो मनुष्य आदि का प्रतिबिम्ब रूप और एक जैसा मनुष्य का रूप रंग वगैरह हो हूबहू वैसी ही। चन्द्रमा के विमानों में और जुगुनू आदि तिर्यंच जीवों में उद्योत पाया जाता है अर्थात् चन्द्रमा का और जुगुनू आदि का जो प्रकाश होता है उसे उद्योत कहते हैं। सूर्य के विमान में तथा सूर्यकान्तमणि आदि पृथ्वीकाय में आतप पाया जाता है। अर्थात् इनका जो प्रकाश होता है, उसे आतप कहते हैं।

## पुद्गल का विशेष स्वरुप एवं संख्या

**जं इंदिएहिं गिज्झं रूवं-रस-गंध-फास-परिणामं।**
**तं चिय पुग्गल-दव्वं अणंत-गुणं जीव-रसीदो।।( 207 )**
**यत् इन्द्रियैः ग्राह्यं रूपरसगंधस्पर्श परिणामम्।**
**तत् एव पुद्गलद्रव्यम् अनन्तगुणं जीवराशिम्।।**

जो रूप, रस, गंध और स्पर्श परिणाम वाला होने के कारण इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य होता है, वह सब पुद्गल द्रव्य है। उनकी संख्या जीवराशि से अनन्तगुणी है।

अब ग्रन्थकार पुद्गलद्रव्य का अस्तित्व और ग्रहण होने की योग्यता

बतलाते हैं - 'इसी तरह पुद्गल द्रव्य को जानो' यह वाक्य ऊपर से लेना चाहिये। पुद्गलद्रव्य स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण किये जाने के योग्य होता है; क्योंकि उसमें रूप, रस, गंध और स्पर्श पाया जाता है। इस गाथा में 'रूपरसगंधफासपरिणामं' यह प्रथमा विभक्ति हेतु के अर्थ में है क्योंकि जैनेन्द्र व्याकरण में हेतु के अर्थ में प्रथमा विभक्ति होने का कथन है। जैसे किसी ने कहा - 'गुरवो राजभाषा न भक्षणीयाः।' अर्थात् गरिष्ठ उड़द नहीं खाना चाहिये। इसका आशय यह है कि उड़द नहीं खाना चाहिये क्योंकि वे गरिष्ठ होते हैं, कठिनता से हजम होते हैं। इस वाक्य में 'गुरवः' प्रथमा विभक्ति का रूप है किन्तु वह हेतु के अर्थ में है। इसी तरह यहाँ भी जानना चाहिये कि पुद्गलद्रव्य इन्द्रिय ग्राह्य है; क्योंकि उसमें रूप, रस, गंध और स्पर्श गुण पाये जाते हैं। जैसे, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, कठोर, भारी, हल्का ये आठ स्पर्श हैं। जो स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा स्पष्ट किये जाते हैं अर्थात् स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण किये जाने के योग्य होते हैं, उन्हें स्पर्श कहते हैं। तिक्त, कटुक, कषाय, आम्ल, मधुर ये पांच रस हैं, जो रसनेन्द्रिय के द्वारा अनुभूत किये जाते हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध नाम के दो गन्ध गुण हैं। वे गन्ध गुण घ्राण इन्द्रिय के विषय हैं। सफेद, पीला, नीला, लाल और काला, ये पांच वर्ण अर्थात् रूप हैं। जो चक्षु इन्द्रिय के द्वारा देखे जाते हैं अर्थात् चक्षु इन्द्रिय के विषय होते हैं, उन्हें वर्ण या रूप कहते हैं। जो सुना जाता है, उसे शब्द कहते हैं। शब्द कर्ण इन्द्रिय का विषय होता है। इस तरह पुद्गल द्रव्य में रूप स्पर्श आदि होने से वह इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। अब यह बतलाते हैं कि पुद्गल द्रव्य कितने हैं? समस्त जीवराशि की संख्या अनन्तानन्त हैं। उससे भी अनन्तगुणे पुद्गलद्रव्य हैं। यहां 16 का अंक अनन्तानन्त संख्या का सूचक है और 'ख' अनन्त का सूचक है। अतः जबकि जीव राशि का प्रमाण 16 है तब पुद्गल राशि का प्रमाण 16ख है।

## पुद्गल का जीव के प्रति उपकार

अर्थ पुद्गलस्य जीवोपकारकारित्वं गाथाद्वयेन दर्शयति -
अब दो गाथाओं से पुद्गल का जीव के प्रति उपकार बतलाते हैं -

**जीवस्य बहु-पयारं उवयारं कुणदि पुग्गलं दव्वं।**
**देहं च इंदियाणि य वाणी उस्सास-णिस्सासं।।( 208 )**
**जीवस्य बहुप्रकारम् उपकारं करोति पुद्गलं द्रव्यम्।**
**देहं च इन्दियाणि च वाणी उच्छ्वासनिःश्वासम्।।**

पुद्गल द्रव्य जीव का बहुत तरह से उपकार करता है - शरीर बनाता है, इन्द्रियाँ बनाता है, वचन बनाता है और श्वासोच्छ्वास बनाता है।

पुद्गलद्रव्य जीव का अनेक प्रकार से उपकार करता है। उसे सुख देता है, दुःख देता है, जिलाता है, मारता है, औदारिकादि शरीर को रचता है, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियों को बनाता है। तत, वितत, घन और सौषिर रूप शब्दों को, अथवा सात स्वररूप शब्दों को अथवा बावन अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक वाणी को रचता है और श्वास निश्वास या प्राण अपान वायु को रचता है। इस तरह पुद्गल अनेक प्रकार उपकार करता है।

**अण्णं पि एवमाई उवयारं कुणदि जाव संसारं।**
**मोह-अणाण-मयं पि य परिणामं कुणदि जीवस्स।।( 209 )**
**अन्यमपि एवमादि उपकारं करोति यावत् संसारम्।**
**मोहाज्ञानमयम् अपि च परिणामं करोति जीवस्य।।**

जब तक जीव संसार में रहता है तब तक पुद्गल द्रव्य इस प्रकार के और भी अनेक उपकार करता है। मोह परिणाम को करता है तथा अज्ञानमय परिणाम को भी करता है।

पुद्गल द्रव्य जीव के अन्य भी अनेक उपकार करता है, क्योंकि तत्त्वार्थ सूत्र में पुद्गल का उपकार बतलाते हुए लिखा है - **'शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम्।' 'सुख-दुःख जीवितमरणोपग्रहाश्च।'** जिसका आशय यह है कि पुद्गल द्रव्य नियम से शरीर, कर्म, नोकर्म, वचन, मन, उच्छ्वास, निश्वास आदि में कारण होता है।

**शंका** - कर्म पौद्गलिक नहीं है; क्योंकि वे निराकार होते हैं। जो आकारवाले औदारिक आदि शरीर हैं, उन्हीं को पौद्गलिक मानना उचित है ?

**समाधान** - ऐसा कहना उचित नहीं है, कर्म भी पौद्‌गलिक ही है; क्योंकि उसका विपाक लाठी, काण्टा आदि मूर्तिमान द्रव्य के सम्बन्ध से ही होता है। जैसे धान आदि जल, वायु, धूप आदि मूर्तिक पदार्थों के सम्बन्ध से पकते हैं, अतः वे मूर्तिक हैं वैसे ही पैर में काँटा लग जाने पर असाता वेदनीय कर्म का विपाक होता है और गुड़ आदि मिष्ठान्न का भोजन मिलने पर सातावेदनीय कर्म का विपाक होताहै। अतः कर्म भी पौद्‌गलिक ही हैं। वचन दो प्रकार का होता है- भाववचन और द्रव्यवचन। भाववचन अर्थात् बोलने की सामर्थ्य मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से तथा अंगोपांग नामकर्म के लाभ के निमित्त से होती है, अतः वह पौद्‌गलिक है; क्योंकि यदि उक्त कर्मों का क्षयोपशम और अंगोपांग नाम कर्म का उदय न हो तो भाववचन नहीं हो सकता और भाववाक् रूप शक्ति से युक्त क्रियावान् आत्मा के द्वारा प्रेरित पुद्‌गल ही वचनरूप परिणमन करते हैं अर्थात् बोलने की शक्ति से युक्त आत्मा जब बोलने का प्रयत्न करता है तो उसके तालु आदि के संयोग से पुद्‌गल स्कन्ध वचनरूप हो जाते हैं,उसी को द्रव्यवाक् कहते हैं। अतः द्रव्यवाक् भी पौद्‌गलिक ही है, क्योंकि वह श्रोत्र इन्द्रिय का विषय है। मन भी दो प्रकार का होता है - द्रव्यमन और भावमन। भावमन का लक्षण लब्धि और उपयोग है। ज्ञानावरण के क्षयोपशम विशेष का नाम लब्धि है और उसके निमित्त से जो आत्मा का जानने रूप भाव होता है वह उपयोग है। अतः भावमन लब्धि और उपयोग रूप है। वह पुद्‌गल का अवलम्बन पाकर ही होता है, अतः पौद्‌गलिक है। ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम तथा अंगोपांग नाम कर्म के उदय से जो पुद्‌गल मन रूप होकर गुण दोष का विचार तथा स्मरण आदि व्यापार के अभिमुख हुए आत्मा का उपकार करता है, उन्हें द्रव्यमन कहते हैं। अतः द्रव्यमन पौद्‌गलिक है। वीर्यान्तराय और ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामकर्म के उदय के निमित्त से जीव जो अन्दर की वायु बाहर निकालता है उसे उच्छ्‌वास अथवा प्राण कहते हैं और वही जीव जो बाहर की वायु अन्दर ले जाता है उसे निश्‍वास अथवा अपान कहते हैं। ये दोनों उच्छ्‌वास और निश्‍वास आत्मा के उपकारी हैं; क्योंकि उसके जीवित रहने में कारण होते हैं तथा ये मन, प्राण और अपान मूर्तिक हैं; क्योंकि भय को उत्पन्न करने वाले वज्रपात आदि के होने से मन का प्रतिघात होता है

और भयंकर दुर्गन्ध के भय से जब हम हथेली से अपना मुँह और नाक बन्द कर लेते हैं अथवा जुखाम हो जाता है तो प्राण अपान रुक जाते हैं अर्थात् हम श्वास नहीं ले सकते। अतः ये मूर्तिक हैं; क्योंकि मूर्तिमान के द्वारा अमूर्तिक का प्रतिघात होना असंभव है तथा अन्तरंग कारण सातावेदनीय और असातावेदनीय कर्म का उदय होने पर और बाह्य कारण द्रव्य क्षेत्र काल भाव आदि के परिपाक के निमित्त से जो प्रतिरूप और संतापरूप परिणाम होते हैं, उन्हें सुख और दुःख कहते हैं। आयुकर्म के उदय से किसी एक भव में स्थित जीव की श्वासोच्छ्वास क्रिया का शुरू रहना जीवन है और उसका नष्ट हो जाना मरण है। ये सुख-दुःख जीवन-मरण भी पौद्गलिक हैं; क्योंकि मूर्तिमान के होने पर ही होते हैं। ये पुद्गल केवल शरीर आदि की उत्पत्ति में कारण होकर जीव का ही उपकार नहीं करते, किन्तु पुद्गल का भी उपकार करते हैं। जैसे - राख से कांसे के बर्तन साफ हो जाते हैं, निर्मली डालने से गंदला पानी स्वच्छ हो जाता है और आग में गर्म करने से लोहा शुद्ध हो जाता है। इसी तरह औदारिक नामकर्म, वैक्रियिक नामकर्म और आहारक नामकर्म के उदय से आहार वर्गणा के द्वारा तीनों शरीर और श्वासोच्छ्वास बनते हैं। तैजस नामकर्म के उदय से तेजो वर्गणा के द्वारा तैजस शरीर बनता है, कार्मण नामकर्म के उदय से कार्मण वर्गणा के द्वारा कार्मण शरीर बनता है। स्वर नामकर्म के उदय से भाषावर्गणा के द्वारा वचन बनता है और मन इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से युक्त संज्ञीजीव के अंगोपांग नामकर्म उदय से मनोवर्गणा द्वारा द्रव्यमन बनता है। गोम्मटसार में भी कहा है - ''आहार वर्गणा से औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा श्वास उच्छ्वास बनते हैं। तोजो वर्गण से तैजस शरीर बनता है। भाषा वर्गणा से भाषा बनती है, मनोवर्गणा से द्रव्यमन बनता है और कार्मण वर्गणा से आठों द्रव्यकर्म बनते हैं, ऐसा जिन भगवान् ने कहा है।'' इस तरह जब तक जीव संसार में रहते हैं, तब तक पुद्गल जीवों का उपकार करते रहते हैं, किन्तु जब जीव संसार से मुक्त हो जाते हैं तब पुद्गल उनका कुछ भी उपकार नहीं करते तथा जीव में जो ममत्वरूप परिणाम होता है वह भी शरीर, सोना, चाँदी, मकान, वस्त्र अलंकार आदि पुद्गलों के निमित्त से ही होता है। पुद्गल ही ज्ञानमयी भावों से बहिरात्मा को मूढ़ बनाता है।

## जीव का जीव के प्रति उपकार

जीवाजीवानामुपकारं प्रकटीकरोति –

जीव का जीव के प्रति उपकार बतलाते हैं –

**जीवा वि दु जीवाणं उवयारं कुणदि सव्व-पच्चक्खं।**

**तत्थ वि पहाण-हेऊ पुण्णं च णियमेणं।।( 210 )**

**जीवाः अपि तु जीवानाम् उपकारं कुर्वन्ति सर्वप्रत्यक्षम्।**

**तत्र अपि प्रधानहेतुः पुण्यं पापं च नियमेन।।**

जीव भी जीवों का उपकार करते हैं। किन्तु उसमें भी नियम से पुण्य और पाप कर्म कारण हैं।

यह सब कोई जानते हैं कि जीव भी जीव का उपकार करते हैं। तत्त्वार्थ सूत्र में भी कहा है – **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'।** अर्थात् जीव भी परस्पर में एक-दूसरे का उपकार करते हैं। जैसे स्वामी धन आदि देकर सेवक का उपकार करता है और सेवक हित की बात कहकर तथा अहित से रोककर स्वामी का उपकार करता है। गुरु इस लोक और परलोक में फल देने वाला उपदेश देकर तथा उसके अनुसार आचरण कराकर शिष्य का उपकार करते हैं और शिष्य गुरु की आज्ञा पालन करके तथा उनकी सेवा-सुश्रुषा करके गुरु का उपकार करते हैं। इसी तरह पिता-पुत्र, पति-पत्नी और मित्र-मित्र परस्पर में उपकार करते हैं। 'अपि' शब्द से जीव जीवका अनुपकार भी करते हैं, और न उपकार करते हैं और न अनुपकार करते हैं। इस उपकार आदि करने में भी मुख्य कारण शुभ और अशुभ कर्म हैं। अर्थात् यदि जीव के शुभ कर्म का उदय होता है तो दूसरे जीव उसका उपकार करते हैं या वह स्वयं दूसरे जीवों का उपकार करता है और यदि पाप कर्म का उदय होता है तो दूसरे जीव उसका उपकार नहीं करते हैं अथवा वह दूसरों का उपकार नहीं करता है।

# पुद्गल की महती शक्ति

**का वि अउव्वा दीसदि पुग्गल-दव्वस्स एरिसी सत्ती।**
**केवल-णाण-सहावो विणासिदो जाइ जीवस्स।।( 211 )**
**का अपि अपूर्वा दृश्यते पुद्गलद्रव्यस्य ईदृशी शक्तिः।**
**केवलज्ञानस्वभावः विनाशितः यया जीवस्य।।**

पुद्गल द्रव्य की कोई ऐसी अपूर्व शक्ति है जिससे जीव का जो केवलज्ञान स्वभाव है, वह भी विनष्ट हो जाता है।

सोना, चाँदी, मणि, मुक्ता, धन, धान्य, हाट, हवेली, शरीर, पुत्र, स्त्री, मित्र आदि अचेतन, चेतन और चेतन-अचेतन रूप पदार्थों में कोई ऐसी अपूर्व अदृश्य शक्ति है जिस पौद्गलिक शक्ति के द्वारा जीव का केवलज्ञान रूप स्वभाव विनष्ट हो जाता है। आशय यह है कि जीव का स्वभाव अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य है, किन्तु अनादिकाल से यह जीव जन्म मरण के चक्र में पड़ा हुआ है। इसे जो वस्तु अच्छी लगती है उससे यह राग करता है और जो वस्तु इसे बुरी लगती है उससे द्वेष करता है। इन रागरूप और द्वेषरूप परिणामों से नये कर्मों का बन्ध होता है। ये कर्म पौद्गलिक होते हैं। इन कर्मों का निमित्त पाकर जीव को नया जन्म लेना पड़ता है। नया जन्म लेने से नया शरीर मिलता है। शरीर में इन्द्रियाँ होती हैं। इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण करता है। विषयों को ग्रहण करने से इष्ट विषयों से राग और अनिष्ट विषयों से द्वेष होता है। इस तरह राग-द्वेष से कर्मबन्ध और कर्मबन्ध से राग-द्वेष की परम्परा चलती है। इसके कारण जीव के स्वाभाविक गुण विकृत हो जाते हैं; इतना ही नहीं, किन्तु ज्ञानादिक गुण कर्मों से आवृत्त हो जाते हैं। कर्मों से ज्ञानादिक गुणों के आवृत्त हो जाने के कारण एक साथ समस्त द्रव्य पर्यायों को जानने की शक्ति रखनेवाला जीव अल्पज्ञानी हो जाता है। एक समय में वह एक द्रव्य की एक ही स्थूल पर्याय को मामूली तौर से जान पाता है। इसी से ग्रंथकार का कहना है कि उस पुद्गल की शक्ति को देखो जो जीव की शक्ति को भी कुण्ठित कर देता है। पौद्गलिक कर्मों की शक्ति बतलाते हुए परमात्म-प्रकाश में भी कहा है - 'कर्म बहुत बलवान् हैं, उनको नष्ट करना बहुत कठिन है, वे मेरु के समान अचल होते हैं और ज्ञानादि गुणों से युक्त जीव को खोटे मार्ग में डाल देते हैं।''

## धर्म द्रव्य एवं अधर्म द्रव्य के उपकार

**धम्ममधम्मं दव्वं गमण-ट्ठाणाण कारणं कमसो।**
**जीवाण पुग्गलाणं बिण्णि वि लोग-प्पमाणाणि।।( 212 )**
**धर्मम् अधर्मं द्रव्यं गमनस्थानयोः कारणं क्रमशः।**
**जीवानां पुद्गलानां द्वे अपि लोकप्रमाणे।।**

धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों के क्रम से गमन में तथास्थिति में कारण होते हैं तथा दोनों ही लोकाकाश के बराबर परिणाम वाले हैं।

जैसे मछलियों के गमन में जल सहकारी कारण होता है, वैसे ही गमन करते हुए जीवों और पुद्गलों के गमन में धर्म-द्रव्य सहकारी कारण होता है। किन्तु वह ठहरे हुए जीव-पुद्गल को जबरदस्ती नहीं चलाता है। इसका खुलासा यह है कि जैसे सिद्ध परमेष्ठी अमूर्त, निष्क्रिय और अप्रेरक होते हैं, फिर भी 'सिद्ध की तरह मैं अनन्त ज्ञानादि गुण स्वरूप हूँ' इत्यादि व्यवहार रूप से जो सिद्धों की सविकल्प भक्ति करते हैं, अथवा निश्चय से निर्विकल्प समाधिरूप जो अपनी उपादान शक्ति है, उस रूप जो परिणमन करते हैं, उनकी सिद्ध पद प्राप्ति में वह सहकारी कारण होते हैं, वैसे ही अपनी उपादान शक्ति से गमन करते हुए जीव और पुद्गलों की गति का सहकारी कारण धर्म-द्रव्य है। धर्मद्रव्य उनमें वह शक्ति पैदा नहीं कर देता। अतः गमन के उपादान कारण तो वे दोनों स्वयं ही हैं, किन्तु सहकारी कारण मात्र धर्मद्रव्य है। अर्थात् जब वे स्वयं चलने को होते हैं तो वह उनके चलने में निमित्त हो जाता है। इसी तरह गमन करते हुए जीव और पुद्गल जब स्वयं ठहरने को होते हैं तो उनको ठहरने में सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है। जैसे पथिकों के ठहरने में वृक्ष की छाया सहकारी कारण होती है, किन्तु जैसे वृक्ष की छाया को देखकर भी यदि कोई पथिक ठहरना न चाहे तो छाया उसे बलपूर्वक नहीं ठहराती, वैसे ही अधर्म द्रव्य चलते हुए जीवों और पुद्गलों को बलपूर्वक नहीं ठहराता है। आशय यह है कि जैसे निश्चय नय से स्वसंवेदन से उत्पन्न सुखामृतरूपी परमस्वास्थ्य ही जीव की स्वरूप में स्थिति का उपादान कारण होता है। किन्तु 'मैं सिद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, अनन्तज्ञान आदि गुणों से समृद्ध हूँ, शरीर के बराबर हूँ, नित्य हूँ, असंख्यात

प्रदेशी हूँ, अमूर्तिक हूँ, इस सविकल्प अवस्था में स्थित भव्य जीवों की स्वरूप स्थिति में सिद्ध परमेष्ठी भी सहकारी कारण हैं, वैसे ही अपनी-अपनी अपादान शक्ति से स्वयं ही ठहरे हुए जीवों और पुद्गलों के ठहरने में अधर्मद्रव्य सहकारी कारण होता है। धर्म और अधर्म नाम के दोनों ही द्रव्य लोकाकाश के बराबर है। अर्थात् जैसे लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी होता है, वैसे ही धर्मद्रव्य भी असंख्यात प्रदेशी है और अधर्मद्रव्य भी असंख्यात प्रदेशी है।

## आकाश द्रव्य का स्वरुप

**सयलाणं दव्वाणं जं दादुं सक्कदे हि अवगासं।**
**तं आयासं दुविहं लोयालोयाण भेएण।।( 213 )**
**सकलानां द्रव्याणां यत् दांतु शक्नोति हि अवकाशम्।**
**तत् आकाशं द्वि विधं लोकालोकयोः भेदेन।।**

जो समस्त द्रव्यों को अवकाश देने में समर्थ है, वह आकाश द्रव्य है। वह आकाश लोक और अलोक के भेद से दो प्रकार का है।

जैसे मकान उसमें रहने वाले प्राणियों को स्थान देता है, वैसे ही जीव पुद्गल आदि सभी द्रव्यों को जो स्थान देने में समर्थ है, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। लोक और अलोक के भेद से एक ही आकाश द्रव्य के दो भाग हो गये हैं। जितने आकाश में धर्म, अधर्म, जीव, पुद्गल और काल द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं; क्योंकि जहाँ जीवादि द्रव्य पाये जावें वह लोक है ऐसी लोक शब्द की व्युत्पत्ति है और जहाँ जीवादि द्रव्य नहीं पाये जावें केवल आकाश द्रव्य ही पाया जाये उसे अलोकाकाश कहते हैं।

## हर द्रव्य में है अवगाहन शक्ति

**सव्वाणं दव्वाणं अवगाहण-सत्ति अत्थि परमत्थं।**
**जह भसम-पाणियाणं जीव-पएसाण बहुयाणं।।( 214 )**
**सर्वेषां द्रव्याणाम् अवगाहनशक्तिः अस्ति परमार्थतः।**
**यथा भस्मपानीययोः जीव प्रदेशानां जानीहि बहुकानाम्।।**

वास्तव में सभी द्रव्यों में परस्पर अवकाश देने की शक्ति है। जैसे भस्म में और जल में अवगाहना शक्ति है, वैसे ही जीव केअसंख्यात प्रदेशों में जानों।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल सभी द्रव्यों में निश्चय से अवगाहन शक्ति है। जैसे पानी से भरे हुए घड़े में राख समा जाती है, वैसे ही लोकाकाश में सब द्रव्य परस्पर में एक-दूसरे को अवकाश देते हैं तथा जैसे एक दीपक के प्रकाश में अनेक प्रदीपों का प्रकाश समा जाता है, या एक प्रकार के रस में बहुत-सा सोना समाया रहता है अथवा पारदगुटिका में दग्ध होकर अनेक वस्तुएँ समाविष्ट रहती हैं, वैसे ही विशिष्ट अवगाहना शक्ति के कारण असंख्यात प्रदेशी भी लोक में सब द्रव्यों के रहने में कोई विरोध नहीं आता।

## हर जीवों में अवगाहना शक्ति के अभाव से

**जदि ण हवदि सा सत्ती सहाव-भूदाहि सव्व-दव्वाणं।**
**एक्केक्कास-पएसे कह ता सव्वाणि वट्टंति।।( 215 )**
**यदि न भवति सा शक्तिः स्वभावभूता हि सर्वद्रव्याणाम्।**
**एकस्मिन् आकाशप्रदेशे कथं तत् सर्वाणि वर्तन्ते।।**

यदि सब द्रव्यों में स्वभावभूत अवगाहन शक्ति न होती तो एक आकाश के प्रदेश में सब द्रव्य कैसे रहते।

सब द्रव्यों में अवगाहन शक्ति स्वभाव से ही पाई जाती है। यदि अवगाहन शक्ति न होती तो आकाश के प्रत्येक प्रदेश में सब द्रव्य नहीं पाये जाते। किन्तु जैसे भरे हुए घड़े में नमक समा जाता है, सूईयाँ समा जाती है, वैसे ही आकाश

के एक प्रदेश में सब द्रव्य रहते हैं। आकाश के जितने भाग को पुद्गल का एक परमाणु रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं। उस प्रदेश में धर्म, अधर्म, काल आदि सभी द्रव्य पाये जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि सभी द्रव्यों में स्वाभाविकी अवगाहन शक्ति है।

**शंका**– यदि सभी द्रव्यों में स्वाभाविक अवगाहन शक्ति है तो अवकाश देना आकाश का असाधारण गुण नहीं हुआ; क्योंकि असाधारण गुण उसे कहते हैं जो दूसरों में न पाया जावे।

**समाधान** – यह आपत्ति उचित नहीं है। सब पदार्थों को अवकाश देना आकाश का असाधारण लक्षण है, क्योंकि अन्य द्रव्य सब पदार्थों का अवकाश देने में असमर्थ है।

**शंका** – अलोकाकाश तो किसी भी द्रव्य को अवकाश नहीं देता, अतः इसमें अवकाश दान की शक्ति नहीं माननी चाहिये।

**समाधान** – अलोकाकाश में आकाश के सिवाय अन्य कोई द्रव्य नहीं पाया जाता है, किन्तु इससे वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ देता।

## काल द्रव्य का लक्षण

**सव्वाणं दव्वाणं परिणामं जो करेदि सो कालो।**
**एक्केक्कास-पएसे सोवट्टदि एक्केको चेव।।( 216 )**
**सर्वेषां द्रव्याणां परिणामं यः करोति स कालः।**
**एकैकाकाशप्रदेशे स वर्तते एकैकः एव।।**

जो सब द्रव्यों के परिणाम का कर्त्ता है वह काल द्रव्य है। वह काल द्रव्य एक-एक आकाश के प्रदेश पर एक-एक ही रहता है।

जीव पुद्गल आदि सब द्रव्यों में नयापन और पुरानापनरूप अथवा उत्पाद व्यय और ध्रौव्यरूप परिणाम यानी प्रतिसमय हुआ करती है। वह पर्याय दो प्रकार की होती है एक स्वभावपर्याय और एक विभावपर्याय। बिना पर

निमित्त के जो स्वतः पर्याय होती है उसे स्वभावपर्याय कहते हैं। जैसे जीव की स्वभावपर्याय अनन्तचतुष्ट्य आदि और पुद्गल की स्वभावपर्याय रूप, रस, गंध आदि। स्वभावपर्याय सभी द्रव्यों में होती है, किन्तु विभावपर्याय जीव और पुद्गल द्रव्य में ही होती है; क्योंकि निमित्त मिलने पर इन दोनों द्रव्यों में विभावरूप परिणमन होता है। क्रोध, मान, माया और लोभ आदि तथा नर,नारक, तिर्यंच और देव आदि जीव की विभावपर्याय है और द्वयणुक त्र्यणुक आदि स्कन्धरूप पुद्गल की विभावपर्याय है। इन पर्यायों के होने में जो सहकारी कारण वह निश्चय काल है। आशय यह है कि सब द्रव्यों में वर्तना नामक गुण पाया जाता है, किन्तु काल द्रव्य का आधार पाकर ही सब द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायरूप परिणमन करते हैं।

**शंका** – काल द्रव्य के परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व आदि उपकार जीव और पुद्गल में ही देखे जाते हैं। धर्म आदि अमूर्त द्रव्यों में ये उपकार कैसे होते हैं?

**समाधान** – धर्म आदि अमूर्त द्रव्यों में अगुरुलघु नामक जो गुण पाये जाते हैं, इन गुणों के अविभागी प्रतिच्छेदों में छः प्रकार की हानि और छः प्रकार की वृद्धि होती रहती है। उसमें भी निश्चय काल ही कारण है। अतः सब द्रव्यों में होने वाले परिणमन में जो सहायक है, वही निश्चयकाल है। वह निश्चयकाल अणुरूप है और उसकी संख्या असंख्यात है; क्योंकि लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक-एक कालाणु रत्नों की राशि की तरह अलग-अलग स्थित है। सारांश यह है कि धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य तो एक-एक ही हैं, किन्तु कालद्रव्य लोकाकाश के प्रदेशों की संख्या के बराबर असंख्यात है।

## सभी द्रव्य में स्वभाव से ही परिणमन करने की शक्ति है !

**णिय-णिय-परिणामाणं णिय-णिय-दव्वं पि कारणं होदि।**
**अण्णं बाहिर-दव्वं णिमित्त-मित्तं वियाणेह।।( 217 )**
**निजनिज परिणामानां निजनिज द्रव्यम् अपि कारणं भवति।**
**अन्यत् बाह्य द्रव्यं निमित्तमात्रं विजानीत।।**

अपने-अपने परिणामों को उपादान कारण अपना द्रव्य ही होता है। अन्य जो बाह्य द्रव्य है वह तो निमित्त मात्र है।

कारण दो प्रकार का होता है - एक उपादान कारण और एक निमित्त कारण। जो कारण स्वयं ही कार्यरूप परिणमन करता है वह उपादान कारण होता है जैसे संसारी जीव स्वयं ही क्रोध, मान, माया, लोभ या राग द्वेष आदि रूप परिणमन करता है। अतः वह उपादान कारण है और जो उसमें सहायक होता है, वह निमित्त कारण है। सब द्रव्यों में परिणमन करने की स्वाभाविक शक्ति है। अतः अपनी-अपनी पर्याय के उपादान कारण तो स्वयं द्रव्य ही हैं, किन्तु काल द्रव्य उसमें सहायक होने से निमित्त मात्र होता है। जैसे कुम्हार के चाक में घूमने की शक्ति स्वयं होती है, किन्तु चाक कील का आश्रय पाकर ही घूमता है। इसी से गोम्मटसार जीवकाण्ड में काल द्रव्य का वर्णन करते हुए कहा है - 'वह काल द्रव्य स्वयं अन्य द्रव्यरूप परिणमन नहीं करता और न अन्य द्रव्यों को अपने रूप परिणमाता है। किन्तु जो द्रव्य स्वयं परिणमन करते हैं, उनके परिणमन में उदासीन निमित्त होता है।'

## सभी द्रव्य परस्पर उपकारी

**सव्वाणं दव्वाणं जो उवयारो हवेइ अण्णोण्णं।**
**सो चिय कारण-भावो हवदि हु सहयारि-भावेण।।( 218 )**
**सर्वेषां द्रव्याणं यः उपकारः भवति अन्योन्यम्।**
**स एव कारणभावः भवति खलु सहकारि भावेन।।**

सभी द्रव्य परस्पर में जो उपकार करते हैं वह सहकारी कारण के रूप में ही करते हैं।

ऊपर बतलाया है कि सभी द्रव्य परस्पर में एक-दूसरे का उपकार करते

हैं। सो यह उपकार भी वे निमित्त कारण के रूप में ही करते हैं। जैसे गुरु शिष्यों को विद्याध्ययन कराता है। यहाँ विद्याध्ययन की शक्ति तो शिष्यों में है। गुरु उसमें केवल निमित्त होता है। इसी तरह शीतकाल में विद्याध्ययन करने में अग्नि सहायक होती है, कुम्हार के चाक को घूमने में कील सहायक होती है। पुद्गल, शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास, सुख-दुःख, जीवन-मरण, पुत्र, मित्र, स्त्री, मकान, हवेली आदि के रूप में जीव का उपकार करता है, गमन करते हुए जीव और पुद्गलों की गति में सहायक धर्मद्रव्य होता है और ठहरने में सहायक अधर्मद्रव्य होता है। सब द्रव्यों को अवकाश दान देने में सहायक आकाशद्रव्य होता है, परिणमन में सहायक काल द्रव्य होता है। ये सब द्रव्य अपना-अपना उपकार सहकारी कारण रूप में ही करते हैं तथा जैसे आकाश द्रव्य सब द्रव्यों का आधार है और अपना ही आधार है। वैसे ही काल द्रव्य अन्य द्रव्यों के परिणमन में भी सहकारी कारण है और अपने परिणमन में भी सहकारी कारण है तथा जैसे अग्नि की सहायता से उत्पन्न हुई भात पर्याय का उपादान कारण चावल है और कुम्हार की सहायता से उत्पन्न होने वाली घट पर्याय का उपादान कारण मिट्टी है, वैसे ही प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी पर्याय का उपादान कारण होता है।

## परिणमन अनिवार्य

**कालाइ-लद्धि-जुत्ता णाणा-सत्तीहि संजुत्ता अत्था।**
**परिणममाणा हि सयं ण सक्कदे को वि वारेदुं।।( 219 )**

**कालादिलब्धियुक्ताः नानाशक्तिभिः संयुता अर्थाः।**
**परिणममानाः हि स्वयं न शक्नोति कः अपि वारयितुम्।।**

काल आदि लब्धियों से युक्त तथा नाना शक्तियों वाले पदार्थों को स्वयं परिणमन करते हुए कौन रोक सकता है ?

सभी पदार्थों में नाना शक्तियां हैं। वे पदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भवरूप सामग्री के प्राप्त होने पर स्वयं परिणमन करते हैं उन्हें उससे कोई नहीं रोक सकता। जैसे, भव्यत्व आदि शक्ति से युक्त जीव काललब्धि के प्राप्त होने पर मुक्त हो जाते हैं। भातरूप होने की शक्ति से युक्त चावल, ईंधन, आग, वटलोही, जल आदि सामग्री के मिलने पर भातरूप हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में जीव को मुक्त होने से और चावलों को भातरूप होने से कौन रोक सकता है।

## व्यवहार काल का निरुपण

**जीवाण पुग्गलाणं जे सुहुमा बादरा य पज्जाया।**
**तीदाणागद्-भूदा सो ववहारो हवे कालो।।( 220 )**
**जीवानां पुद्गलानां ये सूक्ष्माः बादराः च पर्याया।**
**अतीतानागतभूताः स व्यवहारः भवेत् कालः।।**

जीव और पुद्गल द्रव्य की जो सूक्ष्म और बादर पर्याय अतीत, अनागत और वर्तमान रूप हैं, वही व्यवहार काल है।

गोमट्टसार जीवकाण्ड में द्रव्यों का वर्णन करते हुए लिखा है एक द्रव्य की जितनी अतीत, अनागत और वर्तमान अर्थ पर्याय तथा व्यंजन पर्याय होती है, उतनी ही द्रव्य की स्थिति होती है। आशय यह है कि प्रत्येक द्रव्य में प्रतिसमय परिणमन होता है। वह परिणमन ही पर्याय है। एक पर्याय एक क्षण अथवा एक समय तक रहती है। एक समय के पश्चात् वह पर्याय अतीत हो जाती है और उसका स्थान दूसरी पर्याय ले लेती है। इस तरह पर्यायों का क्रम अनादिकाल से लेकर अनन्तकाल तक चलता रहता है। अतः प्रत्येक द्रव्य अनादि अनन्त होता है। पर्याय दो प्रकार की होती हैं। एक अर्थ पर्याय और दूसरी व्यंजन पर्याय। गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं। सो प्रदेशवत्व गुण के विकार का नाम व्यंजन पर्याय है और अन्य गुणों के विकार का नाम व्यंजन पर्याय है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश और काल में केवल अर्थ पर्याय ही होती है और जीव और पुद्गल में दोनों प्रकार की पर्यायें होती हैं तथा व्यंजन पर्याय स्थूल होती है और अर्थ पर्याय सूक्ष्म होती है। एक अर्थ पर्याय एक समय तक ही रहती है। आकाश के एक प्रदेश में स्थित परमाणु मन्दगति से चलकर उस प्रदेश से लगे हुए दूसरे प्रदेश पर जितनी देर में पहुंचता है उतने काल का नाम समय है। व्यवहार, विकल्प, भेद और पर्याय ये सब शब्द एकार्थक है अतः व्यवहार या पर्याय के ठहरने को व्यवहार काल कहते हैं। समय, आवली, उच्छ्वास, स्तोक, लव, नाली, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष ये सब व्यवहार काल हैं। असंख्यात समय की एक आवली होती है। संख्यात आवली के समूह को उच्छ्वास कहते हैं। सात उच्छ्वास का एक स्तोक होताहै और सात स्तोक का एक लव होता है। साडे अड़तीस लव की

एक नाली होती है। दो नाली अथवा घड़ी का एक मुहूर्त होता है और एक समय कम मुहूर्त को भिन्न मुहूर्त कहते हैं। यही उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तीस मुहूर्त का एक दिनरात होता है। पन्द्रह दिन-रात का एक पक्ष होता है। दो पक्ष का एक मास होता है। दो मास की एक ऋतु होती है। तीन ऋतु का एक अयन होता है। दो अयन का एक वर्ष होता है। यह सब व्यवहार काल है। यह व्यवहार काल प्रकट रूप से मनुष्य लोक में ही व्यवहृत होता है; क्योंकि मनुष्य लोक में ज्योतिषी देवों के चलने के कारण दिन-रात आदि का व्यवहार पाया है।

## अतीत अनागत और वर्तमान पर्यायों की संख्या

**तेसु अतीदा णंता अणंत-गुणिदा य भावि-पज्जाया।**
**एक्को वि वट्टमाणो एत्तिय-मेत्तो वि सो कालो।।( 221 )**
**तेषु अतीताः अनन्ताः अनन्तगुणिताः च भाविपर्यायाः।**
**एकः अपि वर्तमानः एतान्मात्रः अपि स कालः।।**

द्रव्यों की उन पर्यायों से अतीत पर्याय अनन्त हैं, अनागत उनसे अनन्तगुनी हैं और वर्तमान पर्याय एक ही है। सो जितनी पर्याय हैं उतना ही व्यवहार काल है।

द्रव्यों की अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायों की संख्या इस प्रकार है - अतीत पर्याय अनन्त हैं। अर्थात् सिद्ध राशि को संख्यात आवली से गुणा करने पर जो प्रमाण होता है उतनी ही एक द्रव्य की अतीत पर्याय होती हैं। भावि पर्याय अतीत पर्यायों से भी अनन्त गुणी होती है और वर्तमान पर्याय एक ही होती है। गोमट्टसार जीवकाण्ड में व्यवहार काल के तीन भेद बतलाये हैं - अतीत, अनागत और वर्तमान। संख्यात आवली से सिद्धराशि को गुणा करने पर जो प्रमाण आये वही अतीत काल का प्रमाण है। इसकी उपपत्ति इस प्रकार है - यदि 608 जीवों के मुक्ति गमन का काल छः माह और आठ समय होता है तो समस्त जीवराशि के अनन्तवें भाग प्रमाणमुक्त जीवों के मुक्तिगमन का काल कितना है? इस प्रकार त्रिराशिक करने पर जो प्रमाण आता है, वही अतीतकाल का प्रमाण है। वर्तमान काल का प्रमाण एक समय है और समस्त जीव राशि और समस्त पुद्गल राशि से अनन्तगुना भाविकाल है। इस प्रकार व्यवहार काल का प्रमाण जानना चाहिये। इस तरह धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य और कालद्रव्य का वर्णन समाप्त हुआ।

## द्रव्यों के कार्यकारण भाव का निरुपण

**पुव्व-परिणाम-जुत्तं कारण-भावेण वट्टदे दव्वं।**
**उत्तर-परिणाम-जुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा।।( 222 )**
**पूर्वपरिणामयुक्तं कारण भावेन वर्तते द्रव्यम्।**
**उत्तरपरिणामयुक्तं तत् एव कार्यं भवेत नियमात्।।**

पूर्व परिणाम सहित द्रव्य कारणरूप है और उत्तर परिणाम सहित द्रव्य नियम से कार्यरूप है।

प्रत्येक द्रव्य में प्रतिसमय परिणमन होता रहता है, यह पहले कहा है। उसमें से पूर्वक्षणवर्ती द्रव्य कारण होता है और उत्तरक्षणवर्ती द्रव्य कार्य होता है। जैसे लकड़ी जलने पर कोयला हो जाती है और कोयला जलकर राख हो जाताहै। यहाँ लकड़ी कारण है और कोयला कार्य है तथा कोयला कारण और राख कार्य है क्योंकि आप्तमीमांसा में भगवान् समन्तभद्र ने कहा है कि कारण का विनाश ही कार्य का उत्पाद है। अतः पहली पर्याय नष्ट होते ही दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है। इसलिये पूर्व पर्याय उत्तर पर्याय का कारण है और उत्तर पर्याय पूर्व पर्याय का कार्य है। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य में कार्य कारण भाव की परम्परा समझ लेनी चाहिये।

## तीनों कालों में वस्तु के कार्य कारण भाव

**कारण-कज्ज-विसेसा तीसु वि कालेसु हुंति वत्थूणं।**
**एक्केक्कम्मि य समए पुव्वुत्तर-भावमासिज्ज।।( 223 )**
**कारणकार्यविशेषाः त्रिषु अपि कालेषु भवन्ति वस्तुनाम।**
**एकैकस्मिन् च समये पूर्वोत्तर भावमासाद्य।।**

वस्तु के पूर्व और उत्तर परिणाम को लेकर तीनों ही कालों में प्रत्येक समय में कारणकार्यभाव होता है। वस्तु प्रतिसमय उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक

होती है। तत्त्वार्थसूत्र में उसे ही सत् कहा है जिसमें प्रति समय उत्पाद व्यय और ध्रौव्य होता है। जैसे, मिट्टी का पिण्ड नष्ट होकर घट बनता है। यहाँ मिट्टी के पिण्ड का विनाश और घटका का उत्पाद एक ही समय में होता है तथा उसी समय पिण्ड का विनाश और घटका उत्पाद होने पर भी मिट्टी मौजूद रहती है। इसी ही तरह एक ही समय में पूर्व पर्याय का विनाश और उत्तर पर्याय का उत्पाद प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय होता है। अतः तीनों कालों में प्रत्येक द्रव्य में कारण कार्य की परम्परा चालू रहती है। जो पर्याय अपनी पूर्व पर्याय का कार्य होती है वही पर्याय अपनी उत्तर पर्याय का कारण होती है। इस तरह प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही अपना कार्य होता है।

ईमानदारी किसी कायदे-कानून की मोहताज नहीं होती, इसी पर मनुष्य की प्रतिष्ठा निर्भर है

- आलेबर कामू ( फ्रांस के नोगल विजेता )

पच व्रत ( अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ) पालन करने वाले,सप्त व्यसन त्याग करने वाले तथा क्रोध, मान, माया, लोभ त्यागने वालों के लिए मानव कृत किसी भी संविधान या कानून की आवश्यकता नहीं है, वे कानेन व संविधान के परे होते हैं। मानव कृत अधिकांश संविधान एवं कानून सार्वभौम व सर्वकालिक समता पूर्ण नहीं होते

- आचार्य कनकनन्दी

## अनुच्छेद - 4

### वस्तु अनन्त धर्मात्मक

**संति अणंताणंत तीसु वि कालेसु सव्व-दव्वाणि।**
**सव्वं पि अणेयंत तत्तो भणिदं जिणेंदेहिं।।( 224 ) का अनु.**
**सन्ति अनन्तानन्ताः त्रिषु अपि कालेषु सर्वद्रव्याणि।**
**सर्वम् अपि अनेकान्तं ततः भणितं जिनेन्द्रैः।।**

सब द्रव्य तीनों ही कालों में अनन्तानंत हैं। अतः जिनेन्द्र देव ने सभी को अनेकान्तात्मक कहा है।

तीनों ही कालों में प्रत्येक द्रव्य अनन्तानन्त है, क्योंकि प्रति समय प्रत्येक द्रव्य में नवीन-नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पुरानी पर्याय नष्ट हो जाती है फिर भी द्रव्य की परम्परा सदा चालू रहती है। अतः पर्यायों के अनन्तानन्त होने के कारण द्रव्य भी अनन्तानन्त होने के कारण द्रव्य भी अनन्तानन्त है। न पर्यायों का ही अन्त आता है और न द्रव्य का ही अन्त आता है। इसी से जैनधर्म में प्रत्येक वस्तु को अनेक धर्मवाली कहा है। इसका खुलासा इस प्रकार है। जैनधर्म में सत् ही द्रव्य का लक्षण है, असत् या अभाव नामक कोई स्वतन्त्र तत्त्व जैन धर्म में नहीं माना किन्तु जो सत् है वही दृष्टि बदलने से असत् हो जाता है। न कोई वस्तु केवल सत् ही है और न कोई वस्तु केवल असत् ही है। यदि प्रत्येक वस्तु को केवल सत् ही माना जायेगा तो सब वस्तुओं के सर्वथा सत् होने से उनके बीच में जो भेद देखा जाता है उसका अभाव हो जायेगा और उसके अभाव होने से सब वस्तुएँ परस्पर में एकमेक हो जायेगी। उदाहरण के लिये, घट और पट ये दो वस्तु हैं। किन्तु जब हम किसी को घट लाने को कहते हैं तो वह घट ही लाता है और जब हम पट लाने को कहते हैं तो पट ही लाता है। इससे सिद्ध है कि घट घट ही है पट नहीं है, और पट पट ही है घट नहीं है। अतः दोनों का अस्तित्व स्व-स्व मर्यादा में ही सीमित है, उसके बाहर नहीं है। यदि वस्तुएँ इस मर्यादा का उल्लंघन कर जाएं तो सभी वस्तुएँ सब रूप हो जायेंगी। अतः प्रत्येक वस्तु स्वरूप की अपेक्षा से ही सत् है और पररूप की अपेक्षा से असत् है। जब हम किसी वस्तु को सत् कहते हैं तो हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वह वस्तु स्वरूप की अपेक्षा से ही सत् कही जाती है, अपने से अन्य वस्तुओं के स्वरूप की अपेक्षा संसार की प्रत्येक वस्तु असत् है। देवदत्त का पुत्र संसारभर के मनुष्यों का पुत्र नहीं है और न देवदत्त संसारभर के पुत्र का पिता है। इससे

क्या यह सिद्ध नहीं होता कि देवदत्त का पुत्र पुत्र है और नहीं भी है। इसी तरह देवदत्त पिता है और नहीं भी है। अतः संसार में जो कुछ सत् है वह किसी अपेक्षा से असत् भी है। सर्वथा सत् या सर्वथा असत् कोई वस्तु नहीं है। अतः एक ही समय में प्रत्येक द्रव्य सत् भी है और असत् भी है। स्वरूप की अपेक्षा सत् है और परद्रव्य की अपेक्षा असत् है। इसी प्रकार एक ही समय में प्रत्येक वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है। द्रव्य की अपेक्षा नित्य है, क्योंकि द्रव्य का विनाश नहीं होता और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है; क्योंकि पर्याय नष्ट होती है तथा एक ही समय में प्रत्येक वस्तु एक भी है और अनेक भी है। पर्याय की अपेक्षा अनेक है क्योंकि एक वस्तु की अनेक पर्यायें होती हैं और द्रव्य की अपेक्षा एक है तथा एक ही समय में प्रत्येक वस्तु भिन्न भी है और अभिन्न भी है। गुणी होने से अभेद रूप है और गुणों के अपेक्षा भेद रूप है; क्योंकि एक वस्तु में अनेक गुण होते हैं। इस तरह वस्तु अनेक धर्मात्मक है। उस अनन्त धर्मात्मक वस्तु को जानना उतना कठिन नहीं है जितना शब्दों के द्वारा उसका कहना कठिन है; क्योंकि एक ज्ञान अनेक धर्मों को एक साथ जान सकता है, किन्तु एक शब्द एक समय में वस्तु के एक ही धर्म को कह सकता है। इस पर भी शब्द की प्रवृत्ति वक्ता के अधीन है। वक्ता वस्तु के अनेक धर्मों में से किसी एक धर्म का मुख्यतया से वचन व्यवहार करता है। जैसे देवदत्त को एक ही समय में उसका पिता भी पुकारता है और उसका पुत्र भी पुकारता है। पिता उसे 'पुत्र' कहकर पुकारता है और उसका पुत्र उसे 'पिता' कहकर पुकारता है, किन्तु देवदत्त न केवल पिता ही है और न केवल पुत्र ही है। किन्तु पिता भी है और पुत्र भी है। इसलिये पिता की दृष्टि से देवदत्त का पुत्रत्व धर्म मुख्य है और शेष धर्म गौण हैं और पुत्र की दृष्टि से देवदत्त का पितृत्वधर्म मुख्य है और शेष धर्म गौण है; क्योंकि अनेक धर्मात्मक वस्तु के जिस धर्म की विवक्षा होती है, वह धर्म मुख्य कहाता है और शेष धर्म गौण। अतः वस्तु के अनेक धर्मात्मक होने और शब्द में पूरे धर्मों को एक साथ एक समय में कह सकने की सामर्थ्य न होने के कारण, समस्त वाक्यों के साथ 'स्यात' शब्द व्यवहार आवश्यक समझा गया है, जिससे सुनने वालों को कोई धोखा न हो। यह 'स्यात' शब्द विवक्षित धर्म में इतर धर्मों का द्योतक या सूचक होता है। 'स्यात्' का अर्थ है, 'कथंचित्' या 'किसी अपेक्षा से'। यह बतलाता है कि जो सत् है वह किसी अपेक्षा से ही सत् है। अतः प्रत्येक वस्तु 'स्यात् सत् और स्यात् असत् है। इसी

का नाम स्याद्वाद है। वस्तु के प्रत्येक धर्म को लेकर अविरोधपूर्वक विधि प्रतिषेध का कथन सात भंगों के द्वारा किया जाता है। उसे सप्तभंगी कहते हैं। जैसे वस्तु के अस्तित्व धर्म को लेकर यदि कथन किया जाये तो वह इस प्रकार होगा - 'स्यात् सत' अर्थात् वस्तु स्वरूप की अपेक्षा है - ( 1 ) 'स्यात् असत्' - वस्तु पररूप की अपेक्षा नहीं है।( 2 ) 'स्यात् सत् स्यात् असत्' - वस्तु स्वरूप की अपेक्षा है और पररूप की अपेक्षा नहीं है।( 3 ) इन तीनों वाक्यों में से पहला वाक्य वस्तु का अस्तित्व बतलाता है, दूसरा वाक्य नास्तित्व बतलाता है और तीसरा वाक्य अस्तित्व और नास्तित्व दोनों धर्मों को क्रम से बतलाता है। इन दोनों धर्मों को यदि कोई एक साथ कहना चाहे तो नहीं कह सकता, क्योंकि एक शब्द एक समय में विधि और निषेध में से एक का कथन कर सकता है। अत: ऐसी अवस्था में वस्तु अवक्तव्य ठहरती है, अर्थात् उसे शब्द के द्वारा नहीं कहा जा सकता। अत: 'स्यात् अवक्तव्य' यह चौथा भंग है।( 4 ) सप्तभंगी के ये चार ही मूल भंग हैं। इन्हीं को मिलाने से सात भंग होते हैं अर्थात् चतुर्थ भंग 'स्यात् अवक्तव्य' के साथ क्रम से पहले, दूसरे और तीसरे भंग को मिलाने से पांचवा, छठा और सातवां भंग बनता है। यथा, स्यात् सद्वक्तव्य ( 5 ) स्यादसदवक्तव्य ( 6 ) और स्यात् सदसदवक्तव्य ( 7 )। यानी वस्तु कथंचित् सत् और अवक्तव्य है ( 5 ) कथंचित असत् और अवक्तव्य है ( 6 ) तथा कथंचित् सत्, कथंचित् असत् और अवक्तव्य है ( 7 )। इन सात भंगों में से वस्तु के अस्तित्व धर्म की विवक्षा होने से प्रथम भंग है, नास्तिक धर्म की विवक्षा होने से दूसरा भंग है। क्रम से 'अस्ति' 'नास्ति' दोनों धर्मों की विवक्षा होने से तीसरा भंग है। एक साथ दोनों धर्मों की विवक्षा होने से चौथा भंग है। अस्तित्व धर्म के साथ युगपत् दोनों धर्मों की विवक्षा होने से पांचवां भंग है। नास्तित्व धर्म के साथ युगपत् दोनों धर्मों की विवक्षा होने से छठा भंग है और क्रम से तथा युगपत् दोनों धर्मों की विवक्षा होने सो सातवां भंग है। इसी तरह एक, अनेक, नित्य अनित्य आदि धर्मों में भी एक की विधि और दूसरे के निषेध के द्वारा सप्तभंगी लगा लेनी चाहिये।

## अनेकान्तात्मक वस्तु ही अर्थ क्रियाकारी

**जं वत्थु अणेयंतं तं चिय कज्जं करेदि णियमेण।**
**बहु-धम्म-जुदं अत्थं कज्ज-करं दीसदे लोए।।( 225 )**
**यत् वस्तु अनेकान्तं तत् एव कार्यं करोति नियमेन।**
**बहुधर्मयुतः अर्थः कार्यकरः दृश्यते लोके।।**

जो वस्तु अनेकान्त रूप है वही नियम से कार्यकारी है; क्योंकि लोक में बहुत धर्मयुक्त पदार्थ ही कार्यकारी देखा जाता है।

अनेक धर्मात्मक वस्तु ही कोई कार्य कर सकती है। इसी से पूज्यपाद ने अपने जैनेन्द्र व्याकरण का प्रथम सूत्र 'सिद्धिरनेकान्तात्' रखा है। जो बतलाता है कि किसी भी कार्य की सिद्धि अनेकान्त से हो सकती है। उदाहरण के लिये जो वादी वस्तु को नित्य अथवा क्षणिक ही मानते हैं, उनके मत में अर्थक्रिया नहीं बनती। कार्य करने के दो ही प्रकार हैं - एक क्रम से और एक एक-साथ। नित्यवस्तु क्रम से काम नहीं कर सकती; क्योंकि सब कार्यों को एक साथ उत्पन्न करने की उनमें सामर्थ्य है। यदि कहा जाये कि सहायकों को मिलने पर नित्य पदार्थ कार्य करता है और सहायकों के अभाव में कार्य नहीं करता। तो इसका यह मतलब हुआ कि पहले वह नित्य पदार्थ कार्य करने में असमर्थ था, पीछे सहकारियों के मिलने पर समर्थ हुआ। तो असमर्थ स्वभाव को छोड़कर समर्थ स्वभाव को ग्रहण करने के कारण वह सर्वथा नित्य नहीं रहा। सर्वथा नित्य तो वही हो सकता है जिसमें कुछ भी परिवर्तन न हो। यदि वह नित्य पदार्थ एक साथ सब काम कर लेता है तो प्रथम समय में ही सब काम कर लेने से दूसरे समय में उसके करने को कुछ भी काम शेष न रहेगा। और ऐसी अवस्था में वह असत् हो जायेगा; क्योंकि सत् वही है जो सदा कुछ न कुछ किया करता है। अतः क्रम से और एक साथ काम न कर सकने से नित्य वस्तु में अर्थक्रिया नहीं बनती। इसी तरह जो वस्तु को पर्याय की तरह सर्वथा क्षणिक मानते हैं उनके मत में भी अर्थक्रिया नहीं बनती। क्योंकि क्षणिक वस्तु तो क्रम से कार्य नहीं कर सकती; क्योंकि क्षणिक तो एक क्षणवर्ती होता है, अतः वहाँ क्रम बन ही कैसे सकता है? क्रम से तो वही कार्य कर सकता है जो कुछ क्षणों तक ठहर सके। और यदि वह कुछ क्षणों तक नहीं ठहरता है तो वह क्षणिक नहीं रह सकता। इसी तरह क्षणिक वस्तु एक साथ भी काम नहीं कर सकती, क्योंकि वैसा होने से कारण के रहते हुए ही कार्य की उत्पत्ति हो जायेगी तथा उस कार्य के कार्य को भी उत्पत्ति उसी क्षण में हो जायेगी। इस तरह सब गड़बड़ हो जायेगा। अतः वस्तु को द्रव्य की अपेक्षा नित्य औरपर्याय की अपेक्षा अनित्य मानना ही उचित है। तभी वस्तु अर्थक्रियाकारी बन सकती है।

## सर्वथा एकान्त रुप वस्तु कार्यकारी नहीं

**एयंतं पुणु दव्वं कज्जं ण करेदि लेस-मेत्तं पि।**
**जं पुणु ण करदि कज्जं तं वुच्चदि केरिसं दव्वं।।( 226 )**
**एकान्तं पुनः द्रव्यं न करोति लेशमात्रम् अपि।**
**यत् पुनः न करोति कार्यं तत् उच्यते कीदृशं द्रव्यम्।।**

एकान्त स्वरूप द्रव्य लेशमात्र भी कार्य नहीं करता और जो कार्य नहीं करता उसे द्रव्य कैसे कहा जा सकता है।

यदि जीवादि वस्तु सर्वथा नित्य या सर्वथा सत् या सर्वथा भिन्न, अथवा सर्वथा एक या सर्वथा अनित्य आदि एकान्त रूप हो तो वह कुछ भी कार्य नहीं कर सकती और जो कुछ भी कार्यकारी नहीं उसे वस्तु या द्रव्य कैसे कहा जा सकता है; क्योंकि जो कुछ न कुछ भी कार्यकारी है, वही वास्तव में सत् है। सत् का लक्षण ही अर्थक्रिया है। अतः जो कुछ भी काम नहीं करता वह गधे के सींग की तरह अवस्तु ही है। कहा भी है - 'दुर्नय के विषयभूत एकान्त रूप पदार्थ वास्तविक नहीं है, क्योंकि दुर्नय केवल स्वार्थिक हैं, वे अन्य नयों की अपेक्षा न करके केवल अपनी पुष्टि करते हैं, और जो स्वार्थिक अतएव विपरीत होते हैं वे नय सदोष होते हैं।' इसका खुलासा इस प्रकार है। यदि वस्तु को सर्वथा एकान्त से सद्रूप माना जायेगा तो संकर आदि दोषों के आने से नियत अर्थ की व्यवस्था नहीं बनेगी। अर्थात् जब प्रत्येक वस्तु सर्वथा सत् स्वरूप मानी जायेगी तो वह सब रूप होगी। और ऐसी स्थिति में जीव, पुद्गल आदि के भी परस्पर में एक रूप होने से जीव पुद्गल का भेद ही समाप्त हो जायेगा। इसी तरह जीव, जीव और पुद्गल, पुद्गल का भेद भी समाप्त हो जायेगा तथा वस्तु को सर्वथा असद्रूप मानने से समस्त संसार शून्यरूप हो जायेगा। इसी तरह वस्तु को सर्वथा नित्य मानने से वह सदा एकरूप रहेगी और सदा एकरूप रहने से अर्थक्रिया नहीं कर सकेगी तथा अर्थक्रिया न करने से वस्तु का ही अभाव हो जायेगा। वस्तु को सर्वथा क्षणिक मानने से दूसरे क्षण में

ही वस्तु का सर्वथा विनाश हो जाने से वह कोई कार्य कैसे कर सकेगी और कुछ भी कार्य न कर सकने से वस्तु का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो सकेगी। इसी तरह वस्तु को सर्वथा एक रूप मानने पर उसमें विशेष धर्म का अभाव हो जायेगा, क्योंकि वह सर्वथा एक रूप है और विशेष धर्म का अभाव होने से सामान्य धर्म का भी अभाव हो जायेगा; क्योंकि बिना विशेष का सामान्य गधे के सींग की तरह असत् है और बिना सामान्य का विशेष भी गधे के सींग की तरह असत् है। अर्थात् न बिना सामान्य के विशेष रह सकता है और न बिना विशेष के सामान्य रह सकता है। अतः दोनों का ही अभाव हो जायेगा तथा वस्तु को सर्वथा अनेक रूप मानने पर द्रव्य का अभाव हो जायेगा; क्योंकि उस अनेक रूपों का कोई आधार आप नहीं मानते तथा आधार और आधेय का ही अभाव हो जायेगा, क्योंकि सामान्य के अभाव में विशेष और विशेष के अभाव में सामान्य नहीं रह सकता। सामान्य और विशेष में सर्वथा भेद मानने पर निराधार होने से विशेष कुछ क्रिया नहीं कर सकेंगे और कुछ भी क्रिया नहीं करने पर द्रव्य का भी अभाव हो जायेगा। सर्वथा अभेद मानने पर सब एक हो जायेंगे, और सबके एक हो जाने पर अर्थक्रिया नहीं बनती। अर्थक्रिया के अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जायेगा। इस प्रकार सर्वथा नित्य, सर्वथा अनित्य, सर्वथा एक, सर्वथा अनेक, सर्वथा भेद, सर्वथा अभेदरूप एकान्तों के स्वीकार करने पर वस्तु में अर्थक्रिया नहीं बन सकती तथा आत्मा को सर्वथा अचेतन मानने से चैतन्य का अभाव हो जायेगा। सर्वथा मूर्त मानने से उसे कभी मोक्ष नहीं हो सकेगा। सर्वथा अमूर्त मानने से संसार का अभाव हो जायेगा। सर्वथा अनेक प्रदेशी मानने से आत्मा में अर्थक्रिया कारित्व नहीं बनेगा; क्योंकि उस अवस्था में घट पट की तरह आत्मा के प्रदेश भी पृथक्-पृथक् हो सकेंगे और इस तरह आत्मा स्वभावशून्य हो जायेगी तथा आत्मा को सर्वथा शुद्ध मानने से कभी वह कर्म मल से लिप्त नहीं हो सकेगा, क्योंकि वह सर्वथा निर्मल है। इन कारणों से सर्वथा एकान्त ठीक नहीं है।

## सर्वथा नित्य में अर्थक्रिया का अभाव

**परिणामेण विहीणं णिच्चं दव्वं विणस्सदे णेव।**
**णो उप्पज्जेदि सया एवं कज्जं कहं कुणदि।।( 227 )**
**परिणामेन विहीनं नित्यं द्रव्यं विनश्यति नैव।**
**न उत्पद्यते सदा एवं कार्यं कथं कुरुते।।**

परिणाम से रहित नित्य द्रव्य न तो कभी नष्ट हो सकता है और न कभी उत्पन्न हो सकता है।ऐसी अवस्था में वह कार्य कैसे कर सकता है।

यदि वस्तु को सर्वथा ध्रुव माना जायेगा तो उसमें उत्पाद और व्ययरूप पर्याय नहीं हो सकेंगी और उत्पाद तथा व्यय के न होने से वह वस्तु कभी नष्ट नहीं होगी। यदि इसकी पूर्व पर्याय का विनाश माना जायेगा तो वह सर्वथा नित्य नहीं रहेगी। इसी तरह उस वस्तु में कभी भी नवीन पर्याय उत्पन्न नहीं होगी। यदि होगी तो वह नित्य नहीं ठहरेगी और पूर्व पर्याय का विनाश तथा उत्तर पर्याय की उत्पत्ति न होने से वह वस्तु कुछ भी कार्य न कर सकेगी; क्योंकि कुछ भी कार्य करने से वस्तु में परिणमन अवश्य होगा और परिणमन के होने से वस्तु सर्वथा नित्य नहीं रहेगी। अतः नित्य वस्तु में अर्थक्रिया संभव नहीं है।

## क्षणिक वस्तु में अर्थक्रिया नहीं

आगे सर्वथा क्षणिक वस्तु में अर्थक्रिया का अभाव बतलाते हैं।

**पज्जय-मित्तं तच्चं विणस्सरं खणे खणे वि अण्णण्णं।**
**अण्णइ-दव्वं-विहीणं ण य कज्जं पि साहेदि।।( 228 )**
**पर्यायमात्रं तत्त्वं विनश्वरं क्षणे क्षणे अपि अन्यत् अन्यत्।**
**अन्वयिद्रव्यविहीनं न च कार्यं किम् अपि साधयति।।**

क्षण-क्षण में अन्य-अन्य होने वाला पर्याय मात्र विनश्वर तत्त्व, अन्वयी द्रव्य के बिना कुछ भी कार्य नहीं कर सकता।

यदि नाना पयार्यों में अनुस्यूत एक द्रव्य को न मानकर केवल पर्याय मात्र को ही माना जायेगा अर्थात् मति ज्ञानादि पर्यायों को ही माना जाये और जीव द्रव्य को न माना जाये, या मिट्टी को न माना जाये और स्थास, कोश, कुसूल,

घट, कपाल आदि पर्यायों को ही माना जाये तो बिना जीव द्रव्य के मत्यादि पर्याय और बिना मिट्टी के स्थास आदि पर्याय हो कैसे सकती है? इसी से आप्तमीमांसा में कहा है कि नाना पर्यायों में अनुस्यूत एकत्व को न मानने पर सन्तान, समुदाय, साधर्म्य, पुनर्जन्म वगैरह कुछ भी नहीं बन सकता। इसका खुलासा इस प्रकार है - एक वस्तु की क्रम से होने वाली पर्यायों की परम्परा का नाम संतान है। जब एकत्व को नहीं माना जायेगा तो एक संतान कैसे बन सकेगी? जैसे एकत्व परिणाम को न मानने पर एक स्कन्ध के अवयवों का समुदाय नहीं बन सकता वैसे ही सदृश परिणामों में एकत्व को न मानने पर उनमें साधर्म्य भी नहीं बन सकता। इसी प्रकार इस जन्म और परजन्म में रहने वाली एक आत्मा को न मानने पर पुनर्जन्म नहीं बनता तथा देन-लेन का व्यवहार भी एकत्व के अभाव में नहीं बन सकता है; क्योंकि जिसने दिया और जिसने लिया, वे दोनों तो उसी क्षण नष्ट हो गये, तब न कोई देने वाला रहा और न कोई लेने वाला रहा। अतः नित्यैकान्त की तरह क्षणिकैकान्त में भी अर्थक्रिया नहीं बनती।

## अनेकान्त में कार्य कारण भाव

**णवणव-कज्ज-विसेसा तीसु वि कालेसु होंति वत्थूणं।**
**एक्केक्कम्मि य समये पुव्वुत्तर-भावमासिज्ज।।( 229 )**
**नव नव कार्यविशेषाः त्रिषु अपि कालेषु भवन्ति वस्तुनाम।**
**एकैकस्मिन् च समये पूर्वोत्तरभावमासाद्य।।**

वस्तु में तीनों ही कालों में प्रतिसमय पूर्व और उत्तर परिणाम की अपेक्षा नये-नये कार्य विशेष होते हैं।

वस्तु को सर्वथा क्षणिक और सर्वथा नित्य न मानकर परिणामी नित्य मानने से कार्यकारण भाव अथवा अर्थक्रिया बनती है; क्योंकि वस्तुस्वरूप से ध्रुव होते हुए भी वस्तु में प्रतिसमय एक पर्याय नष्ट होती है और एक पर्याय पैदा होती है। इस तरह पूर्व पर्याय का नाश और उत्तर पर्याय का उत्पाद प्रति समय होते रहने से नये-नये कार्य ( पर्याय ) होते रहते हैं।

## पूर्व परिणाम और उत्तर परिणाम से युक्त द्रव्य में कार्य कारण भाव

**पुव्व परिणाम-जुत्तं कारण-भावेण वट्टदे दव्वं।**
**उत्तर-परिणाम-जुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा।।( 230 )**
**पूर्व परिणामयुक्तं कारणभावेन वर्तते द्रव्यम्।**
**उत्तरपरिणामयुतं तत् एव कार्यं भवेत् नियमात्।।**

पूर्व परिणाम से युक्त द्रव्य नियम से कारण रूप होता है और वही द्रव्य जब उत्तम परिणाम से युक्त होता है, तब नियम से कार्यरूप होता है।

अनेकान्तरूप एक ही द्रव्य में कार्यकारण भाव नियम से बनता है। पूर्व परिणाम से युक्त वही द्रव्य कारण होता है। जैसे मिट्टी की पिण्ड पर्याय कारण रूप होती है और वही द्रव्य जब उत्तर पर्याय से युक्त होता है तो कार्यरूप होता है। जैसे घट पर्याय से युक्त वही मिट्टी पूर्व पर्याय का कारण होने से कार्यरूप है, क्योंकि मृत्पिंण्ड घट कार्य का उपादान कारण होता है। इस प्रकार अनेकान्तरूप परिणामी नित्य द्रव्य में कार्यकारण भाव नियम से बन जाता है।

## अनादिनिधन जीव में कार्यकारण भाव

**जीवो आणाइ-णिहणो परिणममाणो हु णव णवं भावं।**
**सामग्गीसु पवट्टदि कज्जाणि समासदे पच्छा।।( 231 )**
**जीवः अनादिनिधनः परिणममानः खलु नवनवं भावम्।**
**सामग्रीषु प्रवर्तते कार्याणि समाश्रयते पश्चात्।।**

जीव द्रव्य अनादिनिधन है, किन्तु वह नवीन -नवीन पर्यायरूप परिणमन करता हुआ प्रथम तो अपनी सामग्रीयुक्त होता है, पीछे कार्यों को करता है।

जीव द्रव्य अनादि और अनन्त है अर्थात् न उसकी आदि है और न अन्त है। परन्तु अनादि अनन्त होते हुए भी वह सर्वथा नित्य नहीं है, किन्तु उसमें प्रतिसमय नई-नई पर्याय उत्पन्न होती रहती है। नई-नई पर्यायों को उत्पन्न

करने के लिये प्रथम वह जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव आदि रूप सामग्री से युक्त होता है फिर नई-नई पर्यायों को उत्पन्न करता है। जैसे कोई जीव देव पर्याय रूप परिणमन करने के लिये पहले समीचीन व्रतों का धारण, सामायिक, धर्मध्यान आदि सामग्री को अपनाता है, पीछे वर्तमान पर्याय को छोड़कर देवपर्याय धारण करता है। कोई जीव नारकी अथवा तिर्यंच पर्यायरूप परिणमन करने के लिये पहले सात व्यसन, बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह, मायाचार कपट छल छद्म वगैरह सामग्री को अपनाता है पीछे नारकी अथवा तिर्यंच पर्याय धारण करता है। इस प्रकार अनादिनिधन जीव में भी कार्यकारण भाव बन जाता है।

## स्व चतुष्टय युक्त जीव कार्य करता

**ससरूवत्थो जीवो कज्जं साहेदि वट्टमाणं पि।**
**खेत्ते एक्कम्मि ठिदो णिय-दव्वे संठिदो चेव।।( 232 )**
**स्वस्वरूपस्थः जीवः कार्यं साधयति वर्तमानम् अपि।**
**क्षेत्रे एकस्मिन स्थितः निजद्रव्ये संस्थितः चैव।।**

स्वरूप में स्वक्षेत्र में, स्वद्रव्य में और स्वकाल में स्थित जीव है, अपने पर्यायरूप कार्य को करता है।

जो इन्द्रिय आदि द्रव्यप्राणों से या सुख सत्ता चैतन्य और ज्ञानरूप भाव प्राणों से जीता है,जिया था अथवा जियेगा उसे जीव कहते हैं। वह जीव नवीन नवीन नर नारक आदि रूप वर्तमान पर्याय का और 'अपि' शब्द से अतीत और अनागत पर्यायों का कर्ता है। अर्थात् वह स्वयं ही अपनी पर्यायों को उत्पन्न करता है, किन्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में स्थित होकर ही जीव अपनी पर्यायों को उत्पन्न करता है। अर्थात् अपने चैतन्य स्वरूप आत्मद्रव्य में स्थित जीव ही अपने कार्य को करता है,आत्मान्तर में स्थित हुआ जीव स्वकार्य को नहीं करता। अपनी आत्मा से अवष्टब्ध क्षेत्र में स्थित जीव ही स्वकार्य को करता है, अन्य क्षेत्र में स्थित जीव स्वकार्य को नहीं करता। अपने ज्ञान, दर्शन, सुख, सत्ता आदि स्वरूप में स्थित जीव ही अपनी पर्याय को करता है, पुद्गल

आदि स्वभावन्तर में स्थित जीव अपनी पर्याय को नहीं करता तथा स्वकाल में वर्तमान जीव ही अपनी पर्याय को करता है, परकाल में वर्तमान जीव स्वकार्य को नहीं करता। आशय यह है कि प्रत्येक वस्तु वस्तुपना दो बातों पर निर्भर है - एक वह स्वरूप को अपनाये, दूसरे वह परवस्तु को न अपनाये। इन दोनों के बिना वस्तु का वस्तुत्त्व कायम नहीं रह सकता। जैसे, स्वरूप की तरह यदि पररूप से भी वस्तु को सत् माना जायेगा तो चेतन अचेतन हो जायेगा तथा पररूप की तरह यदि स्वरूप से भी वस्तु को असत् माना जायेगा तो वस्तु सर्वथा शून्य हो जायेगी। स्वद्रव्य की तरह परद्रव्य से भी यदि वस्तु को सत् माना जायेगा तो द्रव्यों की निश्चित संख्या नहीं रहेगी तथा परद्रव्य की तरह स्वद्रव्य की अपेक्षा भी यदि वस्तु को असत् माना जायेगा तो सब द्रव्य निराश्रय हो जायेंगे तथा स्वक्षेत्र की तरह परक्षेत्र से भी यदि वस्तु को सत् माना जायेगा तो किसी वस्तु का प्रतिनियत क्षेत्र नहीं रहेगा और परक्षेत्र की तरह स्वक्षेत्र से भी यदि वस्तु को असत् माना जायेगा तो वस्तु निःक्षेत्र हो जायेगी तथा स्वकाल की तरह परकाल से भी यदि वस्तु को सत् माना जायेगा तो वस्तु का कोई प्रतिनियत काल नहीं रहेगा और परकाल की तरह स्वकाल से भी यदि वस्तु को असत् माना जायेगा तो वस्तु किसी भी काल में नहीं रहेगी। अतः प्रत्येक वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव में स्थित रहकर ही कार्यकारी होती है। सारांश यह है कि प्रत्येक वस्तु चार भागों में विभाजित है। वे चार भाग हैं - द्रव्य, द्रव्यांश, गुण और गुणांश। ( इन चारों की विशेष चर्चा के लिये पंचाध्यायी पढ़ना चाहिये। अनु. ) अनन्त गुणों के अखण्ड पिण्ड को तो द्रव्य कहते हैं। उस अखण्ड पिण्डरूप द्रव्य की प्रदेशों की अपेक्षा जो अंश कल्पना की जाती है उसे द्रव्यांश कहते हैं। द्रव्यों में रहने वाले गुणों को गुण कहते हैं और उन गुणों के अंशों को गुणांश कहते हैं। प्रत्येक वस्तु में ये चार बातें होती हैं। इनको छोड़कर वस्तु और कुछ भी नहीं है। इन्हीं चारों की अपेक्षा एक वस्तु दूसरी वस्तु से पृथक् मानी जाती है, इन्हीं ही स्वचतुष्टय कहते हैं। स्वचतुष्टय से स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव लिये जाते हैं। अनन्त गुणों का अखण्ड पिण्ड रूप जो द्रव्य है, वही स्वद्रव्य है। वह द्रव्य अपने जिन प्रदेशों में स्थित है, वही उसका स्वक्षेत्र है। उसमें रहने वाले गुण ही उसका स्वभाव है और उन गुणों को पर्याय ही स्वकाल है। अर्थात् द्रव्य, द्रव्यांश गुण और गुणांश ही वस्तु के स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव है। वस्तु का

स्वद्रव्य उसके अनन्त गुण रूप अखण्ड पिण्ड के सिवा दूसरा नहीं है। वस्तु का क्षेत्र उसके प्रदेश ही हैं, न कि वह जहाँ रहती है। उस वस्तु के गुण ही उसका स्वभाव है और उन गुणों की कालक्रम से होने वाली पर्याय ही उसका स्वकाल है। प्रत्येक वस्तु का यह स्वचतुष्टय भिन्न-भिन्न है। इस स्वचतुष्टय में स्थित द्रव्य ही अपनी-अपनी पर्यायों को करता है।

## पररुप में स्थित जीव कार्य नहीं करता

**स-सरूवत्थो जीवो अण्ण-सरूवम्मि गच्छदे जदि हि।**
**अण्णोण्ण-मेलणादो एक्क-सरूवं हवे सव्वं।।( 233 )**
**स्वस्वरूपस्थः जीवः अन्य स्वरूपे गच्छेत् यदि हि।**
**अन्योन्यमेलनात् एक स्वरूपं भवेत् सर्वम्।।**

यदि स्वरूप में स्थित जीव परस्वरूप में चला जावे तो परस्पर में मिल जाने से सब द्रव्य एक स्वरूप हो जायेंगे।

यदि अपने चेतन्य स्वरूप में स्थित जीव चैतन्य स्वरूप को छोड़कर पुद्गल आदि द्रव्यों के अचेतन स्वरूप हो जायें अर्थात् परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव को अपना लें तो सब द्रव्यों का कोई निश्चित स्वरूप न होने से सब एकरूप हो जायेंगे। चेतन द्रव्य अचेतन रूप हो जायेगा और अचेतन द्रव्य चेतनरूप हो जायेगा और ऐसा होने से जब सब वस्तु सब रूप हो जायेंगी और किसी वस्तु का कोई विशेष धर्म नहीं रहेगा तो किसी मनुष्य से यह कहने पर कि 'दही खाओ' वह ऊँट को भी खाने को दौड़ पड़ेगा; क्योंकि उस अवस्था में दही और ऊँट में कोई भेद नहीं रहेगा। अतः स्वरूप में स्थित वस्तु ही कार्यकारी है।

## सभी वस्तु एक ब्रह्मस्वरुप नहीं

**अहवा बंभ-सरूवं एक्कं सव्वं पि मण्णदे जदि हि।**
**चंडाल-बंभणाणं तो ण विसेसो हवे को वि।।( 234 )**
**अथवा ब्रह्मस्वरूपम् एकं सर्वं अपि मन्यते यदि हि।**
**चाण्डाल ब्राह्मणानां ततः न विशेषः भवेत् कः अपि।।**

अथवा यदि सभी वस्तुओं को एक ब्रह्मस्वरूप माना जायेगा तो चाण्डाल और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं रहेगा।

ब्रह्माद्वैतवादी समस्त जगत को एक ब्रह्मस्वरूप मानते हैं। श्रुति में लिखा है - 'इस जगत में एक ब्रह्म ही है, नानात्व बिल्कुल नहीं है। सब उस ब्रह्म की पर्यायों को ही देखते हैं। किन्तु उसे कोई नहीं देखता।' इस प्रकार यदि समस्त जगत् एक ब्रह्ममय है तो चाण्डाल और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं रहेगा, क्योंकि ब्राह्मण भी ब्रह्ममय है और चाण्डाल भी ब्रह्ममय है।

शायद कहा जाय कि यह भेद अविद्या के द्वारा कल्पित है, वास्तविक नहीं है। तो वह अविद्या ब्रह्म से भिन्न है अथवा अभिन्न है, एक है अथवा अनेक है, सद्रूप है अथवा असद्रूप है, इत्यादि अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। यदि अविद्या ब्रह्म से भिन्न हैं तो अद्वैतवाद नहीं रहता और यदि अविद्या ब्रह्म से अभिन्न तो ब्रह्म भी अविद्या की तरह काल्पनिक ही ठहरेगा तथा अद्वैतवाद में कर्ता कर्म पुण्य पाप, इहलोक, परलोक, बन्ध मोक्ष, विद्या अविद्या आदि भेद नहीं बन सकते।

अतः जगत् को सर्वथा एक रूप मानना उचित नहीं है।

## अणुमात्र आत्मा नहीं

**अणु-परिमाणं तच्चं अंस-विहीणं च मण्णदे जदि हि।**
**तो संबंध-अभावो तत्तो वि ण कज्ज-संसिद्धी।।( 235 )**
**अणुपरिमाणं तत्त्वम् अंशविहीनं च मन्यते यदि हि।**
**तत् सम्बन्धाभावः ततः अपि न कार्य संसिद्धीः।।**

यदि अणुपरिमाण निरंश तत्त्व माना जायेगा तो सम्बन्ध का अभाव होने से उसी से भी कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

यदि आत्मा को निरंश और एक परमाणु के बराबर माना जायेगा तो अणु बराबर आत्मा का समस्त शरीर के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकेगा और समस्त शरीर के साथ सम्बन्ध न होने से सर्वांग में होने वाले सुख-दुःख आदि का ज्ञान आत्मा को नहीं हो सकेगा तथा उसके न होने से सुख, दुःख, पुण्य, पाप, इहलोक, परलोक आदि नहीं बनेंगे, क्योंकि आत्मा शरीर से किये जाने वाले पूजन पाठ, पठन पाठन, तपश्चरण आदि का अनुभव नहीं कर सकता। अतः उनका फल भी उसे नहीं मिल सकता।

## एकानेक रुप द्रव्य

**सव्वाणं दव्वाणं दव्व-सरूवेण होदि एयत्तं।**
**णिय-णिय-गुण-भेएण हि सव्वणि वि होंति भिण्णाणि।।( 236 )**
**सर्वेषां द्रव्याणां द्रव्यस्वरूपेण भवति एकत्वम्।**
**निजनिज गुण भेदेन हि सर्वाणि अपि भवन्ति भिन्नानि।।**

द्रव्यरूप की अपेक्षा सभी द्रव्य एक है। अपने-अपने गुणों के भेद से सभी द्रव्य अनेक है।

जो अपने गुण पर्यायों को प्राप्त करता है, प्राप्त करेगा और प्राप्त करता था, उसे द्रव्य कहते हैं। वे द्रव्य छः है - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल। सभी द्रव्य द्रव्यरूप से एक-एक है जैसे घटादि पर्याय एवम् रूपादि गुणों का समुदाय रूप मृद्रव्य मिट्टीरूप से एक है वैसे जीवादि द्रव्य को द्रव्यरूप से एक जानना चाहिये तथा सभी द्रव्य अपने-अपने गुण पर्यायों के भेद से

नाना है; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में अनेक गुण व पर्याय होती हैं। जैसे मृद्रव्य घटादि पर्यायों और रूपादि गुणों के भेद से अनेक रूप हैं। यदि द्रव्यगुण व पर्यायों में भेद न होता तो यह मिट्टी है, यह घट है व ये रूपादि गुण है, ऐसा भेद-व्यवहार नहीं हो सकता था। अतः द्रव्य में और गुण पर्याय में कथंचित् भेद व कथंचित् अभेद होता है। इसलिये द्रव्य से अभिन्न होने के कारण गुण पर्याय भी एक रूप होते हैं व गुण पर्यायों से अभिन्न होने के कारण द्रव्य अनेक होता है।

## गुण पर्याय स्वभाव वाला द्रव्य

**जो अत्थो पडिसमयं उत्पाद-व्यय-धुवत्त-सब्भावो।**
**गुण-पज्जय-परिणामो सो संतो भण्णदे समए।।( 237 )**
**यः अर्थः प्रतिसमयम्, उत्पादव्ययध्रुवत्व स्वभावः।**
**गुणपर्यायपरिणामः स सत् भण्यते समये।।**

जो वस्तु प्रतिसमय उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य स्वभावी है उसे ही आगम में गुणपर्याय वाली और सत् कहा है।

तत्त्वार्थ सूत्र में द्रव्य का लक्षण सत् कहा है। जो सत् है वही द्रव्य है। सत् का लक्षण उत्पाद व्यय और ध्रौव्य कहा है अर्थात् जो प्रतिसमय उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से युक्त होता है, वही सत् है। अपनी जाति को न छोड़ते हुए चेतन अथवा अचेतन द्रव्य में कारणों के कारण जो नई पर्याय उत्पन्न होती है, उसे उत्पाद कहते हैं। जैसे मिट्टी का पिण्ड अपनी जाति मिट्टीपने को न छोड़ते हुए दण्ड, चक्र, कुम्हार का संयोग मिलने पर पिण्ड पर्याय को छोड़कर घट पर्याय को अपनाता है। पूर्व पर्याय के नष्ट होने को व्यय कहते हैं। जैसे मृत्पिण्ड में घट पर्याय के उत्पन्न होने पर पिण्ड पर्याय नष्ट हो जाती है और मूल तत्त्व के स्थिर रहने को ध्रुव कहते हैं। ध्रुव के भाव का नाम ध्रौव है। जैसे मिट्टीपना पिण्ड अवस्था की तरह घट अवस्था में भी स्थिर ( ध्रौव ) रहता है। ये उत्पाद, व्यय, ध्रौव प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय होते हैं। द्रव्य का दूसरा लक्षण गुण पर्याय वाला है। जो गुण पर्याययुक्त होता है वही द्रव्य है। ये दोनों लक्षण यथार्थ में दो नहीं है, तथापि दो तरह से एक ही बात को कहते हैं। गुण, पर्याय के समुदाय का

नाम द्रव्य है। यदि प्रत्येक द्रव्य से उसके गुण व पर्याय को किसी रीति से अलग किया जा सके तो कुछ भी शेष न रहेगा। अत: गुण, पर्याय के अखण्ड पिण्ड का नाम ही द्रव्य है। उसमें गुण ध्रुव होते हैं और पर्याय आती जाती है। जैसे सोने के कड़े, अंगूठी, हार आदि जेवर बनाने पर भी उसका पीत गुण स्थिर रहता है और कड़ा पर्याय नष्ट होकर अंगूठी पर्याय उत्पन्न होती है व अंगूठी पर्याय को नष्ट कर हार आदि पर्याय उत्पन्न होती है। अत: द्रव्य गुण वाला होता है या द्रव्य ध्रुव होता है, ऐसा कहने में कोई अन्तर नहीं है। इसी तरह द्रव्य पर्यायवाला होता है अथवा उत्पादव्ययायुक्त द्रव्य होता है। इन कथनों में कोई अन्तर नहीं है। इसीलिये ग्रंथकार ने यह कहा है कि ज्यों द्रव्य उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वभाव है, वही गुण पर्याय स्वभाव है।

## द्रव्यों में उत्पाद-व्यय

**पडिसमयं परिणामो पुव्वो णस्सेदि जायदे अण्णो।**
**वत्थु-विणासो पढमो उववादो भण्णदे विदिओ।।( 238 )**
**प्रतिसमयं परिणाम: पूर्व: नश्यति जायते अन्य:।**
**वस्तु विनाश: प्रथम: उपपाद: भण्यते द्वितीय:।।**

प्रतिसमय वस्तु में पूर्व पर्याय का नाश होता है और अन्य पर्याय की उत्पत्ति होती है। इनमें से पूर्व परिणामरूप वस्तु का नाश तो व्यय है व अन्य परिणामरूप वस्तु का उत्पन्न होना उत्पाद है।

वस्तु न तो उत्पन्न होती है न नष्ट होती है किन्तु वस्तु की पर्याय नष्ट व उत्पन्न होती है तथा पर्याय वस्तु से अभिन्न है इसलिये पर्याय के नाश और उत्पाद को वस्तु का नाश व उत्पाद कहा जाता है।

## द्रव्यों में ध्रुवत्व

**णो उप्पज्जदि जीवो दव्व-सरूवेण णेव णस्सेदि।**
**तं चेव दव्व-मित्तं णिच्चत्तं जाण जीवस्स।।( 239 )**
**न उत्पद्यते जीवः द्रव्यस्वरूपेण नैव नश्यति।**
**तत् एव द्रव्यमात्रं नित्यत्वं जानीहिं जीवस्य।।**

द्रव्यरूप से जीव न तो नष्ट होता है न उत्पन्न होता है अतः द्रव्यरूप से जीव को नित्य जानो।

जीव द्रव्य अथवा कोई भी द्रव्य न तो उत्पन्न है न तो नष्ट होता है। यदि द्रव्य का नाश व उत्पाद माना जाये तो माने गये छः द्रव्यों का नाश हो जायेगा और अनेक नये-नये द्रव्य उत्पन्न हो जायेंगे। अतः अपने अनादि परिणामिक स्वभाव से न तो कोई द्रव्य नष्ट होता है न कोई नया द्रव्य उत्पन्न होता है किन्तु सब द्रव्य स्थिर रहते हैं। इसी का नाम ध्रौव्य है। जैसे मृत्पिण्ड का नाश और घट पर्याय की उत्पत्ति होने पर भी मिट्टी ध्रुव रहती है। यह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ही द्रव्य का स्वरूप है।

## द्रव्य एवं पर्याय का स्वरुप

**अण्णइ-रूवं दव्वं विसेस-रूवो हवेइ पज्जावो।**
**दव्वं पि विसेसेण हि उप्पज्जदि णस्सदे सददं।।( 240 )**
**अन्वयिरूपं द्रव्यं विशेषरूपः भवति पर्यायः।**
**द्रव्यं अपि विशेषेण हि उत्पद्यते नश्यति सततम्।।**

वस्तु के अन्वयी रूप को द्रव्य कहते हैं और विशेष रूप को पर्याय कहते हैं। विशेष रूप की अपेक्षा द्रव्य भी निरन्तर उत्पन्न व विनष्ट होता है।

वस्तु की प्रत्येक दशा में जो रूप बराबर अनुस्यूत रहता है वही अन्वयी रूप है, जो रूप बदलता रहता है। वह विशेष रूप है। जैसे जीव की नर-नारक आदि पर्याय तो आती जाती रहती है व जीवत्व उन सबमें बराबर अनुस्यूत रहता है। अतः जीवत्व जीव का अन्वयी रूप है और नर-नारकादि विशेष रूप हैं। जब किसी बालक का जन्म हुआ कहा जाता है तो वह वास्तव में मनुष्य पर्याय का जन्म होता है, किन्तु वह जन्म जीव ही लेता है इसलिये उसे जीव का जन्म

कहा जाता है। वास्तविक जीव तो अजन्मा है। इसी तरह जब कोई मरता है तो वास्तव में उसकी वह पर्याय छूट जाती है। इसी का नाम मृत्यु है। जीव तो सदा अमर है। अतः पर्याय की अपेक्षा द्रव्य सदा उत्पन्न होता है और विनष्ट होता है, किन्तु द्रव्यत्व की अपेक्षा नहीं।( यहाँ इतना विशेष वक्तव्य है कि टीकाकार ने जो अन्वय का अर्थ नर-नारकादि पर्याय किया है, वह ठीक नहीं है। अनु+अय=अन्वय का अर्थ होता है वस्तु के पीछे-पीछे उसकी हालत में साथ रहना। यह बात नारकादि पर्याय में नहीं है किन्तु गुण में पाई जाती है। इसी से सिद्धान्त में गुणों को अन्वयी व पर्याय को व्यतिरे की कहा है।)

## गुण का स्वरुप

**सरिसो जो परिणामो अणाइ-णिहणो हवे गुणो से हि।**
**सो सामण्ण-सरूवो उप्पज्जदि णस्सदे णेय।।( 241 )**
**सदृशः यः परिणामः अनादिनिधनः भवेत् गुणः स हि।**
**स सामान्यस्वरूपः उत्पद्यते नश्यति नैव।।**

द्रव्य का जो अनादिनिधन सदृश परिणाम होता है वही गुण है। वह सामान्य रूप न उत्पन्न होता है न नष्ट होता है।

द्रव्य परिणमनशील है, परिणमन करना उसका स्वभाव है किन्तु द्रव्य में होने वाला परिणाम दो प्रकार का है - एक सदृश परिणाम, दूसरा विसदृश परिणाम। सदृश परिणाम का नाम गुण है और विसदृश परिणाम का नाम पर्याय है। जैसे जीव द्रव्य का चैतन्य गुण सब पर्याय में पाया जाता है। मनुष्य मरकर देव हो या तिर्यंच हो, चैतन्य परिणाम उसमें अवश्य रहता है। चैतन्य परिणाम की अपेक्षा मनुष्य, पशु आदि समान है क्योंकि चैतन्य गुण सब में हैं। यह चैतन्य परिणाम अनादिनिधन है। न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है अर्थात् किसी जीव का चैतन्य परिणाम नष्ट होकर वह अजीव नहीं हो जाता न किसी पुद्गल में चैतन्य परिणाम उत्पन्न होने से वह चेतन हो जाता है। इस प्रकार सामान्य रूप से वह अनादिनिधन है। किन्तु विशेष रूप से चैतन्य का भी नाश और उत्पाद होता है, क्योंकि गुणों में भी परिणमन होता है। यहाँ प्रकरणवश जीवादि द्रव्यों के सामान्य और विशेष गुण कहते हैं - अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, प्रदेशत्व, मूर्तत्व व

अमूर्तत्व ये द्रव्यों के दस सामान्य गुण हैं। इनमें से प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ सामान्य गुण होते हैं; क्योंकि जीव द्रव्य में अचेतनत्व व मूर्तत्व ये दो गुण नहीं होते, और पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व व अमूर्तत्व ये दो गुण नहीं होते तथा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य में चेतनत्व व मूर्तत्व गुण नहीं होते। इस तरह दस सामान्य गुणों में से दो-दो गुण न होने से प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण होते हैं तथा ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व ये द्रव्यों के सोलह विशेष गुण हैं। इनमें से अन्त के चार गुणों की गणना सामान्य गुणों में भी की जाती है व विशेष गुणों में भी की जाती है। उसका कारण यह है कि ये चारों गुण स्वजाति की अपेक्षा से सामान्य गुण है व विजाति की अपेक्षा से विशेष गुण है। इन सोलह विशेष गुणों में से जीवद्रव्य में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनत्व, अमूर्तत्व ये छः गुण होते हैं। पुद्गल द्रव्य में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, मूर्तत्व, अचेतनत्व ये छः गुण होते हैं। धर्मद्रव्य में गतिहेतुत्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण होते हैं। अधर्म द्रव्य में स्थिति हेतुत्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण हैं। आकाश द्रव्य में अवगाहन हेतुत्व अमूर्तत्व, अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण हैं। कालद्रव्य में वर्तना हेतुत्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व ये तीन गुण विशेष हैं। जो गुण सब द्रव्यों में पाया जाता है, उसे सामान्य गुण कहते हैं। जो गुण सब द्रव्यों में न पाये जाये उसे विशेष गुण कहते हैं। सामान्य गुणों में छः गुणों का स्वरूप इस प्रकार है - जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी नाश नहीं होता उसे अस्तित्व गुण कहते हैं। जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में अर्थक्रिया हो उसे वस्तुत्व गुण कहते हैं। जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य सर्वदा एकसा न रहे व उसकी पर्यायें बदलती रहे, उसे द्रव्यत गुण कहते हैं। जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय हो, उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं। जिस शक्ति के निमित्त से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप परिणमन न करे, एक गुण दूसरे गुण रूप परिणमन न करे तथा एक द्रव्य के अनेक गुण बिखरकर जुदे जुदे न हो जाये, उसे अगुरुलघु गुण कहते हैं। जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कुछ न कुछ आकार अवश्य हो, उसे प्रदेशत्व गुण कहते हैं। ये गुण सब द्रव्यों में पाये जाते हैं।

## गुण पर्यायों का एकपना ही द्रव्य

**सो वि विणस्सदि जायदि विसेस-रूवेण सव्व-दव्वेसु।**
**दव्व-गुण-पज्जायाणं एयत्तं वत्थु परमत्थं।।( 242 )**
**सः अपि विनश्यति जायते विशेषरूपेण सर्वद्रव्येषु।**
**द्रव्यगुणपर्यायाणाम् एकत्वं वस्तु परमार्थम्।।**

समस्त द्रव्यों के गुण भी विशेष रूप से उत्पन्न तथा विनष्ट होते हैं। इस प्रकार द्रव्यगुण व पर्यायों का एकत्व ही परमार्थ से वस्तु है।

ऊपर बतलाया था कि सामान्य रूप से गुण न उत्पन्न होते हैं न नष्ट होते हैं। यहाँ कहते हैं कि विशेष रूप से गुण भी उत्पन्न व नष्ट होते हैं। अर्थात् गुणों में भी उत्पाद व्यय होता है। तात्पर्य यह है कि द्रव्य, गुण, पर्याय ये तीन अलग-अलग नहीं हैं। जैसे सोंठ, मिर्च, पीपल को कूट छानकर गोली बना ली जाती है, वैसे द्रव्य, गुण, पर्याय मिलाकर वस्तु नहीं बनी है। वस्तु तो एक अनादि अखण्ड पिण्ड है। उसमें गुणों के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। वे गुण भी अलग नहीं किये जा सकते हैं। हाँ, उनका अनुभव मात्र अलग-अलग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में जब वस्तु परिणामी है तो गुण अपरिणामी कैसे हो सकते हैं? क्योंकि गुणों के अखण्ड पिण्ड का नाम ही तो वस्तु है। अतः गुणों में भी परिणमन होता है, किन्तु परिणमन होने पर भी ज्ञान गुण ज्ञान रूप ही रहता है, दर्शन या सुखरूप नहीं हो जाता। इसी से सामान्य रूप से गुणों को अपरिणामी व विशेष रूप से परिणामी कहा है। गुणों के विकारों को ही पर्याय कहते हैं।

पर्याय के दो भेद हैं - स्वभाव पर्याय, विभाव पर्याय। यहाँ छः द्रव्यों की पर्याय कहते हैं। अगुरुलघु गुण के विकार को स्वभाव पर्याय कहते हैं। उसके बारह भेद हैं - छः वृद्धिरूप और छः हानिरूप। अनन्तभाग वृद्धि, असंख्यातभाग वृद्धि, संख्यातभाग वृद्धि, संख्यातगुण वृद्धि, असंख्यातगुण वृद्धि, अनन्तगुण वृद्धि, ये छः वृद्धिरूप स्वभावपर्याय हैं। और अनन्तभाग हानि, असंख्यातभाग हानि, संख्यातभाग हानि, संख्यातगुण हानि, असंख्यातगुण हानि, अनन्तगुण हानि ये छः हानि रूप स्वभावपर्याय हैं। नर, नारकादि पर्याय अथवा चौरासी लाख योनियाँ विभाव द्रव्यव्यंजन पर्याय हैं। मति आदि ज्ञान विभाव व्यंजन पर्याय हैं। अन्त के शरीर से कुछ न्यून जो सिद्ध पर्याय हैं वह

स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय हैं। जीव का अनन्त चतुष्टय रूप स्वभावगुण-व्यंजन पर्याय है। ये सब जीव की पर्याय हैं। पुद्गल की विभाव द्रव्य-व्यंजन-पर्याय द्वयणुक आदि स्कन्ध हैं। रस से रसान्तर, गंध से गन्धांतर विभावगुण व्यंजन पर्याय हैं। पुद्गल का अविभागी परमाणु स्वभावद्रव्य व्यंजनपर्याय है और उस परमाणु में जो एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श गुण रहते हैं, पुद्गल की स्वभावगुण-व्यंजन-पर्याय हैं। जैसे जल में लहरें उठा करती हैं, वैसे ही अनादि और अनन्त द्रव्य में प्रति समय पर्याय उत्पन्न व नष्ट होती रहती हैं।

## पर्याय सम्बन्धी शंका

**जदि दव्वे पज्जाया वि विज्जमाणा तिरोहिदा संति।**
**ता उप्पत्ती विहला पडिपहिदे देवदत्तेव्व।।( 243 )**
**यदि द्रव्ये पर्यायाः अपि विद्यमानाः तिरोहिताः सन्ति।**
**तत् उत्पत्तिः विफला प्रतिपिहिते देवदत्ते इव।।**

यदि द्रव्य में पर्याय विद्यमान होते हुए भी ढकी हुई है तो वस्त्र से ढके हुए देवदत्त की तरह उसकी उत्पत्ति निष्फल है।

सांख्यमतावलम्बी का कहना है कि जीवादि पदार्थ में सब पर्यायें विद्यमान रहती हैं। किन्तु वे छिपी हुई हैं, इसलिये दिखाई नहीं देती। सांख्य के इस मत में दूषण देते हुए आचार्य कहते हैं कि जैसे देवदत्त पर्दे के पीछे बैठा हुआ है, पर्दे के हटाते ही प्रकट हो गया। उसको यदि कोई यह कहे कि देवदत्त उत्पन्न हो गया तो ऐसा कहना व्यर्थ है, क्योंकि देवदत्त वहाँ पहले से ही विद्यमान था।

इसी प्रकार यदि द्रव्य में पर्याय पहले से ही विद्यमान है, पश्चात् प्रकट हो जाती है तो उसकी उत्पत्ति कहना गलत है। उत्पत्ति तो अविद्यमान की ही होती है।

## अविद्यमान पर्यायों की ही उत्पत्ति होती है

**सव्वाण पज्जयाणं अविज्जमाणाण होदि उप्पत्ती।**
**कालाई-लद्धीए अणाइ-णिहणम्मि दव्वम्मि।।( 244 )**
**सर्वेषां पर्यायाणाम् अविद्यमानानां भवति उत्पत्तिः।**
**कालादिलब्ध्या अनादिनिधने द्रव्ये।।**

अतः अनादिनिधन द्रव्य में काललब्धि आदि के मिलने पर अविद्यमान पर्यायों की उत्पत्ति होती है।

द्रव्य अविनश्वर होने से अनादिनिधन है। उस अनादिनिधन द्रव्य में अपने योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के मिलने पर जो पर्याय विद्यमान नहीं होती, उसकी उत्पत्ति हो जाती है। जैसे विद्यमान मिट्टी में घट के उत्पन्न होने का उचित काल आने पर तथा कुम्हार सद्भाव में घट आदि पर्याय उत्पन्न होती है।

## द्रव्य व पर्याय में कथंचित् भेद कथंचित् अभेद

**दव्वाणं पज्जयाणं धम्म-विवक्खाएँ कीरए भेओ।**
**वत्थु-सरूवेण पुणो ण हि भेदो सक्कदे काउं।।( 245 )**
**द्रव्याणां पर्यायाणां धर्म विवक्षया क्रियते भेदः।**
**वस्तुस्वरूपेण पुनः न हि भेदः शक्यते कर्तुम्।।**

धर्म पर धर्मी की विवक्षा से द्रव्य और पर्याय में भेद किया जाता है, किन्तु वस्तु स्वरूप में उनमें भेद नहीं है।

नैयायिक मतावलम्बी कारण व कार्य में सर्वथा भेद मानता है। उसका निराकरण करते हुए आचार्य कहते हैं कि कारण रूप मिट्टी आदि द्रव्य में और कार्यरूप घटादि पर्याय में धर्म और धर्मी भेद की विवक्षा होने से ही भेद हैं, अर्थात् जब यह कहना होता है कि यह मिट्टी धर्मी है व यह घटादि पर्याय धर्म है, तभी भेद की प्रतीति होती है। किन्तु वस्तु स्वरूप से धर्म व धर्मी में भेद नहीं किया जा सकता। अर्थात् द्रव्यार्थिक नय से कार्य व कारण में अभेद है। इस तरह गुण गुणी, पर्याय पर्यायी, स्वभाव स्वभाववान् आदि में भी कथंचित् भेद और कथंचित् अभेद समझना चाहिये।

## द्रव्य और पर्याय में सर्वथा भेद मानने से दोष

**जदि वत्थुदो विभेदो पज्जय-दव्वाण मण्णसे मूढ।**
**तो णिरवेक्खा सिद्धी दोण्हं पि य पावदे णियमा।।( 246 )**
**यदि वस्तुतः विभेदः पर्यय द्रव्याणां मन्यसे मूढ।**
**ततः निरपेक्षा सिद्धिः द्वयोः अपि च प्राप्नोति नियमात्।।**

हे मूढ! यदि तू द्रव्य और पर्याय में वस्तु स्वरूप से भी भेद मानना है तो द्रव्य व पर्याय दोनों की नियम से निरपेक्ष सिद्धि प्राप्त होती है।

यदि द्रव्य और पर्याय में वस्तु रूप से भी भेद माना जायेगा तो द्रव्य पर्याय से सर्वथा भिन्न एक अलग वस्तु ठहरेगा और पर्याय द्रव्य से सर्वथा भिन्न एक अलग वस्तु ठहरेगी। ऐसी स्थिति में बिना पर्याय के भी द्रव्य और बिना द्रव्य के पर्याय हुआ करेगी। जैसे यदि मिट्टीरूप द्रव्य से घटादि पर्याय सर्वथा भिन्न है तो मिट्टी के बिना भी घट पाया जायेगा। अतः द्रव्य और पर्याय में वस्तुरूप से भेद नहीं मानना चाहिये।

## ज्ञानाद्वैतवादी के मत में दूषण

**जदि सव्वमेव णाणं णाणा-रूवेहि संठिदं एक्कं।**
**तो ण वि किं पि विणेयं णेयेण विणा कहं णाणं।।( 247 )**
**यदि सर्वमेव ज्ञानं नानारूपैः संस्थितम् एकम्।**
**तत् न अपि किम् अपि विज्ञेयं ज्ञेयेन विना कथं ज्ञानम्।।**

यदि सब वस्तु ज्ञान रूप ही है और एक ज्ञान ही नाना-नाना पदार्थों के रूप में स्थित है तो ज्ञेय कुछ भी नहीं रहा। ऐसी स्थिति में बिना ज्ञेय के ज्ञान कैसे रह सकता है?

ज्ञानाद्वैतवादी बाह्य घट पट आदि पदार्थों को असत् मानता है और एक ज्ञान को ही सत् मानता है। उसका कहना है कि अनादिवासना के कारण हमें बाहर में ये पदार्थ दिखाई देते हैं, किन्तु वे वैसे ही असत्य है जैसे स्वप्न में दिखाई देने वाली बातें असत्य होती है। इस पर आचार्य का कहना है कि यदि सब ज्ञान रूप ही हैं तो ज्ञेय तो कुछ भी नहीं रहा। जब ज्ञेय ही नहीं रहा तो बिना ज्ञेय के ज्ञान कैसे रह सकता है। क्योंकि जो जानता है उसे ज्ञान कहते हैं और जो जाना जाता है उसे ज्ञेय कहते हैं। जब जानने के लिये कोई है ही नहीं, तो ज्ञान कैसे हो सकता है?

## ज्ञेय का समर्थन

**घड-पड-जड दव्वाणि हि णेय-सरूवाणि सुप्पसिद्धाणि।**
**णाणं जाणेदि जदो अप्पादो भिण्णरूवाणि।।( 248 )**
**घट-पट-जड द्रव्याणि हि ज्ञेय स्वरूपाणि सुप्रसिद्धानि।**
**ज्ञानं जानाति यतः आत्मनः भिन्नरूपाणि।।**

घट-पट आदि जड़ द्रव्य ज्ञेयरूप से सुप्रसिद्ध हैं। उनको ज्ञान जानता है, अतः ज्ञान से वे भिन्नरूप हैं।

## ज्ञानाद्वैतवाद में दोषण

**जं सव्व-लोय-सिद्धं देहं-गेहादि-बाहिरं अत्थं।**

**जो तं पि णाणं मण्णदि ण मुणदि सो णाण णामं पि।।( 249 )**

**यः सर्वलोकसिद्धः देहगेहादिबाह्यः अर्थः।**

**यः तम् अपि ज्ञानं मन्यते न जानाति स ज्ञान नाम अपि।।**

जो शरीर मकान आदि बाह्य पदार्थ लोक में प्रसिद्ध है, उनको भी जो ज्ञान रूप मानता है, वह ज्ञान का नाम भी नहीं जानता।

आचार्य का कहना है कि जिनका स्वरूप जानने योग्य होता है, उन्हें ज्ञेयस्वरूप कहते हैं। अतः ज्ञान से बाहर जितने भी पदार्थ हैं, वे सब ज्ञेयरूप हैं, ज्ञानरूप नहीं। जो उनको ज्ञानरूप कहता है, वह ज्ञान के स्वरूप को नहीं जानता, इतना ही नहीं, अपितु उसने ज्ञान का नाम भी नहीं सुना, ऐसा लगता है, क्योंकि यदि वह ज्ञान से परिचित होता तो बाह्य पदार्थों का लोप न करता।

## शून्यवाद में दूषण

**अच्छीहिँ पिच्छमाणो जीवाजीवादि-बहु विहं अत्थं।**
**जो भणदि णत्थि किंचि वि सो झुट्ठाणं महाझुट्ठो।।( 250 )**
**अक्षिभ्यां प्रेक्षमाणः जीवाजीवादि बहुविधम् अर्थम्।**
**यः भणति नास्ति किंचित् अपि स धूर्तानां महाधूर्तः।।**

जो शून्यवादी जीव अजीव आदि अनेक प्रकार के पदार्थों को आँखों से देखते हुए भी यह कहता है कि कुछ भी नहीं है, वह झूठो का सिरताज है।

**जं सव्वं पि य संतं ता सो वि असंत ओ कहं होदि।**
**णत्थि त्ति किंचि तत्तो अहवा सुण्णं कहं मुणदि।।( 251 )**
**यत् सर्वम् अपि च सत् तत् सः अपि असत्कः कथं भवति।**
**नास्ति इति किंचित् ततः अथवा शून्यं कथं जानाति।।**

तथा जब सब वस्तु सत्स्वरूप हैं अर्थात् विद्यमान है, तब वह असत् रूप, अविद्यमान कैसे हो सकती है ? अथवा जब कुछ है ही नहीं और सब शून्य है तो इस शून्य तत्त्व को कैसे जानता है ?

इस गाथा का पाठान्तर भी है उसका अर्थ इस प्रकार है। यदि सब वस्तु असत् रूप है तो वह शून्यवादी भी असत् रूप हुआ, तब वह 'कुछ भी नहीं है' ऐसा कैसे कहता है अथवा वह शून्य को जानता कैसे है ?

शून्यवादी बौद्ध का मत है कि जिस एक या अनेक रूप से पदार्थों का कथन किया जाता है। वास्तव में वह रूप है ही नहीं, इसलिये वस्तुमात्र असत् है व जगत् शून्य के सिवा और कुछ भी नहीं है। शून्यवादी के इस मत का निराकरण करते हुए आचार्य कहते हैं कि भाई, संसार में अनेक प्रकार की वस्तुएँ आँखों से साफ दिखाई देता है। जो उनको देखते हुए भी कहता है कि जगत् शून्य रूप है वह महाझूठा है। जब जगत् शून्य रूप है और उसमें कुछ भी सत् नहीं है तो ज्ञान व शब्द भी असत् हुए। जब ज्ञान और शब्द भी असत् हुए तो वह शून्यवादी कैसे तो स्वयं यह जानता है कि सब कुछ शून्य है और कैसे दूसरों को यह कहता है कि सब शून्य है, क्योंकि ज्ञान और शब्द के अभाव में न कुछ जाना जा सकता है और न कुछ कहा जा सकता है। इसके सिवाय जब सब जगत् शून्यरूप हैं तो शून्यवादी भी शून्यरूप हुआ। जब वह स्वयं शून्य है तो वह शून्य को कैसे जानता है और कैसे शून्यवाद का कथन करता है।

## जितने नाम उतने पदार्थ

**किं बहुणा उत्तेण य जेत्तिय-मेत्ताणि संति णामाणि।**

**तेत्तिय-मेत्ता अत्था संति य णियमेण परमत्था।।( 252 )**

**किं बहुना उक्तेन च यावन्मात्राणि संति नामानि।**

**तावन्मात्राः अर्थाः सन्ति च नियमेन परमार्थाः।।**

अधिक कहने से क्या? जितने नाम हैं, उतने ही नियम से परमार्थ रूप पदार्थ हैं।

शब्द और अर्थ का स्वाभाविक सम्बन्ध है, क्योंकि अर्थ को देखते ही उसके वाचक शब्द का स्मरण हो आता है और शब्द के सुनते ही उसके वाच्य अर्थ का स्मरण होता है। अतः संसार में जितने शब्द हैं, उतने ही वास्तविक पदार्थ हैं। कहा जाए कि गधे के सींग, वन्ध्यापुत्र, आकाशफूल आदि शब्दों के होते हुए भी न गधे के सींग होते हैं न बांझ को लड़का होता है और न आकाश का फूल होता है। अतः यह कहना कि जितने ही शब्द है, उतने ही वास्तविक पदार्थ है, ठीक नहीं है। किन्तु यह आपत्ति उचित नहीं है, क्योंकि 'गधे के सींग' आदि शब्द एक शब्द नहीं है, किन्तु दो शब्दों के जोड़ रूप हैं। दो शब्दों को मिलाने से तो बहुत से ऐसे शब्द तैयार किये जा सकते हैं, जिनका वाच्य अर्थ वस्तुभूत नहीं है। उक्त कथन समास रहित शब्द के विषय में है। वैसे संसार में गधा, सींग, बांझ, पुत्र, आकाश, फूल इत्यादि सभी शब्दों के वाच्य अर्थ वास्तविक में पाये जाते हैं। अतः शून्यवाद ठीक नहीं है।

## ज्ञान का स्वरुप

**णाणा-धम्मेहिं जुदं अप्पाणं तह परं पि णिच्छयदो।**
**जं जाणेदि सजोगं तं णाणं भण्णदे समए।।( 253 )**
**नानाधर्मैः युतम् आत्मनं तथा परम् अपि निश्चयतः।**
**यत् जानाति स्वयोग्यं तत् ज्ञानं भण्यते समये।।**

जो नाना धर्मों से युक्त अपने को तथा नाना धर्मों से युक्त अपने योग्य पर पदार्थों को जानता है, उसे निश्चय से ज्ञान कहते हैं।

जो जानता है, उसे ज्ञान कहते हैं। अब प्रश्न होता है कि वह किसे जानता है? जो स्वयं अपने को और अन्य पदार्थों को जानता है, वह ज्ञान है। इसी से परिक्षामुख में कहा है कि स्वयं अपने और परपदार्थों के निश्चय करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। परीक्षामुख सूत्र की विस्तृत टीका प्रमेयकमलमार्तण्ड में इसका व्याख्यान खूब विस्तार से किया है। वस्तु में रहने वाले धर्मों के ज्ञानपूर्वक ही वसतु का ज्ञान होता है। ऐसा नहीं है कि वसतु के किसी एक भी धर्म का ज्ञान न हो और वस्तु का ज्ञान हो जाये। इसी से कहा है कि नाना धर्मों से युक्त वस्तु को जानता है, वह ज्ञान है। फिर भी संसार में जानने के लिये अनन्त पदार्थ है और हम सब को न जानकर जो पदार्थ सामने उपस्थित होता है, उसी को जानते हैं। उसमें भी कोई साधारण रीति से जान पाता है व कोई विशेष रूप से जानता है, अर्थात् सब संसारी जीवों का ज्ञान एकसा नहीं जानता। इसी कारण कहा है कि अपने योग्य पदार्थों को जानता है, वह ज्ञान है।

## केवलज्ञान का अस्तित्व

**जं सव्वं पि पयासदि दव्वं-पज्जाय-संजुदं लोयं।**
**तह य अलोयं सव्वं तं णाणं सव्व-पच्चक्खं।।( 254 )**
**यत् सर्वम् अपि प्रकाशयति द्रव्यं पर्यायसंयुतं लोकम्।**
**तथा च अलोकं सर्वं तत् ज्ञानं सर्व प्रत्यक्षम्।।**

जो ज्ञान द्रव्यपर्याय सहित समस्त लोक को तथा समस्त अलोक को प्रकाशित करता है, वह सर्वप्रत्यक्ष केवलज्ञान है।

आकाशद्रव्य सर्वव्यापी है तथा सब ओर उसका अन्त नहीं है, अर्थात् वह अनन्त है। उस अनन्त आकाश के मध्य में 343 राजू प्रमाण लोक है। उस लोक में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल छहों द्रव्य रहते हैं। उन द्रव्यों की नर, नारक आदि द्वयणुक स्कन्धादि अनन्त पर्यायों होती हैं। लोक के बाहर सर्वत्र जो आकाश है, वह आलोक कहा जाता है। वहाँ केवल एक आकाशद्रव्य ही है। उसमें भी अगुरुलघु गुणकृ हानि वृद्धि होने से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप पर्याय होती हैं। द्रव्यपर्याय सहित लोक-अलोक को जो प्रत्यक्ष जानता है, वही केवलज्ञान है। तत्वार्थसूत्र में भी सब द्रव्यों तथा सब द्रव्यों की त्रिकालवर्ती सब पर्यायों को केवलज्ञान का विषय बतलाया है। एक अन्य ग्रंथ में केवलज्ञान को नमस्कार करते हुए कहा कि केवलज्ञान क्षायिक है, क्योंकि समस्त ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने पर ही केवलज्ञान प्रकट होता है। इसी से वह अकेला ही रहता है। उसके साथ अन्य मति-श्रुतादि ज्ञान नहीं रहते, क्योंकि ये ज्ञान क्षायोपशमिक होते हैं अर्थात् ज्ञानावरण कर्म के रहते हुए ही होते हैं; केवलज्ञान उसके चले जाने पर होता है। अतः केवलज्ञान सूर्य की तरह अकेला ही त्रिकालवर्ती सब पदार्थों को एक साथ प्रकाशित करता है। क्षायिक होने से ही उसका कभी अंत नहीं होता, अर्थात् एक बार प्रकट होने पर वह सदा बना रहता है, क्योंकि उसको ढांकनेवाला ज्ञानावरण कर्म नष्ट हो चुका है। अतः वह समस्त सुखों का भण्डार है।

## ज्ञान सर्वगत

**सव्वं जाणदि जम्हा सव्व-गयं तं पि वुच्चदे तम्हा।**
**ण य पुण विसरदि णाणं जीवं चइऊण अण्णत्थ।।( 255 )**
**सर्वं जाणाति यस्मात् सर्वगतं तत् अपि उच्यते तस्मात्।**
**न च पुनः विसरति ज्ञानं जीवं त्यक्त्वा अन्यत्र।।**

ज्ञान समस्त लोकालोक को जानता है, अतः ज्ञान को सर्वगत भी कहते हैं, किन्तु ज्ञान जीव को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाता।

सर्वगत का अर्थ है सब जगह जाने वाला। अतः ज्ञान को सर्वगत कहने से यह अर्थ नहीं लेना चाहिये कि ज्ञान आत्मा को छोड़कर पदार्थ के पास चला जाता है, किन्तु आत्मा में रहते हुए ही वह समस्त लोकालोक को जानता है। अतः उसे सर्वगत कहते हैं। प्रवचनसार में आचार्य कुन्दफुन्द देव ने इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। उन्होंने कहा है कि आत्मा ज्ञान के बराबर है और ज्ञान ज्ञेय के बराबर है तथा ज्ञेय लोकालोक है। अतः ज्ञान सर्वगत है।

## ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध

**णाणं ण जादि णेयं णेयं पि ण जादि णाण-देसम्मि।**
**णिय-णिय-देस-ठियाणं ववहारो णाण-णेयाणं।।( 256 )**
**ज्ञानं न याति ज्ञेयं ज्ञेयम् अपि न याति ज्ञानदेशे।**
**निजनिजदेशस्थितानां व्यवहारः ज्ञानज्ञेययोः।।**

ज्ञान ज्ञेय के पास नहीं जाता और न ज्ञेय ज्ञान के पास आता है। फिर भी अपने-अपने देश में स्थित ज्ञान व ज्ञेय में ज्ञेयज्ञायक-व्यवहार होता है।

आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार के आरम्भ में भगवान् महावीर को नमस्कार करते हुए उनके ज्ञान को अलोक सहित तीनों लोगों के लिये दर्पण की तरह बतलाया है। जैसे दर्पण अपने स्थान पर रहते हुए ही अपने स्थान पर रखे हुए पदार्थों को प्रकाशित करता है, वैसे ही ज्ञान भी अपने स्थान पर रहते हुए ही अपने-अपने स्थान पर स्थित पदार्थों को जान लेता है। प्रवचनसार में भी कहा है कि आत्मा ज्ञानस्वभाव है व पदार्थ ज्ञेयस्वरूप है

अर्थात् जानना आत्मा का स्वभाव है और ज्ञान के द्वारा विषय किया जाना पदार्थों का स्वभाव है। अतः जैसे चक्षुरूपी पदार्थों के पास न जाकर ही उनके स्वरूप को ग्रहण करने में समर्थ है, रूपी पदार्थ भी नेत्रों के पास न जाकर ही अपना स्वरूप नेत्रों को जानने में समर्थ है, वैसे ही आत्मा भी न तो उन पदार्थों के पास जाता है और न वे पदार्थ आत्मा के पास आते हैं। फिर भी दोनों में ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध होने से आत्मा सब को जानता है और पदार्थ अपने स्वरूप को जानते हैं। जैसे दूध के बीच में रखा हुआ नीलम अपनी प्रभा से उस दूध को अपना-सा नीला कर लेता है, उसी प्रकार ज्ञान पदार्थों में रहता है, अर्थात् दूध में रहते हुए भी नीलम अपने में ही है और दूध अपने रूप में है, तभी तो नीलम के निकालते ही दूध स्वाभाविक स्वच्छ रूप में हो जाता है। ठीक यही दशा ज्ञान और ज्ञेय की है।

हम अपना आकलन अपने भीतर मौजूद क्षमताओं से करते हैं जबकि अन्य लोग हमें हमारे कर्मों से आकते है।

-मार्क्स फ्रेंक

अन्तः प्रज्ञाशील व्यक्ति अपना मूल्यांकन अपने भीतर स्थित क्षमताओं से करते हैं, जबकि कुछ गुणग्राही लोग हमारा मूल्यांकन हमारे कर्मों से करते हैं ।

-आचार्य कनकनन्दी

आप अपनी गलतियों को एक बार स्वीकार कर लेंगे तो कोई भी आपके खिलाफ इस्तेमाल नहीं कर सकेंगे ।

-हार्वर्ड बिजनेस रिव्यू से

जो स्वयं की गलती स्वीकार करता हैं वह स्व-गलतियों को जानता है, मनता हैं वह सुधार करने के लिए प्रयास करता हैं, इसीलिए अन्य लोग भी उसकी गलती को लेकर आलोचना या विरोध नहीं करते है।

-आचार्य कनकनन्दी

## अर्थ के द्रव्य, गुण, पर्याय स्वरुप

**अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।**

**तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया।।( 93 )प्र.सार**

**The object of knowledge is made up of substances, which are said to be characterised by qualities and with which, moreover, are (associated) the modifications, those, who are deluded by modifications, are false believers.**

( खलु ) निश्चय से ( अत्थो ) ज्ञान का विषयभूत पदार्थ ( दव्वमओ ) द्रव्यमय होता है, क्योंकि वह पदार्थ तिर्यक् - सामान्य अथवा ऊर्ध्वता सामान्यमय द्रव्य से निष्पन्न होता है अर्थात् तिर्यक सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य रूप द्रव्य का लक्षण पाया जाता है। इन दो प्रकार के सामान्य का स्वरूप ऐसा है - एक ही समय में नाना व्यक्तियों में पाया जाने वाला जो अन्वय उसको तिर्यक् सामान्य कहते हैं। यहाँ यह दृष्टांत है कि जैसे नाना प्रकार सिद्ध जीवों में यह सिद्ध है, ऐसा जोड़ रूप एक तरह के स्वभाव को रखने वाला सिद्ध की जाति का विश्वास है - इस एक जातिपने को तिर्यक् सामान्य कहते हैं तथा भिन्न-भिन्न समयों में एक ही व्यक्ति का एक तरह का ज्ञान सो ऊर्ध्वता सामान्य कहा जाता है। यहां यह दृष्टांत है कि जैसे जो कोई केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय मुक्तात्मा है दूसरे तीसरे आदि समयों में भी वही है, ऐसी प्रतीति होना सो ऊर्ध्वता सामान्य है अथवा दोनों सामान्य के दो दूसरे दृष्टांत हैं - जैसे नाना गौ के शरीरों में यह गौ है, यह गौ है ऐसी गौ जाति की प्रतीति होना सो तिर्यक्सामान्य है तथा जो कोई पुरुष बाल, कुमारादि अवस्थाओं में था सो ही यह देवदत्त है, ऐसा विश्वास सो ऊर्ध्वता सामान्य है।

( दव्वाणि ) द्रव्य सब ( गुणप्पगाणि ) गुणमयी ( भणिदाणि ) कहे गए हैं जो द्रव्य के समान अन्वयरूप रहें अर्थात् उसके साथ-साथ वर्तें वे गुण होते हैं, ऐसा गुण का लक्षण है। जैसे सिद्ध जीव द्रव्य है, सो अनन्तज्ञान सुख आदि विशेष गुणों से तथा अगुरुलघुक आदि सामान्य गुणों से अभिन्न है अर्थात् ये सामान्य-विशेष गुण सिद्ध आत्मा के साथ सदा पाये जाते हैं, तैसे ही सर्व द्रव्य

अपने-अपने सामान्य विशेष गुणों से अभिन्न हैं, इसलिये सब द्रव्य गुणरूप होते हैं ( पुणो ) तथा ( तेहिं पज्जाया ) उन्हीं पूर्व में कहे हुए लक्षण स्वरूप द्रव्य व गुणों से पर्यायें होती है जो एक दूसरे से भिन्न अथवा क्रम-क्रम से हो, उनको पर्याय कहते हैं, यह पर्याय का लक्षण है। जैसे एक सिद्ध भगवान् रूपी द्रव्य में अंतिम शरीर से कुछ आकारमयी, गति मार्गणा से विलक्षण सिद्धगति रूप पर्यायें हैं तथा अगुरुलघु गुण में षट्गुणी वृद्धि तथा हानिरूप साधारण स्वाभाविक गुण पर्यायें स्वजाति विभाव द्रव्य पर्याय तैसे ही स्वाभाविक और वैभाविक गुण पर्यायें होती हैं। 'जेसि अत्थिसहाओ' इत्यादि गाथा में तथा 'भावा जीवादीया' इत्यादि गाथा में श्री पंचास्तिकाय के भीतर पहले कथन किया गया है सो वहां से यथासम्भव जान लेना योग्य है। ( पज्जय मूढ़ा ) जो इस प्रकार द्रव्य गुण पर्याय के ज्ञान से मूढ़ हैं अथवा मैं नारकी आदि पर्यायरूप सर्वथा नहीं हूँ इस भेदविज्ञान को अथवा अनेकान्त को न समझकर अज्ञानी है वे ( हि ) वास्तव में ( परसमया ) परात्मवादी मिथ्यादृष्टि है। इसलिये यही जिनेन्द्र परमेश्वर की कही हुई समीचीन द्रव्यगुण पर्याय की व्याख्या कल्याणकारी है, यह अभिप्राय है।

**समीक्षा** – आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने प्रथम ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन महाधिकार में ज्ञान का सविस्तृत दार्शनिक, वैज्ञानिक, सूक्ष्म मर्मस्पर्शी, अकाट्य वर्णन के बाद दूसरा ज्ञेय तत्त्व प्रज्ञापन महाधिकार का शुभारंभ यहाँ से किया है। ज्ञान तत्त्व का वर्णन पहले इसीलिये किया है कि ज्ञान जानने वाला है इसके पश्चात् ज्ञेय तत्त्व का वर्णन इसीलिये किया गया है क्योंकि ज्ञेय जानने योग्य है। यदि ज्ञान नहीं है तो ज्ञेय रहते हुए भी ( ऐसे तो ज्ञेय के बिना ज्ञान नहीं है और ज्ञान के बिना ज्ञेय नहीं है ) ज्ञेय किसी का भी विषय नहीं बन सकता है। इसलिये पहले ज्ञान का वर्णन करके उसके अनन्तर ज्ञेय का वर्णन किया है। दूसरी बात यह है कि ज्ञेय से भी ज्ञान पूजनीय है क्योंकि ज्ञान चैतन्यमय है, आनन्दमय है। भले ज्ञेय में भी अन्य का ज्ञान गर्भित है पर मेरी विवक्षा से यहाँ ज्ञान से जानने वाला और ज्ञेय से ज्ञान का विषय होने वाले को स्वीकार किया गया है।

सम्पूर्ण चराचर विश्व ज्ञेय स्वरूप है। जीव तथा यहाँ तक कि ज्ञान भी कथंचित् ज्ञेय है और सम्पूर्ण ज्ञेय अर्थ स्वरूप है। जो अर्थ होता है वह द्रव्यमय होता है, जो द्रव्यमय होता है उसमें गुण अवश्य होंगे। द्रव्य एवं गुण द्रव्यदृष्टि से शाश्वतिक होते हुए भी परिवर्तनशील होने के कारण उनमें पर्याय होना भी स्वाभाविक है। ये पर्याय अवस्था विशेष होने के कारण सूक्ष्मदृष्टि से एक क्षणस्थायी है और जो केवल पर्याय को सब कुछ मानता है द्रव्य एवं गुण को नहीं मानता है वह सत्य का बहु अंश न मानने के कारण सत्य से बाह्य है, हठग्राही है, मिथ्यादृष्टि है। द्रव्यादि की परिभाषा आचार्य देवसेन ने आलाप पद्धति में निम्न प्रकार से की है।

द्रव्यस्य भावो द्रव्यत्वम्, निज निज प्रदेश समूहैरखण्डवृत्या स्वभाव विभाव पर्यायान् द्रवति द्रोष्यन्ति अदुवदिति द्रव्यम्।पृ. 142, स. 96

जो अपने-अपने प्रदेश समूह के द्वारा अखण्डपने से अपने स्वभावविभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा, हो चुका है, वह द्रव्य है। उस द्रव्य का जो भाव है, वह द्रव्यत्व है।

## विशेष गुण का स्वरुप

**गुण्यते पृथक् क्रियते द्रव्यं द्रव्याद्यैस्तेगुणाः ।स.93**

जिनके द्वारा एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य से पृथक् किया जाता है, वे विशेष गुण कहलाते हैं।

## गुण-पर्याय में भेद

**सहभुवो गुणाः क्रमवर्तिनः पर्यायाः ।स.92**

साथ में होने वाले गुण हैं और क्रम-क्रम से होने वाली पर्याये हैं। अर्थात् अन्वयी गुण हैं और व्यतिरेक परिणाम पर्यायें हैं।

**स्वभाव विभावरूपतया याति पर्येति परिणमतीति पर्यायः ।सू.105**

जो स्वभाव विभावरूप से सदैव परिणमन करती रहती हैं, वह पर्याय हैं।

जिस प्रकार अग्नि अपना दाहकत्व, पाचकत्व, प्रकाशत्व, उष्णत्वादि गुण से रहित नहीं होती है परन्तु तादात्म्य रूप ही होती हैं। उसी प्रकार द्रव्य भी

गुण एवं पर्यायों से पृथक् नहीं रहता है बल्कि तदात्म्य रूप ही रहता है। जिस प्रकार दो कागज को गोंद के माध्यम से चिपका दिया जाता है उसी प्रकार द्रव्य में गुण एवं पर्याय कोई अन्य समवाय से मिलकर नहीं रहते हैं बल्कि वे अनादि सहजात तादात्म्य सम्बन्ध से ही रहते हैं। भले गुण सर्वकालिक हैं और कुछ पर्यायें असर्वकालिक हैं। द्रव्य का लक्षण करते हुए आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने कहा है –

**दव्वं पज्जवविउयं दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि।**

**उप्पायट्ठिइभंगा हंदि दवियलक्खणं एयं।।( 12 )( स.सू.पृ.नं. 12 )**

द्रव्य का स्वरूप नित्यानित्यात्मक है। कोई द्रव्य नित्य तथा कोई द्रव्य अनित्य मात्र नहीं है; क्योंकि पर्याय से रहित कोई द्रव्य नहीं है और द्रव्य से विहीन पर्याय नहीं है। पर्यायवान् द्रव्य उत्पत्ति, स्थिति और विनाशशील है। इसलिये उत्पाद, स्थिति और व्यय इन तीनों से युक्त द्रव्य का लक्षण कहा गया है। द्रव्य का लक्षण 'सत्' है और 'सत्' उत्पाद व्यय एवं ध्रौव्यात्मक होता है, अतएव इन तीनों से युक्त द्रव्य है। ये तीनों विभाग रहित हैं; क्योंकि द्रव्य एवं पर्याय का अविनाभाव सम्बन्ध है। इसलिये भिन्न-भिन्न निमित्तों के संयोग से वस्तु भिन्न-भिन्न रूपों से परिणमती रहती हैं, किन्तु अपने मूल का कदापि त्याग नहीं करती।

**आचार्य उमास्वामी ने द्रव्य की परिभाषा उपरोक्त प्रकार से ही की है यथा –**

**गुणपर्ययवद् द्रव्यम्।( 38 )( स्वतंत्रता के सूत्र पृ. 338 )**

**Substance is possessed of attributes and modifications.**

**गुण और पर्याय वाला द्रव्य है।**

द्रव्य, गुण और पर्यायों का एक अखण्ड पिण्ड स्वरूप है। गुण को सामान्य, उत्सर्ग, अन्वय भी कहते हैं। पर्याय को विशेष भेद भी कहते हैं। ऐसे सामान्य और विशेष से सहित द्रव्य होता है। पंचास्तिकाय में कहा भी है –

**पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्त य पज्जया णत्थि।**

**दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति।।( 12 )**

पर्यायों से रहित द्रव्य और द्रव्यरहित पर्यायें नहीं होती हैं। दोनों का अनन्यभाव श्रमण प्ररूपित करते हैं।

जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि से रहित गोरस नहीं होता है, उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता, जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होती। इसलिये, यद्यपि द्रव्य और पर्यायों का आदेशवशात्-विवक्षावश कथंचित् भेद हैं तथापि वे एक अस्तित्व में नियत ( दृढ़रूप से स्थित ) होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ती, इसलिये वस्तुरूप से उनका अभेद है।

**दव्वेण विणा ण गुणा, गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।**

**अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा।।( 13 )**

द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता है, इसलिये द्रव्य और गुणों का अव्यतिरिक्त भाव अनन्यभाव है।

जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् स्पर्श-रस-वर्ण-गंध नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, जिस प्रकार स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण से पृथक् पुद्गल नहीं होता उसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। इसलिये यद्यपि द्रव्य और गुणों का आदेशवशात् कथंचित् भेद है तथापि वे एक अव्यतिरिक्तत्व में नियत होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते इसलिये वस्तुरूप से उनका भी अभेद है।

द्रव्य के बिना गुण नहीं हो सकते तथा गुणों के बिना द्रव्य संभव नहीं है इसलिये द्रव्य और गुणों का अभिन्न भाव होता है।

जैसे पुद्गल द्रव्य की सत्ता के बिना उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं पाए जा सकते, वैसे द्रव्य के बिना गुण नहीं होते हैं तथा जैसे वर्णादि गुणों को छोड़कर पुद्गल द्रव्य नहीं मिलता है वैसे गुणों के बिना द्रव्य नहीं प्राप्त हो सकता है। द्रव्य और गुणों की सत्ता अभिन्न है एक है क्योंकि द्रव्य की अपेक्षा वे अभिन्न हैं। द्रव्य और गुणों के प्रदेश अभिन्न हैं एक है क्योंकि क्षेत्र की अपेक्षा एकता है। द्रव्य और गुणों का एक ही काल उत्पाद-व्यय का

अविनाभाव है, क्योंकि काल की अपेक्षा दोनों एक है। द्रव्य और गुण दोनों एक स्वरूप है, क्योंकि उनका स्वभाव एक है। अतः द्रव्य और गुणों का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की अपेक्षा अभेद है इसलिये द्रव्य और गुण अभिन्न है, एक है। अथवा दूसरा व्याख्यान करते हैं कि भाव जो पदार्थ वह द्रव्य और गुणों से अभिन्न है अर्थात् द्रव्य गुण का ही पदार्थ कहा गया है।

**समुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं क्षीणकल्मषाः।**

**गुणपर्ययवद्द्रव्यं वदन्ति जिनपुङ्गवाः।।( 5 )( तत्त्वार्थ अ. 3 पृ.92 )**

वीतराग जिनेन्द्र भगवान् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त अथवा गुण और पर्यायों से युक्त पदार्थ को द्रव्य कहते हैं।

## गुण और पर्याय का लक्षण

**गुणो द्रव्यविधानं स्यात् पर्यायो द्रव्यविक्रिया।।( 9 )**

**द्रव्यं ह्ययुत्वसिद्धं स्यात् समुदायस्तयोर्द्वयोः।।**

द्रव्य की जो विशेषता है उसे गुण कहते हैं और द्रव्य का जो विकार है वह पर्याय कहलाता है। द्रव्य उन दोनों गुण पर्यायों का अपृथक् सिद्ध समुदाय है।

## गुण और पर्याय का पर्यायवाचक शब्द

**सामान्यमन्वयोत्सर्गौ शब्दाः स्युर्गुणवाचकाः।**

**व्यतिरेको विशेषश्च भेदः पर्यायवाचकाः।।( 10 )**

सामान्य, अन्वय और उत्सर्ग ये गुणवाचक शब्द हैं तथा व्यतिरेक, विशेष और भेद ये पर्याय शब्द कहे गये हैं।

## गुण और द्रव्य में अभेद है –

**गुणैर्विना न च द्रव्यं विना द्रव्याच्च नो गुणाः।**

**द्रव्यस्य च गुणानां च तस्मादव्यतिरिक्तताः।।( 11 )**

गुणों के बिना द्रव्य और द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, इसलिये द्रव्य और गुणों में अभेदता है।

## द्रव्य और पर्याय की अभिन्नता

**न पर्यायाद्विना द्रव्यं विना द्रव्यान्न पर्ययः।**
**वदन्त्यनन्यभूतत्वं द्वयोरपि महर्षयः।।( 12 )**

पर्याय के बिना द्रव्य और द्रव्य के बिना पर्याय नहीं होती इसलिये महर्षि दोनों में अभिन्नता कहते हैं।

### पर्याय ही उत्पाद और व्यय के करने वाले हैं

**न च नाशोऽस्ति भावस्य न चाभावस्य सम्भवः।**
**भावाः कुर्युर्व्ययोत्पादौ पर्यायेषु गुणेषु च।।( 13 )**

सत् का नाश और असत् की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये पर्याय ही पर्यायों और गुणों में व्यय और उत्पाद को करते हैं।

द्रव्य दृष्टि से किसी पदार्थ का न नाश होता है और न किसी पदार्थ की उत्पत्ति होती है, सिर्फ पर्याय ही नष्ट होती तथा उत्पन्न होती है, इस तरह उत्पाद और व्यय का कर्त्ता पर्याय ही है।

**सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।**
**भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।।( 18 )**

सत्ता, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक, एक, सर्व पदार्थ स्थित, सविश्वरूप अनंत पर्यायमय और सप्रतिपक्ष है।

वस्तु स्वरूप जिस प्रकार है उसे उसी रूप में स्वीकार करना सम्यग्दर्शन है। वस्तु स्वरूप के विपरीत या संशययुक्त कम या अधिक श्रद्धान करना भी मिथ्यात्व है। जिस प्रकार 2+2=4 मानना यथार्थ है, परन्तु 1+2=3 या 5 या -5 आदि मानना अयथार्थ है। इसी प्रकार द्रव्य जो गुण पर्यायात्मक है उसे उसी प्रकार स्वीकार करना स्वसमय ( सम्यक्त्व ) और उससे विपरीत जो कुछ पर समय श्रद्धान करना परसमय ( मिथ्यात्व ) है। इस सूक्ष्म आध्यात्मिक विषय को स्थूल, व्यावहारिक रूप में विचार करेंगे तो जीव की अशुद्ध पर्याय यथा स्त्री-पुरुष, धनी-गरीब, देव-नारकी आदि पर्यायों में मोहित होने वाले जीव मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि ये सब पर्यायें जीव की स्वाभाविक पर्याय नहीं वरन् वैभाविक पर्याय होने के कारण पर है, क्षणभंगुर है, दुःख स्वरूप है, दुःखोत्पादक है और अनात्म है। परमात्म प्रकाश में कहा भी है -

**पज्जय-रत्तउ जीवडउ मिच्छादिट्ठि हवेइ।**
**बंधइ बहु-विह-कम्मड़ा जें संसारू भमेई।।( 77 )**

शरीर आदि पर्याय में लीन हुआ जो अज्ञानी जीव है, वह मिथ्यादृष्टि होता है और फिर वह अनेक प्रकार के कर्मों को बांधता है, जिनसे कि संसार में भ्रमण करता है।

परमात्मा की अनुभूति रूप श्रद्धा से विमुख जो आठ मद, आठ मलाछह अनायतन, तीन मूढ़ता इन 25 दोषों कर सहित अतत्वश्रद्धान रूप मिथ्यात्व परिणाम जिसके हैं, वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। वह मिथ्यादृष्टि नर नारकादि विभाव-पर्यायों में लीन रहता है। उस मिथ्यात्व परिणाम से शुद्धात्मा के अनुभव से पराङ्मुख अनेक तरह के कर्मों को बांधता है, जिनसे कि द्रव्य क्षेत्र, काल, भव भावरूपी पांच प्रकार के संसार में भटकता है। ऐसा कोई शरीर नहीं जो इसने न धारण किया हो, ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है कि जहां न उपजा हो और न मरण किया हो, ऐसा कोई काल नहीं है कि जिसमें इसने जन्म-मरण न किये हों, ऐसा कोई भव नहीं जो इसने न पाया हो, और ऐसे अशुद्ध भाव नहीं हैं, जो इसके न हुए हों। इस तरह अनन्त परावर्तन इसने किये हैं। ऐसा ही कथनमोक्ष पाहुड में निश्चय मिथ्यादृष्टि के लक्षण में श्री कुंदकुंदाचार्य ने कहा है 'जो पुण इत्यादि'। इसका अर्थ यह है, कि जो अज्ञानी जीव द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रूप परद्रव्य में लीन हो रहे हैं, वे साधु के व्रत धारण करने पर भी मिथ्यादृष्टि ही हैं, सम्यग्दृष्टि नहीं और मिथ्यात्वकर परिणमते दुःख देने वाले आठ कर्मों को बांधते हैं। फिर भी आचार्य ने ही कहा है, ''जे पज्जयेसु'' इत्यादि। उसका अर्थ यह है कि जो नर नरकादि पर्यायों में मग्न हो रहे हैं, वे जीव परपर्याय में रत मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा भगवान् ने कहा है और जो उपयोग लक्षणरूप निजभाव में तिष्ठ रहे हैं, वे स्वसमयरूप सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा जानो। सारांश यह है, कि जो परपर्याय में रत है वे तो परसमय हैं, और जो आत्म स्वभाव में लगे हुए हैं, वे स्वसमय हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं है। यहाँ पर आत्म ज्ञान रूपी वीतराग सम्यक्त्व से पराङ्मुख जो मिथ्यात्व है वह त्यागने योग्य है।

## स्वसमय (स्वधर्म) परसमय (परधर्म)

**जे पज्जयेसु णिरदा जीवा परसमयिग त्ति णिद्दिट्ठा।**
**आदसहावम्मि ठिदा ते सगसमया मुणेदव्वा।।( 94 )प्र. सार**

**Those beings, that are attached to modification, are pointed out as the followers of the foreign creed (para-Samayika), and those who establish themselves in the nature of the self, are to be known as the followers of one's own creed.**

( जे जीवा ) जो जीव ( पज्जयेसु णिरदा ) पर्यायों में लवलीन हैं, अर्थात् जिनको पर्याय के अतिरिक्त द्रव्य सामान्य का बोध नहीं है ( परसमयिग त्तिणिहिट्ठा ) परसमय रूप कहे गए हैं। विस्तार यह है कि मैं मनुष्य, पशु, देव, नारकी इत्यादि पर्याय रूप ही हूँ, इस भाव को अहंकार कहते हैं। यह मनुष्य आदि शरीर तथा उस शरीर तथा उस शरीर के आधार से उत्पन्न पंचेन्द्रियों के विषय रूप सुख मेरे स्वभाव हैं, इस भाव को ममकार कहते हैं। जो अज्ञानी ममकार और अहंकार से रहित परम चैतन्य चमत्कार की परिणति से अनभिज्ञ इन अहंकार ममकार भावों से परिणमन करते हैं वे जीव कर्मों के उदय से उत्पन्न परपर्याय में सर्वथा लीन होने के कारण से परसमय कहे जाते हैं। ( आदसहावम्मि ठिदा ) जो ज्ञानी अपने आत्मा के स्वभाव में ठहरे हुए हैं।( ते सगसमया मुणेदव्वा ) वे स्वसमयरूप जानने चाहिए। विस्तार यह है कि जैसे एक रत्न-दीपक अनेक प्रकार के घरों में घुमाए जाने पर भी एक रत्न रूप ही है, इसी तरह अनेक शरीरों में घूमते रहने पर भी मैं एक वही आत्म द्रव्य हूँ, इस तरह दृढ़ संस्कार के द्वारा जो अपने शुद्धात्मा में ठहरते हैं, वे कर्मों के उदय से होने वाली मनुष्य पर्याय में परिणति से रहित अर्थात् रागद्वेष न करते हुए स्वसमय रूप होते हैं, ऐसा अर्थ है।

**समीक्षा** - शब्द के अनेक अर्थ होने के कारण उसका प्रयोग विभिन्न स्थल में विभिन्न प्रकार से होता है। समय का भी विभिन्न अर्थ है यथा - समय ( काल, टाइम ), सिद्धान्त, द्रव्य, आत्मा आदि-आदि हैं परन्तु यहाँ आध्यात्मिक प्रकरण है इसलिए यहां समय का अर्थ आत्मा ( शुद्ध जीव द्रव्य ) है। समय सार की टीका में आचार्य जयसेन स्वामी ने कहा भी है -

'समय' अर्थात् एकमेकरूप से जो गमन उसका नामसमय प्राभृत अर्थात् सार-शुद्धावस्था, इसी प्रकार समयनाम आत्मा उसका प्राभृत अर्थात् शुद्धावस्था वही हुआ समय प्राभृतं। अथवा समय जो है वही प्राभृत सो समय प्राभृत।( समय सार ) पृ.3

अतएव जो स्वशुद्धात्मा में लीन होता है, स्थिर होता है, रमण करता है। वह ही समय सार शुद्ध आध्यात्मिक दशा है इसके विपरीत जो नर, नारकादि पर्याय में राग-द्वेष रूपी वैभाविक परिणाम में रत है वह परसमय है, अनात्म भाव है, अशुद्ध दशा है, बन्धनबद्ध अवस्था है। कुन्दकुन्द देव ने समय सार में कहा भी है -

**जीवो चरित्तदंससणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।**

**पुग्गलकम्मुवदेसट्ठियं च, तं जाण पर समयं।।( 2 )( समय सार पृ.4 )**

( जीवों ) जो शुद्ध-निश्चयनय की अपेक्षा से शुद्धबुद्ध एक स्वभाव रूप निश्चय प्राण के द्वारा तथा अशुद्ध निश्चय नय से क्षायोपशमिकरूप अशुद्ध भाव-प्राणों द्वारा और असद्भुत व्यवहारनय से यथासंभव द्रव्य प्राणों द्वारा जो जी रहा है, आगे जीता रहेगा और जो पूर्व में जीता था, वह जीव है। चरित्तदंसणणपाणंट्ठिदो तं हि ससमयं जाण वह जीव जब चारित्र, दर्शन और ज्ञान में स्थित रहता है, उस समय उसे स्वसमय समझो। अर्थात् विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव वाले निज परमात्मा में रुचि रूप सम्यग्दर्शन और उसी में रागादि रहित स्वसंवेदन का होना वह सम्यग्ज्ञान तथा निश्चल स्वानुभूति रूप वीतराग चारित्र है, इस प्रकार कहे गये लक्षण वाले निश्चल रत्नत्रय के द्वारा परिणत-जीव-पदार्थ को हे शिष्य! तू स्व समय समझ।' पुग्गलकम्मुवदेसट्ठियं च तं जाण पर समयं' पुद्गल कर्मोपदेश में स्थित उसी जीव को तू पर समय समझ। अर्थात् पुद्गल कर्मोदय के द्वारा उत्पन्न हुए जो नारकादि नामावली संज्ञाये हैं उनमें पूर्वोक्त निश्चयरत्नत्रय न होने से जो स्थित है, उसे उस काल में परसमय समझो। इस प्रकार स्वसमय और परसमय का लक्षण जानने योग्य है।

# द्रव्य का लक्षण

**अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं।**

**गुणवंच सपज्जायं जं तं दव्वंति वुच्चंति।।( 95 )**

**That is called a substance which is endowed with qualities and accompanied by modifications and which is coupled with origination, destruction and permanence without leaving its nature (of existence).**

( यत् ) जो ( अपरिच्चतसहावेण ) अभिन्न स्वभाव रूप से रहता है अर्थात् अपने अस्तित्व या सत् स्वभाव से भिन्न नहीं है, ( उत्पाद व्ययधुवत्तसंजुत्त ) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित है।( गुणवं च सपज्जायं ) गुणवान होकर पर्याय-सहित है, इस तरह सत्ता आदि तीन लक्षणों को रखने वाला है ( तं दव्व त्ति ) उसको द्रव्य ऐसा ( वुच्चंति ) सर्वज्ञ भगवान् कहते हैं।

यह द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्य तथा गुण पर्यायों के साथ लक्ष्य और लक्षण की अपेक्षा भेद रूप होने पर भी सत्ता के भेद को उसका विशेष स्वरूप है, वह लक्षण है। तब यह द्रव्य क्या करता है ? अपने स्वरूप से ही उस विधपने को आलंबन करता है। इसका भाव यह है कि यह द्रव्य शुद्धात्मा की तरह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप तथा गुणपर्याय रूप परिणमन करता है।

केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय में शुद्ध आत्मा के स्वरूप ज्ञानमयी निश्चल अनुभवरूप कारणसमयसार रूप पर्याय का विनाश होते हुए शुद्धात्मा का लाभ या उसकी प्रगटता रूप कार्यसमयसार का उत्पाद या जन्म होता है और इन दोनों पर्यायों के आधार रूप परमात्म द्रव्य की अपेक्षा से ध्रुवपना या स्थिरपना रहता है तथा उस परमात्मा के अनंतज्ञानादि गुण होते हैं। गतिमार्गणा से विपरीत सिद्धगति व इन्द्रिय मार्गणा से विपरीत अतींद्रियपना आदि लक्षण की रखनेवाली शुद्ध पर्यायें होती हैं अर्थात् वह परमात्मद्रव्य जैसे अपनी शुद्धसत्ता से भिन्न नहीं है, एक है, पूर्व में कहे हुए उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वभावों से तथा गुण पर्यायों से संज्ञा लक्षण प्रयोजन आदि की अपेक्षा से भेद रूप होने पर भी उनके साथ सत्ता आदि के भेद को नहीं रखता है, स्ववूप से ही उसी प्रकार पने को पधारण करता है अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप तथा गुण पर्याय स्वरूप रूप परिणमन करता है। तैसे ही सर्वद्रव्य अपने-अपने

यथायोग्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपने से तथा गुण पर्यायों के साथ यद्यपि संज्ञा लक्षण प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद रखते हैं तथापि सत्ता स्वरूप से भेद नहीं रखते हैं, स्वभाव से ही उन प्रपकार-रूपखपने को आलम्बन करते हैं, अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप या गुण पर्याय-स्वरूप परिणमन करते हैं। अथवा जैसे वस्त्र सब स्वच्छ किया जाता है तब अपनी निर्मल पर्याय से उत्पन्न होता है, मलिन पर्याय से नष्ट होता है और इन दोनों के आधार स्वरूप वस्त्र स्वभाव से ध्रुव या अविनाशी है तैसे ही अपने ही श्वेतादिगुण तथा मलिन या स्वच्छ पर्यायों के साथ संज्ञा आदि की अपेक्षा भेद होने पर भी सत्ता रूप से भेद नहीं रखता है, तब क्या करता है? स्वरूप से ही उत्पाद आदि रूप से परिणमन करता है, तैसे ही सर्व द्रव्य परिणमन करते हैं, यह अभिप्राय है।

यहां ( इस विश्व में ) वास्तव में जो, स्वभाव भेद किये बिना उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य त्रय से और गुण पर्यायद्वय से लक्षित होता है वह द्रव्य है। इनमें से ( स्वभाव, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यगुण और पर्याय में से ) वास्तव में द्रव्य का स्वभाव अस्तित्व सामान्य रूप अन्वय है। अस्तित्व को तो दो प्रकार का आगे कहेंगे - 1. स्वरूप अस्तित्व 2. सादृश्य अस्तित्व। उत्पाद प्रादुर्भाव ( प्रगट होना, उत्पन्न होना ) है व्यय, प्रच्युति ( नष्ट होना ) है ध्रौव्य, अवस्थिति ( टिकना ) है, गुण, विस्तार विशेष है। वे सामान्य-विशेषात्मक होने से दो प्रकार का है। इनमें, अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अन्यत्व, पर्यायत्व, सर्वगतत्व, असर्वगतत्व, भोक्तृत्व, अगुरुलघुत्व इत्यादि सामान्य गुण हैं। अवगाह-हेतुत्व, गतिनिमित्तता, स्थितिकारणत्व, वर्तनायनत्व, रूपादिमत्व, चेतनत्व इत्यादि विशेष गुण है। पर्याय आयत विशेष है। वे पूर्व ही ( 93वीं गाथा की टीका में ) कही गई चार प्रकार की है। द्रव्य का उन उत्पादादि के साथ अथवा गुण पर्यायों के साथ लक्ष्य-लक्षण भेद होने पर भी स्वरूप भेद नहीं है ( सत्ता भेद नहीं है ) स्वरूप से ही द्रव्य वैसा होने से ( अर्थात् द्रव्य ही स्वयं उत्पादि रूप तथा गुणपर्याय रूप परिणमन करता है, इस कारण स्वरूप भेद नहीं है ) वस्त्र के समान।

जैसे मलिन अवस्था को प्राप्त वस्त्र, धोने पर निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ उस उत्पाद रूप लक्षित होता ( देखा जाता ) है, किन्तु उसका उस उत्पाद के साथ स्वरूप भेद ( सत्ता भेद ) नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है ( अर्थात्

स्वयं उत्पाद रूप से ही परिणत है ) उसी प्रकार जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की है ऐसा द्रव्य भी जो कि उचित बहिरंग साधनों के सान्निध्य के सद्भाव में अनेक प्रकार की बहुत-सी अवस्थाएँ करता है - अन्तरंग साधनभूत स्वरूपकर्त्ता और स्वरूपकरण के सामर्थ्य रूप स्वभाव से अनुगृहीत ( सहित ) हुआ अवस्था से उत्पन्न होता हुआ, उत्पाद रूप लक्षित होता देखा जाता है, किन्तु उसका उस उत्पाद के साथ स्वरूप भेद सत्ता भेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है।

और जैसे वही वस्त्र निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ और मलिन अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है, परन्तु उसका उस व्यय के साथ स्वरूप भेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है, उसी प्रकार वही द्रव्य भी उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ और पूर्व अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है, परन्तु उसका उस व्यय के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है।

और जैसे वही वस्त्र एक ही समय में निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ मलिन अवस्था में व्यय को प्राप्त होता हुआ और टिकनेवाली वस्त्रत्व अवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है परन्तु उसका उस ध्रौव्य के साथ स्वरूप भेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है, इसी प्रकार वही द्रव्य भी एक ही समय उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ, पूर्व अवस्था से व्यय होता हुआ और टिकनेवाली द्रव्यत्व अवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है, किन्तु उसका उस ध्रौव्य के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है।

और जैसे वही वस्त्र विस्तार विशेष स्वरूप ( शुक्लत्वादि ) गुणों से लक्षित होता है, किन्तु उसका उन गुणों के साथ स्वरूप भेद नहीं है, स्वरूप में ही वैसा है, इसी प्रकार वही द्रव्य भी विस्तार विशेष स्वरूप गुणों से लक्षित होता है, किन्तु उसका उन गुणों के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है। जैसे वही वस्त्र आयत विशेष रूप पर्यायवतर्त्ती ( पर्यायस्थानीय ) तंतुओं से लक्षित होता है, किन्तु उसका उन तंतुओं के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है। उसी प्रकार वही द्रव्य भी आयत विशेष स्वरूप पर्यायों से लक्षित होता है, परन्तु उसका उन पर्यायों के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है।

**समीक्षा** - आचार्य श्री ने गाथा नं. 93 में द्रव्य का सामान्य से कथन करके पुनः इस गाथा में विशेष कथन कर रहे हैं। द्रव्य का विशेष कथन करने का कारण यह है कि सम्पूर्ण विश्व द्रव्य से ही निर्मित है और यहां तक कि जीव भी चैतन्यमय द्रव्य है। जब द्रव्य का सांगोपांग परिज्ञान होगा तब सम्यग्दर्शन में भी अधिक विशुद्धता एवं दृढ़ता आयेगी तथा भेद विज्ञान के बल से अनादिकाल से जो अन्य द्रव्यों से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सम्बन्ध है। राग द्वेष तथा मोह है उसको त्याग करके स्व-शुद्धात्म द्रव्य को प्राप्त कर सकता है, यह हुआ आध्यात्मिक रहस्य। दूसरा कारण यह है कि वस्तु का सूक्ष्म व्यापक परिज्ञान करते समय मन एवं इंद्रियां स्थिर रहती है, भावों में विशुद्धता आती है, जिससे पाप कर्म का संवर होता है, पुण्य का आस्रव होता है जो परम्परा के लिए मोक्ष का कारण बनता है। द्रव्य का लक्षण करते हुए आचार्य उमास्वामी ने भी कहा है -

**द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ।( 41 )पृ. 345 मोक्षशास्त्र**

जो निरन्तर द्रव्य में रहते हैं और गुण रहित हैं वे गुण हैं।

जिसमें गुण आश्रय लेते हैं अर्थात् जिसमें गुण रहते हैं वह आश्रय है। गुणों को कोई न कोई आश्रय चाहिए, गुण आश्रय के बिना नहीं रह सकते और द्रव्य को छोड़कर अन्य आधार हो नहीं सकता।

जो नित्य द्रव्य के आश्रय से रहता है, वह गुण है। यद्यपि पर्यायें भी द्रव्य में रहती हैं, परन्तु पर्यायें कदाचित् हैं अतः 'द्रव्याश्रयाः' इस पद से पर्यायों का ग्रहण नहीं होता है। अतः 'द्रव्याश्रयाः' इस पद से अन्वयी धर्म गुण है ऐसा सिद्ध होता है। जैसे कि, जीव के अस्तित्वादि और ज्ञान दर्शन आदि गुण हैं और पुद्गल के अचेतनत्व आदि रूप-रसादि गुण हैं।

**जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य दव्वदो अण्णे।**
**दव्वाणंतियमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति।।( 44 )( पंचास्तिकाय पृ.152 )**

प्रदेशों की अपेक्षा भी यदि द्रव्य से गुण अलग-अलग हो तो जो अनंतगुण द्रव्य में एक साथ रहते हैं वे अलग-अलग होकर अनंत द्रव्य हो जावेंगे और द्रव्य से जब सब गुण भिन्न हो गए तब द्रव्य का नाश हो जाएगा। यहाँ पूछते हैं कि गुण किसी के आश्रय या आधार से रहते हैं या वे आश्रय बिना होते हैं? यदि वे आश्रय से रहते हैं ऐसा कोई माने और उसको और कोई दोष दे तो यह

कहना होगा कि, जो अनंत ज्ञान आदि गुण जिस किसी एक शुद्ध आत्म द्रव्य में आश्रयरूप है उस आत्म-द्रव्य से यदि वे गुण भिन्न-भिन्न हो जावें, इसी तरह दूसरे शुद्ध जीव द्रव्य में भी जो अनंत गुण हैं वे भी जुदे-जुदे हो जावें तब यह फल होगा कि शुद्धात्म द्रव्यों से अनंत गुणों के जुदा होने पर शुद्ध आत्मद्रव्य अनंत हो जावेंगे। जैसे ग्रहण करने योग्य परमात्म द्रव्य में गुण और गुणी का भेद होने पर द्रव्य की अनंतता कही गई वैसी ही त्यागने योग्य अशुद्ध जीव द्रव्य में तथा पुद्गलादि द्रव्यों में भी समझ लेनी चाहिये अर्थात् गुण और गुणी का भेद होते हुए मुख्य या गौणरूप एक-एक गुण का मुख्य या गौण एक-एक द्रव्य आधार होते हुए द्रव्य अनंत हो जावेगा तथा द्रव्य के पास से जब गुण चले जायेंगे तब द्रव्य का अभाव हो जायेगा जबकि यह कहा है कि गुणों का समुदाय द्रव्य है। यदि ऐसे गुण समुदाय का रूप द्रव्य से गुणों का एकांत से सर्वथा, भेद माना जायेगा तो गुण समुदाय स्वरूप का अस्तित्व द्रव्य कहाँ रहेगा? किसी भी तरह नहीं रह सकता है।

**अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमण्णत्तं।**
**णिच्छंति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं।।( 45 )**

जैसे परमाणु का वर्णादि गुणों के साथ अभिन्नपना है अर्थात् उनमें परस्पर प्रदेशों का भेद नहीं है तैसे शुद्ध जीव द्रव्य का केवलज्ञानादि प्रगटरूप स्वाभाविक गुणों के साथ और अशुद्ध जीव का मतिज्ञान आदि प्रगट रूप विभाग गुणों के साथ तथा शेष द्रव्यों का अपने-अपने गुणों के साथ यथासंभव एकापना है अर्थात् द्रव्य और गुणों के भिन्न-भिन्न प्रदेशों का अभाव जानना चाहिये। निश्चय स्वरूप के ज्ञाता जैनाचार्य, जैसे - हिमाचल और विध्याचल पर्वत में भिन्नपना है अथवा एक क्षेत्र में रहते हुए जल और दूध का भिन्न प्रदेशपना है ऐसा भिन्नपना द्रव्य और गुणों का नहीं मानते हैं तो भी एकान्त से द्रव्य और गुणों का अन्यपने से विपरीत एकपना भी नहीं मानते हैं अर्थात् जैसे द्रव्य और गुणों में प्रदेशों की अपेक्षा अभिन्नपना है तैसे संज्ञा आदि की अपेक्षा से भी एकपना है। ऐसा नहीं मानते हैं अर्थात् एकांत से द्रव्य और गुणों का न एकपना मानते हैं, न भिन्नपना मानते हैं। बिना अपेक्षा के एकत्व और अन्यत्व दोनों को नहीं मानते हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न अपेक्षा से भेदाभेद दोनों स्वभावों

को मानते हैं। प्रदेशों की एकता से एकपना है। संज्ञादि की अपेक्षा द्रव्य और गुणों का अन्यपना है ऐसा आचार्य मानते हैं।

**ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा।**
**ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जंते।।( 46 )**

कथन या संज्ञा के भेद, आकार के भेद, संख्या या गणना और विषय या आधार ये बहुत प्रकार के होते हैं। ये चारों उन द्रव्य और गुणों की एकता में तैसे ही उसकी भिन्नपना में होते हैं।

**णाणं धणं कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।**
**भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू।।( 47 )**

जैसे धन का अस्तित्व भिन्न है और धनी पुरुष का अस्तित्व भिन्न है, इसलिये धन और धनी का नाम भिन्न है, धन का आकार भिन्न है, धनी पुरुष का आकार भिन्न है, धन की संख्या भिन्न है, धनी पुरुष की संख्या भिन्न है, धन का आधार भिन्न है, धनी का आधार भिन्न है तो भी धन को रखने वाला धनी है, ऐसा जो कहना है सो भेद या पृथक्त्व व्यवहार है। तैसे ही ज्ञान का अस्तित्व ज्ञानी से अभिन्न है ऐसे ज्ञान का अभिन्न अस्तित्व रखने वाले ज्ञानी आत्मा के साथ अभेद कथन हैं। ज्ञान का नाम ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी का नाम ज्ञान से अभिन्न है, ज्ञान का संस्थान ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी का संस्थान ज्ञान से अभिन्न है, ज्ञान की संख्या ज्ञानी से अभिन्न है,ज्ञानी की संख्या ज्ञान से अभिन्न है, ज्ञान का आधार ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी का आधार ज्ञान से अभिन्न है।इस तरह ज्ञान और ज्ञानी में अपृथक्त्व या अभेद कथन है।इन दोनों दृष्टांतों के अनुसार द्रष्टान्त विचार लेना चाहिये, जहाँ भिन्न-भिन्न द्रव्य हो उनके नामादि भिन्न जाननाचाहिये।

**णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदा दु अण्णमण्णस्स।( 48 )**
**दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं।।**

जैसे यदि अग्नि गुणी अपने गुण उष्णपने से अत्यन्त भिन्न हो जावे तो अग्नि दग्ध करने के कार्य को न कर सकने से निश्चय से शीतल हो जावे। उसी प्रकार जीव गुणी अपने ज्ञान गुण से भिन्न हो जावे तो पदार्थ को जानने में असमर्थ होने से जड़ हो जावे। जैसे उष्ण गुण से अग्नि अत्यन्त भिन्न यदि मानी

जावे तो दहन क्रिया के प्रति असमर्थ होने से शीतल हो जावे तैसे ही ज्ञान गुण से अत्यन्त भिन्न यदि ज्ञानी जीव माना जावे तो वह पदार्थ के जानने को असमर्थ होता हुआ अचेतन जड़ हो जावे, तब ऐसा हो जावे जैसे देवदत्त हसियारे से उसका घास काटने का दतीला भिन्न है, वैसे ज्ञान से ज्ञानी भिन्न हो जावे तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है। दतीला तो छेदने के कार्य में मात्र बाहरी उपकरण है परन्तु भीतरी उपकरण तो वीर्यारन्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न पुरुष का वीर्य विशेष है। यदि भीतर शक्ति न हो तो दतीला हाथ में होते हुये भी छेदने का काम नहीं हो सकता है। तैसे ही प्रकाश, गुरु आदि बाहरी सहकारी कारणों के होते हुए यदि पुरुष में भीतर ज्ञान का उपकरण न हो तो वह पदार्थ को जानने रूप कार्य नहीं कर सकता है।

**समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य।**
**तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धिति णिद्दिट्ठा।।( 50 )**

जैन मत में समवाय उसी को कहते हैं जो साथ-साथ रहते हों अर्थात् जो किसी अपेक्षा एकरूप से अनादिकाल से तादात्म्य सम्बन्ध या न छूटने वाला सम्बन्ध रखते हो ऐसा साथ वर्तन गुण और गुणी का होता है। इससे दूसरा कोई अन्य से कल्पित समवाय नहीं है। यद्यपि गुण और गुणी में संज्ञा, लक्षण प्रयोजनादि की अपेक्षा भेद है तथापि प्रदेशों का भेद नहीं है इसके वे अभिन्न हैं। तथा जैसे दंड और दंडी पुरुष का भिन्न-भिन्न प्रदेशपनारूप भेद हैं तथा वे दोनों मिल जाते हैं, ऐसा भेद गुण और गुणी में नहीं है। इससे इनमें अयुतसिद्धपना ( अभेदपना ) या एकपना कहा जाता है। इस कारण द्रव्य और गुणों का अभिन्नपना सदा से सिद्ध है। इस व्याख्यान में यह अभिप्राय है कि जैसे जीव के साथ ज्ञान गुण का अनादि तादात्म्य सम्बन्ध कहा गया है तथा वह श्रद्धान करने योग्य है वैसे ही जो अव्याबाध, अप्रमाण, अविनाशी व स्वाभाविक रागादि दोष रहित परमानंदमई एक स्वभाव रूप पारमार्थिक सुख है इसको आदि लेकर जो अनंत गुण केवलज्ञान में अंतर्भूत है उनके साथ ही जीव का तादात्म्य सम्बन्ध जानना योग्य है तथा उसी ही जीव को रागादि विकल्पों को त्यागकर निरन्तर ध्याना चाहिये।

**वण्णरसगंधफासा परमाणुरूविदा विसेसेहिं।**
**दव्वादो य अण्णणा अण्णत्तपगासगा होंति।।( 51 )**
**दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि।**
**ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हि णो सभावादो।।( 52 )**

निश्चय से वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, परमाणु में कहे हुए गुण पुद्गल द्रव्य से अभिन्न हैं तो भी व्यवहार से संज्ञादि की अपेक्षा भेदपने के प्रकाशक हैं तैसे जीव से तादात्म्य सम्बन्ध रखने वाले दर्शन और ज्ञान गुण जीव से अभिन्न हैं सो संज्ञा आदि से परस्पर भिन्नपना करते हैं। निश्चय से स्वभाव से पृथक्पना नहीं करते हैं; क्योंकि द्रव्य और गुणों का अभिन्न अन्वय रूप से सम्बन्ध हैं।

**गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।**
**लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे।।( 61 )**(उत्तराध्ययनपृ.289)

द्रव्य, गुणों का आश्रय है, आधार है। जो प्रत्येक द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण होते हैं। पर्यव अर्थात् पर्यायों का लक्षण दोनों के अर्थात् द्रव्य और गुणों को आश्रित रहता है।

पर्यायें विभिन्न प्रकार की होती है। शुद्ध द्रव्य की शुद्ध पर्याय तो अशुद्ध द्रव्य की अशुद्ध पर्याय। मूर्तिक द्रव्य की मूर्तिक पर्याय तो अमूर्तिक द्रव्य की अमूर्तिक पर्याय। चैतन्य द्रव्य की चैतन्य पर्याय तो, अचैतन्य द्रव्य की अचैतन्य पर्याय। कुछ पर्यायें स्वाभाविक होती है तो कुछ प्रायोगिक भी। विभिन्न पर्यायों का वर्णन सन्मति सूत्र में विभिन्न प्रकार से किया है। यथा -

**उप्पाओ दुवियप्पो पओगजणिओ य वीससा चैव।**
**तत्थ उ पओगजणिओ समुदयवाओ अपरिसुद्धो।।( 32 )**(सन्मतिसूत्रपृ.129)

उत्पाद दो प्रकार का है - प्रयोगजन्य तथा स्वाभाविक। इनमें से प्रयोगजन्य उत्पाद को समुदायवाद भी कहते हैं, जिसका दूसरा नाम अपरिशुद्ध है।

**साभाविओ वि समुदयकओव्व एगंतिओ व्व होज्जाहि।**
**आगासाईआणं तिण्हं परपच्चओ अणियमा।।( 33 )**

स्वाभाविक उत्पाद भी दो प्रकार का है - समुदायकृत और एकत्विक। एकत्विक उत्पाद, धर्म, अधर्म और आकाश इन तीनों में परप्रत्यय निमित्तक

होने से अनियत है। स्वाभाविक समुदाय कृत उत्पाद किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा उत्पन्न नहीं होता है किन्तु एकत्विक उत्पाद वैयक्तिक कहा जाता है। इसे परसापेक्ष इसलिए कहा गया है कि जब जीव और पुद्गल द्रव्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं, तब धर्म द्रव्य उदासीन कारण रूप से उनकी सहायता करता है। ''अणियमा'' पद से भी यह सूचित होता है कि ये स्वयं जीव और पुद्गल को नहीं चलाते हैं किन्तु जिस प्रकार पथिक को ठहरने में छाया उदासीन और अप्रेरक निमित्त हैं, वैसे ही यहां भी समझना चाहिए।

## स्वरुप अस्तित्व का लक्षण

**सब्भावो हि सहावो गुणेहिं स पज्जएहिं चित्तेहिं।**
**दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं।।( 96 )**

**The nature of the substance is existence accompanied by qualities, by its variegated modifications and by origination, destruction and permanence for all the time.**

( चित्तेहिं गुणेहिं सगपज्जएहिं ) नाना प्रकार के अपने गुण और अपनी पर्यायों के साथ सिद्ध जीव की अपेक्षा से अपने केवलज्ञान आदि गुण तथा अंतिम शरीर से कुछ कम आकार रूप अपनी पर्याय तथा सिद्ध गतिपना, अतीन्द्रियपना, कायरहितपना, योगरहितपना, वेदरहितपना इत्यादि नाना प्रकार की अपनी अवस्थाओं के साथ और ( उप्पादव्ययधुवत्तेहिं ) उत्पाद व्यय ध्रौव्यपने के साथ सिद्ध जीव की अपेक्षा से शुद्ध आत्मा की प्राप्ति रूप मोक्ष पर्याय का उत्पाद, रागद्वेषादि विकल्पों से रहित परमसमाधि रूप मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय तथा मोक्षमार्ग और मोक्ष के आधारभूत चले जाने वाले द्रव्यपने का लक्षण रूप ध्रौव्यपना। इन तीन प्रकार उत्पाद व्यय ध्रौव्य के साथ ( द्रव्यस्स ) द्रव्य का अर्थात् मुक्तात्मा रूपी द्रव्य का ( सव्वकालं ) सर्व कालों में अर्थात् सदा ही ( सब्भावो ) शुद्ध अस्तित्व है या उसकी शुद्ध सत्ता है।( हि ) सो ही निश्चय करके ( सहावो ) उसका निज भाव या निज रूप है, क्योंकि मुक्तात्मा इनके साथ अभिन्न हैं इसका हेतु यह है कि गुण पर्यायों के अस्तित्व से तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यपने के अस्तित्व से ही शुद्ध आत्मा के द्रव्य का

अस्तित्व साधा जाता है और शुद्ध आत्मा के द्रव्य के अस्तित्व का और उत्पाद व्यय ध्रौव्ययपने का अस्तित्व साधा जाता है।

किस तरह परस्पर साधा जाता है सो बताते हैं - जैसे सुवर्ण के पीतपना आदि गुण तथा कुंडल आदि पर्यायों का जो सुवर्ण के द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा सुवर्ण से भिन्न नहीं है, जो अस्तित्व है वही सुवर्ण का अपना अस्तित्व है या सद्भाव है। तैसे ही मुक्तात्मा के केवलज्ञान आदि गुण और अंतिम शरीर से कुछ कम आकार आदि पर्यायों का जो मुक्तात्मा के द्रव्य क्षेत्र काल भावों की अपेक्षा परमात्म द्रव्य से भिन्न नहीं है, जो अस्तित्व है वही मुक्तात्मा द्रव्य का अपना अस्तित्व या सद्भाव है और जैसे सुवर्ण के पीतपना आदि गुण और कुंडल आदि पर्यायों के साथ जो सुवर्ण अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावों की अपेक्षा अभिन्न है, उस सुवर्ण का जो अस्तित्व है, वही पीतपना आदि गुण तथा कुंडल आदि पर्यायों का अस्तित्व या निज भाव है। तैसे ही मुक्तात्मा के केवलज्ञान आदि गुण और अंतिम शरीर से कुछ कम आकार आदि पर्यायों के साथ जो मुक्तात्मा अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावों की अपेक्षा अभिन्न है, उस मुक्तात्मा का जो अस्तित्व है, वही केवलज्ञानादि गुण तथा अंतिम शरीर से कुछ कम आकार आदि पर्यायों का अस्तित्व या निजभाव जानना चाहिए। अब उत्पाद व्यय ध्रौव्य का भी द्रव्य के साथ जो अभिन्न अस्तित्व है उसको कहते हैं।

जैसे सुवर्ण के द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा सुवर्ण से अभिन्न कटक पर्याय का उत्पाद और कंकण पर्याय का विनाश तथा सुवर्णपने का ध्रौव्य इनका जो अस्तित्व है वही सुवर्ण का अस्तित्व व उसका निज भाव या स्वरूप है। तैसे ही परमात्मा के द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा परमात्मा से अभिन्न मोक्ष पर्याय का उत्पाद और मोक्षमार्ग पर्याय का व्यय तथा इन दोनों के आधारभूत परमात्म द्रव्यपने का ध्रौव्य इनका जो अस्तित्व है, वही मुक्तात्मा द्रव्य का अस्तित्व या उसका निजभाव या स्वरूप है और जैसे अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा कटक पर्याय का उत्पाद और कंकण पर्याय का व्यय तथा इन दोनों के आधारभूत सुवर्णपने का ध्रौव्य इनके साथ अभिन्न जो सुवर्ण उसका जो अस्तित्व है वही कटक पर्याय का उत्पाद कंकण पर्याय का

व्यय तथा इन्हीं दोनों के आधारभूत सुवर्णपनारूप ध्रौव्य इन्हीं का अस्तित्व या निज भाव या स्वरूप है। तैसे ही अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा मोक्ष पर्याय का उत्पाद और मोक्षमार्ग पर्याय का व्यय तथा दोनों के आधारभूत मुक्तात्मा द्रव्यपनारूप ध्रौव्य इनके साथ अभिन्न जो परमात्मा द्रव्य उसका जो अस्तित्व है, वही मोक्ष पर्याय का उत्पाद, मोक्षमार्ग पर्याय का व्यय तथा इन दोनों के आधारभूत मुक्तात्मा द्रव्यरूप ध्रौव्य इनका अस्तित्व या निजभाव या स्वरूप है। इस तरह जैसे मुक्तात्मा द्रव्य का अपने ही गुण पर्याय और उत्पाद व्यय ध्रौव्य के साथ स्वरूप का अस्तित्व या अवान्तर अस्तित्व अभिन्न स्थापित किया गया है तैसे ही सर्व द्रव्यों का भी स्वरूप-अस्तित्व या अवान्तर अस्तित्व स्थापित करना चाहिये, इस गाथा का यह अर्थ है।

अस्तित्व वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है और वह ( अस्तित्व ) ( 1 ) अन्य साधन से निरपेक्ष होने के कारण से ( 2 ) अनादि-अनन्त, अहेतुक, एक रूप वृत्ति से सदा ही प्रवृत्त होने के कारण से ( 3 ) विभाव धर्म से विलक्षण होने से ( 4 ) भाव और भाववानता के भाव से अनेकत्व होने पर भी प्रदेशभेद न होने से, द्रव्य के साथ एकत्व को धारण करता हुआ द्रव्य का स्वभाव ही क्यों न हो ? ( अवश्य होवे ) वह अस्तित्व, जैसे भिन्न-भिन्न द्रव्यों में प्रत्येक में समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार द्रव्य गुण पर्याय में प्रत्येक में समाप्त नहीं हो जाता, क्योंकि वास्तव में परस्पर में साधित सिद्धि ( युक्त होने से ) अर्थात् द्रव्य गुण और पर्याय एक दूसरे से परस्पर सिद्ध होते हैं इसलिये, यदि एक न हो तो दूसरे दो भी सिद्ध नहीं होते, ( इसलिये ) उनका अस्तित्व एक ही है, सुवर्ण की भांति।

जैसे वास्तव में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सुवर्ण से पृथक् न प्राप्त होने वाले तथा सुवर्ण के अस्तित्व से बने हुए पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों के द्वारा जो ( अस्तित्व ) से बने हुए पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों के द्वारा जो अस्तित्व है वह ( अस्तित्व ), कर्ता-करण-अधिकरण रूप से पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान सुवर्ण का स्वभाव है। उसी प्रकार वास्तव में द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव से पृथक् प्राप्त न होने वाले तथा द्रव्य के अस्तित्व से बने हुए गुणों और पर्यायों

के द्वारा जो अस्तित्व है, वह ( अस्तित्व ), कर्ता-करण-अधिकरण रूप से गुणों के और पर्यायों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान प्रवृत्तियुक्त द्रव्य का स्वभाव है। अथवा जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से पीतत्वादि गुणों से और कुण्डलादि पर्यायों से पृथक् प्राप्त नहीं होने वाले तथा कर्ता-करण अधिकरण रूप से सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों से निष्पन्न होने वाले सुवर्ण का, मूल साधन रूप से उनसे ( पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों से ) निष्पन्न हुआ अस्तित्व स्वभाव है। इसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, या भाव से गुणों से और पर्यायों से जो पृथक् नहीं दिखाई देने वाले तथा कर्ता-करण-अधिकरण रूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान गुणों और पर्यायों से निष्पन्न होने वाले द्रव्य का, मूलसाधन रूप से उनसे ( गुणों और पर्यायों से ) निष्पन्न हुआ अस्तित्व स्वभाव है।

जैसे वास्तव में द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से सुवर्ण से पृथक् नहीं प्राप्त होने वाले तथा सुवर्ण के अस्तित्व से बने हुये कुण्डलादि के उत्पाद, बाजू, बंधादि के व्यय और पीतत्वादि के ध्रौव्य से जो अस्तित्व है, वह ( अस्तित्व ) कर्ता करण-अधिकरण रूप से कुण्डलादि के उत्पाद को, बाजू बंधादि के व्यय और पीतत्वादि के ध्रौव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान प्रवृत्तियुक्त सुवर्ण का स्वभाव है। इसी प्रकार द्रव्य से जो अस्तित्व है, वह ( अस्तित्व ), कर्ता-करण-अधिकरण रूप से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान द्रव्य का स्वभाव है। अथवा, जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से कुण्डलादि के उत्पाद से बाजू बंधादि के व्यय से और पीतत्वादि के ध्रौव्य से पृथक् नहीं प्राप्त होने वाले तथा कर्ता-करण-अधिकरण रूप से सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान कुण्डलादि के उत्पाद से, बाजू बंधादि के व्यय से और पीतत्वादि के ध्रौव्य से निष्पन्न होने वाले सुवर्ण का, मूलसाधन रूप उनसे ( कुण्डलादि के उत्पाद से ), बाजू बंधादि के व्यय से पीतत्वादि के ध्रौव्य से निष्पन्न हुआ, जो अस्तित्व है, वह ( अस्तित्व ) स्वभाव है। इसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से पृथक् नहीं प्राप्त होने वाले तथा कर्ता-करण-अधिकरण रूपसे द्रव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से निष्पन्न होने वाले द्रव्य का, मूल साधनपने से उनसे ( उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से ) निष्पन्न हुआ जो अस्तित्व है, वह ( अस्तित्व ) स्वभाव है।

( उत्पाद से, व्यय से और ध्रौव्य से भिन्न न दिखाई देने वाले द्रव्य का अस्तित्व वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का ही अस्तित्व है, क्योंकि द्रव्य के स्वरूप को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ही धारण करते हैं, इसलिये उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य के अस्तित्व से ही द्रव्य की निष्पत्ति होती है। यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हो तो द्रव्य भी न हो। ऐसा अस्तित्व वह अस्तित्व द्रव्य का स्वभाव है। )

**समीक्षा** - विश्व अस्तित्व स्वरूप है तथा विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी अस्तित्ववान् है। विश्व में पूर्ण अवास्तविक/असत्तावान् कोई द्रव्य का अस्तित्व ही नहीं है। निषेधपरक जो कथन होता है वह कथन भी सापेक्ष विधि से युक्त होता है। जिस प्रकार कहा जाता है कि आकाश कुसुम नहीं है, गधे के सींग नहीं हैं। वंध्या के पुत्र नहीं है, परन्तु यह कथन भी सापेक्ष है। भले आकाश का कुसुम नहीं, पर आकाश भी है और कुसुम भी है, गधे के सींग नहीं होते हैं परन्तु गधे भी हैं, सींग भी हैं, वन्ध्या के पुत्र नहीं है, परन्तु वन्ध्या भी होती है और किसी न किसी के पुत्र भी होते हैं। इसलिए जो शून्यवादी विश्व को मानते हैं वह मिथ्या है। जो ब्रह्मा ( परमात्मा ) को ही सत्य मानते हैं और जगत् को मिथ्या मानते हैं, क्योंकि यह वैज्ञानिक सिद्ध सत्य सिद्धान्त है कि -

**Matter and energy neither be created nor destroyed. Each can be completely changed into another from or into one another.**

किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती। केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है। समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है -

**न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रिया कारक मत्र युक्तम्।**
**नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति।।( 7 )**

सब प्रकार से नित्य वस्तु उत्पन्न होती है, न नष्ट ही होती है और न इस

मान्यता में क्रियाकारक भाव ही संगत होता है; क्योंकि असत्-अविद्यमान पदार्थ का जन्म नहीं होता और सत्-विद्यमान पदार्थ का नाश नहीं होता। यदि कहा जाय कि जलता हुआ दीपक बुझा देने पर उसमें क्या शेष रह जाता है। यहाँ तो सत् का नाश मानना ही पड़ेगा तो उसका उत्तर यह है कि दीपक तमः पुद्गल भावतः अस्ति। अन्धकार रूप पुद्गल द्रव्य के रूप में विद्यमान रहता है।

नारायण कृष्ण ने भी गीता में उपर्युक्त सिद्धान्त को स्वीकार किया है, यथा-

**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।**
**उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।( 16 )( गीता )**

असत् का अस्तित्व नहीं है और सत् का नाश नहीं है। इन दोनों का निर्णय ज्ञानियों ने जाना है।

**अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।**
**विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।( 17 )**

जिससे यह अखिल जगत् व्याप्त है उसे तू अविनाशी जान। इस अव्यय का नाश करने में कोई समर्थ नहीं है।

प्रत्येक द्रव्य तीन काल में अस्तित्व रूप में अवश्य होगा क्योंकि यह अस्तित्व उसका अपना स्वभाव है और स्वभाव को कोई द्रव्य छोड़ता नहीं है और स्वभाव का अभाव नहीं होता है यदि स्वभाव का अभाव हो जायेगा तो द्रव्य ही नष्ट हो जायेगा, परन्तु यह तीन लोक में, तीन काल में नष्ट होता नहीं है क्योंकि तीन लोक में, तीन काल में ऐसा नहीं पाया जाता है।

**स्वभावलाभादच्युतत्वादस्ति स्वभावः ( 106 )( आलापपद्धतिपृ.149 )**

जिस द्रव्य को जो स्वभाव प्राप्त है, उससे कभी भी च्युत नहीं होना अस्ति स्वभाव है।

ऐसे जो अस्तित्ववान् द्रव्य है, वह द्रव्य भी अपरिवर्तनशील नहीं है जो अपरिवर्तनशील होगा उसका अस्तित्व भी नहीं होगा। इसलिए प्रत्येक द्रव्य पुरातन होते हुए भी नित्य-नूतन है। आधुनिक चिन्तकों के अनुसार भी विश्व विकासशील है परन्तु यह सम्पूर्ण विकास द्रव्य में ही होता है, अस्तित्व में ही होता है, सत्य में ही होता है। इसलिये तीन काल की जो अवस्थाओं का समुच्चय है उसे ही द्रव्य कहते हैं। वीरसेन स्वामी ने धवला में भी कहा है -

**एय-दवियम्मि जे अत्थ-पज्जया वयण-पज्जया वावि।**
**तीदाणागय-भूदा तावदियं तं हवइ दव्वं।।( 199 )( पृ.386 )**

एक द्रव्य में अतीत, अनागत और गाथा में आये हुए 'अपि' शब्द से वर्तमान पर्याय रूप जितनी अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय हैं तत्प्रमाण वह द्रव्य होता है।

परिवर्तशीलता केवल मूर्तिक द्रव्य का स्वभाव नहीं है परन्तु अमूर्तिक द्रव्य का भी स्वभाव है। किन्तु मूर्तिक, मूर्तिक रूप में परिणमन होता है, अमूर्तिक में अमूर्तिक रूप में, शुद्ध में शुद्ध रूप में एवं अशुद्ध में अशुद्ध रूप में परिणमन होता है। परिणमन के लिये बाह्य काल द्रव्यादि की आवश्यकता है। तथापि अन्तरंग कारण अगुरुलघु गुण है। अमूर्तिक द्रव्य में जो परिणमन होता है उसका विशेष तर्क पूर्ण वर्णन वीरसेन स्वामी ने निम्न प्रकार से किया है -

**ननु धर्मादयोऽपरिणामिनो नित्यैक रूपेणावस्थिता दृश्यन्ते इति च ?**

**शंका** - जो वस्तु पूर्व क्षण में थी वही उत्तर क्षण में है। इस प्रकार जो अन्वय प्रत्यय होता है वह व्यतिरेक प्रत्यय का बाधक है।

समाधान - नहीं, क्योंकि यदि अन्वय प्रत्यय व्यतिरेक प्रत्यय का बाधक हो सकता है तो व्यतिरेक प्रत्यय भी अन्वय प्रत्यय का बाधक क्यों नहीं हो जाता है ?

**शंका** - आपके मत में भी धर्मादिक द्रव्य अपरिणामी है, अतः वे नित्य और एकरूप में अवस्थित देखे जाते हैं ?

समाधान - नहीं, क्योंकि सक्रिय जीव और पुद्गल द्रव्यों के परिणमन करते रहने पर उनके उपकारक धर्मादिक द्रव्यों को सर्वथा अपरिणामी मानने में विरोध आता है।

तथा वस्तु सर्वथा क्षणिक भी नहीं है क्योंकि सर्वथा क्षणिक वस्तु में भाव और अभाव दोनों प्रकार से अर्थक्रिया नहीं बन सकती है। अर्थात् क्षणिक वसतु भावरूप होती है तब भी अर्थक्रिया नहीं कर सकती; क्योंकि जिस क्षण में वह उत्पन्न होती है उस क्षण में तो कुछ काम कर सकना उसके लिए सम्भव नहीं है। वह क्षण तो उसके आत्म लाभ का है और दूसरे क्षण में नष्ट हो जाती

है, इसलिये दूसरे क्षण में भी उसमें अर्थक्रिया नहीं बन सकती है तथा अभाव रूप दशा में भी वह अर्थक्रिया नहीं हो सकती है; क्योंकि जो वस्तु नष्ट हो जाती है उसमें अर्थक्रिया नहीं हो सकती है तथा सर्वथा क्षणिक वस्तु प्रत्यक्ष का विषय नहीं है; क्योंकि सर्वथा क्षणिक वस्तु में प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति मानने में विरोध आता है और प्रत्यक्ष के द्वारा सर्वथा क्षणिक वस्तु का ग्रहण पाया भी नहीं जाता है।इस विषय में उपयोगी श्लोक देते हैं –

**नानूमानमपि तद्ग्राहकम्, निर्विकल्पे सविकल्पस्य वृत्ति विरोधात्।**
**ततो न क्षणिकमस्ति।नोभयरूपम् विरोधात्।**
**नानुभय रूपम्, निःस्वभावतापत्तेः।।उक्तञ्च**

अनुमान भी सर्वथा क्षणिक वस्तु का ग्राहक नहीं है; क्योंकि सर्वथा क्षणिक वस्तु निर्विकल्प है, अतः उसमें सविकल्प ज्ञान की प्रवृत्ति मानने में विरोध आता है।अतः सर्वथा क्षणिक वस्तु नहीं बनती है।सर्वथा नित्यानित्य रूप वस्तु भी सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि सर्वथा नित्यता और सर्वथा अनित्यता का परस्पर में विरोध है, अतः वे दोनों धर्म एक वस्तु में नहीं रह सकते हैं तथा सर्वथा अनुभय रूप भी वस्तु सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि वस्तु को सर्वथा अनुभय रूप मानने पर अर्थात् उसको कथंचित्, नित्य, अनित्य और उभय इन तीनों रूप न मानने पर निःस्वभावता की आपत्ति प्राप्त होती है अर्थात् वस्तु निःस्वभाव हो जाती है।कहा भी है –

**उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स।**
**दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं।।( 95 )**

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा पदार्थ नियम से उत्पन्न होते हैं और नाश को प्राप्त होते हैं तथा द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वे सदा अविनष्ट और अनुत्पन्न स्वभाव वाले हैं। अर्थात् द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा पदार्थों का न तो कभी उत्पाद होता है और न कभी नाश होता है, वे सदा ध्रुव रहते हैं।

**दव्वं पज्जवविउयं दव्वविउत्ता य पज्जया णत्थि।**
**उप्पायट्ठिदि भंगा हंदि दवियलक्खणं एयं।।( 96 )**

द्रव्य पर्याय के बिना नहीं होता और पर्याय द्रव्य के बिना नहीं होती; क्योंकि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, ये तीनों द्रव्य के लक्षण हैं।

**एदपुण संगहदो पादेक्कमलक्खणं दुवण्हं पि।**
**तम्हा मिच्छाइट्ठी पादेक्कं वे वि मूलणया।।( 97 )**

ये उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों मिलकर ही द्रव्य के लक्षण होते हैं। द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय का जो जुदा-जुदा विषय है वह द्रव्य का लक्षण नहीं है। अर्थात् केवल उत्पाद और व्यय तथा केवल ध्रौव्य द्रव्य का लक्षण नहीं है इसलिये अलग-अलग दोनों मूलनय मिथ्यादृष्टि है।

**नात्र संसार-सुख-दुःख-मोक्षाश्च सम्भवन्तिः**
**नित्यानित्यैकान्त-योस्तद्विरोधात्। उक्तञ्च -**

सर्वथा द्रव्यार्थिक नय का सर्वथा पर्यायार्थिक नय के मानने पर संसार सुख, अनित्यैकान्त की अपेक्षा संसारादिक के मानने में विरोध आता है। कहा भी है -

**ण य दव्वट्ठिय पक्खे संसारो णेव पज्जवणयस्स।**
**सासय वियत्तिवायौ जम्हा उच्छेदवादीया।।( 98 )**

द्रव्यार्थिक नय के पक्ष में संसार नहीं बन सकता है। उसी प्रकार सर्वथा पर्यायार्थिक नय के पक्ष में भी संसार नहीं बन सकता है; क्योंकि द्रव्यार्थिक नय नित्य व्यक्तिवादी है और पर्यायार्थिक नय उच्छेद वादी है।

**सुह दुक्ख संपजोओ संभवइ ण णिच्चवाय पक्खम्मि।**
**एयंतुच्छेदम्मि वि सुह दुक्खवियप्पण जुत्तं।।( 99 )**

सर्वथा नित्यवाद के पक्ष में जीव का सुख और दुःख से सम्बन्ध नहीं बन सकता है तथा सर्वथा अनित्यवाद के पक्ष में भी सुख और दुःख की कल्पना नहीं बन सकती है।

**कम्मं जोअ णिमित्तं वज्झइ कम्मट्ठिदी कसायवसा।**
**अपरिणदुच्छिण्णेसु अबंधट्ठिदी कारणं णत्थि।।( गा.100 )**

योग के निमित्त से कर्म बंध होता है और कषाय के निमित्त से बांधे गये कर्म में स्थिति पड़ती है। परन्तु सर्वथा अपरिणामी और सर्वथा क्षणिक पक्ष में बन्ध और स्थिति का कारण नहीं बन सकता है।

**बंधम्मि अपूरंते संसार भओहदंसणं मोज्झं।**
**बंधेण विणा मोक्ख सुह पत्थणा णत्थि मोक्खो य।।( गा.101 )**

कर्मबन्ध का सद्भाव नहीं मानने पर संसार सम्बन्धी अनेक प्रकार के भय का विचार केवल मूढ़ता है। तथा कर्म बन्ध के बिना मोक्ष सुख की प्रार्थना और मोक्ष ये दोनों भी नहीं बनते हैं।

**तम्हा मिच्छादिट्ठी सव्वे वि णया सपक्खपडिबद्धा।**
**अण्णोण्णाणिस्सिय उण लहंति सम्मत्त सब्भावं।।( गा.102 )**

चूंकि वस्तु को सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य मानने पर बन्धादि के कारण रूप योग और कषाय नहीं बन सकते हैं तथा योग और कषाय के मानने पर वस्तु सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य नहीं बन सकती है, इसलिये केवल अपने-अपने पक्ष से प्रतिबद्ध ये सभी नय मिथ्यादृष्टि हैं। परन्तु यदि ये सभी नय परस्पर सापेक्ष हों तो समीचीनपने को प्राप्त होते हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि होते हैं।

**भावैकान्ते पदार्थानामभावानाम पह्ववात्।**
**सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूप मतावकम्।।( गो.103 )**

पदार्थ सर्वथा सत्स्वरूप ही है इस प्रकार के निश्चय को भावैकान्त कहते हैं। उसके मानने पर अर्थात् पदार्थों को सर्वथा सत् स्वीकार करने पर प्रागभाव आदि चारों अभावों का अपलाप करना होगा अर्थात् उनके होते हुए भी उनकी सत्ता को अस्वीकार करना पड़ेगा। और ऐसा होने से हे जिन! आपके स्याद्वाद शासन से भिन्न सांख्य आदि के द्वारा माने गये पदार्थ इतरेतराभाव के बिना सर्वात्मक, प्रागभाव के बिना अनादि, प्रध्वंसाभाव के बिना अनन्त और अत्यन्ताभाव के बिना निःस्वरूप हो जाते हैं।

पदार्थ न केवल भावात्मक ही है और न केवल अभावात्मक ही है किन्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा भावात्मक और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और भाव की अपेक्षा अभावात्मक होने से भावाभावात्मक हैं। यदि ऐसा न माना जाय तो प्रतिनियत पदार्थ की व्यवस्था ही नहीं बन सकती है जैसे घट-घट ही है, घट पट नहीं है। यह व्यवस्था तभी बन सकती है। जब घट का स्वचतुष्टय की अपेक्षा सद्भाव और पटादि की अपेक्षा अभाव स्वीकार किया जाय। यदि घट में स्वचतुष्टय के समान परचतुष्टय से भी सत्व

स्वीकार कर लिया जाय तो घट केवल घट नहीं रह सकता उसे पट रूप होने का भी प्रसंग प्राप्त होता है। अतः घट भावरूप भी है और अभावरूप भी है, यह निष्कर्ष निकलता है। किन्तु जो इतर एकांतवादी मत ऐसा नहीं मानते हैं और वस्तु को केवल भावरूप ही स्वीकार करते हैं वे पदार्थों में विद्यमान अभाव धर्म का अपलाप करते हैं जिसके कारण उनकी तत्त्व व्यवस्था में चार महान् दूषण आते हैं जो कि संक्षेप में मूल में बतलाये हैं, आगे उन्हीं दूषणों को स्पष्ट करके बतलाते हैं।

**कार्यद्रव्य मनादि स्यात्प्राग भावस्य निह्नवे।**
**प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत्।।( गा.104 )**

कार्य के स्वरूप लाभ करने के पहले उसका जो अभाव रहता है वह प्रागभाव है। दूसरे शब्दों में जिसका अभाव नियम से कार्य रूप पड़ता है वह प्रागभाव है। उसका अपलाप करने पर कार्य द्रव्य घट पटादि अनादि हो जाते हैं तथा कार्य का स्वरूप लाभ के पश्चात् जो अभाव होता है वह प्रध्वंसाभाव है। दूसरे शब्दों में जो कार्य के विघटन रूप है वह प्रध्वंसाभाव है। उसके अपलाप करने पर घट पटादि कार्य अनन्त अर्थात् अन्तरहित अविनाशी हो जाते हैं।

कार्य की पूर्ववर्ती पर्याय को प्रागभाव और उत्तरवर्ती पर्याय को प्रध्वंसाभाव कहते हैं। यदि उसकी पूर्व पर्याय और उत्तर पर्याय में घटादि रूप कार्य द्रव्य स्वीकार किया जाता है, तो घट के उत्पन्न होने के पहले और विनाश होने के अनन्तर भी उससे जल धारणादि कार्य होने चाहिये पर ऐसा होता हुआ नहीं देखा जाता है। इससे प्रतीत होता है कि कार्य रूप वस्तु अनादि और अनन्त न होकर सादि और शान्त है। फिर भी जो सर्वथा सत्कार्यवादी सांख्यादि कार्य को सर्वथा सत् स्वीकार करते हैं उनके यहाँ प्रागभाव औरप्रध्वंसाभाव नहीं बन सकते हैं और उनके नहीं बनने से कार्य द्रव्य को अनादि और अनन्तपने का प्रसंग प्राप्त होता है जो कि युक्त नहीं है।

**सर्वात्मक तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे।**
**अन्यत्र समवाये न व्यपदिश्येत सर्वथा।।( गा.105 )**

एक द्रव्य की एक पर्याय का उसी की दूसरी पर्याय में जो अभाव है उसे अन्यापोह या इतरेतराभाव कहते हैं। इस इतरेतराभाव के अपलाप करने पर

प्रतिनियत द्रव्य की सभी पर्यायें सर्वात्मक हो जाती है। रूपादिक का स्वसमवायी पुद्गलादिक से भिन्न जीवादिक में समवेत होना अन्यत्र समवाय कहलाता है। यदि इसे स्वीकार किया जाता है अर्थात् यदि अत्यन्ताभाव का अभाव माना जाता है तो पदार्थ का किसी भी असाधारण रूप से कथन नहीं किया जा सकता है।

आशय यह है कि इतरेतराभाव को नहीं मानने पर एक द्रव्य की विभिन्न पर्यायों में कोई भेद नहीं रहता, सब पर्यायें सब रूप हो जाती हैं तथा अत्यन्ताभाव को नहीं मानने पर सभी वादियों के द्वारा माने गये अपने-अपने मूल तत्वों में कोई भेद नहीं रहता एक तत्व दूसरे तत्वरूप हो जाता है। ऐसी हालत में जीव द्रव्य चैतन्य गुण की अपेक्षा चेतन ही है और पुद्गल द्रव्य अचेतन ही है ऐसा नहीं कहा जा सकता है, अतः अभावों का सर्वथा अपलाप करके भावैकान्त मानना ठीक नहीं है।

**अभावै-कान्त पक्षेऽपि भावापन्हववादिनाम्।**
**बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधन दूषणम्।।( 106 )**

जो वादी भावरूप वस्तु को स्वीकार नहीं करते हैं, उनके अभावैकान्त पक्ष में भी बोध अर्थात् स्वार्थानुमान और वाक्य अर्थात् परार्थानुमान प्रमाण नहीं बनते हैं। ऐसी अवस्था में स्वमत का साधन किस प्रमाण से करेंगे और परमत में दूषण किस प्रमाण से देंगे।

भावैकान्त में दोष बतलाकर अब अभावैकान्त में दोष बतलाते हैं। बौद्धमत का माध्यमिक सम्प्रदाय भावरूप वस्तु को स्वीकार नहीं करता है। उसके मत से जग में शून्य को छोड़कर सद्रूप कोई पदार्थ नहीं है। अतः उसके मत में सभी पदार्थों के अभाव रूप होने से प्रमाण भी अभाव रूप ही ठहरता है। इस प्रकार प्रमाण के अभाव रूप हो जाने से उसके द्वारा वे अभावैकान्त का साधन कैसे कर सकते हैं और अपने विरोधियों के मत में दूषण भी कैसे दे सकते हैं; क्योंकि स्वपक्ष का साधन और परपक्ष का दूषण ज्ञानात्मक स्वार्थानुमान और वचनात्मक परार्थानुमान के बिना नहीं हो सकता है। अतः भाव का सर्वथा अपलाप करके केवल अभाव का मानना भी ठीक नहीं है।

**पज्जव णय वोक्कंतं वत्थु दव्वट्ठियस्स वयणिज्जं।**
**जाव दवि आपजोगो अपच्छिमविप्पणिव्वयणो।।( गा.107 )**

इसलिये पदार्थ न तो सर्वथा भावरूप ही है और न सर्वथा अभावरूप ही है, किन्तु वह जात्यन्तर रूप अर्थात् भावाभावात्मक ही होना चाहिये। जिसके पश्चात् विकल्पज्ञान और वचन व्यवहार नहीं है ऐसा द्रव्योपयोग अर्थात् सामान्य ज्ञान जहां तक होता है वहाँ तक वह वस्तु द्रव्यार्थिक नय का विषय है। तथा वह पर्यार्थिक नय से आक्रान्त है। अथवा जो वस्तु पर्यायार्थिक नय के द्वारा ग्रहण करके छोड़ दी गई है। वह द्रव्यार्थिक नय का विषय है, क्योंकि जिसके पश्चात् विकल्पज्ञान और वचन व्यवहार नहीं है, ऐसे अंतिम विशेष तक द्रव्योपयोग की प्रवृत्ति होती है।

इस गाथा में यह बताया गया है कि जितना भी द्रव्यार्थिक नय का विषय है वह सब पर्यायाक्रान्त होने से पर्यायार्थिक नय का भी विषय है और जितना भी पर्यायार्थिक नय का विषय है वह सब सामान्य अनुस्यूत होने से द्रव्यार्थिक नय का भी विषय है। ये दोनों नय परस्पर सापेक्ष होने के कारण ही समीचीन हैं। सन्मति सूत्र में इस गाथा के पहले आई हुई 'पज्जवणिस्सामण्णं' इत्यादि गाथा के समुदायार्थ का उद्घाटन करते हुए अभयदेव सूरि लिखते हैं कि विशेष के संस्पर्श से रहित 'अस्ति' यह वचन द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा प्रवृत्त होता है और सत्ता स्वभाव को स्पर्श नहीं करते हुए द्रव्य, पृथिवी इत्यादि वचन पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा प्रवृत्त होते हैं। परन्तु ये दोनों प्रकार के वचन एक दूसरे की अपेक्षा के बिना असमीचीन हैं, क्योंकि इन वचनों का वाच्य सत्ता सामान्य और विशेष सर्वथा स्वतंत्र नहीं पाया जाता है, इसलिये इन्हें परस्पर सापेक्ष अवस्था में ही समीचीन मानना चाहिये। इससे भी यही निश्चित होता है कि द्रव्यार्थिक का विषय पर्यायाक्रान्त है और पर्यायार्थिक का विषय द्रव्याक्रान्त है। यहां यद्यपि यह कहा जा सकता है कि महासत्ता के ऊपर और कोई अपर सामान्य नहीं है जिस अपर सामान्य की अपेक्षा वह विशेष रूप सिद्ध होवे तथा अंतिम विशेष के नीचे उस का भेदक और कोई विशेष नहीं है। जिसकी अपेक्षा यह अंतिम विशेष सामान्य रूप सिद्ध होवे, इसलिये महासत्ता

केवल द्रव्यार्थिक नय का और अंतिम विशेष केवल पर्यायार्थिक नय का विषय रहा आवे। पर तत्त्वतः विचार करने पर अन्य अवान्तर सामान्य और विशेषों के समान ये दोनों ही सापेक्ष हैं, सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। यदि इन्हें सर्वथा स्वतन्त्र माना जाता है तो सभी पदार्थ सत्स्वरूप होने के कारण अनेकान्तात्मक है, इस अनुमान में दिया गया हेतु व्यभिचरित हो जाता है। अतः इस व्यभिचार के दूर करने के लिये इन्हें यदि सापेक्ष माना जाता है तो महासत्ता द्रव्यार्थिक नय का और अंतिम विशेष पर्यायार्थिक नय का विषय होते हुए भी अपने विपक्षी नयों की अपेक्षा रखकर ही वे दोनों उन-उन नयों के विषय सिद्ध होते हैं।

**एयद वियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया वा वि।**
**तीदाणागद भूदा तावइयं तं हवइ दव्वं।।( गा. 108 )**

एक द्रव्य में अतीत, अनागत और वर्तमान रूप जितनी अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय होती है तत्प्रमाण वह द्रव्य है।

**नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।**
**अविभ्राड् भाव सम्बन्धो द्रव्यमेकनेकधा।।( 109 )**

जो नैगमादि नय और उनकी शाखा उपशाखा रूप उपनयों के विषयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायों का अभिन्न सत्ता सम्बन्ध रूप समुदाय है उसे द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य कथंचित् एक रूप और कथंचित् अनेक रूप हैं।

**सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादि चतुष्टयात्।**
**असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते।।( 110 )**

ऐसा कौन पुरुष है जो स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा सभी पदार्थों को सद्रूप ही न माने और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा सभी पदार्थों को असद्रूप ही न माने ? अर्थात् यदि स्वद्रव्यादि की अपेक्षा पदार्थ को सद्रूप और परद्रव्यादि की अपेक्षा असद्रूप न माना जाय तो किसी भी पदार्थ की व्यवस्था नहीं हो सकती है।

**घट-मौलि-सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम।**
**शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्।।( 111 )**

जो मनुष्य घट चाहता है, वह घट के नष्ट हो जाने पर शोक को प्राप्त होता है, जो मनुष्य मुकुट चाहता है वह मुकुट के बन जाने पर हर्ष को प्राप्त होता है

और जो मनुष्य केवल सोना चाहता है वह घट के विनाश और मुकुट की उत्पत्ति के समय भी सोने का सद्भाव रहने से मध्यस्थभाव को प्राप्त करता है, इसलिये इन विषादादिकी को सहेतुक ही मानना चाहिए।

घट और मुकुट ये दोनों स्वतंत्र दो पर्यायें हैं, एक काल में इनका एक साथ सद्भाव नहीं पाया जा सकता है। अब यदि सोने के घट को हर्ष होगा तुड़वाकर कोई मुकुट बनवा ले तो घट के इच्छुक पुरुष को विषाद और मुकुट चाहने वाले को हर्ष होगा और स्वर्णार्थी को हर्ष और विषाद कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि सोना घट और मुकुट दोनों ही अवस्थाओं में समान भाव से पाया जाता है। चूंकि ये हर्ष, विषाद और मध्यस्थ भाव निर्हेतुक तो कहे नहीं जा सकते हैं, अतः निश्चित होता है कि पदार्थ न सर्वथा क्षणिक है और न सर्वथा नित्य है, किन्तु नित्यानित्यात्मक है।

**पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।**
**अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम्।।( 112 )**

जिसके केवल दूध पीने का व्रत अर्थात् नियम है वह दही नहीं खाता है, जिसके केवल दही खाने का नियम है वह दूध नहीं पीता है और जिसके गोरस नहीं खाने का व्रत है वह दूध और दही दोनों को नहीं खाता है। इससे प्रतीत होता है कि पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप है।

दूध और दही ये दोनों गोरस की क्रम से होने वाली पर्यायें हैं और गोरस इन दोनों में व्याप्त होकर रहता है। गोरस की जब दूध अवस्था होती है तब दही रूप अवस्था नहीं पाई जाती है और जब दही रूप अवस्था होती है तब दूध रूप अवस्था नहीं पाई जाती है, क्योंकि दूध पर्याय का व्यय होकर ही दही पर्याय उत्पन्न होती है, किन्तु गोरस दूध रूप भी है और दही रूप भी है। यही कारण है कि जिसने केवल दूध पीने का व्रत लिया है वह दही का सेवन नहीं कर सकता और जिसने केवल दही सेवन करने का व्रत लिया है, वह दूध नहीं पी सकता, क्योंकि इन दोनों में भेद हैं। पर गोरस के सेवन नहीं करने का जिसके व्रत है वह दूध और दही दोनों का उपयोग नहीं कर सकता है, क्योंकि दूध और दही दोनों गोरस हैं। इस प्रकार एक गोरस पदार्थ अपनी दूध रूप अवस्था का त्याग

करके दही रूप अवस्था को प्राप्त होता है, फिर वह गोरस बना ही रहता है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप हैं।

**कथञ्चित ते सदेवेष्टं कथञ्चिदसदेव तत्।**
**तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा।।( 133 )**

हे जिन! आपके शासन में मानी गयी वस्तु कथंचित् सद्रूप ही है, कथंचित् असद्रूप ही है, कथंचित् उभयात्मक ही है और कथंचित् अवक्तव्य ही है। इसी तरह सदवक्तव्य असदवक्तव्य उभयावक्तव्य रूप भी है। किन्तु यह सब नय के सम्बन्ध से है सर्वथा नहीं।

प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टय की अपेक्षा सत् है और परचतुष्टय की अपेक्षा असत् है। यदि घट को स्वद्रव्यादिकी अपेक्षा सद्रूप न माना जाय तो आकाश कुसुम की तरह उसका अभाव हो जायेगा तथा परद्रव्यादिकी अपेक्षा यदि घट को असद्रूप न माना जाय तो सर्वत्र घट इस प्रकार का व्यवहार होने लगेगा। इससे निश्चित होता है कि प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टय की अपेक्षा सत् परचतुष्टय की अपेक्षा असत् है। इस प्रकार पूर्व में कहे गये सत् है और असद्रूप दोनों धर्म एक साथ प्रत्येक वस्तु में पाये जाते हैं, अतः वे सर्वथा भिन्न नहीं हैं। यदि इन्हें सर्वथा भिन्न माना जाय तो जिस प्रकार घट में पट रूप और पट में घट रूप बुद्धि नहीं होती है तथा घट को और पट को घट नहीं कह सकते हैं, उसी प्रकार एक ही वस्तु में सत् और असत्। इस प्रकार बुद्धि और वचन व्यवहार नहीं बन सकेगा, अतः यह दोनों धर्म कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध से प्रत्येक वस्तु में रहते हैं। इससे निश्चित होता है कि प्रत्येक वस्तु कथंचित् सद्रूप ही है और कथंचित् असद्रूप ही है। फिर भी इस प्रकार की वस्तु वचनों द्वारा क्रम से ही कही जा सकती है, अतः जब उसे क्रम से कहा जाता है तो वह उभयात्मक सिद्ध होती है तथा जब उसी वस्तु के इन दोनों धर्मों को कोई एक साथ कहना चाहते हैं तब जिससे वस्तु के दोनों धर्म एक साथ कहे जा सके, ऐसा कोई एक शब्द न होने से वस्तु अवक्तव्य सिद्ध होती है। इस प्रकार हे जिन! आपके शासन में एक ही वस्तुनय की अपेक्षा से सद्रूप भी है, असद्रूप भी है, उभयात्मक भी है और अवक्तव्य भी है तथा 'च' शब्द से सदवक्तव्य असदवक्तव्य और उभयावक्तव्य रूप भी है। यह निश्चित हो जाता है।

**नान्वयः, सहभेदत्वान्न भेदोऽन्वयवृत्तितः।**
**मृद्भेदद्वयसंसर्गवृत्ति जायत्यन्तरं हि तत्।।( 114 )**

घटादिपदार्थ केवल अन्वयरूप नहीं है; क्योंकि उनमें भेद भी पाया जाता है तथा केवल भेद रूप भी नहीं है; क्योंकि उनमें अन्वय भी पाया जाता है, किन्तु मिट्टी रूप अन्वयधर्म और उर्ध्वभाग आदि रूप व्यतिरेक धर्म के तादात्म्य रूप होने से वे जात्यन्तर रूप हैं। अर्थात् वे केवल न तो भेद रूप ही हैं और न अभेद रूप ही हैं, किन्तु कथंचित् भेद रूप हैं और कथंचित् अभेद रूप हैं, क्योंकि घट-घटी आदि में मिट्टी रूप से अभेद पाया जाता है और घट-घटी आदि विविध अवस्थाओं की अपेक्षा भेद पाया जाता है।

## सादृश अस्तित्व (महासत्ता)

**इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं।**
**उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं।।( 97 )प्र. सार**

**Here, amongst various characteristics, existence is described as one all comprising characteristic by the great Jina, when (he was) clearly propounding the (religious) creed.**

आगे सादृश्य अस्तित्व शब्द से कहे जाने वाली महासत्ता का वर्णन करते हैं।

( इह ) इस लोक में ( विविहलक्खणाणं ) नाना प्रकार भिन्न-भिन्न लक्षण रखने वाले पदार्थों का ( एग ) एक ( सव्वगयं ) सर्व पदार्थों में व्यापक ( लक्खणं ) लक्षण ( सदित्ति ) सत् ऐसा ( धम्म ) वस्तु के स्वभाव को ( उवदिसदा ) उपदेश करने वाले ( जिणवरवसहेण ) श्री वृषभ जिनेन्द्र ने ( खलु ) प्रगट रूप से ( पण्णत्तं ) कहा है।

इस जगत् में भिन्न-भिन्न लक्षण को रखने वाले चेतन-अचेतन मूर्त-अमूर्त अनेक पदार्थ हैं, उनमें से प्रत्येक पदार्थ की सत्ता या स्वरूपास्तित्व भिन्न-भिन्न हैं, तो इन सबका एक अखंड व्यापक लक्षण भी है। यह लक्षण मिलाप व भिन्नता के विकल्प से रहित अपनी-अपनी जाति में विरोध न पड़ने देने वाले शुद्ध संग्रहनय से सर्व पदार्थों में व्यापक एक सत् रूप है या महासत्ता रूप है, ऐसा वस्तु स्वभावों के संग्रह का उपदेश करने वाले श्री तीर्थंकर भगवान् ने प्रगटरूप से वर्णन किया है।

इस प्रकार जैसे सर्व मुक्तात्मा है ऐसा कहा जाने से सर्व ही सिद्धों का एक साथ ग्रहण हो जाता है। यद्यपि वे सर्व सिद्ध परमानंदमयी एक लक्षण वाले सुखामृत रस सवाद से भरे हुए अपने-अपने शुद्ध लोकाकाश प्रमाण असंख्यात् प्रदेश की अपेक्षा तथा अपने-अपने अंतिम शरीर से किंचित् न्यून पर्याय की अपेक्षा मिश्र व भिन्नता के विकल्प से रहित अपनी-अपनी जाति के भेद से भिन्न हैं तो भी एक सत्ता लक्षण की अपेक्षा उन सब सिद्धों का ग्रहण हो जाता है। वैसे ही 'सर्व सत्' ऐसा कहने पर संग्रहनय से सर्व पदार्थों का ग्रहण हो जाता है अथवा यह सेना है, ऐसा कहने पर अपनी-अपनी जाति से भिन्न घोड़े, हाथी आदि पदार्थों की भिन्नता है तो भी सबका एक काल में ग्रहण हो जाता है, अथवा यह वन है ऐसा कहने पर अपनी-अपनी जाति से भिन्न निम्ब आम्र आदि वृक्षों की भिन्नता है तो भी सब वृक्षों की भिन्नता है तो भी सब वृक्षों का एक काल में ग्रहण हो जाता है। तैसे ही सर्व सत् ऐसे सदृश सत्ता कहने पर महासत्ता रूप से शुद्ध संग्रहनय की अपेक्षा सर्व ही पदार्थों का बिना उनकी जाति से विरोध के एक साथ ग्रहण हो जाता है, ऐसा अर्थ है।

**समीक्षा** - इस गाथा में आचार्य श्री ने सादृश्य अस्तित्व अर्थात् महासत्ता का वर्णन किया है। सादृश्य अस्तित्व का अर्थ है जो समस्त द्रव्य में समानता पाई जाती है। जिस प्रकार काली गाय, लाल गाय, खंडी गाय, मुंडी गाय, लंगड़ी गाय आदि में गोत्व ( गोपना ) समान है, यह सादृश्य अस्तित्व है। तर्कशास्त्र के अनुसार जो सम्पूर्ण द्रव्य में समान रूप में पाया जाता है उसको तिर्यक् सामान्य कहते हैं और जो एक ही द्रव्य में पूर्व एवं उत्तर पर्याय में रहने वाले द्रव्य को उर्ध्वता सामान्य कहते हैं। जिस प्रकार शिशु कुमार, वृद्ध आदि अवस्था में मनुष्य रहता है, मनुष्य यहाँ उर्ध्वता सामान्य है। यथा -

**सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात्।( 3 )पृ. 288 प्रमेयरत्नमालाया**

तिर्यक्सामान्य और ऊर्ध्वतासामान्य के भेद से सामान्य दो प्रकार का है।

**सद्दशपरिणामस्तिर्यक्, खण्डमुण्डादेषु गोत्ववत्।( 4 )**

सदृश अर्थात् सामान्य परिणाम को तिर्यक् सामान्य कहते हैं, जैसे खण्डी मण्डी आदि गायों में गोपना समान रूप से रहता है।

**परावपरविवर्तव्यापि द्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु।( 5 )**

पूर्व और उत्तर पर्यायों में रहने वाले द्रव्य को ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं। जैसे स्थास, कोश, कुशूल आदि घटकी पर्यायों में मिट्टी रहती है।

**विशेषश्च।( 6 )**

विशेष भी दो प्रकार का है।

**पर्यायव्यतिरेकभेदात।( 7 )**

पर्याय और व्यतिरेक के भेद से विशेष दो प्रकार का है।

**एकस्मिन द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया,**
**आत्मानि हर्षविषादादिवत्।( 8 )**

एक द्रव्य में क्रम से होने वाले परिणामों को पर्याय कहते हैं जैसे आत्मा में हर्ष-विषाद आदि परिणाम क्रम से होते हैं, वे ही पर्याय हैं।( 8 )

**अर्थागन्तरगतो विसदृश परिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत्।( 9 )**

एक पदार्थ की अपेक्षा अन्य पदार्थ में रहने वाले सिदृश परिणाम को व्यतिरेक कहते हैं। जैसे गाय-भैंस आदि में विलक्षणपना पाया जाता है।

विसदृशता प्रतियोगी अर्थात् प्रतिपक्षी के ग्रहण करने पर ही प्रतीत होती है। आपेक्षिक होने से इस विसदृशता को अवस्तु नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि अवस्तु में आपेक्षिकपना नहीं बन सकता है। किन्तु अपेक्षा के वस्तुनिष्ठपना है, अर्थात् अपेक्षा वस्तु में ही पाई जाती है, अवस्तु में अपेक्षा नहीं होती है।

समस्त विश्व में जो मूलरूप में 6 प्रकार के द्रव्य हैं परन्तु संख्या की अपेक्षा तो अनंतानंत हैं उनके विभिन्न लक्षण होते हुए भी वे सब सत्स्वरूप हैं, अस्तित्ववान हैं। इसलिये अस्तित्व भी सबमें समान है। इसे ही महासत्ता कहते हैं। महासत्ता का अर्थ है जो सत्ता हर में विद्यमान रहती हो। महासत्ता को छोड़कर इस विश्व में और कुछ है ही नहीं; क्योंकि महासत्ता के अन्तर्गत ही जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल गर्भित है और छह द्रव्यों के विश्व में और है ही नहीं। यदि महासत्ता को ब्रह्म माना जायेगा। तो ''ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या'' का अर्थ होगा महासत्ता ही सत्स्वरूप है विश्व में और कुछ नहीं है। परन्तु ब्रह्म को यदि परम् ब्रह्म ( ईश्वर ) ही मानकर शेष विश्व को असत्य माना जायेगा तो यह मिथ्या मत हो जायेगा; क्योंकि जिस प्रकार ईश्वर सत्य है उसी प्रकार विश्व के प्रत्येक द्रव्य सत्स्वरूप है।

कुछ दार्शनिक सम्पूर्ण विश्व को केवल जड़रूप मानते हैं जीव आदि को सत्ता नहीं मानते हैं। परन्तु वे भी भ्रम में हैं; क्योंकि यदि विश्व में जड़ ही है, जीव आदि द्रव्य नहीं है तो जो जड़वाद का कथन करते हैं वह स्वयं जड़ है या चेतन है ? यदि वह स्वयं जड़ है तो जड़ कथन नहीं कर सकता है; क्योंकि जड़ में चेतना नहीं है, जिस प्रकार ईंट, पत्थर आदि चेतना से रहित होने के कारण कथन नहीं करते हैं। यदि वह स्वयं चेतन है तो चेतन द्रव्य का वह निषेध कैसे कर सकता है। इसी प्रकार कुछ दार्शनिक सम्पूर्ण विश्व को केवल शून्य रूप मानते हैं तो कुछ दार्शनिक शब्द रूप मानते हैं वे भी अयथार्थवादी हैं। इसलिये विश्व दृष्टा, विश्व ज्ञाता जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है कि सम्पूर्ण द्रव्य वे भले चेतन हो या अचेतन हो, मूर्तिक हो या अमूर्तिक हो, सब कुछ सत्स्वरूप है, सत्तावान है, अस्तित्ववान हैं।

## 'द्रव्य' स्वरुपतः सत् एवं स्वभाव सिद्ध है।

**दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादा।**
**सिद्धं तध आगमदो णेच्छदि जो सो हि परसमओ।।( 98 )**

**The Jinas have truly declared that the substance is naturally and essentially proved to be essential; it is as well proved from the scriptures; he, who does not accept it, is a false believer.**

( दव्व ) द्रव्यं ( सहावसिद्धं ) स्वभाव से सिद्ध है ( सदिति ) सत् भी स्वभाव सिद्ध है, ऐसा ( जिणा ) जिनेन्द्रों ने ( तच्चदा ) तत्त्व से ( समक्खादो ) कहा है ( तथ ) तैसे ही ( आगमदो ) आगम से ( सिद्ध ) सिद्ध हैं ( जो ) जो कोई ( णेच्छेदि ) नहीं मानता है ( सो हि परसमओ ) वही प्रगट रूप से परसमय रूप है।

यहां परमात्म-द्रव्य पर घटाकर कहते हैं कि परमात्मा रूपी द्रव्य स्वभाव से सिद्ध हैं; क्योंकि परमात्मा अनादि, अनन्त, बिना अन्य कारणों की अपेक्षा के अपने स्वतः सिद्ध केवलज्ञानादि गुणों के आधारभूत हैं, सदा आनन्दमयी सुखामृत रूपी परम समरसी भाव में परिणमन करते हुए सर्व शुद्ध आत्म प्रदेशों से भरपूर हैं तथा शुद्ध उपादान रूप से अपने ही स्वभाव से उत्पन्न हैं। जो सत् स्वरूप स्भाव से सिद्ध नहीं होता है, वह द्रव्य भी नहीं होता है। जैसे

द्विणुक आदि पुद्गल स्कंध की पर्याय व मनुष्यादि जीव पर्याय। जैसे - द्रव्य स्वभाव से सिद्ध है वैसे उसकी सत्ता भी स्वभाव से सिद्ध है, सत्ता किसी भिन्न सत्ता से समवाय से नहीं हुई है; क्योंकि सत्ता और द्रव्य में संज्ञा, लक्षण, प्रयोजनादि से भेद होने पर भी जैसे दण्ड और दण्डी पुरुष प्रदेशों का भेद है, ऐसी प्रदेशों की भिन्नता सत्ता एवं द्रव्यों में नहीं है। इस बात को तीर्थंकरों ने भले प्रकार वर्णन किया है तथा यही बात संतान/परम्परा की अपेक्षा द्रव्याथ्रिक नय से अनादि अनंत आगम से भी सिद्ध है जो ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं स्वीकार करता है वह मिथ्यादृष्टि हैं।इस तरह जैसा परमात्म द्रव्य स्वभाव से सिद्ध है तैसे ही सर्व द्रव्यों को स्वभाव से सिद्ध जानना चाहिए। द्रव्य को किसी पुरुष ने रचा नहीं है और न द्रव्य का सत्ता गुण ही द्रव्य से भिन्न है, इस गाथा का यह अभिप्राय है।

वास्तव में द्रव्यों से द्रव्यान्तरों की उत्पत्ति नहीं होती; क्योंकि सर्व द्रव्यों के स्वभाव सिद्धपना है ( सर्व द्रव्य पर द्रव्य की अपेक्षा बिना, अपने स्वभाव से ही सिद्ध है ) उनकी स्वभाव सिद्धता तो उनकी अनादि निधनता है; क्योंकि अनादि निधन अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रखता।वह ( द्रव्य ) गुण पर्यायात्मक अपने स्वभाव को ही जो कि मूल साधन है, धारण करके स्वयमेव सिद्ध और सिद्धि वाला हुआ वर्तता है। जो द्रव्यों में उत्पन्न होता है, वह तो द्रव्यान्तर नहीं है, किन्तु कादाचित्कता ( अनित्यता ) के होने से वह पर्याय है, जैसे - द्वि अणुक इत्यादि तथा मनुष्य इत्यादि। द्रव्य तो अनवधि ( मर्यादा रहित ) त्रिसमय-अवस्थायी ( त्रिकालस्थायी ) है, इसलिये वैसा ( कादाचित्क-क्षणिक-अनित्य ) नहीं है।

अब इस प्रकार जैसे द्रव्य स्वभाव से ही सिद्ध है उसी प्रकार वह सत् है। ऐसा भी वह स्वभाव से ही सिद्ध है, ऐसा निर्णय हो, क्योंकि सत्तात्मक ऐसे अपने स्वभाव से निष्पन्न निष्पत्तिमत् भाव वाला है।द्रव्य से अर्थान्तरभूत सत्ता की उत्पत्ति नहीं है कि जिसके समवाय से वह द्रव्य 'सत्' हो।

प्रथम तो सत् के और सत्ता के युतसिद्धता से अर्थान्तरत्व नहीं है, क्योंकि दण्ड और दण्डी की भांति उनके सम्बन्ध में युतसिद्धता दिखाई नहीं देती। ( 2 ) अयुतसिद्धता से भी वह ( अथान्तरत्व ) नहीं बनता।इसमें यह है द्रव्य में

सत्ता है, ऐसी प्रतीति होती है इसलिये वह बन सकता है ऐसा कहा जाय तो इसमें यह है ऐसी प्रतीति किसके आश्रय से होती है ? यदि ऐसा कहा जाय कि भेद के आश्रय से होती है तो वह कौनसा भेद है ? प्रादेशिक या अतद्भाविक ? प्रादेशिक तो है नहीं, क्योंकि युतसिद्धत्व का पहले ही निषेध कर दिया गया है और यदि अतद्भाविक कहा जाय तो वह उत्पन्न ठीक है, क्योंकि ऐसा शास्त्र का वचन है कि जो द्रव्य है वह गुण नहीं है। परन्तु यह अतद्भाविक भेद एकान्त से इसमें से यह है ऐसी प्रतीति का आश्रम नहीं है क्योंकि स्वयमेव उन्मग्न ( प्रकट ) और निमग्न ( गौण ) होता है। वह इस प्रकार है - जब द्रव्य को पर्याय की मुख्यता से मुख्य किया जाता है तब ही शुक्ल यह वस्त्र है, यह इसका शुक्लत्व गुण है इत्यादि की भांति गुण वाला यह द्रव्य है यह इसका गुण है। इस प्रकार अतद्भाविक भेद उन्मग्न होता है परन्तु जब द्रव्य को द्रव्य की मुख्यता से मुख्य किया जाता है, तब जिसके समस्त गुण वासना के उन्मेष ( प्रगटता ) अस्त हो गई है, ऐसे उस जीव के शुक्ल वस्त्र ही है इत्यादि की भांति ऐसा द्रव्य ही है, इस प्रकार देखने वाले के समूल ही अतद्भाविक भेद निमग्न होता है।

इस प्रकार वास्तव में भेद के निमग्न होने पर उसके आश्रय से होने वाली प्रतीति निमग्न होती है। उसके निमग्न होने पर अयुतसिद्धत्व जनित अर्थान्तरत्व निमग्न होता है, इसलिये समस्त ही एक द्रव्य ही होकर रहता है और जब भेद उन्मग्न होता है, उसके उन्मग्न होने पर उसके आश्रय ( कारण ) से होने वाली प्रतीति उन्मग्न होती है, उसके उन्मग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरत्व उन्मग्न होता है, तब भी वह ( सत् ) द्रव्य के पर्याय रूप से उन्मग्न होने से, जैसे जलराशि से जलतरंगे व्यतिरिक्त नहीं है ( अर्थात् समुद्र से तरंगें अलग नहीं है ) उसी प्रकार द्रव्य से व्यतिरिक्त नहीं होता। ऐसा होने से ( यह निश्चित हुआ कि द्रव्य स्वयमेव सत् है )। जो ऐसा नहीं मानता, वह वास्तव में परसमय मिथ्यादृष्टि ही मानना।

**समीक्षा -** 'सद् द्रव्य लक्षणम्' अर्थात् द्रव्य का लक्षण सत् है और वह द्रव्य स्वभाव से ही सिद्ध है। एक द्रव्य में अन्य एक द्रव्य की उत्पत्ति नहीं होती है। जो द्रव्य स्वभाव से अकृत्रिम रूप से स्वयं सिद्ध है उसका विनाश भी नहीं होता है

और जो असत् स्वरूप है उसकी उत्पत्ति तीन लोक में, तीन काल में किसी भी प्रकार से संभव नहीं है; क्योंकि असत् की उत्पत्ति नहीं है एवं सत् का विनाश नहीं होता है। आधुनिक विज्ञान भी उपर्युक्त सिद्धान्त को निम्न प्रकार से स्वीकार करता है -

**Matter and energy neither be created nor destroyed. Each can be completely changed into another form or into one another.**

विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त है कि किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती। केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है। जो द्रव्य स्वभाव से असत् है, अभाव रूप है, वह अन्य किसी द्रव्य के सम्बन्ध से, समवाय से, निमित्त से या सहायता से भी सत् रूप नहीं हो सकता है अर्थात् उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है; क्योंकि द्रव्य स्वयं सत्तावान है। द्रव्य में और सत्ता में संज्ञा, लक्षण, प्रयोजनादि से भेद होने पर भी वस्तुतः उनमें प्रदेश भेद नहीं है। दोनों में संज्ञा भेद यह है कि द्रव्य को द्रव्य शब्द से सूचित किया जाता है और सत्ता को सत्ता शब्द से सूचित किया जाता है। सत्ता का लक्षण होना रूप है और द्रव्य का लक्षण गुण पर्यायवान् है, सत्ता का प्रयोजन सद्भाव रूप है और द्रव्य का प्रयोजन परिवर्तन रूप है। उसी प्रकार दोनों में संज्ञादि से भेद होते हुए भी सत्ता के प्रदेश और द्रव्य के प्रदेश पृथक्-पृथक् नहीं है अपितु एक ही है।

यह विषय स्वयं सिद्ध है और उपलब्ध है। जिनेन्द्र भगवान् यथार्थज्ञाता एवं उपदेशक होने के कारण वस्तु स्वरूप जैसे है उन्होंने वैसे ही जाना और उपदेश किया। द्रव्य अनादि से है और उसको जानने वाले और उपदेश करने वाले भी संतान की अपेक्षा/परम्परा की अपेक्षा अनादि से है। इसलिये आगम भी अनादि से है। ऐसा अनादि अनिधन आगम में कहा गया है कि द्रव्य स्वरूप से सत् एवं स्वभाव सिद्ध है।

जो उपर्युक्त सिद्धान्त को नहीं मानता है, वस्तु स्वरूप से उसकी मान्यता/श्रद्धा/प्रतीति सत्य से विपरीत होने के कारण वह अंध श्रद्धानी है, मिथ्यादृष्टि है, परसमयी है; क्योंकि वस्तु स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म व्यापक और सर्वज्ञ ज्ञानगम्य होने के कारण मतिश्रुतज्ञान के बल पर हम जो कुछ देखते हैं, जानते

हैं, वह सर्व सत्य नहीं है। इसलिये अल्पज्ञों को अपना स्वल्प ज्ञान के माध्यम से वस्तु-स्वरूप के विपरीत, आगम के विपरीत, न श्रद्धान करना चाहिये, न बोलना चाहिये। जो आगम के विपरीत श्रद्धान करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। कहा भी है -

**मदिसुदणाण बलेण दु, सच्छंदं बोल्लदे जिणुद्दिट्ठं।**
**जो सो होदि कुदिट्ठी, ण होदि जिणमग्गलग्गरवो।।( 3 )**

जो व्यक्ति मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से स्वच्छन्द ( मनः कल्पित ) बोलता है, वह व्यक्ति मिथ्यादृष्टि है। वह जिनेन्द्रदेव के मार्ग में आरूढ़ व्यक्ति का वचन नहीं है।

**मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्चअत्थाणं।**
**एयंतं विवरीयं विणयं संसयिदमण्णाणं।।( 5 )( गो.जी. पृ.7 )**

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से तत्वार्थ के विपरीत श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। इसके पांच भेद हैं एकांत, विपरीत, विनय, संशयित, आान। अनेक धर्मात्मक पदार्थ को किसी एक धर्मात्मक मानना; इसको एकांत मिथ्यात्व कहते हैं, जैसे वस्तु सर्वथा क्षणिक ही है, अथवा नित्य ही है, वक्तव्य ही है, अवक्तव्य ही है इत्यादि।

धर्मादिक के स्वरूप को विपर्यय रूप माना इसको विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं जैसे हिंसा से स्वर्गादिक की प्राप्ति होती है।

सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव, गुरु तथा उनके कहे शास्त्रों में समान बुद्धि रखने को विनय मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे जिन और बुद्ध तथा उनके धर्म को समान समझना।

समीचीन तथा असमीचीन दोनों प्रकार के पदार्थों में से किसी भी एक का निश्चय न होना इसको संशय मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे सग्रंथ लिंग मोक्ष का साधन है या निर्ग्रन्थ लिंग अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र की एकता मोक्ष का साधन है अथवा रागादि कर्म। कर्मों के सर्वथा अभाव से अनंतगुण विशिष्ट आत्मा की शुद्ध अवस्था विशेष को मोक्ष कहते हैं। यहां बुद्धि आदि विशेष गुणों के अभाव को मोक्ष कहते हैं। जीवादि पदार्थों को 'यही है' इसी प्रकार है इस तरह विशेष रूप से न समझने को अज्ञान मिथ्यात्व कहते हैं।

इस प्रकार सामान्य से मिथ्यात्व के ये पांच भेद हैं। विस्तार से असंख्यातलोक प्रमाण तक भेद हो सकते हैं।

**मिच्छंत्तं वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होदि।**
**णय धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो।।( 17 )**

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से उत्पन्न होने वाले मिथ्या परिणामों का अनुभव न करने वाला जीव विपरीत श्रद्धान वाला हो जाता है। उसको जिस प्रकार पित्तज्वर से युक्त जीव को मीठा रस भी अच्छा मालूम नहीं होता उस ही प्रकार यथार्थ धर्म अच्छा मालूम नहीं होता है।

**मिच्छइट्ठी जीवों उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।**
**सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं।।( 18 )**

मिथ्यादृष्टि जीव समीचीन गुरुओं के पूर्वापर विरोधादि दोषों से रहित और हित के करने वाले भी वचन का यथार्थ श्रद्धान नहीं करता। किन्तु आचार्याभासों के द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भाव अर्थात् पदार्थ के विपरीत स्वरूप का इच्छानुसार श्रद्धान करता है।

**सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।**
**सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।।( 27 )**

सम्यक्दृष्टि जीव आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान करता है, किन्तु अज्ञानतावश गुरु के उपदेश से विपरीत अर्थ का भी श्रद्धान कर लेता है। 'अरहंतदेव का ऐसा ही उपदेश है' ऐसा समझकर यदि कोई पदार्थ का विपरीत श्रद्धान भी करता है तो भी वह सम्यग्दृष्टि ही है, क्योंकि उसने अरहंत का उपदेश समझकर उस पदार्थ का वैसा श्रद्धान किया है।परन्तु –

**सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।**
**सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुडि।।( 28 )**

गणधरादि कथित सूत्र के आश्रय से आचार्यादि के द्वारा भले प्रकार समझाये जाने पर भी यदि वह जीव उस पदार्थ का समीचीन श्रद्धान न करे तो वह जीव उस ही काल से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

## उत्पत्ति–नाश–स्थित्यात्मक द्रव्य ही सत् है –

**सद्दवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।**
**अत्थेसु वो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो।।( 99 )**

**That existing entity established in its nature is the substance; the development of the substance with reference to qualities and modes. ARTHA is also its nature coupled with permanence, origination and destruction.**

( सहावे ) स्वभाव में ( अवट्ठियं ) रहा हुआ ( सत् ) सत् ( दव्वं ) द्रव्य है। ( दव्वस्स ) द्रव्य का ( अत्थेसु ) ( गुण पर्यायों ) में ( जो ) जो ( ठिदिसंभव-णाससंबद्धो ) ध्रौव्य, उत्पाद, व्यय सहित परिणाम है ( सो ) वह ( हि ) ही ( सहावो ) स्वभाव है।

स्वभाव में तिष्ठा हुआ शुद्ध चेतना का अन्वय रूप ( बराबर ) अस्तित्व परमात्मा द्रव्य है। उस परमात्मा द्रव्य का अपने केवलज्ञानादि गुण और सिद्धत्व ( यहां अरहन्तपने से मतलब है ) आदि पर्यायों में अपेन आत्मा की प्राप्ति रूप उत्पाद उसी ही समय में परमागम की भाषा से एकत्व वितर्क अविचार रूप दूसरे शुक्ल ध्यान का या शुद्ध उपादान रूप सर्व रागादि के विकल्प की उपाधि से रहित स्व संवेदन-ज्ञान पर्याय का नाश तथा उसी समय इन दोनों उत्पाद व्यय के आधार रूप परमात्म द्रव्य की स्थिति इस तरह उत्पाद व्यय ध्रौव्य सम्बन्धी जो परिणाम है, वही निश्चय से उस परमात्म द्रव्य का केवलज्ञानादि गुण वा सिद्धत्व आदि पर्यायरूप स्वभाव है। गुण पर्याय द्रव्य के स्वभाव हैं, इसलिए उनको अर्थ कहते हैं। इस तरह उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीन स्वभाव से एक समय में यद्यपि पर्यायार्थिक नय से परमात्म द्रव्य परिणमन करते हैं तथापि द्रव्यार्थिक नय से सत्ता लक्षण रूप ही है। तीन लक्षण रूप होते हुए भी सत्ता लक्षण क्यों कहते हैं? इसका समाधान यह है कि सत्ता उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है। जैसा कहा है 'उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्' जैसे यह परमात्म द्रव्य एक समय में ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से परिणमन करता हुआ ही सत्ता लक्षण कहा जाता है, तैसे ही सर्व द्रव्यों का स्वभाव है, यह अर्थ है।

यहाँ ( विश्व में ) वास्तव में स्वभाव में नित्य अवस्थित होने से सत् द्रव्य है। स्वभाव द्रव्य का ध्रौव्य-उत्पाद-विनाश की एकता स्वरूप परिणाम है। जैसे द्रव्य वास्तु के समग्रतया ( अखण्डता से ) एक होने पर भी, विस्तार क्रम की प्रवृत्ति में वर्तने वाले सूक्ष्म अंश प्रदेश हैं, इसी प्रकार द्रव्य की वृत्ति ( द्रव्य परिणति, द्रव्य प्रवाह ) के, समग्रतया एक होने पर भी, प्रवाह-क्रम की प्रवृत्ति में वर्तने वाला सूक्ष्म अंश परिणाम है। जैसे प्रदेशों के परस्पर व्यतिरेक के कारण से होने वाला विष्कम्भ क्रम है, उसी प्रकार परिणामों के परस्पर

व्यतिरेक के कारण से होने वाला प्रवाह क्रम है।

जैसे वे प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्व-रूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एकवास्तुपने से अनुत्पन्न-अविनष्ट होने उत्पत्ति संहार-ध्रौव्यात्मक अपने स्वरूप को धारण करते हैं, उसी प्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्व-रूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने से अनुत्पन्न अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक अपने स्वरूप को धारण करते हैं और जैसे जो पूर्व प्रदेश के विनाश रूप वस्तु का सीमान्त है, वही उसके बाद के प्रदेश का उत्पाद स्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुत्व से दोनों ( उत्पाद-व्यय ) स्वरूप नहीं है ( ध्रुव है )। इसी प्रकार जो ही पूर्व परिणाम के विनाश रूप प्रवाह का सीमान्त है, वही उसके बाद के परिणाम के उत्पाद स्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाह से दोनों ( उत्पाद-व्यय ) स्वरूप नहीं है ( ध्रुव है )।

इस प्रकार स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणाम पद्धति में ( परिणामों की परम्परा में ) प्रवर्तमान द्रव्य स्वभाव का अतिक्रम नहीं करता, इसलिये सत्त्व को त्रिलक्षण ही अनुमोदित करना चाहिये, मोतियों के हार भांति। जैसे - जिसने ( अमुक ) लम्बाई ग्रहण की है, ऐसे लटकते हुए मोतियों के हार में, अपने-अपने स्थानों में प्रकाशित होते हुये समस्त मोतियों में, अगले-अगले स्थानों में अगले-अगले मोती प्रगट होते हैं, इसलिये और पहले-पहले के मोती प्रगट नहीं होते इसलिये तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति का रचियता सूत्र अवस्थित होने से, त्रिलक्षणत्व प्रसिद्ध को प्राप्त होता है। इसी प्रकार जिसने नित्यवृत्ति ग्रहण की है, ऐसे रचित ( परिणमित ) होते हुए समस्त परिणामों में अगले-अगले अवसरों पर अगले परिणाम प्रगट होते हैं इसलिये और पहले-पहले के परिणाम नहीं प्रगट होते हैं। इसलिये, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचने वाला प्रवाह अवस्थित होने से, त्रिलक्षणत्व प्रसिद्धि प्राप्त होती है।

**समीक्षा** - जो सत् होता है वह अवश्य अर्थक्रिया कारित्व गुण से युक्त होता है। अर्थक्रिया कारित्व गुण उसे कहते हैं जिससे द्रव्य में कुछ न कुछ कार्य होता रहता है। विश्व के सम्पूर्ण शुद्ध-अशुद्ध मूर्तिक-अमूर्तिक द्रव्य में हर समय कुछ न कुछ कार्य होता है और इस कार्य के लिये उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश की आवश्यकता होती है। बिना उत्पत्ति, स्थिति, विनाश के कार्य हो ही नहीं

सकता है। जिस प्रकार बर्फ के बनने के लिये जल की तरल अवस्था एवं समशीतोष्ण अवस्था नष्ट होती है तथा घन अवस्था व शीत अवस्था प्रारम्भ होती है परन्तु दोनों अवस्था में जल के पुद्गल ध्रौव्य रूप में रहते हैं। इसके बिना पानी बर्फ नहीं बन सकता है। उपर्युक्त विशेषणों से रहित ना कोई द्रव्य हो सकता है ना कोई क्रिया हो सकती है। न्यायशास्त्र में कहा भी है –

**( अनुवृत्त व्यावृत्त प्रत्ययगोचरत्वात्पूर्वोत्तराकार परिहारावाप्ति स्थिति – लक्षण परिणामेनार्थ क्रियोपपत्तेश्च। )( 2 )( प्रमेयरत्नमाला पृ. 286 )**

वस्तु सामान्य विशेषादि अनेक धर्मवाली है; क्योंकि वह अनुवृत्तप्रत्यय और व्यावृत्तप्रत्यय की विषय है तथा पूर्व आकार का परिहार, उत्तर आकार की प्राप्ति और स्थितिलक्षण परिणाम के साथ उसमें अर्थक्रिया पाई जाती है।

सत् की परिभाषा उमास्वामी ने भी निम्न प्रकार की है –

**उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्।( 30 )**

जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों से युक्त अर्थात् इन तीनों रूप है, वह सत् है।

**सद् द्रव्यलक्षणम् सीदति स्वकीयान्, गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत्, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। ( 97 )( आलापपद्धति पृ. 143 )**

द्रव्य का लक्षण सत् है। अपने गुण और पर्यायों से व्याप्त होने वाला सत् है अथवा जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त है, वह सत् है।

## उत्पाद, विनाश एवं स्थिरता परस्पर अविनाभाव है।

**ण भवो भंग विहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।**
**उप्पादो वि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण।।( 100 )प्र. सार**

**There can be no origination without destruction, nor there is destruction without origination, origination and destruction are not possible in the absence of the permanent substantiality.**

( भंगविहीणो भवो ण ) व्यय के बिना उत्पाद नहीं होता है ( वा ) तथा ( संभवविहीणो भंगो णत्थि ) उत्पाद के बिना भंग या व्यय नहीं होता है ( य ) और ( उप्पादो वि ) उत्पाद तथा ( भंगो ) व्यय ( दव्वेण अत्थेण विणा ण्पा ) ध्रौव्य पदार्थ के बिना नहीं होते।

निर्दोष परमात्मा की रुचिरूप सम्यक्त्व अवस्था का उत्पाद सम्यक्त्व से विपरीत मिथ्यात्व पर्याय के नाश के बिना नहीं होता है; क्योंकि उपादान कारण के अभाव से कार्य नहीं बन सकेगा। जब उपादानकरण होगा तब ही कार्य हो सकता है। जैसे मिट्टी के पिंड के नाश हुए बिना घड़ा नहीं पैदा हो सकता है। मिट्टी का पिंड उपादान कारण है। दूसरा कारण यह है कि जो मिथ्यात्व पर्याय का नाश है वही सम्यक्त्व की पर्याय का प्रतिभास है; क्योंकि ऐसा सिद्धान्त का वचन है कि 'भावान्तर स्वभाव रूपो भवत्यभावः' अन्य भाव रूप स्वभाव ही अभाव होता है अर्थात् अभाव नहीं होता। अन्य अवस्था रूप परिणमना ही अभाव है, जैसे घटका उत्पन्न होना ही मिट्टी के पिंड का भंग ( व्यय ) है। यदि मिथ्यात्व पर्याय के भंगरूप सम्यक्त्व के उपादान कारण के अभाव में शुद्धात्मा की अनुभूति की रुचि रूप सम्यक्त्व का उत्पाद हो जावे तो उपादान कारण से रहित आकाश के पुष्पों का भी उत्पाद हो जावे सो ऐसा नहीं हो सकता है। इसी तरह पर-द्रव्य उपादेय है - ग्राह्य है, ऐसा मिथ्यात्व का नाश पर्वू में कहे हुए सम्यक्त्व पर्याय के उत्पाद बिना नहीं होता है क्योंकि भंग के कारण का अभाव होने से भंग नहीं बनेगा। जैसे घट की उत्पत्ति के अभाव में मिट्टी के पिण्ड का नाश नहीं बनेगा। दूसरा कारण यह है कि सम्यक्त्व रूप पर्याय की उत्पत्ति मिथ्यात्व रूप पर्याय के अभाव रूप ही देखने में आती है, क्योंकि एक पर्याय का अन्य पर्याय में पलटना होता है। जैसे घट पर्याय की उत्पत्ति मिट्टी के पिण्ड के अभाव रूप से ही होती है। यदि सम्यक्त्व की उत्पत्ति की अपेक्षा के बिना मिथ्यात्व पर्याय का अभाव होता है ऐसा माना जाय तो मिथ्यात्व पर्याय का अभाव हो ही नहीं सकता; क्योंकि अभाव के कारण का अभाव है अर्थात् उत्पाद नहीं है। जैसे घट की उत्पत्ति के बिना मिट्टी के पिण्ड का अभाव नहीं हो सकता। इसी तरह परमात्मा की रुचि रूप सम्यक्त्व का उत्पाद तथा इससे विपरीत मिथ्यात्व पर्याय का नाश ये दोनों बातें इन दोनों के आधारभूत परमात्म रूप द्रव्य पदार्थ के बिना नहीं होती, क्योंकि द्रव्य के अभाव में व्यय और उत्पाद का अभाव है। मिट्टी द्रव्य के अभाव होने पर न घट की उत्पत्ति होती है, न मिट्टी के पिंड का भंग होता है। जैसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्व पर्याय दोनों में परस्पर अपेक्षापना है, ऐसा समझकर ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों दिखलाए गए हैं। इसी तरह सर्व द्रव्य की पर्यायों में देख लेना व विचार लेना चाहिए ऐसा अर्थ है।

**समीक्षा** - विश्व के प्रत्येक द्रव्य, प्रत्येक क्रियाएं परस्पर सापेक्ष ही होती है। निरपेक्ष ना कोई द्रव्य होता है ना कोई क्रियाएं ही होती हैं। इसी प्रकार उत्पाद, व्यय ध्रौव्य भी परस्पर सापेक्ष ही होते हैं। जिस प्रकार पानी का वाष्प पानी के बिना नहीं होता है, परन्तु पानी की तरल-अवस्था का विनाश बिना वाष्प-अवस्था की उत्पत्ति भी नहीं होती। तरल अवस्था एवं बाह्य अवस्था के मध्य में भी जलकण का सद्भाव होता है इसलिए उत्पाद एवं विनाश भी सद्भाव के कारण होता है। ऐसी क्रिया हर द्रव्य में, हर समय में सम्पूर्ण चराचर विश्व में होती ही रहती है। समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है -

**स्थितिजनन निरोधलक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम्।**
**इति जिन! सकलज्ञलाञ्छनं वचनमिदं वदतांवरस्य ते।।( 4 )**

हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! चेतन और अचेतन रूप संसार क्षण-क्षण में ध्रौव्य उत्पाद और व्यय रूप लक्षण से युक्त है। इस प्रकार का यह जो वक्तृप्रवर आपका वचन है, वह सर्वज्ञ का चिह्न है - आपकी सर्वज्ञता का द्योतक है।

द्रव्य सामान्य विशेषात्मक होता है। जहाँ सामान्य होगा वहां विशेष अवश्य होगा, जहां विशेष होगा वहाँ सामान्य अवश्य होगा। जिस प्रकार जहां पर आम सामान्य होगा, वहाँ पर आम का विशेष स्वाद, गंध, वर्ण, स्पर्श आदि अवश्य होंगे ही। जैसे एक व्यक्ति तो उसका कुछ न कुछ व्यक्तित्व अवश्य होगा ही।

सन्मति सूत्र में कहा भी है -

**सामण्णम्मि विसेसो विसेसपक्खे य वयणविणिवेसो।**
**दव्वपरिणाममण्णं दाएइ तयं च णियमेइ।।( 1 )**

सामान्य में विशेष का और विशेष में सामान्य का जो कथन किया जाता है, वह द्रव्य, गुण और उसकी पर्यायों को भिन्न-भिन्न रूप में बतलाता हुआ तीनों को एक नियत करता है। भाव यह है कि प्रमाण विषयक पदार्थ 'सामान्य विशेषात्मक' है। पदार्थ सामान्य और विशेष इन दो धर्मों से युक्त है। सामान्य विशेष को छोड़कर और विशेष सामान्य को छोड़कर अन्यत्र स्वतंत्र रूप से उपलब्ध नहीं होता। किन्तु वक्ता की विवक्षा से जो सामान्य होता है, वही विशेष बन जाता है। सामान्य विशेष के बिना और विशेष सामान्य के बिना किसी भी पदार्थ में नहीं रहते।

**एगंतणिव्विसेसं एगंतविसेसियं च वयमाणो।**
**दव्वस्स पज्जवे पज्जवा हि दवियं णियत्तेइ।।( 2 )**

एकान्ती का यह कथन है कि सामान्य विशेष से रहित है और विशेष सामान्य से रहित है। अतः वह द्रव्य को पर्यायों से और पर्यायों को द्रव्य से अलग करता है, किन्तु द्रव्य ऐसा भिन्न-भिन्न नहीं है। जहाँ द्रव्य है, वहाँ पर्याय है और जहाँ पर्याय है, वहाँ द्रव्य है। वास्तव में दोनों एक दूसरे से अलग नहीं है।

## उत्पाद, स्थिति भंग पर्यायात्मक एवं द्रव्य से अभिन्न है –

**उप्पादट्ठिदि भंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया।**
**दव्वे हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं।।( 101 )**

**Origination, permanence and destruction take place in modifications; modifications are possible necessarily in a substance, therefore the substance forms the base of all of them.**

( उप्पादट्ठिदिभंगा ) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ( पज्जएसु ) पर्यायों में ( विज्जंते ) रहते हैं। ( पज्जाया ) पर्यायें ( णियदं हि ) निश्चय से ही ( दव्वं ) द्रव्य में ( संति ) रहती है। ( तम्हा ) इस कारण से ( सव्वं ) वे सब पर्यायें ( दव्वं ) द्रव्य ( हवदि ) हैं।( वृत्तिकार सम्यग्दर्शन पर्याय का दृष्टांत देखकर बताते हैं कि ) विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव रूप आत्मतत्व का निर्विकार स्वसंवेदनज्ञान ज्ञान रूप से उत्पाद, उसी ही समय में स्वसंवेदनज्ञान से विलक्षण अज्ञान पर्याय रूप से व्यय तथा इन दोनों का आधारभूत आत्मद्रव्यपने की अवस्था रूप से ध्रौव्य ऐसे ये तीनों ही भेद पर्यायों में रहते हैं अर्थात् सम्यक्त्व-पूर्वक निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञान पर्याय से उत्पाद है तथा स्वसंवेदन-रहित अज्ञान पर्याय रूप से व्यय तथा इन दोनों का आधार रूप आत्म द्रव्यपने की अवस्था रूप से ध्रौव्य अपनी-अपनी पर्यायों में रहते हैं और ये ऊपर कहे हुए लक्षण सहित जो ज्ञान, अज्ञान और इन दोनों का आधार रूप आत्म-द्रव्यपना ऐसी ये पर्यायें निश्चय करके अपने-अपने संज्ञा लक्षण प्रयोजन आदि के भेद से भेद रूप हैं तथापि आत्मा के प्रदेशों में होने से अभेद रूप हैं, इसलिये जब निश्चय से ये उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य आधार, आधेय भाव से द्रव्य में रहते हैं तब यह स्वसंवेदन ज्ञान आदि पर्याय रूप उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों अन्वय द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य हैं। पूर्व कथित उत्पाद आदि तीनों का तैसे ही स्वसंवेदन ज्ञान आदि तीनों पर्यायों का अनुगत आकार से व अन्वय रूप से जो आधार हो सो अन्वय द्रव्य कहलाता है। अन्वय द्रव्य जिसका विषय हो, उसको अन्वय द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जैसे यहां ज्ञान अज्ञान पर्यायों में तीन भेद कहे गये त ही सर्व द्रव्य की पर्यायों में यथासम्भव जान लेना चाहिए, यह अभिप्राय है।

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में पर्यायों ( अंशों ) को आलम्बन करते हैं और वे पर्यायें द्रव्य को आलम्बन करती हैं इसलिए यह सब द्रव्य ही हैं, द्रव्यान्तर नहीं ( उत्पाद व्यय - ध्रौव्य द्रव्य से पृथक् पदार्थ नहीं हैं ) वास्तव में प्रथम तो द्रव्य पर्यायों के ( अंशों ) के द्वारा आलम्बित किया जाता है; क्योंकि समुदायी ( समुदायवान् ) समुदाय स्वरूप होता है, वृक्ष की भांति। जैसे - समुदाय वृक्ष, स्कंधमूल और शाखाओं का समुदाय स्वरूप होने से स्कंध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही प्रतिभासित होता है।( दिखाई देता है ), इस ही प्रकार समुदायी द्रव्य, पर्यायों का समुदाय स्वरूप होने से पर्यायों के द्वारा आलम्बित ही प्रतिभासित होता है।( अर्थात् जैसे स्कंध, मूल और शाखायें वृक्षाश्रित ही है ), वृक्ष से भिन्न पदार्थ रूप नहीं है, उस ही प्रकार पर्यायें द्रव्याश्रित ही हैं, द्रव्य से भिन्न पदार्थ रूप नहीं है।

और पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा आलम्बित हैं ( अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायाश्रित हैं ) क्योंकि उत्पाद-व्यय ध्रौव्य के अंश धर्मपना है, बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भांति। जैसे - अंशीवृक्ष के बीज वृक्षत्व स्वरूप तीन अंश, व्यय - उत्पाद - ध्रौव्य स्वरूप निज धर्मों से आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं। किन्तु यदि द्रव्य का ही ( 1 ) व्यय ( 2 ) उत्पाद और ( 3 ) ध्रौव्य माना जाय तो सारी गड़बड़ी हो जायेगी।यथा ( 1 ) अकेले यदि द्रव्य का ही व्यय माना जाय, तो क्षण भंग से लक्षित समस्त द्रव्यों का एक क्षण में ही व्यय हो जाने से द्रव्यशून्यता आ जायेगी, अथवा सत् का उच्छेद हो जायेगा। ( यदि द्रव्य का ही उत्पाद माना जाय ), तो समय-समय पर होने वाले उत्पाद के द्वारा चिह्नित द्रव्यों की अनन्ता आ जायेगी।( अर्थात् समय-समय पर होने वाला उत्पाद जिसका चिह्न हो ऐसा प्रत्येक द्रव्य अनन्त द्रव्य को प्राप्त हो जायेगा ) अथवा असत् का उत्पाद हो जायेगा, ( 3 ) यदि द्रव्य का ही ध्रौव्य माना जाये तो क्रमशः होने वाले भावों के अभाव के कारण द्रव्य का अभाव हो जायेगा, अथवा क्षणिकत्व आ जायेगा।इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा पर्यायें आलम्बित हों और पर्यायों के द्वारा द्रव्य आलम्बित हो कि जिससे यह सब एक ही द्रव्य होता है।

**समीक्षा** - जो द्रव्य होता है उसमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य अवश्य ही होंगे अर्थात् प्रकारान्तर से उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक ही द्रव्य है। उमास्वामी ने कहा भी है –

**उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत् (30)**

क्योंकि जो सत् होगा उसमें अवस्थायें भी होंगी और जो अवस्थायें होंगी वे उत्पन्न भी होंगी और नाश भी होंगी; क्योंकि अवस्थायें शाश्वतिक ध्रुव नहीं होती। जिस प्रकार मनुष्य में शिशु, किशोर, प्रौढ़, वृद्ध अवस्थायें होती हैं और वे अवस्थायें मनुष्य में ही उत्पाद और व्यय रूप में होती है। इसलिए शिशु अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक सम्पूर्ण अवस्थाओं कासमूह या जन्म से मृत्यु तक की अवस्थाओं का समूह ही मनुष्य है और सम्पूर्ण अवस्थाओं में जो अनुसृत रूप ध्रुव है वह है मनुष्यत्व। यह सब मिलाकर मनुष्य होता है। इसी प्रकार त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों का समूह ही द्रव्य है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने भी कहा है –

**एगदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया वा वि।**
**तीयाणागयभूया तावइयं तं हवइ दव्वं।।( 3 )पृ.31**

एक द्रव्य में जितनी अतीत, भविष्यत् और वर्तमान की अर्थ पर्यायें तथा व्यंजन( शब्द )पर्यायें हुई हैं, होने वाली है और हो रही हैं, यह द्रव्य उतना ही है।

इस गाथा में आचार्य श्री ने उत्पाद, व्यय के साथ ध्रौव्य को भी पर्याय कहा है, जो कि विचारणीय है। उत्पाद हो या व्यय हो, गुण हो या पर्याय हो जिस में होते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं अर्थात् सत् स्वरूप द्रव्य का लक्षण है। कहा भी है –

**सत् द्रव्य लक्षणम्। त.सू.अ. 5**

पञ्चास्तिकाय में कुन्दकुन्ददेव ने कहा भी है –

**दवियदि गच्छति ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं।**
**दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो।।( 9 )पृ. 42**

उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, उसे सर्वज्ञ भगवान् द्रव्य कहते हैं जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।

**दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्वय धुवत्त संजुत्तं।**
**गुण पज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू।।( 10 )**

जो सत् लक्षणवाला है, जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य संयुक्त है अथवा जो गुण पर्यायों को आश्रय आधार है, उसे सर्वज्ञदेव द्रव्य कहते हैं।

उपरोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि जिस प्रकार द्रव्य में उत्पाद और व्यय होते हैं, उसी प्रकार ध्रौव्य, सत्( द्रव्य ) में होता है। द्रव्य तो त्रैकालिक सत्य है

परन्तु ध्रौव्य, सत् ( द्रव्य ) में होता है। द्रव्य तो त्रैकालिक सत्य है परन्तु ध्रौव्य त्रैकालिक सत्य नहीं है, परन्तु उत्पाद और व्यय के मध्य में जो अन्वय रूप पर्याय ( अवस्था, स्थिति, अवस्थान ) होती है उसे ही ध्रौव्य कहते हैं। इसलिये ध्रौव्य भी पर्याय है, इसलिये द्रव्य ही उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक है अर्थात् तीनों अवस्था में द्रव्य ही रहता है।

## उत्पादादि तीनों एक समय में होते हैं –

**समवेदं खलु दव्वं संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं।**
**एक्कम्मि चेव समये तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं।।( 102 )**

**A substance, in fact, is intimately united with the three conditions signified by the terms : origination, permance and destruction at one and the same moment; therefore, really speaking, the substance is the substratum of all the three.**

( दव्वं ) द्रव्य ( खलु ) निश्चय से ( एक्म्मि चेव समये ) एक ही समय में परिणमन करने वाले ( संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं ) उत्पाद स्थिति व नाश के भावों से ( समवेदं ) एक रूप है अर्थात् अभिन्न है ( तम्हा ) इसलिये ( दव्वं ) द्रव्य ( खु ) प्रगट रूप से ( तत्तिदयं ) उन तीन रूप हैं।

आत्मा नामा द्रव्य जब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पूर्वक निश्चल और विकार-रहित अपने आत्मा के अनुभवमय लक्षण वाले वीतराग चारित्र की अवस्था से उत्पन्न होता है अर्थात् जब सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी आत्मा में वीतराग चारित्र की पर्याय का उत्पाद होता है। तब ही रागादि रूप पर्याय का जो परद्रव्यों के साथ एकता करके परिणमन कर रहा था, नाश होता है और उसी समय इन दोनों उत्पाद और व्यय के आधार रूप आत्मा द्रव्य की अवस्था रूप पर्याय से ध्रौव्यपना है। इस तरह वह आत्म द्रव्य अपने ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य की पर्यायों से एक रूप है या अभिन्न है या भिन्न है। यही बात निश्चय से है। ये तीनों पर्यायें बौद्धमत की तरह भिन्न-भिन्न समय में नहीं होती हैं, किन्तु एक ही समय में होती है। जैसे जब अंगुली को टेड़ा किया जाए तब एक ही समय में टेड़ेपन की उत्पत्ति और सीधेपन का नाश तथा अंगुलीपने का ध्रौव्य है। इसी तरह जब कोई संसारी जीव मरण करके ऋजुगति से एक ही समय में आता है तब जो समय मरण का है, वही समय ऋजुगति प्राप्ति का है तथा वह जीव अपन जीवनपने से विद्यमान है ही। तैसे ही सब क्षीणकषाय नाम के बारहवें गुण स्थान के अंतिम समय में केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है तब ही अज्ञान

पर्याय का नाश होता है तथा वीतरागी आत्मा की स्थिति है ही। इसी तरह जब अयोगी केवली के अन्त समय में मोक्ष होता है तब जिस समय मोक्ष पर्याय का उत्पाद है तब ही चौदहवें गुणस्थान की पर्याय का नाश है तथा दोनों ही अवस्थाओं में आत्मा ध्रुवरूप है ही। इस तरह एक ही समय में उत्पाद व्यय ध्रौव्य सिद्ध होते हैं। संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि से भेद होते हुए भी प्रदेशों की अपेक्षा अभेद हैं, इसलिये द्रव्य प्रगट रूप से उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है। जैसे यहां आत्मा में चारित्र पर्याय की उत्पत्ति और अचारित्र पर्याय का नाश समझते हुए तीनों ही भंग अभेदपने से दिखाए गए हैं, ऐसे ही सर्व द्रव्यों की पर्यायों की पर्यायों में भी जानना चाहिए, ऐसा अर्थ है।

**समीक्षा** - भले उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीन अवस्थाएं हैं तथापि तीनों के समय अलग-अलग नहीं है, परन्तु एक ही समय है। अर्थात् तीनों एक ही समय में होते हैं। जिस प्रकार मिट्टी के घड़े का फूटना, कपाल ( खप्पर ) की उत्पत्ति होना तथा घड़ा एवं कपाल में मिट्टी का ध्रौव्य होना, ये तीनों क्रियायें एक साथ हुई। न कि कुछ घंटों पहले घड़ा फूटा और कुछ घंटों के बाद उसके खप्पर बने और कुछ घंटों बाद घड़ा एक खप्पर में मिट्टी का ध्रौव्य हुआ। इसी प्रकार दीपक का प्रकाशित होना, अंधकार का दूर होना एवं दोनों अवस्था में पुद्गल की पर्याय का अवस्थान होना एक साथ होता है। जिस प्रकार बंदूक से कुछ समय पहले गोली छूटती है और कुछ समय के बाद गोली दूरस्थ लक्ष्य में पहुंच जाती है और दोनों बिन्दू के बीच में भी गोली रहती है, इसी प्रकार समय भेद में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य नहीं होता है और कुछ उदाहरण देकर उपर्युक्त विषय का स्पष्टीकरण कर रहे हैं। जिस प्रकार सम्पूर्ण कर्म के नष्ट होते ही संसार अवस्था का विनाश हो जाता है, सिद्ध अवस्था का प्रारम्भ हो जाता है एवं दोनों अवस्था में जीव ध्रौव्य रहता है और तीनों क्रियायें एक साथ होती हैं। ज्ञानावरण कर्म का नाश होना, अनन्त ज्ञान का प्रगट होना तथा लोकालोक में ज्ञान का फैलनाये तीनों क्रियायें एक साथ होती है। इसी प्रकार प्रत्येक शुद्ध व अशुद्ध चैतन्य व अचैतन्य द्रव्य में जो सूक्ष्म उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होते हैं वे तीनों एक समय में ही होते हैं उसमें समय भेद नहीं होता है। यदि समय भेद होगा तो उसमें क्रियायें ही नहीं हो सकती है क्योंकि उत्तरोत्तर क्रियायें पूर्व-पूर्व क्रियाओं से अनुस्यूत होकर ही होती है, भिन्न-भिन्न होकर नहीं हो सकती है। जिस प्रकार रेल के इंजन के साथ जो डिब्बे संयुक्त रहते हैं, वे ही डिब्बे इंजन

के आगे बढ़ने पर भी आगे बढ़ सकते हैं। यदि संयुक्त नहीं है तो इंजनचलने पर भी आगे नहीं बढ़ सकते हैं। उसी प्रकार जो उत्पाद, व्यय से एवं व्यय, उत्पाद से एवं उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से पृथक्-पृथक् समय वाले होंगे तो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीनों नहीं हो सकते हैं। जिस प्रकार केवल ज्ञानावरण कर्म बहुत समय के पहले नष्ट हुआ और बहुत समय के बाद केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ और बहुत समय के बाद लोक-अलोक को केवल ज्ञान जाना यह संभव नहीं हो सकता है और एक उदाहरण है कुछ दिन के पहले दीपक जला, कुछ दिन के बाद उससे प्रकाश हुआ और कुछदिन के बाद उससे अन्धकार दूर हुआ, यह संभव नहीं है।

## द्रव्य में पर्यायों की अपेक्षा उत्पादादि हैं –

**पाडुब्भवदि य अण्णो पज्जाओ पज्जओ वयदि अण्णो।**
**दव्वस्स तं पि दव्वं णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं।।( 103 )**

**In a substance some modifications originates and some other passes away; but the substantiality neither originates nor is destroyed.**

आगे इस बात को दिखलाते हैं कि द्रव्य में पर्यायों की अपेक्षा उत्पाद व्यय ध्रौव्य है - ( दव्वस्स ) द्रव्य की ( अण्णो पज्जाओ ) अन्य कोई पर्याय ( पाडुब्भवदि ) प्रगट होती है ( य ) और ( अण्णे पज्जाओ ) अन्य कोई पूर्व पर्याय ( वयदि ) नष्ट होती है ( तंपि ) तो भी ( दव्वं ) द्रव्य ( णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं ) न तो नाश हुआ है और न उत्पन्न हुआ है। शुद्ध आत्मा द्रव्य के जब कोई अपूर्व और अनन्त ज्ञान सुख आदि गुणों के स्थान तथा अविनाशी परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति रूप स्वभाव द्रव्य-पर्याय अथवा मोक्ष अवस्था प्रगट होती है तब इस मोक्ष पर्याय से भिन्न तथा निश्चय रत्नत्रयमयी निर्विकल्प समाधि रूप मोक्ष पर्याय की उपादान कारण रूप पूर्व पर्याय नाश होती है। तथापि वह परमात्मा शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा न नष्ट होता है, न उत्पन्न होता है अथवा संसारी जीव अपेक्षा जब देव आदि विभिन्न रूप विभाव-द्रव्य, पर्याय उत्पन्न होती है तब ही मनुष्य आदि रूप पर्याय नष्ट होती है। तथा वह जीव द्रव्य निश्चय से न उपजा है, न विनष्ट है। इसी प्रकार पुद्गल द्रव्य पर विचार किया जाये तो मालूम होगा कि दो अणु का स्कन्ध, चार अणु का स्कन्ध आदि स्कन्ध रूप स्वजातीय विभाव-रूप द्रव्य पर्याय जब कोई उत्पन्न होती है तब पूर्व पर्याय को नाश करके ही पैदा होती है। तो भी पुद्गल द्रव्य निश्चय से न उपजता है न नष्ट होता है। इससे सिद्ध हुआ कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य

रूप होने के कारण द्रव्य की पर्यायों का नाश और उत्पाद होने पर भी द्रव्य का नाश नहीं होता है। इस हेतु से द्रव्य पर्याय भी द्रव्य लक्षण होती है। ऐसा अभिप्राय है।

**समीक्षा** - जिस प्रकार समुद्र में तरंगे उत्पन्न होती हैं एवं विनाश होती हैं तथापि समुद्र वही रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक शुद्ध-अशुद्ध मूर्तिक अमूर्तिक द्रव्य में नवीन-नवीन पर्यायें उत्पन्न होती जाती हैं एवं प्राचीन-प्राचीन पर्यायें नष्ट होती जाती हैं तथापि द्रव्य वही रहता है। द्रव्य द्रव्यान्तर रूप में परिणमन नहीं करता है, क्योंकि द्रव्य त्रैकालिक ध्रुव है, पर्यायें त्रैकालिक ध्रुव नहीं होती है। देवसेन सूरि ने कहा भी है -

**अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।**
**उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले।।( 1 ) पृ.69, आ.प.**

अनादि-अनन्त द्रव्य में अपनी-अपनी पर्यायें प्रतिक्षण उत्पन्न होती रहती हैं और विनशती रहती हैं। जैसे जल में लहरें उत्पन्न होती रहती हैं और विनशती रहती हैं।

**धर्माधर्मनभः काला अर्थ पर्याय गोचराः।**
**व्यंजनेन तु सम्बद्धौ द्वावन्यौ जीव पुद्गलौ।।( 2 )**

धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और कालद्रव्य इन चारों द्रव्यों में अर्थ पर्याय ही होती हैं, किन्तु इनसे भिन्न जीव और पुद्गल इन दोनों द्रव्यों में व्यंजन पर्यायें भी होती हैं।

**उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जव णयस्स।**
**दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमणिट्ठ।**

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा द्रव्य नियम से उत्पन्न होते हैं और नाश को प्राप्त होते हैं तथा द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वे सदा अविनष्ट और अनुत्पन्न स्वभाव वाले हैं।

**द्रव्यस्यभावो द्रव्यत्वम् निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्ड वृत्या।**
**स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवदिति द्रव्यम्।।( 96 )**

जो अपने-अपने प्रदेश समूह के द्वारा अखण्डपने से अपने स्वभावविभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा, हो चुका है, वह द्रव्य है, उस द्रव्य का जो भाव है, वह द्रव्यत्व है।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने भी सन्मति सूत्र में कहा है -

**दव्वट्ठियवत्तव्वं सव्वं सव्वेण णिच्चमवियप्पं।**
**आरद्धो य विभागो पज्जववत्तव्वमग्गो य।।( 29 )**

सत्ता सामान्य की अपेक्षा सभी पदार्थ सब तरह से नित्य और भेद रहित हैं। भेदरहित द्रव्य का कथन द्रव्यार्थिक नय का वक्तव्य है, किन्तु भेदरूप कथन के प्रारम्भ होते ही पर्यायार्थिकनय का विषय आ जाता है।'सत्'के भेद से ही पर्यायार्थिकनय की वक्तव्यता प्रारम्भ हो जाती है।

## गुण पर्यायात्मक द्रव्य है।

**परिणमदि सयं दव्वं गुणदो य गुणतरं सदविसिट्ठं।**
**तम्हा गुणपज्जाया भणिया पुण दव्वमेवत्ति।।( 104 )**

**The substance, which is not different from its (initial) existence, develops of its own accord some other quality leaving the one; therefore, modifications in qualities are further called the substance.**

( सदविसिट्ठं ) अपनी सत्ता से अभिन्न ( दव्वं ) द्रव्यं ( गुणदो ) एक गुण से ( गुणंतरं ) अन्य गुण रूप ( सयं ) स्वयं आप ही ( परिणमदि ) परिणमन कर जाता है।( तम्हा ) इस कारण से ( य पुण ) ही तब ( गुणपज्जाया ) गुणों की पर्यायें ( दव्वमेवेत्ति ) द्रव्य ही है ऐसी ( भणिया ) कही जाती है।

एक जीव द्रव्य अपने चैतन्य स्वरूप से अभिन्न रहकर अपने ही उपादान कारण से आप ही केवलज्ञान की उत्पत्ति का बीज जो वीतराग स्वसंवेदन गुण रूप अवस्था, उसको छोड़कर सर्व प्रकार से निर्मल केवलज्ञान गुण की अवस्था को परिणमन कर जाता है।इस कारण से जो गुण की पर्यायें होती हैं, वे भी द्रव्य ही हैं। पूर्व सूत्र में कहे प्रमाण केवल द्रव्य पर्यायें ही द्रव्य नहीं हैं अथवा संसारी जीव द्रव्य मति स्मृति आदि विभाव ज्ञान गुण की अवस्था को छोड़कर श्रुतज्ञानादि विभावज्ञान गुण रूप अवस्था को परिणमन कर जाता है। ऐसा होकर भी जीव द्रव्य ही है अथवा पुद्गल द्रव्य अपने पहले के सफेद वर्ण आदि गुण पर्याय को छोड़कर लाल आदि गुण पर्याय में परिणमन करता है, ऐसा होकर भी पुद्गल द्रव्य ही है अथवा आम का फल अपने हरे गुण को छोड़कर वर्ण गुण की पीत पर्याय में परिणमन कर जाता है तो भी आम्र फल ही है।इस तरह यह भाव है कि गुण की पर्यायें भी द्रव्य ही हैं।

**समीक्षा** - जिस प्रकार कच्चा आम जब पक्व होता है, तब उस आम के ही स्पर्श, रस गंध वर्ण में ही परिणमन होता है।जैसे पहले आम हरा था, वही आम

जब पक्व हो जाता है तब उसका वर्ण गुण हरे से पीला हो गया। खट्टा रस मीठा हो गया, यह गुण से गुणान्तर परिणमन हुआ। परन्तु ये गुणान्तर परिवर्तन स्व स्व सीमा में ही परिणमित हुआ है। गुण से गुणान्तर होने का यह अर्थ नहीं कि गुण पूर्ण रूप से परिणमन करके अन्य गुण रूप से परिणमन कर लेता है। कभी भी स्पर्श गुण रस गुण रूप में, रस गुण गंध गुण रूप में परिवर्तन नहीं कर सकता है, परन्तु स्पर्श के जो अवान्तर भेद हैं, उस-उस रूप में होगा जैसे कठोर स्पर्श कोमल में और कोमल स्पर्श कठोर रूप में परिवर्तन कर सकता है। परन्तु यह गुण परिवर्तन द्रव्य को छोड़कर अन्यत्र नहीं होता, द्रव्य में ही होता है, इसलिये गुण एवं पर्याय दोनों द्रव्य में ही हैं।

आध्यात्म अमृत कलश में अमृत चंद सूरी ने कहा भी है -

**यः परिणमति स कर्ता, यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म।**
**या परिणतिः क्रिया सा, त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया।।( 51 )पृ.70**

जो परिणमन अर्थात् पर्याय परिवर्तन रूप होता है, वही द्रव्य उसका कर्त्ता है और जो परिवर्तन हुआ है, वही उस द्रव्य का अर्थात् कर्त्ता का कर्म है। उसमें जो परिणति हुई है, वही क्रिया है। कर्त्ता कर्म क्रिया, ये तीनों यथार्थ में जुदी-जुदी नहीं हैं, किन्तु तीनों एक द्रव्य रूप ही है।

**एकः परिणमति सदा, परिणामो जायते सदैकस्य।**
**एकस्य परिणतिः स्यात् अनेकमप्येकमेव यतः।।( 52 )**

द्रव्य अकेला ही परिणमन करता है। परिणमन भी सदा एक का ही देखा जाता है। परिणति क्रिया एक ही होती है। अतः सिद्ध है कि कर्त्ता-कर्म क्रियाएं अनेक होकर भी एक ही हैं, अनेक सत्तात्मक नहीं।

**नोभौ परिणमतः खलु, परिणामो नोभयोः प्रजायेत।**
**उभयोर्न परिणतिः स्यात् यदनेकमनेकमेव सदा।।( 53 )**

निश्चय से दो द्रव्य मिलकर एक पर्याय नहीं बनाते, एक परिणमन दो में नहीं होती। दो द्रव्यों की एक परिणति रूप क्रिया नहीं होती, क्योंकि अनेक द्रव्य अनेक ही रहते हैं।

**नैकस्य हि कर्त्तारौ द्वौ स्तो, द्वे कर्मणी न चैकस्य।**
**नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात्।।( 54 )**

एक कार्य के परिणमन के निश्चय से दो कर्त्ता नहीं होते तथा एक कर्त्ता के दो कर्म नहीं होते। एक द्रव्य में दो क्रियायें नहीं होती, क्योंकि एक द्रव्य दो या अनेक द्रव्य नहीं होता।

**आसंसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकैः।**
**दुर्वारं ननु मोहितानेह महाऽहंकारं तमः।।**
**तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत्।**
**तत् किं ज्ञानधनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः।।( 55 )**

यह जीव अनादिकाल से ही अपने स्वरूप की तथा तत्त्व की यथार्थ अज्ञानता के कारण मैं पर को करूं ऐसा मिथ्या विचार करके जोरों से दौड़ लगता है। आचार्य कहते हैं कि इन अज्ञानी मोही प्राणियों का यहां महान् मिथ्या अहंकार रूप यह यथार्थ में दुर्निवार है - कठिनता से पूरा किया जा सकता है। वह शुद्ध निश्चय के विषय भूत शुद्धात्मा के आश्रय से यदि एक ही बार नष्ट हो जाय तो उस ज्ञानी भूत आत्मा को पुनः दुबारा अरे! क्या बंधन हो सकता है? कदापि नहीं।

**आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् सदा परः।**
**आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते।।( 56 )**

जीव अपने शुद्ध या अशुद्ध भावों को करता है। आत्म भिन्न पर द्रव्य सदाकाल परभावों को ( अपनी शुद्धा-शुद्ध पर्यायों को ) करता है। आत्मा के परिणाम तो आत्म द्रव्य ही हैं, तथा परद्रव्य के वे परिणाम परद्रव्य रूप ही हैं। पर्याय आदि की परिभाषा आलाप पद्धति में देवसेन सूरि ने निम्न प्रकार से दी है -

**सहभुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः।( 92 )**

**सूत्रार्थ** -साथ में होने वाले गुण हैं और क्रम क्रम से होने वाली पर्यायें हैं अर्थात् अन्वयी गुण हैं और व्यतिरेक परिणाम पर्यायें हैं।

**गुण्यंते पृथक् क्रियते द्रव्यं द्रव्याद्यैस्तेगुणाः।।( 93 )**

जिनके द्वारा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् किया जाता है, वे ( विशेष ) गुण कहलाते हैं।

**गुण विकाराः पर्यायास्ते द्वेधा अर्थव्यंजनपर्यायभेदात्।।( 51 )**

गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं। वे पर्यायें दो प्रकार हैं - ( 1 ) अर्थपर्याय, ( 2 ) व्यंजन पर्याय।

नारायण कृष्ण ने गीता में भी कहा है कि इस विश्व की सृष्टि ईश्वर नहीं करता है, कर्म की भी रचना नहीं करता है और न कर्म फल की संयोजना करता है, परन्तु यह सम्पूर्ण विश्व स्वाभाविक रूप से परिणमन करता रहता है। यथा -

**न कर्तृत्वं न कमाणि लोकस्य सृजति प्रभुः।**
**न कर्म फलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।।( 14 )पृ.66**

## सत्ता एवं द्रव्य अभेद है।

**ण हवदि जदि सद्दव्वं असद्धुवं हवदि तं कहं दव्वं।**
**हवदि पुणो अण्णं वा तम्हा दव्वं सयं सत्ता।।( 105 )**

**If the substance, is not an existing entity, it must be either non-existing or again something else than a substance, in either case how can it be a substance? Therefore, the substance is self-existent.**

( जदि ) यदि ( सद्दवं ) सत्ता रूप द्रव्य ( ण हवदि ) नहीं होवे तो ( तं दव्वं असद्धुव्वं कहं हवदि ) वह द्रव्य निश्चय से असत्तारूप होता हुआ किस तरह हो सकता है ( वा पुणो अण्णं हवदि ) अथवा फिर वह द्रव्य सत्ता से भिन्न हो जावे, क्योंकि ये दोनों बातें नहीं हो सकती।( तम्हा दव्वं सयं सत्ता ) इसलिये द्रव्य स्वयं सत्ता स्वरूप है। यहां वृत्तिकार परमात्म द्रव्य पर घटाकर कहते हैं, यदि वह परमात्म द्रव्य परम-चैतन्य प्रकाशमयी स्वरूप से व अपने स्वरूप सत्ता के अस्तित्व गुण से सत् रूप न होवे तब वह निश्चय से नहीं होता हुआ किस तरह परमात्म द्रव्य हो सके ? अर्थात् परमात्म द्रव्य ही न होवे। यह बात प्रत्यक्ष वे विरोध रूप है, क्योंकि स्वसंवेदन ज्ञान से अनुभव में आता है। यदि कोई बिना विचारे ऐसा माने कि सत्ता से द्रव्य जुदा है तो उसकी अपेक्षा से, यदि द्रव्य सत्ता गुण के अभाव में भी रहता है, ऐसा माना जावे तो क्या-क्या दोष आवेंगे, उसका विचार किया जाता है। यदि केवलज्ञान केवलदर्शन गुणों के साथ अवश्य रहने वाले अपने स्वरूप की सत्ता से जुदा ही द्रव्य ठहर सकता है, ऐसा माना जावे तो जब उसके स्वरूप का अस्तित्व नहीं है, तब अपने स्वरूप की सत्ता के बिना द्रव्य नहीं रह सकता अर्थात् द्रव्य का ही अभाव मानना पड़ेगा। अथवा यदि ऐसा माना जाता है कि अपने-अपने स्वरूप के अस्तित्व से सत्ता और द्रव्य में संज्ञा, लक्षण तथा प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद होते हुए भी प्रदेशों की अपेक्षा भिन्नता नहीं है - एकता है, तब तो हमको भी सम्मत है, क्योंकि द्रव्य का ऐसा ही स्वरूप है। इस अवसर पर बौद्ध मत के अनुसार कहने वाला तर्क करता है कि ऐसा मानना चाहिये कि सिद्ध पर्याय की सत्ता रूप से द्रव्य उपचार मात्र है, मुख्यतया से नहीं है। इसका समाधान आचार्य करते हैं कि यदि सिद्ध पर्याय का उपादान कारण रूप परमात्मा, द्रव्य का अभाव होगा तो

सिद्ध पर्याय की सत्ता ही नहीं सम्भव है। जैसे वृक्ष के बिना फल का होना सम्भव नहीं है। इसी प्रस्ताव में नैयायिकमत के अनुसार कहने वाला कहता है कि परमात्मा द्रव्य है किन्तु वह सत्ता से भिन्न रहता है, पीछे सत्ता के समवाय ( सम्बन्ध ) से वह सत् होता है। आचार्य इस पर प्रतिशंका करते हैं कि सत्ता के समवाय के पूर्व द्रव्य सत् या असत् है ? यदि सत् है तो सत्ता का समवाय वृथा है, क्योंकि द्रव्य पहले से ही अपने अस्तित्व में है। यदि सत्ता के समवाय से पहले द्रव्य नहीं था तब आकाश पुष्प की तरह अविद्यमान उस द्रव्य के साथ किस तरह सत्ता का समवाय होगा ? यदि कहो तो सत्ता का समवाय हो जायेगा, तब फिर आकाश पुष्प के साथ भी सत्ता का समवाय हो जावेगा, परन्तु ऐसा नहीं है इसलिए जैसे अभेदनय से शुद्ध स्वरूप की सत्ता रूप ही परमात्मा द्रव्य के साथ शुद्ध चेतना स्वरूप सत्ता का अभेद व्याख्यान किया गया, तैसे ही सर्वचेतन द्रव्यों का अपनी-अपनी सत्ता से अभेद व्याख्यान करना चाहिये। ऐसे ही अचेतन द्रव्यों का अपनी सत्ता से अभेद है, ऐसा समझना चाहिये।

**समीक्षा** - जो स्वभाववान्/सत्तावान्/अस्तित्ववान होगा, उसमें ही कुछ गुण होंगे, कुछ अवस्थाएं होंगी, परन्तु जिसका अस्तित्व ही नहीं है उसमें न कुछ गुण हो सकते हैं न कुछ पर्यायें ही हो सकती है। जिस प्रकार मनुष्य में कुछ गुण, दुर्गुण हो सकते हैं और बालक, वृद्ध, प्रौढ़, स्वस्थ, सुख, दुःख, अवसाद, प्रसन्नता आदि अवस्थायें हो सकती हैं, परन्तु बन्ध्या की संतान में उपर्युक्त गुण या अवस्थायें नहीं हो सकती हैं, क्योंकि बन्ध्या की संतान ही नहीं होती है। यदि संतान ही नहीं है तो उसमें कुछ गुण, कुछ दुर्गुण या अवस्थायें कैसे हो सकती है, अर्थात् कदापि नहीं हो सकती है ? इसलिये इस गाथा में आचार्य श्री ने कहा कि जो द्रव्य है वह स्वभाववान है, सद्भाववान है।

## पृथक्त्व एवं अन्यत्व का लक्षण

**पविभत्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासाणं हि वीरस्स।**
**अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भवं होदि कधमेगं।।( 106 )**

**It is the dictum of Maharira that separateness (prathakiva) consists in having saving separated space-points, non-identity (anyatva) is the absence of identity; (between satta or existence and dravya or substance) there is no identity (na tabbhavam perhaps the same as at allehavab, non-identity) then how can those two be one?**

( पविभत्त पदेसत्तं ) जिसमें प्रदेशों की अपेक्षा अत्यन्त भिन्नता हो

( पुधत्तमिदि ) वह पृथक्त्व है, ऐसी ( वीरस्स हि सासणं ) श्री महावीर भगवान् की आज्ञा है। ( अतब्भावो ) स्वरूप की एकता का न होना ( अण्णत्तम् ) अन्यत्व है।( तब्भवं ण ) ये सत्ता और द्रव्य एक स्वरूप नहीं ( कहमेक्कं होदि ) अब किस तरह दोनों एक हो सकते हैं ? जहां प्रदेशों की अपेक्षा एक-दूसरे में अत्यन्त पृथक्पना हो अर्थात् प्रदेश भिन्न-भिन्न हों जैसे दण्ड और दण्डी में भिन्नता है। इसको पृथकत्व नाम का भेद कहते हैं। इस तरह पृथकत्त्व या भिन्नपना शुद्ध आत्म द्रव्य का शुद्ध सत्ता गुण के साथ नहीं सिद्ध होता है, क्योंकि इनसे परस्पर प्रदेश भिन्न-भिन्न नहीं है। जो द्रव्य के प्रदेश हैं वे ही सत्ता के प्रदेश हैं - जैसे शुक्ल वस्त्र और शुक्ल गुण का स्वरूप भेद है, परन्तु प्रदेश भेद नहीं है। ऐसी गुणी और गुण के प्रदेश भिन्न-भिन्न नहीं होते। ऐसे श्री वीर नाम के अंतिम तीर्थंकर परम देव की आज्ञा है। जहां संज्ञा लक्षण प्रयोजन आदि से परस्पर स्वरूप की एकता नहीं है वहां अन्यत्व नाम का भेद है, ऐसा अन्यत्व या भिन्नपना मुक्तात्मा द्रव्य और उसके शुद्ध सत्ता गुण में है। यदि कोई कहे कि, जैसे सत्ता और द्रव्य में प्रदेशों की अपेक्षा अभेद है, वैसे संज्ञादि लक्षण रूप से भी अभेद हो, ऐसा मानने से क्या दोष होगा ? इसका समाधान करते हैं कि, ऐसा वस्तु स्वरूप नहीं है। वह मुक्तात्मा द्रव्य शुद्ध अपने सत्ता गुण के साथ प्रदेशों की अपेक्षा अभेद होते हुए भी संज्ञा आदि के द्वारा सत्ता और द्रव्य तन्मयी नहीं है। तन्मय होना ही निश्चय से एकता का लक्षण है, किन्तु संज्ञादि रूप से एकता का अभाव है। सत्ता और द्रव्य में नानापना है। जैसे यहाँ मुक्तात्मा द्रव्य में प्रदेश के अभेद होने पर भी संज्ञादि रूप से नानापना कहा गया है, तैसे ही सर्व द्रव्यों का अपने-अपने स्वरूप, सत्ता गुण के साथ नानापना जानना चाहिए, ऐसा अर्थ है।

**समीक्षा** - वस्तु में अनंतगुण एवं पर्याय होने के कारण वस्तु अनेकांतात्मक है इसलिये इसका कथन भी अनंत दृष्टिकोण से होता है। मुख्यतः वस्तुरूप का कथन करने के लिये स्याद्वाद/सप्तभंगी का आवलम्बन लिया जाता है। यथा -

द्रव्य ( 1 ) स्वरूपापेक्षा से 'स्यात् अस्ति ही' ( 2 ) पररूप की अपेक्षा से 'स्यात् नास्ति ही', ( 3 ) स्वरूप, पररूप की युगपत् अपेक्षा से एक ही साथ द्रव्य, स्वरूप पररूप से नहीं कहा जा सकता, अतः अवक्तव्य है, ( 4 ) स्वरूप पररूप से क्रम की अपेक्षा से 'स्यात आस्ति-नास्ति ही', ( 5 ) स्वरूप की और स्वरूप पररूप की युगपत् अपेक्षा से 'स्यात् अस्ति अवक्तव्य ही', ( 6 ) जो

पररूप से और स्वरूप पररूप से युगपत् 'असत् और अव्यक्तव्य है' तथा ( 7 ) जो स्वरूप से पररूप से और स्वरूप पररूप से 'युगपत्' सत्, असत् और अवक्तव्य है, ऐसे अनंत धर्मों वाले कथनीय द्रव्य के एक-एक धर्म का आश्रय लेकर विवक्षित रूप विधि-निषेध के द्वारा प्रगट होने वाली सप्तभंगी तत् सम्यक्तया - उच्चारित, स्यात्कार रूपी अमोघ मंत्र पद के द्वारा 'एव' कार ( एकांत ) रहने वाले समस्त विरोध-विष के मोह को दूर करती है।

वस्तु का कथन विधिपरक भी होता है और निषेधपरक भी होता है। स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, अपेक्षा द्रव्य होने के कारण इस अपेक्षा जो कथन किया जाता है, वह कथन विधिपरक है अर्थात् स्यात् अस्ति है। इसके विपरीत, परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा नहीं होने के कारण जो कथन किया जाता है, वह कथन नास्तिपरक या स्यात् नास्ति है। इस ही प्रणाली से कथंचित् सत्ता द्रव्य नहीं है एवं द्रव्य सत्ता नहीं है, इसलिये दोनों परस्पर पृथक्त्व एवं अन्यत्व हैं।

## अतद्भाव का लक्षण

**सद्दव्वं सच्च गुणो सच्चेव य पज्जओ त्ति वित्थारो।**
**जो खलु तस्स अभावो सो तदभावो अतब्भावो।।( 107 )**

**Substance is existing, quality is existing and modification is existing; so is the detailed scope of existence; the negation of any one of them, is that negation termed as non-identity.**

आगे अन्यत्त्व का विशेष विस्तार के साथ कथन करते हैं - ( सद्दव्वं ) सत्ता रूप द्रव्य है। ( सच्च गुणो ) और सत्ता रूप गुण है, ( सच्चेव पज्जओत्ति ) तथा सत्ता रूप पर्याय है, ऐसा ( वित्थारो ) सत्ता का विस्तार है। ( खलु ) निश्चय करके ( तस्स अभावो ) जो उस सत्ता का परस्पर अभाव है ( सो तद्भावो ) वह उसका अभाव रूप ( अतब्भावो ) अन्यत्व है।

जैसे मोती के हार में सत्ता गुण की जगह पर जो उसमें सफेदी का गुण है सो प्रदेशों की अपेक्षा एक रूप है तो भी उसको भेद करके इस तरह कहते हैं कि यह सफेद हार है, यह सफेद सूत्र है। यह सफेद मोती है तथा जो हार सूत या मोती है, इन तीनों के साथ प्रदेशों का भेद न होते हुए सफेद गुण कहा जाता है। यह एकता या तन्मयपना का लक्षण है। तत् अभाव का क्या अर्थ है ? हार सूत या मोती का शुक्ल गुण के साथ तन्मयपना या प्रदेशों का अभिन्नपना यह अर्थ

है। तैसे मुक्त-आत्मा नाम के पदार्थ में जो कोई शुद्ध सत्ता गुण है वह प्रदेशों के अभेद होते हैं। इस तरह कहा जाता है - सत्ता लक्षण परमात्मा पदार्थ, सत्ता लक्षण केवलज्ञानादि गुण सत्ता लक्षण सिद्ध पर्याय जो कोई परमात्म पदार्थ व केवल ज्ञानादिगुण व पर्याय है। इन तीनों के साथ शुद्ध सत्ता गुण कहा जाता है, यह तद्भाव या एकता का लक्षण है।

तद्भाव का क्या प्रयोजन है? परमात्मा पदार्थ, केवलज्ञानादि गुण, सिद्धत्व पर्याय इन तीनों का शुद्ध सत्ता नामा गुण के साथ संज्ञा, संख्या लक्षण प्रयोजन की अपेक्षा भेद होते हुए भी और प्रदेशों की अपेक्षा तन्मयपना होते हुए भी, निश्चय करके जो इस सद्भाव या एकता का संज्ञा, संख्यादि की अपेक्षा से परस्पर अभाव रूप उसको तद्भाव या उस एकता का अभाव या अतद्भाव या अन्यत्व कहते हैं। इस अन्यत्त्व का संज्ञा, लक्षण प्रयोजनादि की अपेक्षा जो स्वरूप है, उसको दृष्टान्त देकर बताते हैं।

जैसे मोती के हार में जो कोई शुक्ल गुण है, उसका वाचक जो शुक्ल नाम का दो अक्षर का शब्द है। उस शब्द से हार या सूत्र या मोती कोई वाच्य नहीं है अर्थात् शुक्ल शब्द से हार, सूत्र या मोती का ज्ञान नहीं होता है। केवल सफेद गुण का ज्ञान होता है। इसी तरह हार, सूत या मोती शब्दों से शुक्ल नहीं कहा जाता है। इस तरह हार, सूत या मोती के साथ शुक्ल गुण का प्रदेशों की अपेक्षा अभेद या एकत्व होने पर भी जो संज्ञा आदि का भेद है, वह पहले कहे हुए तद्भाव या तन्मयपने का अभाव रूप अतद्भाव है या अन्यत्त्व है, अर्थात् संज्ञा लक्षण प्रयोजन आदि का भेद है। तैसे मुक्त जीव में जो कोई शुद्ध सत्तागुण है उसको कहने वाले सत्ता शब्द से मुक्त जीव नहीं कहा जाता, न केवल ज्ञानादिगुण कहे जाते हैं। न सिद्ध पर्याय कही जाती है और न मुक्त जीव केवलज्ञानादि गुण या सिद्ध पर्याय से शुद्ध सत्ता गुण कहा जाता है। इस तरह सत्ता गुण का मुक्त जीवादि के साथ परस्पर प्रदेशभेद न होते हुए जो संज्ञा आदिकृत भेद है वह भेद उस पूर्व में कहे हुए तद्भाव या तन्मयपने के लक्षण से रहित अतद्भाव या अन्यत्त्व कहा जाता है, अर्थात् संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि कृत भेद हैं, ऐसा अर्थ है। जैसे यहां शुद्धात्मा में शुद्ध सत्ता गुण के साथ अभेद स्थापित किया गया, तैसे ही यथासम्भव सर्व द्रव्यों में जानना चाहिए, यह अभिप्राय है - अर्थात् आत्मा का और सत्ता का प्रदेश की अपेक्षा अभेद है, मात्र संज्ञादि स्वरूप की अपेक्षा भेद या अन्यत्व है। ऐसा ही अन्य द्रव्यों में समझना।

**समीक्षा** - जो द्रव्य होता है, वह 'सत्' भी होता है। उसमें गुण भी होते हैं और उसमें पर्याय भी होती है। इसलिये द्रव्यगुणपर्याय सब 'सत्' रूप है और 'सत्' के ही विशाल/विश्व/विस्तार/समग्र रूप हैं। अर्थात् द्रव्य में भी 'सत्' गुण है, गुण भी 'सत्' है और पर्याय भी 'सत्' है। परन्तु भेद दृष्टि से देखने पर द्रव्यादि भिन्न-भिन्न हैं, क्योंकि संज्ञा-संख्या-लक्षण-प्रयोजन अपेक्षा उसमें भेद पाया जाता है। इसलिए 'सत्' कथंचित् द्रव्य भी है, गुण भी है और पर्याय भी है और कथंचित् 'सत्' केवल द्रव्य नहीं है, केवल गुण नहीं है और केवल पर्याय नहीं है, इस अपेक्षा अतद्भाव है। यह तद् एवं अतद्भाव वस्तुस्वरूप से विरुद्ध नहीं है, अनेकान्त से विरुद्ध नहीं है। समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है -

**नित्यं तदेवेदमिति प्रतीते र्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्ति सिद्धेः।**
**न तद्विरूद्धं बहिरन्तङ्ग निमित्त नैमित्तिकयोगतस्ते।।( 3 )**

'यह वही है जिसे पहले देखा था' इस प्रकार प्रत्यक्ष और स्मृति प्रमाण के योग से जो ज्ञान होता है, उसे प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। प्रत्यभिज्ञान कालक्रम से होने वाली पदार्थ की विभिन्न अवस्थाओं में एकरूपता को सिद्ध करता है। मनुष्य की बालादि वृद्धान्त अवस्थाओं में यह वही है 'यह वही है' इस प्रकार का भाव उत्पन्न होता रहता है। इससे उन सबमें एकरूपता स्थापित करना प्रत्यभिज्ञान का काम है। जो पदार्थ समस्त पर्यायों में एकरूपता को स्थापित करता है, वह नित्य होता है तथा जो बालक आदि अवस्थाओं में भेद होने के कारण 'यह वह नहीं है' इस प्रकार प्रतीति होने से विभिन्नता को स्थापित करता है, वह अनित्य होता है। मनुष्य, मनुष्यत्व सामान्य की अपेक्षा बालक से लेकर वृद्ध तक की समस्त अवस्थाओं में एक होने से नित्य है, परन्तु बालक आदि अवस्थाओं में भेद हो जाने के कारण वही अनेक कारण होने से अनित्य हो जाता है। माता अपने जिस पुत्र को शिशु अवस्था में उरस्थल से लगाती है, उसी पुत्र को तरुण होने पर उर: स्थल से नहीं लगाती। यद्यपि वह समझती है, यह वही पुत्र है जो पहले शिशु था तथापि साथ में यह भी समझती है कि इस पुत्र की यह तरुण अवस्था शिशु अवस्था से भिन्न है। जिस प्रकार इसकी शिशु अवस्था निर्विकार थी, उस प्रकार तरुण अवस्था निर्विकार नहीं है। पदार्थ का यह नित्यानित्यपना विरुद्ध भी नहीं है, क्योंकि बहिरंग और अन्तरंग कारण तथा उनके द्वारा होने वाले नैमित्तिक कार्य के योग से पदार्थ में नित्यानित्यपना सिद्ध है। कार्य की उत्पत्ति कारण के अनुसार होती है और कारण बहिरंग तथा अन्तरंग कारण के भेद से दो प्रकार का होता है। बहिरंग कारण सहकारी

कारण कहलाता है, जैसे कि घट की उत्पत्ति में दण्ड, चक्र, कुलाल आदि और अन्तरंग कारण उपादान कारण कहलाता है, जैसे घट की उत्पत्ति में मिट्टी। उपादान कारण स्वयं कार्य रूप परिणत होता है। इसलिए यह द्रव्य अंश को ग्रहण करता है और बहिरंग कारण स्वयं कार्यरूप परिणत नहीं होता, इसलिए वह क्षेत्रादि अंश को ग्रहण करता है। द्रव्य अंश अतीत-अनागत पर्यायों में व्यापक होने से पदार्थ को नित्यता का बोध कराता है और क्षेत्रादि अंश मात्र वर्तमान पर्याय में व्याप्त होने से पदार्थ की अनित्यता का बोध कराता है।

## सर्वथा अभाव अतद् भाव नहीं है

**जं दव्वं तं ण गुणो जो वि गुणो सा ण तच्चमत्थादो।**
**एसो हि अतब्भावो, णेव अभावो त्ति णिद्दिट्ठो।।( 108 )**

**Really speaking what is substance is not quality, nor what is quality is substance, this is a case of non-identity and not of absolute negation; so it is pointed out.**

गुण और गुणी में प्रदेश भेद नहीं है, परन्तु संज्ञादिकृत भेद हैं। इस तरह अन्यत्व को दृढ़ करते हैं।( जं दव्वं ) जो द्रव्य है ( तण्ण गुणो ) वह गुण नहीं है ( जोवि गुणो ) जो निश्चय से गुण है ( सो अत्थादो ण तच्च ) वह स्वरूप के भेद से द्रव्य नहीं है ( एसो हि अतब्भावो ) ऐसा ही स्वरूप भेदरूप अन्यत्व ( णेव अभावोत्ति ) निश्चय से सर्वथा अभाव नहीं है, ऐसा ( णिद्दिट्ठो ) सर्वज्ञ द्वारा कहा गया है। जो द्रव्य है सो स्वरूप से गुण नहीं है। जो मुक्त जीव द्रव्य है वह शुद्ध सत्तागुण नहीं है, उस मुक्त जीव द्रव्य शब्द से शुद्ध सत्ता गुण वाच्य नहीं होता है अर्थात् नहीं कहा जाता है। जो गुण है, वह वास्तव में द्रव्य नहीं होता। इसी तरह जो शुद्ध सत्ता गुण है वह परमार्थ से मुक्तात्मा द्रव्य नहीं होता है। शुद्ध सत्ता शब्द से मुक्तात्मा द्रव्य नहीं कहा जाता। यही अतद्भाव लक्षण है। इस तरह गुण और गुणी के स्वरूप की अपेक्षा या संज्ञादि की अपेक्षा भेद है तो भी प्रदेशों का भेद नहीं है। इससे सर्वथा एक का दूसरे में अभाव नहीं है, ऐसा सर्वज्ञ भगवान् ने कहा है। यदि गुणी में गुण का सर्वथा अभाव माना जावे तो क्या-क्या दोष होंगे, उनको समझाते हैं। जैसे सत्ता नाम के वाचक शब्द से मुक्तात्मा द्रव्य वाच्य नहीं होता, तैसे - यदि सत्ता के प्रदेशों से सत्ता गुण के मुक्तात्म-द्रव्य भिन्न हो जावे तब जैसे जीव के प्रदेशों से पुद्गल द्रव्य भिन्न होता हुआ अन्य द्रव्य है, तैसे सत्ता गुण के प्रदेशों से सत्तागुण से मुक्त जीव भिन्न होता हुआ जुदा ही दूसरा द्रव्य प्राप्त हो जावे। तब यह सिद्ध होगा कि

सत्तागुण रूप जुदा द्रव्य और मुक्तात्मा द्रव्य जुदा, इस तरह दो द्रव्य हो जायेंगे। सो ऐसा वस्तु स्वरूप नहीं है। इसके सिवाय दूसरा दूषण यह प्राप्त होगा कि जैसे सुवर्णपना नामा गुण के प्रदेशों से सुवर्ण भिन्न होता हुआ अभाव रूप हो जायेगा। जैसे ही सुवर्ण द्रवर्ण द्रव्य के प्रदेशों से सुवर्णपना गुण भिन्न होता हुआ अभाव रूप हो जायेगा। वैसे सत्ता गुण के प्रदेशों से मुक्त जीव द्रव्य भिन्न होता हुआ अभाव रूप हो जायेगा, तैसे ही मुक्त जीवद्रव्य के प्रदेशों से सत्ता गुण भिन्न होता हुआ अभाव रूप हो जाएगा, इस तरह दोनों का शून्यपना प्राप्त हो जायेगा। इस तरह गुणी और गुण का सर्वथा भेद मानने से दोष आ जावेंगे। जैसे - जहां मुक्त जीव द्रव्य में सत्ता गुण के साथ संज्ञा आदि के भेद से अन्यपना है, किन्तु प्रदेशों की अपेक्षा अभेद या एकपना है, ऐसा व्याख्यान किया गया है, तैसे ही सर्व द्रव्यों में यथासंभव जान लेना चाहिए, ऐसा अर्थ है।

**समीक्षा -** विश्व के प्रत्येक द्रव्य, गुण एवं पर्याय प्रतिपक्ष से सहित होने के कारण अभाव भी अभाव के प्रतिपक्ष सद्भाव से युक्त होता है। अनेक गुण एवं पर्यायों का अखण्ड पिण्ड रूप द्रव्य होने के कारण ओर गुण उस द्रव्य के एक विशेष विशेषण होने के कारण द्रव्य गुण नहीं है एवं गुण द्रव्य नहीं है। जिस प्रकार आम में मिठास है, परन्तु आम में केवल मिठास नहीं है उसमें गंध भी है, स्पर्श भी है और वर्ण भी है। इसलिये आम केवल मिठास रूप नहीं है, इसी प्रकार मिठास केवल आम स्वरूप भी नहीं है। इसी प्रकार आत्मद्रव्य में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनंत गुण हैं। इसलिये आत्मद्रव्य केवल ज्ञान गुण रूप नहीं है एवं केवल ज्ञान गुण आत्मद्रव्य रूप नहीं है। इसी प्रकार परस्पर में जो अतद्भाव है, अन्यत्व भाव है, भिन्नत्व भाव है, वो ही अभाव स्वरूप है, पूर्ण अभाव न गुण का है, न द्रव्य का है, न पर्याय का है, क्योंकि विश्व में इस प्रकार की उपलब्धि नहीं है। समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है -

**सतः कथंचित्तदसत्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।**
**सर्वस्वभाव च्युतप्रमाणं स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत्।।पृ.27**

स्वद्रव्य-क्षेत्र-कालभाव की अपेक्षा सद् रूप जीवादि पदार्थ के किसी अपेक्षा पर द्रव्य-क्षेत्र-कालभाव की अपेक्षा असद् रूपता है जैसे कि फूल वृक्षों पर प्रसिद्ध है और आकाश में नहीं है। यदि तत्त्व का सत्व और असत्व, दोनों प्रकार के स्वभाव से च्युत माना जावेगा तो वह प्रमाण रहित हो जावेगा। हे भगवन्! तुम्हारे दर्शन के सिवाय अन्य सब दर्शन स्ववाणी से विरुद्ध है। अर्थात् स्ववचनबाधित है।

पंचास्तिकाय में कुंदकुंद देव ने उपर्युक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन स्पष्ट रूप से निम्न प्रकार किया है –

**भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।**
**गुणपज्जयेषु भावा उप्पादवए पकुव्वंति।।( 15 )( प. पृ.59 )**

भावका – सत् द्रव्य का – द्रव्य रूप से विनाश नहीं है। अभाव का असत् अन्य द्रव्य का द्रव्यरूप से उत्पाद नहीं है, परन्तु भाव सत् द्रव्यों के विनाश और असत् के उत्पाद बिना ही, गुणपर्यायों में विनाश और उत्पाद करते हैं। जिस प्रकार घी की उत्पत्ति में गोरस का, सत् का विनाश नहीं है तथा गोरस से भिन्न पदार्थान्तर का असत् का उत्पाद नहीं है, किन्तु गोरस को ही सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही, पूर्व अवस्था में से विनाश को प्राप्त होने वाले और उत्तर अवस्था से उत्पन्न होने वाले स्पर्श – रस – गंध – वर्णादिक परिणामी गुणों में मक्खन पर्याय विनाश को प्राप्त होती है तथा घी पर्याय उत्पन्न होती है, सर्वभावों का भी उसी प्रकार वैसा ही है अर्थात् समस्त द्रव्यों की नवीन पर्याय की उत्पत्ति में सत् का विनाश नहीं है तथा असत् का उत्पाद नहीं है किन्तु सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही, पहले की ( पुरानी ) अवस्था से विनाश को प्राप्त होने वाले और बाद की ( नवीन ) अवस्था से उत्पन्न होने वाले परिणामी गुणों में पहले की पर्याय का विनाश और बाद की पर्याय की उत्पत्ति होती है।

**जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे।**
**दव्वाणंतियमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति।।( 44 )**

प्रदेशों की अपेक्षा भी यदि द्रव्य से गुण अलग-अलग हो तो जो अनंतगुण द्रव्य में एक साथ रहते हैं, वे अलग-अलग होकर अनंत द्रव्य हो जावेंगे और द्रव्य से सब गुण भिन्न हो गये, तव द्रव्य का नाश हो जावेगा। यहां पूछते हैं कि गुण किसी के आश्रय या आधार से रहते या वे आश्रय बिना होते हैं ? यदि वे आश्रय में रहते हैं, ऐसा कोई माने और उसको और कोई दोष दे तो यह कहना होगा कि जो अनंतज्ञान आदि गुण जिस किसी एक शुद्ध आत्मद्रव्य में आश्रयरूप है, उस आत्मद्रव्य से यदि वे गुण भिन्न-भिन्न हो जावे। इसी तरह दूसरे शुद्ध जीव द्रव्य में भी जो अनन्त गुण है, वे भी जुदे-जुदे हो जावे तब यह फल होगा कि शुद्धात्म द्रव्यों से अनंतगुणों के जुदा होने पर शुद्ध आत्मद्रव्य अनंत हो जावेंगे। जैसे ग्रहण करने योग्य परमात्म द्रव्य में गुण और गुणी का भेद होने पर द्रव्य की अनंतता कही गई है, वैसे ही त्यागने योग्य अशुद्ध जीव में

तथा पुद्गलादि द्रव्यों में भी समझ लेनी चाहिये अर्थात् गुण और गुणी का भेद होते हुए मुख्य या गौण रूप एक-एक गुण का मुख्य या गौण एक-एक द्रव्य आधार होते हुए द्रव्य अनंत हो जायेगा तथा द्रव्य के पास से जब गुण चले जायेंगे, तब द्रव्य का अभाव हो जायेगा जब कि यह कहा है कि गुणों का समुदाय द्रव्य है। यदि ऐसे गुण समुदाय रूप द्रव्य से गुणों का एकांत से भेद माना जाएगा तो गुण समुदाय द्रव्य कहां रहेगा, किसी भी तरह नहीं रह सकता है।

## सत्ता गुण है और द्रव्य गुणी है

**जो खलु दव्व सहावो परिणामो सो गुणो सदविसिट्ठो।**
**सदवट्ठिदं सहावे दव्व त्ति जिणोवदेसोयं।।( 109 )**

**That condition, which in fact, forms the nature of the substance, is quality which is not different from its in it all existence, that existing entity established is its nature is the substance is the doctrine of the Jina.**

( खलु ) निश्चय से ( जो दव्व सहावो परिणामो ) जो द्रव्य का स्वभाव मयी उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप परिणाम है ( सो सदविसिट्ठो गुणो ) जो सत्ता से अभिन्न गुण है। ( सहावे अवट्ठियं दव्वत्ति सत् ) जो अस्तित्व स्वभाव में तिष्ठता है, वह द्रव्य है ( जिणोवदेसोयं ) ऐसा श्री जिनेन्द्र का उपदेश है।

जब आत्मा में पंचेन्द्रिय के विषयों के अनुभव रूप मन के व्यापार से पैदा होने वाले सब मनोरथ रूप विकल्प जालों का अभाव हो जाता है, तब चिदानंद मात्र की अनुभूति रूप जो आत्मा में ठहरा हुआ भाव है, उसका उत्पाद होता है और पूर्व में कहे हुए विकल्प जाल का नाश सो व्यय है तथा इस उत्पाद और व्यय दोनों का आधार रूप जीवपना ध्रौव्य है। इस तरह त्रय लक्षण वाले उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप जीव द्रव्य का जो कोई स्वभावभूत परिणाम है, वही सत्ता से अभिन्न गुण है। जीव में उत्पादादि तीन रूप परिणमन है सो ही सत् गुण है, जैसा कहा है 'उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्'। ऐसा होने पर यह सिद्ध हुआ कि सत्ता ही द्रव्य का गुण है। इस तरह सत्ता गुण का व्याख्यान किया गया। परमात्मा द्रव्य अभेद नय से अपने उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप स्वभाव से तिष्ठा हुआ सत् है, ऐसा श्री जिनेन्द्र का उपदेश है। 'सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हु परिणामो' इत्यादि निन्यानवें गाथा में जो कहा था, वही यहां कहा गया है। मात्र गुण का कथन किया गया है, वह तात्पर्य है। जैसा जीव द्रव्य में गुण और गुणी का व्याख्यान किया गया है, वैसा सर्व द्रव्य में जानना चाहिये।

**समीक्षा** - आचार्य श्री ने इस गाथा में सत्ता को गुण कहा है और द्रव्य को गुणी कहा है, क्योंकि द्रव्य में सत्ता ( अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व ) आदि अनेक गुण होते हैं, इसलिये गुणों का आधार द्रव्य होने के कारण द्रव्य गुणी है। जिस प्रकार अग्नि गुणी है और उष्णता गुण है, क्योंकि अग्नि में उष्णता रहती है। इसे धर्म एवं धर्मी सम्बन्ध कहते हैं। आ. कुन्दकुन्ददेव ने पंचास्तिकाय में कहा भी है -

**णाणं धणं च कुव्वादि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।**
**भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चवणहू।।( 47 )पृ.160**

जैसे धन का अस्तित्व भिन्न है और धनी पुरुष का अस्तित्व भिन्न है, इसलिये धन और धनी का नाम भिन्न है, धन का आकार भिन्न है, धनी पुरुष का आकार भिन्न है, धन की संख्या भिन्न है, धनी पुरुष की संख्या भिन्न है, धन का आधार भिन्न है। धनी का आधार भिन्न है तो भी धन को रखने वाला धनी का ऐसा जो कहना है सो भेद या पृथक्त्व व्यवहार है। तैसे ही ज्ञान का अस्तित्व ज्ञानी से अभिन्न है, ऐसे ज्ञान का अभिन्न अस्तित्व रखने वाले ज्ञानी आत्मा के साथ अभेद कथन है। ज्ञान का नाम ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी का नाम ज्ञान से अभिन्न है, ज्ञान का संस्थान ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी का संस्थान ज्ञान से अभिन्न है, ज्ञान की संख्या ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी की संख्या ज्ञान से अभिन्न है, ज्ञान का आधार ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी का आधार ज्ञान से अभिन्न है। इस तरह ज्ञान और ज्ञानी में अपृथक्त्व या अभेद कथन है। दोनों दृष्टान्तों के अनुसार दृष्टान्त विचार लेना चाहिए, जहां भिन्न-भिन्न द्रव्य हों, उनका नामादि भिन्न-भिन्न जानना चाहिये।

सत्ता ( अस्ति ) की परिभाषा आलाप पद्धति में निम्न प्रकार की गई है -

**अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्रूपत्वम्।।( 94 )**

'अस्ति' इसके भाव को अर्थात् सत्रूपपने को अस्तित्व कहते हैं।

अस्तित्व का भाव अस्तित्व है। अपने गुण और पर्याय में व्याप्त होने वाला सत् है।

गुणों की परिभाषा करते हुए कहा कि 'सहभुवो गुणाः' जो द्रव्य के साथ-साथ होते हैं, द्रव्य को छोड़कर अन्यत्र नहीं होते हैं अथवा '**द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः**' जो निरन्तर द्रव्य में ही रहते हैं, परन्तु अन्य गुणों से पृथक् होते हैं, वे गुण हैं।

## गुण और पर्यायों से द्रव्य का अभेदत्व

**णत्थि गुणो त्ति व कोई पज्जाओ तीह वा विणा दव्वं।**
**दव्वत्तं पुण भावो तम्हा दव्वं सयं सत्ता।।( 110 )**

**There is nothing as quality nor as a modification in the absence of a substance, that substantiality is (a condition) of positive existence, therefore the substance is existence itself.**

( इह ) इस जगत में ( दव्वं विणा ) द्रव्य के बिना कोई ( गुणो त्ति पज्जाओ त्ति णत्थि ) न कोई गुण है, न कोई पर्याय होती है। ( पुण दव्वत्तंभावो ) तथा द्रव्यपना या उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप से परिणमनपना द्रव्य का स्वभाव है ( तम्हा दव्वं सयं सत्ता ) इसलिये द्रव्य स्वयं सत्ता रूप है। मुक्तात्मा द्रव्य में केवलज्ञानादि रूप गुणों के समूह तथा परम पद की प्राप्ति रूप मोक्ष पर्याय ये दोनों ही परमात्मा द्रव्य के बिना नहीं पाए जाते, क्योंकि गुण और पर्यायों का द्रव्य के प्रदेशों से भेद नहीं है, किन्तु एकत्व है तथा मुक्तात्मा द्रव्य उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमयी शुद्ध सत्तास्वरूप है। इसलिये अभेद नय से सत्ता ही द्रव्य है या द्रव्य ही सत्ता है। जैसे मुक्तात्मा द्रव्य में गुण पर्यायों के साथ अभेद व्याख्यान किया, तैसे यथासम्भव सर्व द्रव्यों में जान लेना चाहिए।

**समीक्षा** - पानी के बिना पानी की शीतलता, द्रवता आदि गुण तथा उसकी बर्फ, वाष्प आदि अवस्थाएं नहीं हो सकती हैं। पानी की शीतलता आदि गुण तथा पर्यायें पानी के प्रदेश में ही होती है, क्योंकि सत्ता के बिना अवास्तविक द्रव्य में न कुछ गुण हो सकते हैं, न कुछ पर्यायें हो सकती हैं। जिस प्रकार बांझ का लड़का न जन्म ले सकता है, न युवक बन सकता है, न वृद्ध हो सकता है, न रोगी बन सकता है, न मर सकता है, क्योंकि बांझ के लड़का ही नहीं है। इसलिए द्रव्य स्वयं सत् स्वरूप होता है, अस्तित्व स्वरूप होता है, सत्तावान होता है। अतएव द्रव्य, गुण एवं पर्यायों में प्रदेश भिन्न नहीं है अर्थात् तीनों में अन्वय में वे ही - वे ही प्रदेश रहते हैं। जिस प्रकार पानी की तीनों अवस्थाएं यथा ( 1 ) तरल ( द्रवत्व ), ( 2 ) सघन ( ठोस, बर्फ ) ( 3 ) वाष्प में पुद्गल परमाणु वे ही - वे ही रहते हैं। पंचास्तिकाय में कुंदकुंद देव ने कहा है -

**अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमण्णत्तं।**
**णिच्छंति णिच्चयणहू तव्विवरीदं हि वा तेसिं।।( 45 )पृ.154**

जैसे परमाणु का वर्णादि गुणों के साथ अभिन्नपना है अर्थात् उनमें परस्पर प्रदेशों का भेद नहीं है, तैसे शुद्ध जीव द्रव्य का केवलज्ञानादि प्रगट रूप

स्वाभाविक गुणों के साथ और अशुद्ध जीव का मतिज्ञान आदि प्रगट रूप विभाव गुणों के साथ तथा शेष द्रव्यों का अपने-अपने गुणों के साथ यथासंभव एकपना है अर्थात् द्रव्य और गुणों के भिन्न-भिन्न प्रदेशों का अभाव जानना चाहिये। निश्चय स्वरूप के ज्ञाता जैनाचार्य जैसे हिमाचल और विंध्याचल पर्वत में भिन्नपना है अथवा एक क्षेत्र में रहते हुए जल और दूध का भिन्न प्रदेशपना है, ऐसा भिन्नपना द्रव्य और गुणों का नहीं मानते हैं तो भी एकान्त से द्रव्य और गुणों का अन्यपने से विपरीत एकपना भी नहीं मानते हैं। अर्थात् जैसे द्रव्य और गुणों में प्रदेशों की अपेक्षा अभिन्नपना है, तैसे संज्ञा आदि की अपेक्षा से भी एकपना है, ऐसा नहीं मानते हैं। अर्थात् एकान्त से द्रव्य और गुणों का न एकपना मानते हैं, न भिन्नपना मानते हैं। बिना अपेक्षा के एकत्व व अन्यत्व दोनों को नहीं मानते हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न अपेक्षा से दोनों स्वभावों को मानते हैं। प्रदेशों की एकता से एकपना है, संज्ञादि की अपेक्षा द्रव्य और गुणों का अन्यपना है, ऐसा आचार्य मानते हैं।

**ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा।**
**ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जंते।।( 46 )पृ.157**

नैयायिक ऐसा कहते हैं कि यदि एकान्त से द्रव्य और गुणों का भेद नहीं है तो व्यपदेश आदि सिद्ध नहीं होते हैं ? इसका उत्तर यह है कि द्रव्य और गुणों का किसी अपेक्षा भेद व किसी अपेक्षा अभेद होने पर भी व्यपदेश आदि हो सकते हैं। जैसे षष्ठी विभक्ति व कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण, ये छः कारक दो तरह के होते हैं। एक भेद में जैसे देवदत्त की गौ ऐसा कहा जाय, दूसरे अभेद में जैसे वृक्ष की शाखा, जीव के अनन्तज्ञानादि गुण। भिन्न कारक को बताते हैं कि देवदत्त नाम का पुरुष कर्ता होकर फलरूप कार्य को अपने अंकुशरूप करण से धनदत्त के लिये वृक्ष से बाग रूप अधिकरण में तोड़ता है। यह भेद में संज्ञाकारक का दृष्टान्त कहा। इसमें छहों की कारक भिन्न-भिन्न है। तैसे ही आत्मा कर्त्ता होकर अपने ही आत्मा रूप कर्म को अपने ही आत्मारूप करण द्वारा अपने ही आत्मा के निमित्त अपने आत्मा की निकटता से अपने ही आत्मा रूप आधार में ध्याता है, यह अभेद में छः कारकों का दृष्टान्त है। इन दोनों दृष्टान्तों में संज्ञा का भेद व अभेद बताया गया। अब आकार की अपेक्षा बताते हैं। जैसे दीर्घ देवदत्त की दीर्घ ही गौ है, यह भेद में संस्थान है तथा दीर्घ वृक्ष के दीर्घ शाखा का भार है तथा मूर्त द्रव्य के मूर्त गुण होते हैं, यह अभेद में संस्थान है। अब संख्या को कहते हैं - देवदत्त के

दस गांव हैं, यह भेद में संख्या है, तैसे ही वृक्ष की दस शाखा है या द्रव्य के अनन्त गुण है, यह अभेद में संख्या है। यहां गाथा में विषय शब्द का अर्थ आधार है, उसे दिखाते हैं, जैसे गोष्ठ ( गौशाला ) में गाये हैं। यह भेद में विषय कहा तैसे ही द्रव्य में गुण है, यह अभेद में विषय कहा। इस तरह व्यपदेश आदि भेद तथा अभेद दोनों में सिद्ध होते हैं इसलिए द्रव्य और गुणों के एकान्त से भेद नहीं सिद्ध होते हैं। इस गाथा में नामकर्म उदय से उत्पन्न नर नारक आदि नामों को निश्चय से न रखता हुआ भी जो शुद्ध जीवास्तिकाय के नाम से कहने योग्य है व निश्चय नय से जो समचतुस्र आदि छः शरीर के संस्थानों से रहित है तो भी व्यवहार नय से भूतपूर्व न्याय से अंतिम शरीर के आकार से कुछ कम आकारधारी संस्थान रखता है व जो केवलज्ञान आदि अनन्त गुण रूप से अनन्त संख्यावान है तो भी लोकाकाश प्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेश रखने से असंख्यात संख्या रखता है तथा जो पंचेन्द्रिय के विषयसुख के रसास्वादी जीवों का विषय न होने पर भी पंचेन्द्रियों के विषयों से रहित शुद्ध आत्मा की भावना से उत्पन्न जो वीतराग सदानंदमयी एक सुखरूप ध्यान का विषय है। जो ध्यान सर्व आत्मा के प्रदेशों में परम समता रस के भाव में परिणमन कर रहा है, ऐसा जो शुद्ध जीवास्तिकाय स्वरूप आत्मा है, वही ग्रहण करने योग्य है, यह तात्पर्य है।

## सत् उत्पाद एवं असत् उत्पाद दोनों सम्भव

**एवंविहं सहावे दव्वं दव्वत्थपज्जत्थेहिं।**
**सदसब्भावणिबद्धं पादुब्भावं सदा लभदि।।( 111 )**

**In this manner, the substance forever retains its position, in its own nature, as endowed with positive and negative conditions according as it is looked at from the substantial and the modificational view-points.**

आगे द्रव्य का द्रव्यार्थिकनय से सत् उत्पाद और पर्यायर्थिकनय से असत् उत्पाद दिखलाते हैं - ( एवंविहं ) इस तरह के ( सब्भावे ) स्वभाव रखते हुए ( दव्वं ) द्रव्य ( दव्वत्थ पज्जयत्थेहिं ) द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से ( सदसब्भावणिबद्धं ) सद्भाव रूप और असद्भाव रूप ( पादुब्भावं ) उत्पाद को ( सया लहदि ) सदा ही प्राप्त होता रहता है। जैसे सुवर्ण द्रव्य में जिस समय द्रव्यार्थिकनय की विवक्षा की जाती है अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा से विचार किया जाता है, उस समय ही कटक रूप पर्याय में जो सुवर्ण है, वही सुवर्ण उसकी कंकण पर्याय में है, दूसरा नहीं है। इस अवसर पर सद्भाव उत्पाद ही है क्योंकि द्रव्य अपने द्रव्य रूप से नष्ट नहीं हुआ, किन्तु

बराबर बना रहा और जब पर्याय मात्र की अपेक्षा से विचार किया जाता है, तब सुवर्ण की जो पहले कटक रूप पर्याय थी, उससे अब वर्तमान की कंकण रूप पर्याय भिन्न ही है। इस अवसर पर असत् उत्पाद है, क्योंकि पूर्व पर्याय नष्ट हो गई और नई पर्याय पैदा हुई। तैसे ही यदि द्रव्यार्थिकनय के द्वारा विचार किया जावे तो जो आत्मा पहले गृहस्थ अवस्था में जो-जो गृह का व्यापार करता था, वही पीछे जिनदीक्षा लेकर निश्चयरत्नत्रयमयी परमात्मा के ध्यान से अनन्त सुखामृत में तृप्त रामचन्द्र आदि केवली पुरुष हुआ अन्य काई नहीं। यह सत् उत्पाद है, क्योंकि पुरुष की अपेक्षा नष्ट नहीं हुआ। और जब पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा की जाती है, तब पहली जो सराग-अवस्था थी उससे यह भरत, सगर, रामचन्द्र, पांडव आदि केवली पुरुषों की जो वीतराग परमात्म-पर्याय है, सो अन्य है, वही नहीं है - यह असत् उत्पाद है, क्योंकि पूर्व पर्याय से यह अन्य पर्याय है। जैसे यहां जीव द्रव्य में सत् उत्पाद और असत् उत्पाद का व्याख्यान किया गया, तैसा सर्वद्रव्यों में यथासम्भव जान लेना चाहिए।

**समीक्षा** - वस्तु स्वरूप बहुविचित्रमय है। स्वरूप विचित्रमय होने के कारण उसका कथन भी विचित्रमय होता है और उस विचित्रमय वस्तु स्वरूप को दार्शनिक भाषा में अनेकांत कहते हैं और कथन को स्याद्वाद कहते हैं। स्वभाव, गुण, पर्याय कथन में विरोध दिखाई देने पर भी वस्तुतः वस्तुस्वरूप में कोई विरोधी नहीं है। जिस प्रकार इस ही ग्रंथ में अन्यत्र अनेक प्रकरण में कहा गया है कि 'असत्' का उत्पाद नहीं होता है एवं 'सत्' का विनाश भी नहीं होता है। परन्तु इस गाथा में आचार्य श्री यह बताते हैं कि 'सत्' का भी उत्पाद होता है एवं 'असत्' का भी उत्पाद होता है। ऊपर से परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले उस वचन में अविरुद्ध सिद्धान्त भी है। जिस प्रकार द्रव्य रूप से 'सत्' का न उत्पाद होता है न 'असत्' का उत्पाद होता है, परन्तु पर्याय दृष्टि से सत् का भी उत्पाद होता है और 'असत्' का भी उत्पाद होता है।

जिस प्रकार लोहा चुम्बक रूप परिणमन किया तो पहले लोहा ( सत् ) रूप में था उसी लोहे ने चुम्बकत्व रूप में परिणमन कर लिया, इसलिये 'असत्' का उत्पाद हुआ, क्योंकि लोहा अवस्था में जो कण थे, वे ही कण चुम्बक अवस्था में है। परन्तु लोहा अवस्था में जो कण अव्यवस्थित रूप में थे, चुम्बक अवस्था में वे ही कण उत्तर दक्षिण ध्रुव रूप में व्यवस्थित हो गये। यह हुई द्रव्य दृष्टि, परन्तु पर्याय दृष्टि से देखने पर लोहा अलग है, चुम्बक अलग है, क्योंकि दोनों की अवस्था तथा कार्य क्षमता आदि गुण कुछ अलग-अलग

भी है। इस अपेक्षा 'असत्' का उत्पाद हुआ, क्योंकि पहले लोहे में चुम्बकत्व अवस्था प्रगट रूप में नहीं थी। इस अवस्था की उत्पत्ति के कारण 'असत्' का उत्पाद हुआ। यह सब विरोधात्मक विषय अनेकांत एवं स्याद्वाद से ही अविरुद्ध हो सकते हैं। समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है -

**अनेकमेकं च तदेव तत्वं भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।**
**मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम्।।( 2 )**

वही सुयुक्तिनीत तत्त्व अनेक तथा एक रूप हैं। निश्चय से अनेक को विषय करने वाला यह भेदज्ञान और एक को विषय करने वाले यह अन्वयज्ञान यथार्थ हैं। इनमें से किसी एक को उपचार रूप कल्पित मानना मिथ्या है, क्योंकि दो में से किसी एक का लोप अभाव होने पर उससे शेष अन्य धर्म का भी अभाव हो जाता है और दोनों का अभाव हो जाने से तत्त्व निःस्वभाव होने से अवाच्य हो जाता है।

जीवादि तत्त्व सामान्य-विशेषात्मक अथवा द्रव्य पर्यायात्मक है। तत्त्व के इन दोनों अंशों को ग्रहण करने के लिये जैनागम में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इस तरह दो नय स्वीकृत किये गये हैं। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा जीव तत्त्व आदि के भेद से अनेक रूप हैं, परन्तु द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा सुख-दुःख आदि आभ्यन्तर तथा बाल कुमार आदि बाह्य रूपों में यह वही है, इस तरह एकत्त्व की प्रतीति होने से तत्त्व एक रूप है। तत्त्व की यह द्विविधता सत्य है, इसलिये उसे ग्रहण करने वाला ज्ञान भी सत्य है।

**सतः कथंचित्तदसत्त्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।**
**सर्वस्वभावच्युतमप्रमाणं स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत्।।( 3 )**

स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल भाव की अपेक्षा सद् रूप जीवादि पदार्थ के किसी अपेक्षा परद्रव्य-क्षेत्र-काल भाव की अपेक्षा सद्रूपता है जैसे कि फूल वृक्षों पर प्रसिद्ध और आकाश में नहीं है। यदि तत्त्व को सत्व और ससत्व-दोनों प्रकार के स्वभाव से च्युत माना जावेगा तो वह प्रमाण रहित हो जावेगा। हे भगवन्! तुम्हारे दर्शन के सिवाय अन्य सब दर्शन स्ववाणी से विरुद्ध है अर्थात् स्व वचनबाधित हैं।

पदार्थ में सत्, असत्, एक, अनेक भेद, अभेद आदि अनेक विरोधी धर्म अपना-अपना अस्तित्व रखते हैं। उनमें यहां मात्र सत् धर्म की द्विविध रूपता का वर्णन किया गया है। संसार का प्रत्येक पदार्थ स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा सत्ता रूप है, विद्यमान है और परद्रव्य-क्षेत्र-काल भाव की अपेक्षा

असत् रूप है, अविद्यमान है। यहां दृष्टान्त है कि जिस प्रकार फूल का अस्तित्व वृक्ष पर है अर्थात् वृक्षाधिकरण की अपेक्षा फूल अस्ति रूप है, परन्तु आकाश में फूल नहीं है अर्थात् आकाशाधिकरण की अपेक्षा फूल अस्ति रूप नहीं है। इस तरह पदार्थ में परस्पर विरोधी सदसद्भाव सद्-असद् रूपता स्वभाव से ही विद्यमान है परन्तु एक सत्ता ही के अद्वैत को स्वीकृत करने वाले लोग असत्व के पक्ष का निषेध करते हैं। आचार्य कहते हैं कि उनका ऐसा मानना अप्रमाण है, क्योंकि जब दोनों धर्म कथंचित्-विवक्षा भेद से परस्पर अविनाभूत है तब एक का अभाव मानने पर दूसरे का अभाव स्वयं हो जायेगा और इस स्थिति में प्रत्यक्ष सिद्ध वस्तु का अपलाप करना 'मेरी माता बन्ध्या है' इस वाक्य के समान स्ववचन बाधित होने से अप्रमाण-प्रमाण रहित माना जायेगा।

**न सर्वथा नित्य मुदेत्यपैति न च क्रिया कारक मत्र युक्तम्।**
**नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति।।( 4 )**

सब प्रकार से नित्य वस्तु न उत्पन्न होती है, न नष्ट ही होती है और न इस मान्यता में क्रिया कारक भाव ही संगत होता है, क्योंकि असत् अविद्यमान पदार्थ का जन्म नहीं होता और सत् विद्यमान पदार्थ का नाश नहीं होता। यदि कहा जाय कि जलता हुआ दीपक बुझा देने पर उसमें क्या शेष रह जाता है। यहां तो सत् का नाश मानना ही पड़ेगा तो उसका उत्तर यह है कि दीपक अन्धकार रूप पुद्गल द्रव्य के रूप में विद्यमान रहता है।

संसार के प्रत्येक पदार्थ द्रव्य और पर्याय रूप हैं। द्रव्य अपेक्षा से पदार्थ नित्य है और पर्याय अपेक्षा से अनित्य है। इस तरह अनेकान्त शैली से पदार्थों के नित्यानित्यात्मक होने पर भी योग, सांख्य और मीमांसक पदार्थों को सर्वथा नित्य मानते हैं और बौद्ध सर्वथा अनित्य। इस श्लोक में आचार्य महाराज ने सर्वथा नित्य और सर्वथा अनित्य इन दोनों एकान्त मान्यताओं का निराकरण किया है। वे कहते हैं कि यदि पदार्थ सर्वथा नित्य माना जाता है तो उसमें नवीन पर्याय की उत्पत्ति और पूर्व पर्याय का विनाश नहीं बन सकेगा। जीव द्रव्य में मनुष्य पर्याय के नष्ट होने पर ही देव पर्याय की उत्पत्ति होती है और पुद्गल द्रव्य में घट पर्याय के नष्ट होने पर ही कपाल पर्याय की उत्पत्ति देखी जाती है। इस प्रकार के उत्पाद और व्यय को प्रत्यक्ष देखते हैं, अतः इसका अपलाप नहीं किया जा सकता। नवीन आकार का उत्पन्न होना उत्पाद है और पूर्व आकार का विनाश होना व्यय है। ये दोनों प्रकार के परिणमन सर्वथा नित्य पदार्थ में संभव नहीं है, इसके सिवाय सर्वथा नित्यपना की मान्यता में

क्रियाकारक भाव भी नहीं बनता है। ठहरना तथा गमन करना आदि क्रिया कहलाती है और इन क्रियाओं का जो निर्वर्तक रचियता है वह कारक कहलाता है। वस्तु को सर्वथा एक रूप मानने पर यदि उसमें गमन रूप क्रिया हो रही है तो गमन ही होता रहेगा और ठहरना रूप क्रिया हो रही है तो ठहरना ही होता रहेगा। विरुद्ध परिणमन नहीं हो सकता, क्योंकि विरुद्ध परिणमन मानने पर सर्वथा एकरूपता नित्यपना का सिद्धान्त नष्ट हो जाता है। इसी तरह सर्वथा अनित्य पक्ष का निरन्वय नाश स्वीकृत करना पड़ेगा और उस स्थिति में अविद्यमान पदार्थ की उत्पत्ति और विद्यमान पदार्थ का नाश मानना पड़ेगा, परन्तु ऐसा मानना उचित नहीं है, क्योंकि जो पदार्थ है ही नहीं उसका जन्म नहीं हो सकता और जो पदार्थ है उसका सर्वथा नाश हो सकता। यदि कहा जाय कि जलते हुए दीपक को बुझा देने पर क्या शेष बचता है ? यहां तो सत् का नाश अनुभव में आता है तो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यहां भी दीपक का सर्वथा नाश नहीं माना जाता जो दीपक पहले प्रकाश रूप पुद्गल द्रव्य था, अब बुझ जाने पर वही दीपक अंधकार रूप पुद्गल द्रव्य के रूप में शेष रहता है, सर्वथा नाश कहां हुआ ? इस तरह कथंचित् नित्यानित्यत्व की मान्यता ही युक्तिसंगत है।

**विधिर्निषेधश्च कथंचिदिष्टौ विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था।**
**इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ।।( 5 )**

अस्तित्व और नास्तित्व दोनों ही किसी अपेक्षा से इष्ट हैं। वक्ता की इच्छा से उनमें मुख्य और गौण की व्यवस्था होती है। इस तरह यह तत्त्व निरूपण की पद्धति आप सुमतिनाथ स्वामी की है। हे स्वामिन्! आपकी स्तुति करते हुए मुझे मति का उत्कर्ष प्राप्त होवे।

नित्य-अनित्य, एक-अनेक, भेद-अभेद आदि परस्पर विरोधी दो धर्मों में प्रथम पक्ष विधि पक्ष कहलाता है और दूसरा पक्ष उससे विरुद्ध होने के कारण निषेध पक्ष कहलाता है। यहां पूर्व श्लोक में नित्य और अनित्य का प्रसंग उठाया गया था इसलिये विधि से नित्य पक्ष और निषेध से अनित्य पक्ष लिया गया है। पदार्थ किसी विवक्षा से नित्य है और किसी विवक्षा से अनित्य है, वक्ता की इच्छा को विवक्षा कहते हैं। उसी विवक्षा के अनुसार नित्य और अनित्य पक्ष में मुख्य और गौण की व्यवस्था होती है। वक्ता जिस समय द्रव्य का निरूपण करने में प्रवृत्त होता है, उस समय नित्य पक्ष मुख्य होता है और अनित्य पक्ष गौण होता है तथा जिस समय पर्याय का निरूपण करने में प्रवृत्त होता है उस

समय अनित्य पक्ष मुख्य होता है और द्रव्य पक्ष गौण होता है। वक्ता की इच्छा नय भेद के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। नय परार्थ श्रुतज्ञान के भेद हैं। परार्थ श्रुतज्ञान को प्रयोजन पर का अज्ञान दूर करना है। वक्ता के सामने श्रोता होता है, उसके अनुसार वह पदार्थ को निरूपण करता है, परन्तु दोनों प्रकार के निरूपण के समय उसकी दृष्टि दूसरे पक्ष पर भी स्थित रहती है। सुमतिनाथ भगवान् चूंकि ( सुष्ठु मतिर्यस्यौ सुमतिः ) उत्तम मति से युक्त है। अतः उनकी तत्व के निरूपण की पद्धति सर्वोत्कृष्ट थी। हे भगवन्! आपकी स्तुति के फलस्वरूप मुझे भी ऐसी ही श्रेष्ठ मति प्राप्त हो, ऐसी कामना आचार्य महाराज ने प्रकट की है।

## सर्व पर्यायों में द्रव्य वही रहता है

**जीवो भवं भविस्सदि णरोऽमरो वा परो भवीय पुणो।**
**किं दव्वत्तं पजहदि ण जहं अण्णो कहं होदि।।( 112 )**

**When the soul (in its course) is or will be born as a man, god or any one else, does it leave its substantiality; if it does not leave, how is it different (in different births)?**

आगे पहले कहा हुआ सत् उत्पाद द्रव्य से अभिन्न है, ऐसा खुलासा करते हैं - ( जीवो ) यह आत्मा ( भवं ) परिणमन करता हुआ ( णरोऽमरो वा परो ) मनुष्य, देव या अन्य कोई ( भविस्सदि ) होवेगा ( पुणो भवीय ) तथा इस तरह होकर ( किं दव्वत्तं पजहदि ) क्या वह अपने द्रव्यपने को छोड़ बैठेगा? ( ण जहदि अण्णो कहं हवदि ) नहीं छोड़ता हुआ, वह भिन्न कैसे होवेगा? अर्थात् द्रव्यपने से अन्य नहीं होगा। यह परिणमन स्वभाव जीव विकार रहित शुद्धोपयोग से विलक्षण शुभ या अशुभ उपयोग से परिणमन करके मनुष्य, देव, नारकी या पशु अथवा निर्विकार शुद्धोपयोग में परिणमन करके सिद्ध हो जावेगा। इस प्रकार होकर के भी अथवा वर्तमान काल में होता हुआ भाविकाल में होगा व भूतकाल में हुआ था, इस तरह तीनों कालों में पर्यायों को बदलता हुआ भी क्या अपने द्रव्यपने को छोड़ देता है? द्रव्यार्थिक नय से द्रव्यपने को कभी नहीं छोड़ता है तब अपनी अनेक भिन्न-भिन्न पर्यायों में दूसरा कैसे हो सकता है? अर्थात् दूसरा नहीं होता, किन्तु द्रव्य को अन्वय रूप शक्ति से सद्भावुत्पाद रूप वही अपने द्रव्य से अभिन्न है। यह भावार्थ है।

**समीक्षा** - जो विभिन्न अवस्थाओं में द्रवित होता है/परिणमन करता है/गमन करता है उसे द्रव्य कहते हैं। इसलिये अन्वय रूप में हर अवस्थाओं में

द्रव्य रहता ही है। जिस प्रकार पानी तरल, घन, वाष्पावस्था में अन्वयरूप में रहता है। मिट्टी, पत्थर, सोना, चांदी, पानी, वायु, अग्नि, शब्द, प्रकाश, अंधकार, पुद्गल की 23 वर्गणायें, द्रव्यकर्म, नोकर्म आदि समस्त अवस्थाओं में पुद्गल द्रव्य अन्वय रूप से रहता है। इसी प्रकार जीव भी नित्य निगोद से लेकर त्रस पर्याय, मिथ्यात्व अवस्था, सम्यक्त्व अवस्था, मुनि अवस्था, अरहंत अवस्था, मोक्ष अवस्था में द्रव्य रूप से अन्वय रूप से हमेशा रहता है। इसके बिना उपरोक्त कोई भी अवस्था में नहीं है। इसी प्रकार शुद्ध हो या अशुद्ध हो, चेतन हो या अचेतन, मूर्त्तिक हो या अमूर्त्तिक द्रव्य उसकी हर अवस्था में रहेगा, क्योंकि द्रव्य का परिणमन ही पर्याय होती है। इसलिये द्रव्य बिना पर्याय किस प्रकार हो सकती है अर्थात् द्रव्य बिना पर्याय हो ही नहीं सकती है।

## द्रव्य के असत् उत्पाद पूर्व पर्याय से भिन्न है

**मणुवो ण हवदि देवो देवो वा माणुसो व सिद्धो वा।**
**एवं अहोज्जमाणो अणण्णभावं कधं लहदि।।( 113 )**

**A man (so long he has a human body) is not a god; nor is a god a man or a liberated being; if it is not so possible, how can their mutual non-difference be established?**

आगे द्रव्य के असत् उत्पाद को पूर्व पर्याय से भिन्न निश्चय करते हैं ( मणुओ ) मनुष्य ( देवो ण होदि ) देव नहीं होता है।( वा देवो ) अथवा देव ( माणुसो व सिद्धो वा ) मनुष्य या सिद्ध नहीं होता है।( एवं अहोज्ज माणो ) ऐसा नहीं होने पर भी ( अणण्णभावं कहं लहदि ) एकपने को कैसे प्राप्त हो सकता है ? आकुलता-जनक देव मनुष्यादि पर्यायों से विलक्षण तथा निराकुल स्वरूप अपने स्वभाव में परिणमन रूप लक्षण को धरने वाला परमात्मा द्रव्य यद्यपि निश्चय से मनुष्य पर्याय में तथा देव पर्याय में समान है तथापि मनुष्य देव नहीं होता है, क्योंकि देव पर्याय के काल में मनुष्य पर्याय की प्राप्ति नहीं है, मनुष्य पर्याय के काल में देव पर्याय की तथा निज आत्म-उपलब्धि रूप सिद्ध पर्याय की प्राप्ति नहीं है, क्योंकि पर्यायों का परस्पर भिन्न-भिन्न काल है। जैसे सुवर्ण द्रव्य में कुण्डल कंकण आदि पर्यायों का भिन्न-भिन्न काल है। इस तरह एक पर्याय रूप द्रव्य दूसरे रूप न होता हुआ एकपने को कैसे प्राप्त हो सकता है ? किसी भी तरह प्राप्त नहीं हो सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ है कि असद्भाव उत्पाद या सत् रूप उत्पाद पूर्व-पूर्व पर्याय से भिन्न होता है।

**समीक्षा** - जब अन्वय रूप में देखते हैं तब द्रव्य हर पर्याय में होने से असत्

का उत्पाद नहीं होता है। इसलिये सत् का ही उत्पाद होता है। असत् का उत्पाद नहीं होता है, परन्तु जब पर्याय दृष्टि से देखते हैं तब पूर्व पर्याय उत्तर पर्याय रूप नहीं है। इसलिये इस पर्याय दृष्टि से असत् का उत्पाद होता है। जिस प्रकार दूध से दही बना। दूध अवस्था में दही अवस्था नहीं थी, क्योंकि दही से दूध अधिक तरल होता है और दही दूध से अधिक ठोस होता है। दूध का स्वाद मीठा होता है और दही का स्वाद खट्टा होता है। जिस रोगी के दूध पथ्य हो सकता है, उस रोगी के दही अपथ्य भी हो सकता है। दूध पर्याय में दही पर्याय नहीं थी, इसलिये दूध पर्याय अलग है और दही पर्याय अलग है इसलिये नवीन पर्याय पूर्व पर्याय से पृथक् होने से असत् उत्पाद है। जीव की अपेक्षा संसार अवस्था में मुक्त अवस्था प्रकट रूप में नहीं थी। इसलिये मुक्त अवस्था जब प्रारम्भ होती है वह असत्पूर्वक ही उत्पन्न होती है। यदि मुक्त अवस्था को, संसारी अवस्था को प्रगट रूप में मान लिया जायेगा तो कोई भी जीव संसारी नहीं रहेंगे। यदि संसारी नहीं होंगे तो मोक्ष मार्ग तथा मोक्ष भी नहीं होगा, क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने के लिये मोक्ष मार्ग है और मोक्ष बन्धनपूर्वक होता है।

## एक ही द्रव्य में अन्यत्व एवं अनन्यत्व है

**दव्वट्ठिएण सव्वं दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो।**
**हवदि य अण्णमणण्णं तक्काले तम्मयत्तादो।।( 114 )**

**All substances are non-different from the substantial view-point, but again they are different from the modificational view-point, because of the individual modification pervading it for the time being.**

( दव्वट्ठियेण ) द्रव्यार्थिक नय से ( तं सव्वं ) वह सब ( दव्वं ) द्रव्य ( अणण्णं ) अन्य नहीं है, वही है ( पुणो ) परन्तु ( पज्जयट्ठियेण ) पर्यायार्थिक नय से ( अण्णं य ) अन्य भी ( हवदि ) है, क्योंकि ( तत्काले तम्मयत्तादो ) उस काल में द्रव्य अपनी पर्याय से तन्मय हो रहा है। शुद्ध अन्वयरूप द्रव्यार्थिक नय से यदि विचार किया जाय तो विवक्षित अविवक्षित सर्व ही जीव नामा द्रव्य अपनी नारक, तिर्यंच मनुष्य देव रूप विभाव पर्यायों के साथ तथा केवलज्ञान दर्शन, सुख, वीर्य रूप अनन्त चतुष्टयशक्ति रूप सिद्ध पर्याय के साथ अन्य-अन्य नहीं है, किन्तु तन्मय है, एक है। जैसे कुण्डल, कंकण आदि पर्यायों में सुवर्ण का भेद नहीं है, वही सुवर्ण है। परन्तु यदि पर्याय की अपेक्षा से विचार किया जावे तो अपनी अनेक पर्यायों के साथ वह द्रव्य भिन्न-भिन्न है,

क्योंकि जैसे - अग्नि तृण की अग्नि, काष्ठ की अग्नि, पत्र की अग्नि रूप से भिन्न-भिन्न है, अपनी पर्यायों के साथ उस समय तन्मय है। इससे यह बात कही गई है कि जब द्रव्यार्थिकनय से वस्तु की परीक्षा की जाती है, तब पर्यायों में संतान रूप से सब पर्यायों का समूह द्रव्य ही प्रगट होता है, परन्तु जब पर्यायार्थिकनय की विवक्षा की जाती है तब पर्याय रूप से वही द्रव्य भिन्न-भिन्न झलकता है और जब परस्पर अपेक्षा से दोनों नयों के द्वारा एक ही काल में विचार किया जाता है और तब वह द्रव्य एक ही साथ एक रूप और अनेक रूप मालूम होता है। जैसे - यहां जीव द्रव्य के सम्बन्ध में व्याख्यान किया गया है तैसे सब द्रव्यों के यथासम्भव जान लेना चाहिए, यह अर्थ है।

**समीक्षा** - जिस प्रकार गाय का दूध ही परिणमन करके दही बनता है, मट्ठा बनता है, मक्खन बनता है, घी बनता है इसीलिए दही आदि गोरस स्वरूप ही है और सब अवस्था में दूध के ही परमाणु विद्यमान रहते हैं। इसीलिए जिसके गोरस का त्याग है वह न दूध सेवन कर सकता है न दही-मट्ठा, परन्तु जिसका केवल दही का त्याग है, वह दूध, घी, मट्ठा आदि का सेवन कर सकता है, क्योंकि जिसने केवल दही रूप पर्याय का त्याग किया है उसका अन्य पर्यायगत दूध का त्याग नहीं है। इसलिए ऐसे व्यक्ति दूध आदि सेवन करते हुए भी दोषी नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि कथंचित् द्रव्य दृष्टि से दूध, दही आदि एक ही है और पर्याय दृष्टि से दूध,दही आदि पृथक्-पृथक् है। समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है -

**पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोत्ति दधिव्रतः।**
**अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम्।।( 60 )**

जिसके दुग्ध लेने का व्रत है - आज मैं दूध ही लूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा है - वह दही नहीं खाता, जिसके दही लेने का व्रत है, वह दुग्ध नहीं पीता और जिसका गोरस न लेने का व्रत है वह दूध दही दोनों ही नहीं खाता। इससे मालूम होता है कि वस्तुतत्त्व त्रयात्मक है, युगपत् उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप है।

**घट मौलिक - सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।**
**शोक - प्रमोद - माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्।।( 59 )**

( सुवर्ण घट को तोड़कर मुकुट के बनाये जाने पर ) नाश उत्पाद और स्थिति की जो अवस्थाएं होती हैं, उनमें यह घटका अर्थी जन शोक ( विषाद ) को मुकुट का अर्थी हर्ष को और सुवर्ण का अर्थी शोक तथा हर्ष से रहित मध्यस्थ भाव को प्राप्त होता है और यह सब सहेतुक होता है - घटार्थी के शोक

का कारण घट का नाश मुकुटार्थी के हर्ष का कारण मुकुट का उत्पाद है और सुवणार्थी के मध्यस्थ भाव का कारण सुवर्ण की स्थिति है - जो सुवर्ण घट के रूप में था वही मुकुट के रूप में विद्यमान है। इससे उसके लिए शोक तथा हर्ष का कोई कारण नहीं रहता। बिना हेतु के उन घट मुकुट सुवर्णार्थियों के शोकादिकी उत्पत्ति नहीं बनती। सन्मति सूत्र में आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने भी कहा है -

**दव्वट्ठियस्स जो चेव कुणइ सो चेव वेयइ णियमा।**
**अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ पज्जवणयस्स।।**
**द्रव्यार्थिकस्य यो चैव करोति स चैव वेदयते नियमेन।**
**अन्यः करोति अन्यः परिभुंक्ते पर्यवनयस्य।।( 52 )**

द्रव्यार्थिकनय के अनुसार जीव जो कुछ कर्म का बन्ध करता है, नियम से वही भोगता है, किन्तु पर्यायार्थिक नय की दृष्टि में करता, कोई अन्य है और भोगता कोई अन्य है। द्रव्य दृष्टि से कर्मों को करने वाला और भोगने वाला एक ही है, किन्तु पदार्थ को क्षण-क्षण में उत्पन्न मानने वाला कर्म के करने वले और भोगने वाले को भिन्न-भिन्न मानता है, क्योंकि जिसने कर्म किया वह दूसरे क्षण में ही परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार किया किसी अन्य ने और भोगा किसी अन्य ने, यह पर्यायार्थिकनय की मान्यता है।

## सर्व विरोधों को दूर करने वाला स्याद्वाद

**अत्थि त्ति य णत्थि त्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं।**
**पज्जायेण दु केण वि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा।।( 115 )**

**According to some modification or the other it is stated that a substance exist, does not exist, is indescribable, is both or otherwise.**

( दव्वं ) द्रव्य ( केणवि पज्जायेण ) किसी एक पर्याय से ( दु ) तो ( अत्थि त्ति ) अस्तिरूप ही है ( य ) और किसी एक पर्याय से ( णात्थि त्ति य ) नास्ति रूप ही है तथा किसी एक पर्याय से ( अवत्तव्वमिदि ) अवक्तव्य रूप ही ( हवदि ) होता है ( पुणो तदुभयम् ) तथा किसी एक पर्याय से अस्ति-नास्ति दोनों रूप ही है। ( वाअण्णं ) अथवा किसी अपेक्षा से अन्य तीन रूप अस्ति एवं अवक्तव्य, नास्ति एवं अवक्तव्य तथा अस्ति-नास्ति एवं अवक्तव्य रूप ( आदिट्ठम् ) कहा गया है। यहां स्याद्वाद का कथन है, स्यात् का अर्थ कथंचित् है, अर्थात् किसी एक अपेक्षा से, वाद का अर्थ कथन करना है। वृत्तिकार यहां

शुद्ध जीव के सम्बन्ध में स्याद्वाद का या सप्तभंग का प्रयोग करके बताते हैं।

( 1 ) शुद्ध जीव द्रव्य अपने ही स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव के चतुष्टय की अपेक्षा स्यात् अस्तिरूप ही है अर्थात् जीव में अस्तिपना है। शुद्ध गुण तथा पर्यायों का आधारभूत जो शुद्ध आत्मद्रव्य है, वह सद्रव्य है। लोकाकाश प्रमाण शुद्ध असंख्यात प्रदेश है सो स्वक्षेत्र कहा जाता है। वर्तमान शुद्ध पर्याय में परिणमन करता हुआ वर्तमान समय स्वकाल कहा जाता है। शुद्ध चैतन्य यह स्वभाव है। इस तरह स्वद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा शुद्ध जीव है अथवा शुद्ध जीव में अस्तित्व स्वभाव है। यह 'स्यात् अस्ति एव' प्रथम भंग है।

( 2 ) तथा परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल व परभावरूप परद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा नास्तिरूप ही है अर्थात् शुद्ध जीव में अपने सिवाय सब द्रव्यों के द्रव्यादि चतुष्टय का अभाव है। यह 'स्यात् नास्ति एव' दूसरा भंग है।

( 3 ) एक समय में ही जीव द्रव्य किसी अपेक्षा से अस्तिरूप ही है, वह किसी अपेक्षा से नास्ति रूप ही है तथापि वचनों में एक समय में कहा नहीं जा सकता, इससे अवक्तव्य ही है। यह तीसरा 'स्यात् अवक्तव्य एव' भंग है।

( 4 ) वह परमात्म द्रव्य स्वद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति रूप है, परद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति रूप है। ऐसे क्रम से कहते हुए अस्ति-नास्ति स्वरूप ही है। यह चौथा 'स्यात् अस्तिनास्ति एव' भंग है। इस तरह प्रश्नोत्तर रूप नय विभाग से जैसे ये चार भंग हुए, तैसे तीन भंग और है जिनको संयोगी कहते हैं।

( 5 ) स्वद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति ही है, परन्तु एक समय में स्वद्रव्यादि की अपेक्षा अस्ति और परद्रव्यादि की अपेक्षा नास्ति होने पर भी अवक्तव्य है। यह पांचवा भंग है।

( 6 ) परद्रव्यादि की अपेक्षा नास्ति रूप ही है, परन्तु एक समय में स्व-पर-द्रव्यादि की अपेक्षा 'अस्तिनास्ति' होने पर भी अवक्तव्य है। इससे 'स्यात् नास्ति एव अवक्तव्य', यह छठा भंग है।

( 7 ) क्रम से कहते हुए स्वद्रव्यादि की अपेक्षा अस्ति रूप ही है तथा परद्रव्यादि की अपेक्षा नास्ति रूप ही है, तथापि एक समय में अस्तिनास्ति रूप कहा नहीं जा सकता। इससे 'स्यात् अस्ति नास्ति एव अवक्तव्य' रूप है। यह सातवां भंग है।

पहले पंचास्तिकाय ग्रंथ में स्यात् अस्ति इत्यादि प्रमाण वाक्य से प्रमाण

सप्त भंगी का व्याख्यान किया गया, यहां 'स्यात् अस्ति एव' के द्वारा जो 'एव' का ग्रहण किया गया है, वह नय सप्तभंगी के बताने के लिए किया गया है। जैसे यहां शुद्ध आत्म द्रव्य में सप्तभंगी नय का व्याख्यान किया गया है, तैसे यथासम्भव सब पदार्थों में जान लेना चाहिये।

**समीक्षा** - प्रत्येक द्रव्य में अनन्त गुण एवं पर्यायें होने के कारण उसका ज्ञान तो सर्वज्ञ भगवान् को हो जाता है तथापि सर्वज्ञ भगवान् ही उसका प्रतिपादन एक साथ एक बार में नहीं कर सकते हैं, क्योंकि प्रतिपादन करने का माध्यम जो शब्द वर्गणा है, उसकी सीमित शक्ति है। इसलिये भगवान् की दिव्य ध्वनि भी सामान्य विशेषात्मक होती है। कहा भी है –

**तीर्थंकरवचनसंग्रहविशेषप्रस्तारमूलव्याकरणी।**
**द्रव्यार्थिकश्च पर्यवनयश्च शेषा विकल्पास्तयोः।।( 3 )**

तीर्थंकरों के वचन सामान्य विशेषात्मक हैं। वे सामान्य रूप से द्रव्य के प्रतिपादक हैं और विशेष रूप से पर्याय के। द्रव्यार्थिक ( निश्चय या परमार्थ ) और पर्यायार्थिक ( व्यवहार ) नयों ( सापेक्ष दृष्टियों ) से मूल वस्तु की व्याख्या की गयी है। शास्त्रों में जिन सात नयों का वर्णन मिलता है, वह इन दो नयों का विस्तार है। सभी नय द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दो नयों में गर्भित है। इनमें द्रव्यार्थिक नय का विस्तार नैगम, संग्रह एवं व्यवहार रूप है तथा पर्यायार्थिक नय का विस्तार ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत रूप है। मूल में जिनवाणी का विवेचन करने वाले ये दो ही नय हैं।

वस्तु में अनेक गुण एवं पर्यायें होने के कारण आवश्यकतानुसार जिसका प्रतिपादन किया जाता है, उसको मुख्य करके कथन किया जाता है एवं जिसका प्रतिपादन नहीं किया जाता है, वे गुण एवं पर्यायें उस समय उस द्रव्य में से लोप नहीं होती है, परन्तु उस समय में अविविक्षित होने के कारण गौण हो जाती हैं। इसलिये विधि हो या निषेध दोनों सापेक्ष होते हैं और दोनों का ही सद्भाव होता है, भले एक का कथन होता है, एक का कथन नहीं होता है। इसलिए कथंचित् सद्भाव और कथंचित् अभाव रूप में होता है। इस कथंचित् विषय को बताने के लिये स्यात् शब्द का प्रयोग किया जाता है। स्यात् शब्द का अर्थ संशयात्मक नहीं है परन्तु निश्चयपरक अस्तिरूप है या नास्तिरूप है। किसी भी द्रव्य की गुण एवं पर्याय सर्वथा अस्तिरूप ही नहीं होती और न ही नास्तिरूप ही होती है। केवल अस्तिरूप होने पर एक द्रव्य भी दूसरे द्रव्य रूप हो जायेगा और केवल नास्तिरूप होने पर कोई भी द्रव्य नहीं

रहेगा। महान् दार्शनिक आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है -

**भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपन्हवात्।**
**सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम्।।( 9 )( देवागम पृ.15 )**

( हे वीर भगवन् ) यदि पदार्थों के भाव ( अस्तित्व ) का एकान्त माना जाय - यह कहा जाय कि सब पदार्थ सर्वथा सत् रूप ही हैं, असत् ( नास्तित्व ) रूप कभी कोई पदार्थ नहीं है - तो इसमें अभाव पदार्थों का - प्राग्भाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभावरूप वस्तु-धर्मों का-लोप ठहरता है और इन वस्तु-धर्मों का लोप करने से वस्तुतत्त्व ( सर्वथा ) अनादि, अनन्त, सर्वात्मक और अस्वरूप हो जाता है, जो कि आपका इष्ट नहीं है - प्रत्यक्षादि के विरुद्ध होने से आपका मत नहीं है।

**वाक्क्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्।**
**स्यान्निपातोऽर्थ - योगित्वात्तव केवलिनामपि।।( 103 )पृ.97**

( हे अर्हन् ! ) आपके तथा श्रुत केवलियों के भी वाक्यों में प्रयुक्त होने वाला 'स्यात्' निपात ( अव्यय ) शब्द अर्थ के साथ सम्बद्ध होने से अनेकान्त का द्योतक और गम्य-बोध्य ( विवक्षित ) का बोधक सूचक ( वाचक ) माना गया है अन्यथा अनेकान्त अर्थ की प्रतिपत्ति नहीं बनती है।

**सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा।**
**अभिप्रेत-विशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्य-लांछन।।( 112 )पृ.104**

'यदि यह कहा जाय कि ( 'अस्ति' जैसा ) सामान्य वाक्य पर के अभावरूप ( अन्यापोह ) विशेष में वर्तता है, उसे प्रतिपादित करता है, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि सामान्य वाक्य विशेष में शब्दार्थ रूप नहीं है - अभिप्राय में स्थित विशेष को नहीं जानता अथवा प्रतिपादित नहीं करता और इसलिए सत्यरूप न होकर मिथ्या-वाक्य है। अभिप्राय में स्थित जो विशेष उसकी प्राप्ति का सच्चा लक्षण अथवा चिन्ह 'स्याद्वाद' ( स्यात् शब्दपूर्वक वाद-कथन ) है - सामान्य - विशेषात्मक वस्तु का जब मुख्यतः सामान्य रूप से कथन किया जाता है, तब उसका विशेष रूप गौण होकर वक्ता के अभिप्राय में स्थित होता है, जिसे साथ में प्रयुक्त 'स्यात्' शब्द व्यक्त अथवा सूचित करता है और इसलिये 'स्यात्कार' अभिप्रेत-विशेष के जानने का सच्चा साधन एवं मार्ग है। अभिप्रेत वही होता है जो स्वरूपादि ( स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव ) के द्वारा सत् होता है, पररूपादि के द्वारा सत् नहीं है।

**विधेयमीप्सितार्थांगं प्रतिषेध्याऽविरोधि यत्।**
**तथैवा ऽऽदेय - हेयत्वमिति स्याद्वाद-संस्थितिः ।।( 113 )**

( अस्ति इत्यादि का ) जो विधेय है - मन के अभिप्रायपूर्वक जिसका विधान किया जाता है, किसी के भयादिवश नहीं - और ईप्सित - अर्थ क्रिया का कारण है वह प्रतिषेध्य के - नास्तित्वादि के - साथ अविरोध रूप है - जो नास्तित्वादि के साथ अविरोध रूप नहीं। वह ईप्सित-अर्थ क्रिया का कारण भी नहीं हो सकता, क्योंकि विधि-प्रतिषेध के परस्पर अविनाभाव-सम्बन्ध है, विधि के बिना प्रतिषेध का और प्रतिषेध के बिना विधि का अस्तित्व नहीं बनता और जिस प्रकार विधेय प्रतिषेध्य का अविरोधी ईप्सित अर्थ क्रिया का अंग-कारण सिद्ध है। उसी प्रकार वस्तु का आदेय-हेयपना है, अन्यथा नहीं, क्योंकि विधेय का एकान्त होने पर किसी के हेयत्व का विरोध होता है,प्रतिषेध्य का एकान्त होने पर किसी के आदेयत्व का विरोध होता है, स्याद्वादी के अभिप्रायानुसार सर्वथा विधेय ही प्रतिषेध्य नहीं होता, कथंचित् विधि-प्रतिषेध्य के तादात्म्य माना गया है। अतः विधेय-प्रतिषेधात्मक विशेष के साथ सप्तभंगी के समाश्रय से स्याद्वाद प्रक्रियमाण होता है। इस प्रकार स्याद्वाद की ( सर्वत्र युक्ति-शास्त्राऽविरोध के कारण ) यह सम्यक् स्थिति है और इसलिये हे वीर भगवन्! हमने जो यह निश्चय किया है कि युक्ति-शास्त्राऽविरोध वाक्य के कारण आप ही निर्दोष आप्त हैं, वह अनवद्य है - सर्व प्रकार से बाधा रहित है।'

**स्याद्वादः सर्वथैकान्त - त्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः।**
**सप्तभंग' नयापक्षो हेयाऽऽदेय - विशेषकः ।।( 104 )पृ.98**

'स्यात्' शब्द सर्वथा एकान्त का त्यागी होने से 'किं' शब्द निष्पन्न चित्-प्रकार के रूप में कथंचित् कथंचन आदि का वाचक है और इसलिये कथंचित् आदि शब्द स्याद्वाद के पर्याय नाम है। यह स्याद्वाद सप्तभंगों और नयों की अपेक्षा को लिये रहता तथा हेय-उपादेय का विशेषक ( भेदक ) होता है। स्याद्वाद के बिना हेय और उपादेय की विशेष रूप से व्यवस्था नहीं बनती।

स्याद्वाद और केवलज्ञान दोनों ( जीवादि ) सब तत्त्वों के प्रकाशक हैं। दोनों के प्रकाशन में साक्षात् और असाक्षात् ( परोक्ष ) का भेद ( अन्तर ) है - केवलज्ञान जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्त्वों का प्रत्यक्षतः एवं युगपत् प्रकाशक है और स्याद्वादरूप श्रुतज्ञान पदार्थों का अप्रत्यक्षतः ( परोक्ष रूप से ) क्रमशः प्रकाशक है। इन दोनों में से जो किसी भी

ज्ञान के द्वारा प्रकाशित अथवा उसका वाच्य नहीं, वह अवस्तु होती है।

**प्रश्नवशादेकस्मिन् वस्तुन्यविरोधेन विधिप्रतिषेधविकल्पता सप्तभंगी।**

सप्तभंगी किसे कहते हैं? प्रश्न के अनुसार एक ही वस्तु में प्रमाण से अविरुद्ध विधि प्रतिषेध ( अस्ति नास्ति आदि ) धर्मों की कल्पना करना सप्तभंगी है। एक ही वस्तु में प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण के अविरुद्ध अस्ति नास्ति की विकल्पना रूप सप्तभंगी जानना चाहिए। एक ही घट का गौण और मुख्य रूप नय की विवक्षा से - 1. स्यात् घट, 2. स्यात् अघट, 3. स्यात् उभय घट-अघट, 4. स्यात् अवक्तव्य, 5. स्यात् घट अवक्तव्य, 6. स्यात् अघट अवक्तव्य, और 7. स्यात् उभय अवक्तव्य। इन सात रूप से निरूपण किया जा सकता है। उसमें स्वात्मा से स्वरूप की अपेक्षा से घट है और परमात्मा से यानी पररूप से अघट है।

आगे सर्वशंकाओं के दूर करने के लिए प्रमाण सप्तभंगी का स्वरूप कहते हैं -

**सिय अत्थिणत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।**
**दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि।।( 14 )**

द्रव्य आदेशवशात् वास्तव में स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अवक्तव्य और अवक्तव्यतायुक्त तीन भंग वाला ( स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य और स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य ) इस प्रकार सप्तभंग वाला है।

**अत्र सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तद्योतकः कथंचिदर्थ स्याच्छब्दो निपादः।**

यहां ( सप्त भंगी में ) सर्वथापने का निषेधक, अनेकान्त का द्योतक, 'स्यात्' शब्द 'कथंचित्' ऐसे अर्थ में अव्यरूप से प्रयुक्त हुआ है।

**'एकस्मिन्नविरोधेन प्रमाणनय वाक्यतः।**
**सदादि कल्पना या च सप्तभंगीति सा मता।।''**

एक ही पदार्थ में बिना किसी विरोध के प्रमाण व नय के वाक्य से सत् आदि की कल्पना करना सो सप्तभंगी कही गई है।

1. **स्यात् अस्ति** - कथंचित् या किसी अपेक्षा से द्रव्य है अर्थात् द्रव्य अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप चतुष्टय की अपेक्षा से है।
2. **स्यात् नास्ति** - कथंचित् या किसी अपेक्षा से द्रव्य नहीं है अर्थात् परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप पर-चतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य नहीं है।
3. **स्यात् अस्ति नास्ति** - कथंचित् द्रव्य है व नहीं दोनों रूप है अर्थात् स्वचतुष्टय

की अपेक्षा से है, पर चतुष्टय की अपेक्षा से नहीं है।

4. **स्यात् अवक्तव्य** - कथंचित् द्रव्य वचनगोचर नहीं है अर्थात् एक समय में यह नहीं कहा जा सकता कि द्रव्य स्वचतुष्टय की अपेक्षा है व परचतुष्टय की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि कहा है - क्रमप्रवृत्तिर्भारती अर्थात् वाणी क्रम-क्रम से ही बोली जा सकती है।
5. **स्यात् अस्ति अवक्तव्य** - कथंचित् द्रव्य है और अवक्तव्य दोनों रूप है अर्थात् स्वद्रव्यादिचतुष्टय की अपेक्षा से है परन्तु एक साथ स्वपरद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा अवक्तव्य है।
6. **स्यात् नास्ति अवक्तव्य** - कथंचित् द्रव्य नहीं है और अवक्तव्य दोनों रूप है अर्थात् परद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा नहीं है, परन्तु एक साथ स्वपर-द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा अवक्तव्य है।
7. **स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य** - किसी अपेक्षा से है व नहीं तथा अवक्तव्य तीनों रूप है अर्थात् क्रम से स्वचतुष्टय की अपेक्षा है, पर चतुष्टय की अपेक्षा नहीं है, परन्तु एक साथ स्वपरचतुष्टय की अपेक्षा अवक्तव्य है। इस तरह ये सात भंग प्रश्न के उत्तर के वश में द्रव्य से संभव है। अर्थात् ( 1 ) क्या द्रव्य है ? ( 2 ) क्या द्रव्य नहीं है ? ( 3 ) क्या द्रव्य दोनों रूप है ? ( 4 ) क्या द्रव्य अवक्तव्य है ? ( 5 ) क्या द्रव्य अस्ति और वक्तव्य दो रूप हैं ? ( 6 ) क्या द्रव्य नास्ति और अवक्तव्य है ? ( 7 ) क्या द्रव्य अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य तीन रूप हैं ? इन प्रश्नों के किये जाने पर सात प्रकार ही समाधान उत्तर में किया जाता है। यह प्रमाण सप्तभंगी का स्वरूप कहा।

एक ही द्रव्य किस तरह सप्तभंग रूप होता है ? ऐसा प्रश्न होने पर उसका समाधान करते हैं कि जैसे देवदत्त नाम का पुरुष एक ही है, वही मुख्य और गौण की अपेक्षा से बहुत प्रकार है सो इस तरह है -

जैसे - वही देवदत्त अपने पुत्र की अपेक्षा पिता कहा जाता है। वही पिता की अपेक्षा पुत्र कहा जाता है। मामा की अपेक्षा भानजा कहा जाता है। वही अपने भानजे की अपेक्षा मामा कहा जाता है। अपनी स्त्री की अपेक्षा पति कहा जाता है। अपनी बहन की अपेक्षा भाई कहा जाता है। अपने शत्रु की अपेक्षा शत्रु कहा जाता है। अपने इष्ट की अपेक्षा मित्र कहा जाता है, इत्यादि एक ही द्रव्य मुख्य और गौण की अपेक्षा सप्तभंग रूप हो जाता है। इसमें कोई दोष नहीं

है। यह सामान्य व्याख्यान है। यदि इससे सूक्ष्म व्याख्यान करें तो द्रव्य में जो सत् एक नित्य आदि स्वभाव है, उनमें से एक-एक स्वभाव के वर्णन में सात-सात भंग होने चाहिये। वे इस तरह कि स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, इत्यादि या स्यात् एक, स्यात् अनेक, स्यात् एक-अनेक, स्यात् अवक्तव्य इत्यादि या स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य, स्यात् नित्यानित्य, स्यात् अवक्तव्य इत्यादि। ये प्रत्येक के सातभंग इसी देवदत्त के दृष्टान्त के समान होंगे -

1. स्यात् पुत्र है अर्थात् अपने पिता की अपेक्षा पुत्र है।
2. स्यात् अपुत्र है अर्थात् अपने पिता के सिवाय अन्य की अपेक्षा पुत्र नहीं है।
3. स्यात् पुत्र अपुत्र है, दोनों रूप है अर्थात् अपने पिता की अपेक्षा पुत्र है और अन्य की अपेक्षा पुत्र नहीं है।
4. स्यात् अवक्तव्य है अर्थात् एक ही समय भिन्न-भिन्न अपेक्षा से कहें तो यह नहीं कह सकते हैं कि पुत्र अपुत्र दो रूप हैं।
5. स्यात् पुत्र और अवक्तव्य है अर्थात् यह देवदत्त जब अपने पिता की अपेक्षा पुत्र है तब ही एक समय में कहने योग्य न होने से कि पुत्र है या अपुत्र है, यह अवक्तव्य भी है।
6. स्यात् अपुत्र अवक्तव्य है अर्थात् जब यह देवदत्त अपने पिता से अन्य की अपेक्षा अपुत्र है तब ही एक समय के कहने योग्य न होने से अवक्तव्य है।
7. स्यात् पुत्र-अपुत्र तथा अवक्तव्य है अर्थात् अपने पिता की अपेक्षा पुत्र पर की अपेक्षा अपुत्र तब ही एक समय में कहने योग्य न होने से अवक्तव्य है।

इसी तरह सूक्ष्म व्याख्यान की अपेक्षा से सप्तभंगी का कथन जान लेना चाहिए। स्यात् द्रव्य है इत्यादि ऐसा पढ़ने से प्रमाण सप्तभंगी जानी जाती है, क्योंकि स्यात् अस्ति यह वचन सकल वस्तु को ग्रहण करने वाला है, इसीलिए प्रमाण वाक्य है। 'सत् अस्ति एवं द्रव्यम्' ऐसा वचन वस्तु के एक देश को अर्थात् उसके मात्र अस्तित्व स्वभाव को ग्रहण करने वाला है, इसमें नय वाक्य है। क्योंकि कहा है - **'सकला देशः प्रमाणाधीनो, विकलादेशो नयाधीन'** इति अर्थात् वस्तु सर्व को कहने वाला वचन प्रमाण के अधीन है और उसी के एक अंश को कहने वाला वचन नय के अधीन है। अस्ति द्रव्यं यह दुःप्रमाण वाक्य है व अस्ति एवं द्रव्यं यह दुर्नय वाक्य है। इस तरह प्रमाणादि रूप से व्याख्यान जाना। यहां छः द्रव्यों के मध्य में से सात भंग रूप जो शुद्ध जीवास्तिकाय नाम का शुद्ध आत्मद्रव्य है वही ग्रहण करने योग्य है।

## मूर्त पुद्गल द्रव्य के गुण

**वण्णरसगंधफासा विज्जंते पोग्गलस्स सुहुमादो।**
**पुढवीपरियंत्तस्य य सद्दो सो पोग्गलो चित्तो।।( 132 )प्र. सार**

**Colour, taste, smell and touch are found in matter from the finer molecule to the gross earth; and sound is material and various kinds.**

मूर्तिक पुद्गल द्रव्य के गुणों को कहते हैं - ( सुहुमादो पुढवीपरियंतस्स ) सूक्ष्म परमाणु से लेकर पृथ्वी पर्यन्त ( पोग्गलस्स ) पुद्गल द्रव्य के ( वण्णरसगंधफासा ) वर्ण, रस, गंध, स्पर्श ( विज्जंते ) विद्यमान होते हैं। ( य ) और ( सद्दो ) शब्द है।( सो पोग्गलो चित्तो ) वह नाना प्रकार का है और पौद्गलिक है। पुद्गल द्रव्य के विशेष गुण स्पर्श रस गंध वर्ण है। वे पुद्गल सूक्ष्म परमाणु से लेकर स्थूल पृथ्वी स्कंधरूप तक हैं। जैसे इस गाथा में कहा है -

जिनेन्द्र देव ने पुद्गल को छह प्रकार कहा है, पृथ्वी, जल, छाया, चार इन्द्रियों के विषय, कार्माणवर्गणा और परमाणु। जैसे सर्व जीवों में अनन्त ज्ञानादि - चतुष्टय, विशेषण लक्षण यथासंभव साधारण है। तैसे ही वर्णादि चतुष्टय रूप विशेष लक्षण यथासम्भव सर्व पुद्गलों में साधारण है और जैसे अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय मुक्त जीव में प्रगट हैं सो अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय है। हमको अनुमान से तथा आगम प्रमाण से मान्य है, तैसे ही शुद्ध परमाणु में वर्णादि-चतुष्टय भी अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय है। हमको अनुमान से तथा आगम से मान्य है। जैसे यही अनन्त चतुष्टय संसारी जीव में राग द्वेषादि चिकनाई के कारण कर्मबंध होने के वश से अशुद्धता रखते हैं, तैसे ही स्निग्ध रूक्ष गुण के निमित्त से दो अणु तीन अणु आदि की बंध अवस्था में वर्णादि - चतुष्टय भी अशुद्धता को रखते हैं। जैसे रागद्वेषादि रहित शुद्ध आत्मा के ध्यान से इन अनन्तज्ञानादि चतुष्टय की शुद्धता हो जाती है तैसे ही यथा योग्य स्निग्ध रूक्ष गुण के न होने पर बंधन न होते हुए एक पुद्गल परमाणु की अवस्था में शुद्धता रहती है और जैसे नरनारक आदि जीव की विभाव पर्याय है, तैसे यह शब्द भी पुद्गल की विभाव पर्याय है, गुण नहीं है, क्योंकि गुण अविनाशी होता है, परन्तु यह शब्दविनाशीक है। यहां नैयायिक मत के अनुसार कोई कहता है कि यह शब्द आकाश का गुण है, इसका खंडन करते हुए कहते हैं कि यदि शब्द आकाश का गुण हो तो शब्द अमूर्त्तिक हो जावे। जो अमूर्त्त वस्तु है वह कर्ण इन्द्रिय से ग्रहण नहीं हो सकती और यह प्रत्यक्ष प्रगट है कि शब्द

कर्ण इन्द्रिय का विषय अन्य इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, ऐसा वस्तु का स्वभाव है। जैसे रसादि विषय रसना इन्द्रिय आदि के हैं। वह शब्द भाषा, रूप, प्रायोगिक और वैश्रसिक रूप अनेक प्रकार का है, जैसा कि पंचास्तिकाय की 'सद्दो खंधप्पभवो' इस गाथा में समझाया है, यहां इतना ही कहना पर्याप्त है।

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण इन्द्रियग्राह्य हैं क्योंकि वे इन्द्रियों के विषय हैं। वे इन्द्रिय-ग्राह्यता की व्यक्ति और शक्ति के वश से भले ही इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाते हों या न किये जाते हों तथापि वे एक द्रव्यात्मक सूक्ष्म पर्याय रूप परमाणु से लेकर अनेक द्रव्यात्मक स्थूल पर्यायरूप पृथ्वीस्कंध तक के समस्त पुद्गल के अविशेषतया ( क्योंकि कोई भी ऐसा पुद्गल ऐसा नहीं है जिसमें ये न पाये जायें, अतः साधारण रूप से या समस्त रूप से ) विशेष गुणों के रूप में होते हैं ( क्योंकि ये अन्य द्रव्यों में नहीं हो सकते, अतः असाधारण गुण हैं ) और वे, मूर्त्त होने के कारण से ही ( पुद्गल के अतिरिक्त ) शेष द्रव्यों में न होने से, पुद्गल को बतलाते हैं ( उसका ज्ञान कराते हैं )।

ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए कि शब्द भी इन्द्रियग्राह्य होने से गुण होगा, क्योंकि विचित्रता के द्वारा विश्वरूपत्व को ( अनेकानेक प्रकारत्व को ) प्राप्त उसके ( शब्द के ) अनेक द्रव्यात्मक पुद्गल-पर्यायता स्वीकार की गई है ( अर्थात् शब्द पुद्गल स्कंध की पर्याय है )।

यदि शब्द को ( पर्याय न मानकर ) गुण माना जाए, तो वह क्यों योग्य नहीं है, उसका समाधान -

प्रथम तो, अमूर्त द्रव्य का गुण नहीं है, क्योंकि गुण-गुणी में अभिन्न प्रदेशत्व होने से तथा वे ( गुण-गुणी ) ( एक वेदन से वैद्य, एक ही ज्ञान से ज्ञात होने योग्य ) होने से, अमूर्त द्रव्य के भी श्रवणेन्द्रिय की विषयभूतता आ जायेगी।

( दूसरे शब्द में ) पर्याय के लक्षण से गुण का लक्षण उत्थापित ( खण्डित ) होने से शब्द मूर्त द्रव्य का गुण भी नहीं है। पर्याय का लक्षण कादाचिन्कत्व ( अनित्यत्व ) है, और गुण का लक्षण नित्यत्व है, इसलिये ( शब्द को ) अनित्यत्व से नित्यत्व के उत्थापित होने से अर्थात् शब्द कभी-कभी हो जाता है, अतः नित्य नहीं है, इसलिये शब्द गुण नहीं है, शब्द पर्याय का नहीं, इस प्रकार अतिदृढ़तापूर्वक ग्रहण करना चाहिये। और 'यदि शब्द पुद्गल की पर्याय हो तो वह पृथ्वीस्कंध रूप की भांति स्पर्शनादिक इंद्रियों का विषय होना चाहिए, अर्थात् जैसे पृथ्वी स्कंध रूप पुद्गलपर्याय सर्व इंद्रियों से

ज्ञात होती है, उसी प्रकार शब्द रूप पुद्गल पर्याय भी सभी इंद्रियों से ज्ञात होनी चाहिए ( ऐसा तर्क किया जाये तो ) ऐसा भी नहीं है, क्योंकि जल ( पुद्गल की पर्याय है, फिर भी ) घ्राणेन्द्रिय का विषय नहीं है। अग्नि घ्राणेन्द्रिय तथा रसनेन्द्रिय का विषय नहीं है, और वायु, घ्राण, रसना तथा चक्षुरिन्द्रिय का विषय नहीं है, इसलिए नाक तथा जीभ से अग्राह्य है ) और वायु के गंध रस तथा वर्ण अव्यक्त है ( इसलिए नाक, जीभ तथा आंखों से अग्राह्य है ) क्योंकि सभी पुद्गल स्पर्श आदि चतुष्क युक्त ( स्पर्श, रस, गन्ध वर्ण युक्त ) स्वीकार किये गये हैं, क्योंकि जिनके स्पर्शादि चतुष्क व्यक्त हैं। ऐसे ( 1 ) चन्द्रकांत मणि को ( 2 ) अरणि को और ( 3 ) जौ को जो पुद्गल उत्पन्न करते हैं। उन्हीं के द्वारा ( 1 ) जिसकी गन्ध अव्यक्त है ऐसे पानी की ( 2 ) जिसकी गंध तथा रस अव्यक्त है, ऐसे अग्नि की और ( 3 ) जिसके गंध रस तथा वर्ण अव्यक्त है, ऐसी उदरवायु की उत्पत्ति होती देखी जाती है और कहीं ( किसी पर्याय में ) किसी गुण की कदाचित्क परिणाम की विचित्रता के कारण होने वाली व्यक्तता या अव्यक्तता नित्य द्रव्य स्वभाव का प्रतिघात नहीं करती। ( अर्थात् अनित्य परिणाम के कारण गुण की प्रगटता और अप्रगटता नित्य द्रव्य स्वभाव के साथ कहीं विरोध को प्राप्त नहीं होती )। इसलिए शब्द पुद्गल की पर्याय ही है।

**समीक्षा** - इस गाथा में आचार्य श्री ने पुद्गल द्रव्य के गुण तथा उनकी विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। जैन धर्म एक आध्यात्मिक धर्म होते हुए भी जीव पुद्गलादि द्रव्यों का वर्णन इसलिये किया गया है कि संसारी जीव का संबंध अनादि काल से अन्य द्रव्यों के साथ भी है। उस अनादि कालीन संबंध के कारण तथा राग, द्वेष, मोहादि के कारण जीव अन्य द्रव्य को स्व-स्वरूप मान लेता है, राग के कारण दूसरों को अपना मान लेता है और द्वेष के कारण दूसरों से द्वेष करता है। इसलिये भेद-विज्ञान एवं अनासक्ति ( समताभाव ) के लिये स्व-द्रव्य के साथ-साथ परद्रव्य का ज्ञान होना भी अनिवार्य है। इसके साथ-साथ संसारावस्था में जीव के शरीर, मन, वाणी, प्राण, श्वासोच्छ्वास, भोजन, पानी, वायु, प्रकाश आदि जो जीवनोपयोगी सामग्री है, वे सब पौद्गलिक है, पुद्गल से प्राप्त होते हैं। पुद्गल का यथायोग्य जीवनयापन के लिए आत्मकल्याण के लिए भी उसका परिज्ञान होना अपरिहार्य है। पुद्गल ( भौतिक द्रव्य ) का वर्णन भारतीय दार्शनिक कणाद ( अक्षपाद ) तथा कुछ

वैदेशिक ग्रीक्र डेमिक्रिटस आदि दार्शनिक ने भी किया है। वर्तमान आधुनिक विज्ञान में डालटन, आइंस्टीन, डॉ. रमण, मार्कोनी आदि ने भी पुद्गल की विभिन्न अवस्था का अध्ययन शोध-बोध किया है। तथापि जैन धर्म में जितना सूक्ष्म एवं व्यापक वर्णन पुद्गल के बारे में पाया जाता है उतना सूक्ष्म वर्णन आधुनिक विज्ञान में भी नहीं पाया जाता है। नीचे मैं कुछ प्राचीन उद्धरण देकर यह सिद्ध करना चाहूंगा कि लिखित रूप में जैन धर्म में किस तरह भौतिक विज्ञान एवं रसायनिक विज्ञान का वर्णन पाया जाता है, जिन ग्रंथों का मैं उद्धरण दे रहा हूं, वे तब लिखे गये थे जब आधुनिक विज्ञान का किसी भी प्रकार से सूत्रपात नहीं हुआ था, अमेरिका का आविष्कार नहीं हुआ था। तिल्लोय पण्णत्ति में पुद्गल का वर्णन निम्न प्रकार से पाया जाता है। यथा -

**स्कंध, देश, प्रदेश एवं परमाणु का स्वरूप**

**खंदं सयल-समत्थं तस्स य अद्धं भंणति देसो त्ति।**
**अद्धद्धं च प्रदेशो अविभागी होदि परमाणु।।( 95 )पृ.21 भाग 1**

सब प्रकार से समर्थ ( सर्वांशपूर्ण ) स्कंध, उसके अर्धभाग को देश और आधे के आधे भाग को प्रदेश कहते हैं। स्कंध के अविभागी जिसके और विभाग न हो सकें, ऐसे अंश को परमाणु कहते हैं।

**परमाणु का स्वरूप**

**सत्थेण सु-तिक्खेणं छेत्तुं भेत्तुं च जं किर ण सक्को।**
**जल-अणलादिहिं णासं ण एदि सो होदि परमाणु।।( 96 )**

जो अत्यन्त तीक्ष्णशस्त्र से भी छेदा या भेदा नहीं जा सकता तथा जल और अग्नि आदि के द्वारा नाश को भी प्राप्त नहीं होता, वह परमाणु है।

**एक्क-रस-वण्ण-गंधं दो फासा सद्द-कारणमसद्दं।**
**खंदंतरिदं दव्वं तं परमाणु भणंति बुधा।।( 97 )**

जिसमें ( पांच रसों में से ) एक रस ( पांच वर्णों में से ) एक वर्ण ( दो गंधों में से ) एक गंध और ( स्निग्ध-रूक्ष में से एक तथा शीत-उष्ण में से एक ऐसे ) दो स्पर्श ( इस प्रकार कुल पांच गुण ) हैं और जो स्वयं शब्द रूप न होकर भी शब्द का कारण है एवं स्कन्ध के अन्तर्गत है, उस द्रव्य को ज्ञानीजन परमाणु कहते हैं।

**अंतादि-मज्झ-हीणं अपदेसं इंदिएहिं ण हि गेज्झं।**
**जं दव्वं अविभत्तं तं परमाणु कंहति जिणा।।( 98 )**

जो द्रव्य अन्त, आदि एवं मध्य से विहीन, प्रदेशों से रहित ( अर्थात् एक प्रदेशी हो ) इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकने वाला और विभाग रहित है, उसे जिन भगवान् परमाणु कहते हैं।

**परमाणु का पुद्गलत्व**

**पूरंति गलंति जदो पूरण-गलणेहि पोग्गला तेण।**
**परमाणु च्चिय जादा इय दिट्ठं दिट्ठि-वादम्हि।।( 99 )**

क्योंकि स्कन्धों के समान परमाणु भी पूरते हैं और गलते हैं, इसीलिये पूरण-गलन क्रियाओं के रहने से वे भी पुद्गल के अन्तर्गत है, ऐसा दृष्टिवाद अंग में निर्दिष्ट है।

**परमाणु पुद्गल ही है**

**वण्ण-रस-गंध-फासे पूरण-गलणाइ सव्व कालम्हि।**
**खंदं पिव कुणमाणा परमाणु पुग्गला तम्हा।।( 100 )**

परमाणु स्कन्ध की तरह सब कालों में वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श इन गुणों में पूरण-गलन किया करते हैं, इसलिये वे पुद्गल ही हैं।

**नय-अपेक्षा परमाणु का स्वरूप**

**आदेस-मुत्तमुत्तो धातु-चउक्कस कारणं जो दु।**
**सो णेयो परमाणु परिणाम-गुणो य खंदस्स।।( 101 )**

जो नय विशेष की अपेक्षा कथंचित् मूर्त एवं कथंचित् अमूर्त है, चार धातु रूप स्कन्ध का कारण है और परिणमन-स्वभावी है, उसे परमाणु जानना चाहिए।

नियमसार में आचार्य कुंदकुंद देव ने भी पुद्गल एवं उनकी विभिन्न पर्यायों का वर्णन निम्न प्रकार किया है। यथा -

**अणुखंधवियप्पेण दु, पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं।**
**खंधा हु छप्पयारा, परमाणु चेव दुवियप्पो।।( 20 )पृ. 64**

अणु और स्कंध के भेद से पुद्गल द्रव्य दो प्रकार का होता है। स्कन्ध निश्चित रूप से छह प्रकार का है और परमाणु दो प्रकार का ही है।

सर्वप्रथम पुद्गल द्रव्य दो भेद सहित है, स्वभाव पुद्गल और विभाव पुद्गल। उसमें परमाणु स्वभाव पुद्गल और स्कंध विभाव पुद्गल कहलाता है। स्वभाव पुद्गल के भी दो भेद हैं - कार्य परमाणु और कारण परमाणु। स्कंध छह प्रकार के हैं - पृथ्वी, जल, छाया, चार इन्द्रियों के विषय कर्म के योग्य स्कंध और कर्म के अयोग्य ऐसे छह भेद हैं।

**अइथूलथूल थूलं थूलंसुहुमं च सुहुमथूलं च।**
**सुहुमं अइसुहुमं इदि, धरादियं होदि छब्भेयं।।( 21)**

अति स्थूल स्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, सूक्ष्म स्थूल, सूक्ष्म और अति सूक्ष्म। इस प्रकार से पृथ्वी आदि के छह भेद होते हैं।

**भूपव्वदमादीया, भणिदा आइथूलथूलमिदि खंधा।**
**थूला इदि विण्णेया, सप्पीजलतेलमादीया।।( 22 )**

भूमि, पर्वत आदि अतिस्थूल-स्थूल स्कंध कहे गये हैं। घी, जल, तेल आदि को स्थूल स्कंध जानना चाहिये।

**छयातवमादीया, थूलेदरखंधमिदि वियाणाहि।**
**सुहुमथूलेदि भणिया, खंधा चउरक्खविसया य।।( 23 )**

छाया, आतप, आदिस्थूल सूक्ष्म स्कंध है। ऐसा तुम जानो और चक्षु इन्द्रिय के बिना चार इन्द्रियों के विषय भूत स्कंध सूक्ष्मस्थूल इस प्रकार कहे गये हैं।

**सुहुमा हवंति खंधा, पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो।**
**तव्विवरीया खंधा, अइसुहुमा इदि परूवेंति।।( 24 )**

कर्म वर्गणा के योग्य स्कंध सूक्ष्म होते हैं, पुनः उससे विपरीत स्कंध अतिसूक्ष्म इस प्रकार से प्ररूपित किये जाते हैं।

वे सुमेरू, पृथ्वी आदि ( घन पदार्थ ) निश्चित रूप से अतिस्थूल-स्थूल पुद्गल हैं। घी, तेल, मट्ठा, दूध, जल आदि समस्त द्रव्य ( द्रव पदार्थ ) स्थूल पुद्गल हैं। छाया, आतप, अंधकार आदि स्थूल सूक्ष्म पुद्गल हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र इन्द्रियों के जो विषय स्पर्श, रस, गंध और शब्द हैं, वे सूक्ष्म स्थूल पुद्गल हैं। शुभ-अशुभ परिणाम के द्वारा आते हुए शुभ-अशुभ कर्मों के योग्य सूक्ष्म पुद्गल हैं और इनसे विपरीत कर्मों के अयोग्य पुद्गल सूक्ष्म पुद्गल हैं, यह अर्थ हुआ। यह विभाव पुद्गल का क्रम है।

**पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा।**
**कम्मतीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति।।**

उसी प्रकार से पंचास्तिकाय आगम ग्रंथ में कहा है -

''पृथ्वी, जल, छाया, चार इन्द्रियों के विषय कर्म के योग्य और कर्मातीत इस प्रकार से पुद्गलों के छह भेद होते हैं।''

मार्ग प्रकाश ग्रंथ में भी कहा है -

''स्थूल स्थूल उसके अनन्तर स्थूल, स्थूल सूक्ष्म इसके अनन्तर सूक्ष्म स्थूल

उसके बाद सूक्ष्म और उससे परे सूक्ष्म सूक्ष्म ऐसे छह प्रकार के पुद्गल होते हैं।''
यथा -

**स्थूलस्थूलास्ततः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्मास्ततः परे।**
**सूक्ष्मस्थूलास्ततः सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्मास्ततः परे।।**

गोम्मटसार जीवकांड में पुद्गल के अंतिम भेद अतिसूक्ष्म सूक्ष्म के उदाहरण में अंतर पाया जाता है -

**पुढवी जलं च छाया चउरिंदिय विसय कम्म परमाणु।**
**छव्विह भेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं।।( 602 )**

जिनेन्द्र देव ने पुद्गल द्रव्य के छह भेद कहे हैं - जैसे पृथ्वी, जल, छाया, चार इन्द्रियों के विषय, कर्म और परमाणु।
इन छह भेदों के क्या नाम हैं ?

**बादरबादरबादर बादर सुहुमं च सूक्ष्मस्थूलं च।**
**सुहमं च सुहमसुहम धरादियं होदि छब्भेयं।।( 603 )**

बादर बादर, बादर, बादर, सूक्ष्म, सूक्ष्म बादर सूक्ष्म और सूक्ष्म सूक्ष्म इस प्रकार पुद्गल द्रव्य के छह भेद हैं, जिनके उदाहरण उपर्युक्त पृथ्वी आदि हैं।

विशेष बात यह है कि यहां नियमसार ग्रंथ में अंतिम भेद सूक्ष्म सूक्ष्म हैं, उसके उदाहरण में कर्म के अयोग्य पुद्गल स्कंधों को लिया है और गोम्मट्टसार जीवकांड में परमाणु को लिया है। इसका कारण यह है कि प्रकृत ग्रंथ नियमसार में स्कंध के छह भेद किये हैं इस कारण उसमें परमाणु को ले नहीं सकते हैं, क्योंकि यहां परमाणु को अलग लेकर उसके भी दो भेद किये हैं और यहां पर सामान्यतया पुद्गल के ही छह भेद हैं। परमाणु को अलग नहीं किया है। अतएव वहां पर जीवकाण्ड में उन्हीं छह भेदों के उदाहरण में परमाणु को भी ले लिया, ऐसा समझना चाहिए।

**धाउचउक्कस्स पुणो, जं हेऊ कारणंति तं णेयो।**
**खंधाणं अवसाणं, णादव्वो कज्जपरमाणु।।( 25 )**

जो पुनः धातु चतुष्क-पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु का हेतु-कारण है, वह कारण परमाणु है, ऐसा जानना चाहिये। स्कन्धों का अवसान-अंत को कार्य परमाणु जानना चाहिये।

यह कारण परमाणु और कार्य परमाणु रूप द्रव्य के स्वरूप का कथन है -

पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार 'धातु' शब्द से कहे जाते हैं। इनका

जो हेतु है, वह कारण परमाणु है, वही जघन्य परमाणु स्निग्ध और रूक्ष गुणों के अनन्त का अभाव होने से अर्थात् स्निग्ध-रूक्ष गुणों का अंत हो जाने से एक स्निग्ध गुण और एक रूक्ष गुण वाला होने से, सम और विषम बंध के अयोग्य है, यह अर्थ हुआ। अर्थात् जिस परमाणु में एक ही गुण रहता है, वह जघन्य कहलाता है। वह बंध के अयोग्य है, 'न जघन्य गुणानां' जघन्य गुणों वाले परमाणुओं का बंध नहीं होता है, ऐसा वचन है। स्निग्ध और रूक्ष गुणों के अनंत के ऊपर दो गुण वाले का चार गुण वाले के साथ जो बंध है, वह समबन्ध विषय है और तीन गुण वाले परमाणु का पांच गुण वाले के साथ जो बन्ध है, वह विषम बंध है। यह उत्कृष्ट परमाणु है।

गलित होते हुए पुद्गलों का जो अन्त है, अंतिम अवस्था है उसमें जो स्थित है, जो अंतिम अवस्था को प्राप्त हुआ पुद्गल का हिस्सा है, वह कार्य परमाणु है। यहां पर कार्य, कारण तथा जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से अणु के चार भेद हो गये हैं। वह परमाणु द्रव्य अपने स्वरूप में स्थित है और उसमें विभाव का अभाव होने से वह परमस्वभाव वाला है।

उसी प्रकार प्रवचनसार में भी कहा गया है -

''परमाणु के परिणाम स्निग्ध हो या रूक्ष हो, सम अंश वाले हो या विषम अंश वाले हो, जघन्य अर्थात् एक अंश वाले को छोड़कर यदि समान से दो अधिक अंश वाले हो तो बंधते हैं।''

स्निग्ध रूप से दो अंश वाला परमाणु चार अंश वाले स्निग्ध परमाणु के साथ बंध का अनुभव करता है अर्थात् बंध जाता है अथवा रूक्ष रूप से तीन अंश वाला परमाणु पांच अंश वाले परमाणु के साथ संयुक्त होता हुआ बंधता है।

**अत्तादि अत्तमज्झं, अत्तंतं णेव इंदिए गेज्झं।**
**अविभागी जं दव्वं, परमाणु तं वियाणाहि।।( 26 )**

स्वयं जिसका स्वरूप ही आदि रूप है, स्वयं जिसका स्वरूप ही मध्य रूप है, स्वयं जिसका स्वरूप ही अंतरूप है। जो इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य नहीं है, ऐसा जो द्रव्य विभाग रहित है, तुम उसको परमाणु जानो।

**यह परमाणु का विशेष कथन है।**

जैसे सहज परम पारिणामिक भाव की विवक्षा का आश्रय लेने वाले ऐसे सहज निश्चयनय की अपेक्षा से नित्य निगोद और इतर निगोद से लेकर सिद्धक्षेत्र तक रहने वाले जीवों का अपने स्वरूप से प्रच्युत न होना कहा गया

है, उसी प्रकार से पंचम भाव रूप पारिणामिक भाव की अपेक्षा परमाणु द्रव्यों का परम स्वभाव रूप होने से आत्म परिणिति की आत्मा ही आदि आत्म परिणिति की आत्मा ही मध्य है और अपनी आत्मा ही अंत भी है, ऐसा परमाणु होता है इसलिये इन्द्रिय ज्ञान का विषय नहीं होने से वायु, अग्नि आदि से नष्ट न होने से अविभागी है। हे शिष्य्! वह परमाणु है, इस प्रकार से तुम जानो।

**एयरसरूवगंधं दोफासं तं हवे सहावगुणं।**
**विहावगुणमिदि भणिदं, जिणसमये सव्वपयडत्तं।।( 27 )**

जो एक रस, एक वर्ण, एक गंध वाला है और दो स्पर्श गुण वाला है, वह स्वभाव गुण वाला है जिसमें सब गुण प्रकट है वह विभाव गुण वाला है। इस प्रकार जिन शासन में कहा गया है।

चरपरा, कडुवा, कषायला, खट्टा और मीठा इन पांच रसों में से एक रस, सफेद, पीला, हरा, काला और लाल, इन पांच वर्णों में से कोई एक वर्ण, सुगंध और दुर्गन्ध में से कोई गंध, कठोर, कोमल, भारी, हल्का, ठंडा, गरम, चिकना और रूखा - इन आठ स्पर्शों में अंतिम चार में से अविरोधी दो स्पर्श जिनेन्द्र भगवान् के मत में इन्हें परमाणु के स्वभाव गुण कहा है। विभाव गुण वाला विभाव पुद्गल है। इस द्वयणुक आदि स्कन्ध रूप विभाव पुद्गल के जो विभाव गुण हैं, वे सभी इन्द्रियों के ग्रहण करने योग्य होते हैं, ऐसा अर्थ है।

**अण्णविरावेक्खो जो, परिणामो सो सहावपज्जाओ।**
**खंधसरूवेण पुणो, परिणामो सो विहावपज्जाओ।।( 28 )**

अन्य की अपेक्षा से रहित जो परिणाम है, वह स्वभाव पर्याय है और स्कंध रूप से जो परिणमन है, वह विभाव पर्याय है।

परमाणु पर्याय पुद्गल द्रव्य की शुद्ध पर्याय है जो कि परम पारिणामिक भाव लक्षण वाली है, वस्तु में होने वाली छह प्रकार की हानि वृद्धि रूप है, अति सूक्ष्म है, अर्थ पर्याय स्वरूप है और सादि-सांत होते हुए भी परद्रव्य से निरपेक्ष होने से शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय स्वरूप है अथवा निश्चित रूप से एक समय में भी उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक होने से सूक्ष्म ऋजु सूत्र नयात्मक है। स्कंध पर्याय स्वजातीय बंध के लक्षण से सहित होने से अशुद्ध है।

**पोग्गलदव्वं उच्चइ, परमाणु णिच्छएण इदरेण।**
**पोग्गलदव्वो ति पुणो ववेदसो होदि खंधस्स।।( 29 )**

निश्चय नय से परमाणु को पुद्गल द्रव्य कहा जाता है और व्यवहार नय से पुनः स्कन्ध को 'पुद्गल द्रव्य' ऐसा नाम होता है।

यह पुद्गल द्रव्य के व्याख्यान का उपसंहार है।

शुद्ध निश्चयनय से स्वभाव से शुद्ध पर्यायस्वरूप परमाणु को ही पुद्गल द्रव्य यह नाम होता है और इतर व्यवहार नय अपेक्षा से विभाव पर्याय स्वरूप स्कंधरूप पुद्गलों में पुद्गलपना उपचार से सिद्ध होता है। द्रव्य संग्रह में पुद्गल की विभिन्न पर्यायों का वर्णन वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है जिसका आविष्कार वर्तमान विज्ञान में भी बहुत कुछ हुआ है और बहुत कुछ बाकी है। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधेच्छु के लिये नीचे उसका कुछ वर्णन कर रहे हैं –

**सद्दो बंधो सुहुमोथूलो संठाणभेदतमछाया।**
**उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया।।( 16 )**

शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और आतप इन करके सहित जो हैं, वे सब पुद्गल द्रव्य की पर्याय हैं।

1. **शब्द** - दो स्कंध के परस्पर घर्षण या टकराव से जो कम्पन होता है, उससे तरंगें निकलती हैं। उसमें से जो तरंग कर्ण इन्द्रिय का विषय होती है, उसे 'शब्द' कहते हैं। जब दो स्कंध के टकराव से कम्पन होता है, उसमें लोकाकाश में व्याप्त शब्दवर्गणा भी कम्पित होती है एवं वह तरंग उत्पन्न केन्द्र से दशों दिशाओं में योग्य परिस्थिति को प्राप्त करके विश्व में फैलती जाती है। जिस प्रकार शांत जलाशय में ऊपर से एक पत्थर फेंकने पर पत्थर एवं जल में जो टकराव होता है, उससे तरंगें निकलती हैं और वे तरंगें तीर तक ( किनारे तक ) धीरे-धीरे फैलती जाती है। शक्तिशाली तरंगें तीर तक जाकर वापिस भी हो जाती है। इसी प्रकार शक्तिशाली तरंगे भी केन्द्रबिन्दु से दसों दिशाओं में फैलते-फैलते लोकाकाश तक जाकर वापिस भी होती हैं। जिस प्रकार बीजापुर कर्नाटक राज्य के गोल गुम्बज में शब्द उत्पन्न होने पर वह शब्द गुम्बज की दीवारों से टकराकर वापस होता है। इसे ही 'प्रतिध्वनि' कहते हैं। इस 'शब्द' तरंग को फैलने के लिए शब्द, वर्गणा के साथ-साथ धर्मद्रव्य गति माध्यम/ईथर की आवश्यकता होती है। आधुनिक रेडियो, बेतार के तार ( वायरलेस ), टेलीविजन, टेलीफोन आदि इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य करते हैं।

भाषात्मक तथा अभाषात्मक इस प्रकार शब्द दो प्रकार के हैं। उनमें भाषात्मक शब्द अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक भेद से दो प्रकार का है। उनमें भी संस्कृत, प्राकृत तथा उनके अपभ्रंश रूप पैशाची आदि भाषाओं के भेद आर्य, म्लेच्छ मनुष्यों के व्यवहार का कारण अक्षरात्मक भेद भी अनेक प्रकार का है और अनक्षरात्मक भेद द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों में तथा सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में है। अभाषात्मक शब्द भी प्रायोगिक तथा वैस्रसिक भेद से दो प्रकार का है। उनमें 'वीणा आदि से उत्पन्न शब्द को तत, ढोल आदि से उत्पन्न शब्द को वितत, मंजीरे तथा ताल से उत्पन्न हुए शब्द को घन और बाँस के छिद्र आदि से अर्थात् वंशी आदि से उत्पन्न शब्द को सुषिर कहते हैं।' इस श्लोक में कथित क्रम के अनुसार प्रायोगिक ( प्रयोग से उत्पन्न होने वाला ) शब्द चार प्रकार का है, और विस्रसा अर्थात् स्वभाव से उत्पन्न वैस्रसिक शब्द जो कि मेघ आदि से उत्पन्न होता है, वह अनेक प्रकार का है।

**2. बंध :** पुद्गल में स्निग्ध एवं रूक्ष गुण के कारण परस्पर में जो संश्लेष सम्बन्ध होता है, उसे बंध कहते हैं। बालु, सीमेन्ट और पानी की समानुपात से मिलाने पर जो बंध होता है, वह भी स्थूल पुद्गल बंध है। इसी प्रकार घर बनाने में जो गारा एवं ईंट पत्थर का संयोग होता है, वह भी पुद्गल बंध है। मिट्टी में पानी डालकर जो ईंट बनाते हैं, वह भी पुद्गल बंध है। अणु-अणु स्कन्ध एवं अणु-स्कन्ध में भी बंध होता है। कार्माणवर्गवा का जीव के साथ जो संश्लेष सम्बन्ध होता है वह भी बंध है। विशेष जिज्ञासु बंध प्रकरण को जानने के लिए मेरी 'कर्म का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण' एवं 'स्वतंत्रता के सूत्र' पुस्तक का अध्ययन करें।

**3. सूक्ष्मत्व -** सूक्ष्मत्व के दो भेद हैं - 1. अन्त्य 2. आपेक्षित। परमाणुओं में अन्त्य सूक्ष्मत्व हैं तथा बेल, आंवला और बेर आदि में आपेक्षित सूक्ष्मत्व हैं।

**4. स्थूलत्व -** स्थौल्य भी दो प्रकार का है - 1. अन्त्य 2.आपेक्षित। जगव्यापी महास्कन्ध में अन्त्य स्थौल्य है तथा बेर, आंवला और बेल आदि में आपेक्षित स्थौल्य हैं।

**5. संस्थान -** संस्थान का अर्थ आकृति ( आकार ) है। इसके दो भेद हैं - 1. इत्थंलक्षण 2. अनित्थंलक्षण। जिसके विषय में यह संस्थान इस प्रकार का है, यह निर्देश किया जा सके, वह इत्थंलक्षण संस्थान है। वृत्त, त्रिकोण,

चतुष्कोण, आयत और परिमंडल आदि ये सब इत्थंलक्षण संस्थान है तथा इसके अतिरिक्त मेघ आदि के आकार जो कि अनेक प्रकार के हैं और जिनके विषय में यह इस प्रकार का है यह नहीं कहा जा सकता है, वह अनित्थंलक्षण संस्थान हैं।

**6. भेद** - भेद के छह भेद हैं – 1. उत्कर 2. चूर्ण 3. खंड 4. चूर्णिका 5. प्रतर 6. अणुचटन। करोंत आदि से जो लकड़ी को चीरा जाता है वह उत्कर नाम का भेद है। जौ और गेहूँ आदि का जो सत्तू और कनक आदि बनता है, वह चूर्ण नाम का भेद है। घट आदि के जो कपाल और शर्करा आदि टुकड़े होते हैं वह खंड नाम का भेद है। उड़द और मूंग आदि का जो खंड किया जाता है, वह चूर्णिका नाम का भेद है। मेघ के जो अलग-अलग पटल आदि होते हैं, वह 'प्रतर' नाम का भेद है। तपाये हुए लोहे के गोले आदि को घन आदि से पीटने पर जो स्फुलिंगे निकलते हैं, वह 'अणु-चटन' नाम का भेद है।

**7. अंधकार** - जिससे दृष्टि में प्रतिबंध होता है और जो प्रकाश का विरोधी है। वह तम कहलाता है। अंधकार कोई अवास्तविक/शून्य वस्तु नहीं है, परन्तु यह प्रकाश के विरोधी एक पौद्गलिक पर्याय है। इस अंधकार में भी अनंतानंत परमाणु रूप स्कंध का सद्भाव है। उदाहरण के लिए जैसे दीपक जल रहा है, उस समय उसके आसपास का योग्य वातावरण प्रकाशित रहता है, क्योंकि उस समय दीपक के प्रकाश के कारण आसपास में व्याप्त स्कंध प्रकाशरूप में परिवर्तित हो जाता है, परन्तु दीपक बंद होते ही प्रकाशरूप स्कंध अंधकाररूप स्कंध में परिवर्तित हो जाता है।

**8. छाया** - प्रकाश को रोकने वाले पदार्थों के निमित्त से जो पैदा होती है, वह छाया कहलाती है। उनके दो भेद हैं – एक तो वर्णादि के विकार रूप से परिणत हुई और दूसरी प्रतिबिम्ब रूप/प्रकाश के विपरीत दिशा में स्थूल अपारदर्शी स्कंध के कारण स्कंध की छाया पड़ती है। जल में योग्य किनारे स्थित स्थूल वस्तु का प्रतिबिंब पड़ता है। इसी प्रकार दर्पण में भी प्रतिबिंब पड़ता है। कैमरे में छाया रूप प्रतिबिंब पड़ता है, यह रंगीन कैमरे में रंगीन एवं व्हाइट ब्लैक कैमरे में व्हाइट ब्लैक प्रतिबिम्ब पड़ता है इसलिए इसे छायाचित्र कहते हैं। इस सिद्धान्त से ही फोटो, चलचित्र, सिनेमा ( विडियो कैसेट ) आदि बनते हैं।

**9. आतप** - जो सूर्य के निमित्त से उष्ण प्रकाश होता है, उसे 'आतप' कहते हैं।

**10. उद्योत** - चन्द्र चंद्रकांत मणि और जुगनू से जो उष्णता रहित शीतल स्निग्ध प्रकाश निकलता है उसे 'उद्योत' कहते हैं। गोम्मट्टसार कर्मकांड में आतप एवं उद्योत की परिभाषा दी गई है। यथा –

**मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा।**
**आइच्चे तेरिच्छे उणहूणपहा हु उज्जोओ।।( 33 )**

आग के मूल और प्रभा दोनों ही उष्ण रहते हैं। इस कारण उसके स्पर्श नामकर्म के उष्ण स्पर्श नामकर्म का उदय जानना और जिसकी केवल प्रभा किरणों के फैलाव ही उष्ण हो, उसको आतप कहते हैं। इस आतप नामकर्म का उदय सूर्य के बिम्ब/विमान में उत्पन्न हुए बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक के तिर्यंच जीवों को समझना तथा जिसकी प्रभा भी उष्णता रहित हो, उसको नियम से 'उद्योत' जानना।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य 8 लाख 80 हजार मील व्यास वाला एक उतप्त गैस का पिण्ड है। इसमें हर समय अनेक अणुबम विस्फोट होने से जो ऊर्जा निकलती है, उतना प्रकाश निकलता है। कुल ज्ञात 107 तत्त्वों में से पचास तत्त्व सूर्य के वायुमंडल में गैसों के रूप में उपस्थित पाए गए हैं। हाइड्रोजन, हीलियम, ऑक्सीजन, मैग्नीशियम, लोहा, सिलिकान, जिंक, पोटेशियम, कैल्सियम, एल्युमिनियम, तांबा, निकल, क्रोमियम, कोबाल्ट आदि। सूर्य के केन्द्र में होने वाली क्रियाओं ( फ्यूजन रिएक्शन ) के लिए हाइड्रोजन ईंधन का काम करती है। सूर्य की बाहरी सतह का तापमान 5500 डिग्री सेल्सियस और केन्द्र का तापमान लगभग 20 अरब डिग्री सेल्सियस माना गया है। सूर्य ताप के रूप में शक्ति उत्पन्न करने में अपने कुल पदार्थ का चार अरब टन प्रति सैकण्ड खर्च करता है। सूर्य से पृथ्वी के एक वर्ग मील को 46,400 हार्स पावर और पूरी पृथ्वी को तीन लाख तीस हजार हार्स पावर शक्ति ताप के रूप में मिलती है।

चन्द्र एक उपग्रह है। सूर्य तो एक नक्षत्र होने के कारण एवं उष्ण गैसों का पिण्ड होने के कारण वह स्वप्रकाशी है, किन्तु चन्द्र एक ठंडा उपग्रह होने के कारण इसमें स्वप्रकाश नहीं है, परन्तु सूर्य से प्रकाश होने के कारण परप्रकाशी है। अभी तक जैन धर्म एवं विज्ञान के इस सिद्धान्त में जो अंतर है, उसका पूर्ण निराकरण एवं समन्वय नहीं हो पाया है। यह एक शोध का विषय

है। इसका कुछ वर्णन मैंने मेरी कृति 'विश्व विज्ञान रहस्य' में किया है, जिज्ञासुओं के लिए अवलोकनीय है। सम्पूर्ण भौतिक विश्व की संरचना पुद्गल से हुई है। दृश्यमान समस्त विश्व पौद्गलिक ही है। संसारी जीव के लिए पुद्गल की आवश्यकता सर्वोपरि है। अनादिकाल से जीव एवं पुद्गल का संबंध होने के कारण संसारी जीव के शरीर, इन्द्रियां एवं मन यहां तक कि अशुद्ध भाव भी पुद्गल से जायमान हैं, प्रभावित है। आचार्य उमास्वामी ने भी कहा है यथा -

**शरीरवाङ्मन प्राणापानाः पुद्गलानाम्।**

**शरीर वांगमनस्प्राण-अपानाः जीवानां पुद्गलानां उपकारः।।( 19 )**

शरीर, वचन, मन और प्राणापान यह पुद्गलों का उपकार है।

इस सूत्र में संसारी जीवों के लिए पुद्गल का क्या-क्या उपकार है, उसका वर्णन किया है। संसारी जीवों के पांचों शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास पुद्गल से बनते हैं अर्थात् शरीर आदि पुद्गल स्वरूप है। गोम्मट्टसार जीवकाण्ड में विश्व में स्थित 23 पौद्गलिक वर्गणाओं में से किन-किन वर्गणाओं से उपरोक्त शरीरादि बनते हैं, उसका वर्णन निम्न प्रकार किया है -

**आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो।**

**णिस्सासो वि य तेजो वग्गणखंधा दु तेजगं।।( 60 )पृ.272**

तेईस जाति की वर्गणाओं में से आहारवर्गणा के द्वारा औदारिक, वैक्रियक, आहारक ये तीन शरीर और श्वासोच्छ्वास होते हैं तथा तोजोवर्गणा रूप स्कंध के द्वारा तैजस शरीर बनता है।

**भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो।**

**अट्ठविहकम्मदव्वं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।( 608 )**

भाषा वर्गणा के द्वारा चार प्रकार का वचन, मनोवर्गणा के द्वारा हृदय स्थान में अष्ट दल कमल के आकार का द्रव्यमान तथा कार्माण वर्गणा के द्वारा आठ प्रकार के कर्म बनते हैं, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

**सुखदुःख जीवित मरणोपग्रहाश्च।( 20 )पृ.302**

**जीवानां सुख-दुःख जीवित-मरण-उपग्रहाश्च-पुद्गलानामुपकारो भवति।**

सुख-दुःख जीवित-मरण ये भी पुद्गलों के उपकार हैं।

19 नंबर सूत्र में बताया गया है कि परिणाम विशेष से ग्रहीत पुद्गल जैसे

शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास चतुष्टय क्रम से गमन, व्यवहरण, चिन्तवन और श्वासोच्छ्वास रूप से जीव का उपकार करते हैं, वैसे सुख आदि भी पुद्गलकृत उपकार हैं, उसको बताने के लिए इस सूत्र में कहते हैं कि सुख, दुःख, जीवन, मरण भी पुद्गल कृत उपकार हैं।

उपर्युक्त क्रियाकलापों के अतिरिक्त पुद्गल के और भी विभिन्न क्रियाकलाप है। वर्तमान वैज्ञानिक चमत्कार अधिकांशतः पौद्गलिक चमत्कार ही है। बैलगाड़ी से लेकर जेट-विमान तक, लकड़ी की पेटी से लेकर सुपर कम्प्यूटर तक, घी के दीपक से लेकर विद्युत प्रकाश तक, लाठी से लेकर अणुबम तक, चश्मा से लेकर शक्तिशाली दूरबीन एवं सूक्ष्मदर्शी यंत्र तक पौद्गलिक ही हैं। इसके साथ-साथ आंकुचन ( सिकुड़ना ) प्रसारण ( फैलना ) दूध-दही, भोजन-पानी, वस्त्र, वायु,मिट्टी, औषधि आदि पुद्गल की विभिन्न पर्यायें हैं।

रेडियो-टेपरिकार्डर, टेलिफोन, बेतार के तार ( वायरलेस ), टेलिविजन आदि वैज्ञानिक आविष्कार अधिकांशतः पुद्गल की शब्द पर्याय पर ही निर्भर है। स्कंध के घर्षण से जो कंपन होता है, उससे शब्द उत्पन्न होता है। उस शब्द को विभिन्न उपकरणों से एवं सिद्धान्तों से शब्द की गति, शक्ति, आकार-प्रकार में परिवर्तन, परिर्द्धन, संस्करण करके उपरोक्त यंत्रादि का आविष्कार हुआ है। शब्द का विशेष वर्णन कुंदकुंद देव ने पंचास्तिकाय में निम्न प्रकार से किया है -

**सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणुसंगसंघादो।**
**पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादिगो णियदो।।( 79 )पृ.221**

स्कंध के दो प्रकार के यहां लेने योग्य है। एक तो भाषावर्गणा योग्य स्कंध जो शब्द के भीतरी या मूल कारण हैं और सूक्ष्म है तथा निरन्तर लोक में तिष्ठ रहे हैं। दूसरी बाहरी कारणरूप स्कंध जो ओंठ आदि का व्यापार घंटा आदि का हिलाना व मेघादिक का संयोग से स्थूल स्कंध हैं। ये कहीं-कहीं लोक में हैं, सर्व ठिकाने नहीं हैं। जहां इस अंतरंग बहिरंग दोनों सामग्री का मेल होता है, वहीं भाषावर्गणा शब्द रूप से परिणमन कर जाती है, सर्व जगह नहीं। ये शब्द नियम से भाषावर्गणाओं से उत्पन्न होते हैं। इनका उपादान कारण भाषावर्गणा है, न कि यह शब्द आकाश द्रव्य का गुण है। यदि यह शब्द आकाश का गुण

हो तो कर्ण इन्द्रिय से सुनाई न पड़े, क्योंकि आकाश का गुण अमूर्त्तिक होना चाहिए अथवा गाथा में जो 'उप्पादगो' शब्द है, उससे यह लेना कि यह शब्द 'प्रायोगिक' है। पुरुष आदि की प्रेरणा से पैदा होता है और 'णियदो' शब्द है, उससे यह लेना कि शब्द 'वैस्रसिक' या स्वाभाविक है, जैसे मेघ आदि से होता है अथवा शब्द के दो भेद हैं – भाषारूप और अभाषारूप।

**भाषात्मक शब्द के दो प्रकार हैं -** अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक। जो संस्कृत प्राकृत आदि रूप आर्य व अनार्यों के वचन-व्यवहार का कारण है, सो अक्षरात्मक हैं। द्वीन्द्रिय आदि के शब्द तथा केवली भगवान् की दिव्यध्वनि सो अनक्षरात्मक हैं। अब अभाषारूप को कहते हैं, इसके भी दो भेद हैं – एक प्रायोगिक दूसरे वैश्रसिक। जो पुरुष के प्रयोग से हो सो प्रायोगिक है, जैसे तत, वितत, घन, सुषिरादि बाजों के शब्द। कहा है –

वीणा, सितार आदि तार के बाजों को तत जानना चाहिए। ढोल आदि को वितत घंटा घड़ियाल आदि के शब्द को घन तथा बांसुरी आदि फूंक के बाजों को सुषिर कहते हैं। जो मेघ आदि के कारण से शब्द होते हैं, वे वैश्रसिक या स्वाभाविक है।

## शेष अमूर्तिक द्रव्यों के गुण

**आगासस्सवगाहो धम्मद्दव्वस्स गमणहेदुत्तं।**
**धम्मेदरदव्वस्स दु गुणो पुणो ठाणकारणदा।।( 133 )**
**कालस्स वट्टणा से गुणोवओगो त्ति अप्पणो भणिदो।**
**णेया संखेवादो गुणा हि मुत्तिप्पहीणाणं।।( 134 )**

**The peculiar property of Akasa is to give room; of the Dharma-substance, to be a cause of movement; of Adharma, to be cause of stationariness; of kala, to mark the continuity; of soul, the manifestation of consciousness; these are to be known, in short the peculiar characteristics of non-concrete substances.**

( आगासस्सवगाहो ) आकाश द्रव्य का विशेष गुण सर्व द्रव्यों को जगह देना ऐसा अवगाह-हेतुत्व गुण है, ( धम्मद्दव्वस्स गमणहेदुत्तं ) धर्म द्रव्य का विशेष गुण जीव पुद्गलों के गमन में कारण ऐसा गमन हेतुत्व है, ( पुणो धम्मेदरदव्वस्स दु गुणो ठाण कारणदा ) तथा अधर्म द्रव्य का विशेष गुण जीव पुद्गलों की स्थिति का कारण स्थान कारणता है, ( कालस्स वट्टणा से ) काल

द्रव्य का विशेष गुण सभी द्रव्यों में समय-समय परिणमन की प्रवृत्ति का कारण वर्तना है और ( अप्पणो गुणोवओगोत्ति भणिदो ) आत्मा का विशेष गुण उपयोग है, ऐसा कहा गया है।( हि ) निश्चय से ( मुत्तिप्पहीणाणं गुणा ) मूर्ति रहित द्रव्यों के विशेष गुण इस तरह ( संखेवादो णेया ) संक्षेप से जानने योग्य है।

सर्व द्रव्यों को साधारण रूप से अवगाह देने का कारणपना आकाश का ही विशेष गुण है, क्योंकि अन्य द्रव्यों में यह गुण असंभव है इसलिये इस विशेष गुण से आकाश का निश्चय होता है। एक समय में गमन करते हुए सर्वजीव तथा पुद्गलों को साधारण गमन में हेतुपना धर्म द्रव्य का ही विशेष गुण है, क्योंकि अन्य द्रव्यों में यह असंभव है। इसी गुण से धर्म द्रव्य का निश्चय होता है। इसी तरह एक समय में स्थिति करते हुए जीव पुद्गलों को साधारण स्थिति में कारणपना अधर्म द्रव्य का ही विशेष गुण है, क्योंकि अन्य द्रव्यों में यह असम्भव है। इसी गुण से काल द्रव्य का निश्चय होता है। सर्व जीवों में साधारण ऐसा सर्व तरह निर्मल ऐसा केवलज्ञान और केवलदर्शन जीव द्रव्य का विशेष गुण है, क्योंकि अन्य पाँच अचेतन द्रव्यों में यह असम्भव है, इसी विशेष उपयोग गुण से शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव परमात्म द्रव्य का निश्चय होता है। यहां पर यह प्रयोजन है कि यद्यपि पांच द्रव्य जीव का उपकार करते हैं तो भी इनको दुःख का कारण जान करके जो अक्षय और अनंत सुख आदि का कारण विशुद्ध ज्ञान दर्शन - स्वभाव रूप परमात्म द्रव्य है, उसी को ही मन से ध्याना चाहिये। वचन से उसका ही वर्णन करना चाहिये तथा शरीर से उस ही का साधक जो अनुष्ठान या क्रिया कर्म है, उसको करना चाहिये।

**समीक्षा** – आचार्य श्री ने इस गाथा द्वय में अमूर्त्तिक आकाश द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य तथा काल द्रव्य के विशेष गुणों का वर्णन किया है। विश्व में जो 6 मौलिक द्रव्य हैं, उनमें से पुद्गल स्वाभाविक रूप से मूर्तिक है तथा संसारी जीव कर्म बंध की अपेक्षा मूर्त्तिक है। विश्व की भौतिक संरचना में पुद्गल द्रव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है तो सब द्रव्यों को अवकाश देने में आकाश द्रव्य का विशेष योगदान है। जीव एवं पुद्गल को गति करने के लिए धर्मद्रव्य का उदासीन रूप से योगदान है तो गतिपूर्वक स्थिति करते हुए अधर्म द्रव्य को उदासीन रूप से सहायक है। छहों द्रव्यों में जो परिणमन होता है उस

परिणमन के लिए काल द्रव्य सहायक है। विश्व में सबसे महत्त्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ द्रव्य जीव द्रव्य हैं, क्योंकि सम्पूर्ण द्रव्य का ज्ञाता द्रष्टा जीव ही है और सुखानुभव करने वाला जीव ही है। स्वतंत्रता के सूत्र ( तत्त्वार्थ सूत्र ) में आचार्य उमास्वामी ने आकाशादि चार अमूर्त्तिक द्रव्य का वर्णन निम्न प्रकार से किया है -

## आकाश का उपकार या लक्षण

**आकाशस्यावगाहः ।( 18 )पृ.297**

**जीवानामजीवानाम् च आकशस्य उपकारः अवगाहः ।।**

**The function of space, i.e. Akasa is to give place to all other substances.**

अवकाश देना आकाश का उपकार है।

धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य एवं काल द्रव्य को अवकाश देने वाला आकाश द्रव्य है। आकाश सबसे विशालतम द्रव्य है एवं सर्वव्यापी के साथ-साथ अवगाहनत्व शक्तियुक्त होने के कारण आकाश द्रव्य अन्य द्रव्यों को अवकाश देता है। द्रव्यसंग्रह में कहा भी है -

**अवगासदाण जोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं।**

जो जीव आदि द्रव्यों को अवकाश देने वाला है उसे आकाश द्रव्य जानना चाहिये। पंचस्तिकाय में भी कहा है -

**सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च।**

**जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं।।( 90 )**

लोक में जीवों को और पृद्गलों को वैसे ही शेष समस्त द्रव्यों को जो सम्पूर्ण अवकाश देता है, वह आकाश है।

## धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार व लक्षण

**गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ।।( 17 )**

**जीवानाम् पुद्गलानाम् च गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरूपकारो भवति।**

**The function of Dharma and Aadharma is to support respectively the motion and rest of souls and matter.**

गति और स्थिति में निमित्त होना यह क्रम से धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है।

इस विश्व में जीव और पुद्गति गति शक्तियुक्त है अर्थात् ये दोनों ही द्रव्य

एक स्थान से दूसरे स्थान को गमन करते हैं। इन दोनों की गति सहित स्थिति भी होती है। गति सहित स्थिति करने के लिए दोनों समर्थ होते हुए भी गति स्थिति के लिए बाह्य निमित्त की आवश्यकता पड़ती है। गति के लिए धर्म द्रव्य उदासीन कारण है एवं स्थिति के लिए अधर्म द्रव्य उदासीन कारण है। यहां पर धर्म द्रव्य एक अमूर्ति गति माध्यम द्रव्य है, न कि पुण्य या धर्म है। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य स्थिति माध्यम अमूर्ति द्रव्य है न कि पाप है।

जिस प्रकार स्वशक्ति से गमन करती हुई रेल के लिए रेल की पटरी की परम आवश्यकता है, रेल की पटरी के बिना रेल चल नहीं सकती है, उसी प्रकार, धर्म द्रव्य क्रिया के लिए नितांत आवश्यक है। विश्व की समस्त स्थानांतरित रूप क्रिया ( एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए गमन ) बिना धर्म द्रव्य की सहायता से नहीं हो सकती है। यहां तक कि श्वासोच्छ्वास के लिए रक्त संचालन के लिये, पलक झपकने के लिए, अंग-प्रत्यंग संकोच-विस्तार के लिए, तार, बेतार के माध्यम से शब्द भेजने के लिए, रेडियो, टी.वी., सिनेमा आदि में संवाद एवं चित्र भेजने के लिए, सुनने के लिये, ग्रह से ग्रहान्तर तक संवाद, चित्र भेजने के लिये, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षण आदि के गमनागमन के लिये धर्म द्रव्य की सहायता नितांत आवश्यक है। धर्म द्रव्य के अभाव में ये क्रियायें नहीं हो सकती है।

जैसे गमन करते हुए पथिक वृक्ष की छाया में बैठता है तब छाया ठहरने के लिये उदासीन कारण बनती है। जैसे - रेल को ठहराने के लिए स्टेशन की रेल पटरी सहायक होती है, बैठने के लिये कुर्सी, पाट, चटाई आदि सहायक होती है, किन्तु कुर्सी आदि जबरदस्ती मनुष्य को पकड़कर नहीं बैठाती। वैसे ही धर्मद्रव्य जीव और पुद्गल को गति में सहायक होता है। इसलिये उदासीन शब्द कहा है जो कि महत्त्व का है।

अधर्म द्रव्य के अभाव में स्थिर रहने रूप क्रिया नहीं हो सकती है। इसके अभाव से विश्व के सम्पूर्ण जीव एवं पुद्गल अनिश्चित एवं अव्यवस्थित रूप से सर्वदा चलायमान ही रहेंगे। टेबल के ऊपर पुस्तक रखने पर दूसरे समय में पुस्तक वहां पर नहीं रहेगी। गाड़ी को रोकने पर भी गाड़ी नहीं रुकेगी, कोई भी व्यक्ति कुछ निश्चित समय के लिए एक ही स्थान में खड़ा या बैठा नहीं रह सकता है। यहां तक कि सम्पूर्ण विश्व यदृच्छाभाव से यत्र-तत्र फैलकर

अव्यवस्थित हो जायेगा और वर्तमान में जो विश्व की संगठन/व्यवस्था ( संरचना ) है, वह नहीं रह सकती है। शरीर का भी जो संगठन है, वह भी फैलकर विस्फोट होकर यत्र-तत्र बिखर जायेगा।

धर्म द्रव्य के साथ वैज्ञानिक जगत् के ईथर कुछ हद तक समान मान सकते हैं, परन्तु जैन धर्म में जो तथ्य पूर्ण वर्णन है, वह वर्णन वैज्ञानिक जगत् के ईथर में नहीं पाया जाता है। ईथर का शोध अभी-अभी हुआ है, किन्तु धर्म द्रव्य का वर्णन जैन धर्म में प्राचीन काल से है।

आधुनिक विज्ञान की अपेक्षा जो केन्द्राकर्षण शक्ति है उसके साथ अधर्म द्रव्य की कुछ सदृश्यता पायी जाती है। परन्तु अधर्म द्रव्य की जो सटीक वैज्ञानिक सूक्ष्म परिभाषा है, वह केन्द्राकर्षण शक्ति में नहीं है। पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्द देव ने धर्म तथा अधर्म का सविस्तार वर्णन निम्न प्रकार किया है -

**धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं।**
**लोगागाढं पुट्ठं विहुलमसंखादियपदेसं।।( 83 )**

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण का अत्यन्त अभाव होने से धर्मास्तिकाय वास्तव में अमूर्त स्वभाव वाला है और इसलिये अशब्द है। समस्त लोकाकाश में व्याप्त होकर रहने से लोकव्यापक है, अयुतसिद्धि ( असंयोगी ) प्रदेश वाला होने से अखण्ड है, स्वभाव से ही सर्वतः विस्तृत होने से विशाल है, निश्चयनय से एक प्रदेशी ( अखण्ड ) होने पर भी व्यवहारनय से असंख्यात प्रदेशी है।

**अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं।**
**गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं।।( 84 )**

धर्म ( धर्मास्तिकाय ) अगुरुलघु गुणों रूप से अर्थात् अगुरुलघुत्व नाम का जो स्वरूप प्रतिष्ठत्व के कारणभूत स्वभाव उसके अविभाग प्रतिच्छेदोंरूप से जो कि प्रतिसमय होने वाली षट्स्थानपतित वृद्धि हानि वाले अनंत हैं, उनके रूप से सदैव परिणमित होने से उत्पाद व्यय वाला है, तथापि स्वरूप से च्युत नहीं होता है इसीलिये नित्य है, गतिक्रिया रूप से परिणमित होने से ( जीव पुद्गलों को ) उदासीन अविनाभावी सहायमात्र होने से गति क्रिया परिणाम को कारणभूत है, अपने अस्तित्व मात्र से निष्पन्न होने के कारण स्वयं अकार्य है।

**उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहकरं हवदि लोए।**
**तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणाहि।।( 85 )**

जिस प्रकार पानी स्वयं गमन न करता हुआ और ( पर को ) गमन न कराता हुआ, स्वमेव गमन करती हुई मछलियों को उदासीन अविनाभावी सहायरूप से कारण मात्र रूप से गमन में अनुग्रह करता है, उसी प्रकार धर्म ( धर्मास्तिकाय ) भी स्वयं गमन करता हुआ और ( परको ) गमन न कराता हुआ, स्वयमेव गमन करते हुए जीव पुद्गलों को उदासीन अविनाभावी सहायरूप से कारण मात्र रूप से गमन में अनुग्रहण करता है ( सहायक होता है )।

**जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं।**
**ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पढवीव।।( 86 )**

जैसे पहले धर्म द्रव्य के सम्बन्ध में कहा था कि, वह रस आदि से रहित अमूर्तिक है, नित्य है, अकृत्रिम है, परिणमनशील है वह लोकव्यापी है, तैसे ही अधर्म द्रव्य को जानना चाहिये। विशेष यह है कि धर्मद्रव्य तो मछलियों के लिये जल की तरह जीव पुद्गलों के गमन में बाहरी सहकारी कारण है। यह अधर्म द्रव्य जैसे पृथिवी स्वयं पहले से ठहरी हुई दूसरों को न ठहराती हुई घोड़े आदि के ठहरने से बाहरी सहकारी कारण है, वैसे स्वयं पहले से ही ठहरा हुआ व जीव पुद्गलों को न ठहराता हुआ उनके स्वयं ठहरते हुए उनके ठहरने में सहकारी कारण है।

**जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदि।**
**दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य।।( 87 )**

धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य विद्यमान हैं, क्योंकि लोक और अलोक का विभाग अन्यथा नहीं बन सकता। जीवादि सर्व पदार्थों के एकत्र अस्तित्व रूप लोक है, शुद्ध एक आकाश से अस्तित्व रूप अलोक है। वहां जीव और पुद्गल स्वरस से ही ( स्वभाव से ही ) गति परिणाम को तथा गतिपूर्वक स्थिति परिणाम को प्राप्त होते हैं। यदि गति परिणाम अथवा गतिपूर्वक स्थिति परिणाम का स्वयं अनुभव ( परिणमन ) करने वाले उन जीव पुद्गल को बहिरंग हेतु धर्म और अधर्म न हों तो जीव पुद्गल के निरर्गल गति परिणाम और स्थिति परिणाम होने से अलोक में भी उनका ( जीव-पुद्गल का ) होना

किससे निवारा जा सकता है। ( किसी से नहीं निवारा जा सकता ) इसलिये लोक और अलोक का विभाग सिद्ध नहीं होगा, किन्तु यदि जीव-पुद्गल की गति के और गतिपूर्वक स्थिति के बहिरंग हेतुओं के रूप में धर्म और अधर्म का सद्भाव स्वीकार किया जाये तो लोक और अलोक का विभाग ( सिद्ध ) होता है। ( इसीलिये धर्म और अधर्म विद्यमान हैं। ) धर्म और अधर्म दोनों परस्पर पृथग्भूत अस्तित्व से निष्पन्न होने से विभक्त ( भिन्न ) हैं, एक क्षेत्रावगाही होने से अविभक्त ( अभिन्न ) हैं। समस्त लोक में प्रवर्तमान जीव पुद्गलों की गति स्थिति में निष्क्रिय रूप से अनुग्रह करते हैं, इसलिये लोक प्रमाण हैं।

**णय गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स।**
**हवदि गदिस्स प्पसरो जीवाणं पुग्गलाणं च।।( 88 )**

जैसे घोड़ा स्वयं चलता हुआ अपने ऊपर चढ़े हुए सवार के गमन का कारण होता है, ऐसा धर्मास्तिकाय नहीं है, क्योंकि वह क्रियारहित है, किन्तु जैसे जल स्वयं ठहरा हुआ है तो भी स्वयं अपनी इच्छा से चलती हुई मछलियों के गमन में उदासीनपने से निमित्त हो जाता है, वैसे धर्म द्रव्य भी स्वयं ठहरा हुआ अपने उपादान कारण से चलते हुए जीव और पुद्गलों को बिना प्रेरणा किये हुए उनके गमन में बाहरी निमित्त हो जाता है। यद्यपि धर्मस्तिकाय उदासीन है तो भी जीव पुद्गलों की गति में हेतु होता है। जैसे जल उदासीन है तो भी वह मछलियों के अपने ही उपादान बल से गमन में सहकारी होता है। जैसे स्वयं ठहरते हुए घोड़ों को पृथ्वी व पथिकों को छाया सहायक है, वैसे ही अधर्मास्तिकाय स्वयं ठहरा हुआ है तो भी अपने उपादान कारण से ठहरे हुए जीव और पुद्गलों की स्थिति में बाहरी कारण होता है।

**विज्जदि जेसिं गमणं णाणं पुण तेसिमेव संभवदि।**
**ते सगपरिणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति।।( 89 )**

धर्मद्रव्य कभी अपने गमन हेतुपने को छोड़ता नहीं है, तैसे ही अधर्म द्रव्य कभी स्थिति हेतुपने को छोड़ता नहीं है। यदि ये ही गमन और स्थिति कराने में मुख्य प्रेरक कारणक हो जावें तो गति और स्थिति में परस्पर ईर्ष्या हो जावे। जिन द्रव्यों की गति हो वे सदा ही चलते रहें और जिनकी स्थिति हो वे सदा ही

ठहरे रहे उनकी कभी गति न हो। ऐसा नहीं दिखलाई पड़ता है किन्तु यह देखा जाता है कि, जो गमन करते हैं वे ही ठहरते हैं या जो ठहरे हुए हैं वे ही गमन करते हैं। इसी से सिद्ध है कि ये धर्म और अधर्म मुख्य हेतु नहीं हैं। यदि ये मुख्य हेतु नहीं है तो जीव और पुद्गलों की कैसे गति और स्थिति होती है ? इसलिये कहते हैं, वे निश्चय से अपनी ही परिणमन शक्तियों से गति या स्थिति करते हैं। धर्म, अधर्म द्रव्य मात्र उदासीन सहायक है।

## काल का उपकार

**वर्तना परिणाम क्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य।।( 22 ) त. सूत्र**

**वर्तना परिणाम क्रिः परत्वापरत्वे च जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकारो भवति।**

**The function of time is to assist substances in their continuing to exist (vartana in their modifications (parinama) in their movements (Kriya) and in their priority (paratva) and non-priority or juniority in time (aparatva).**

वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये काल के उपकार हैं। विश्व में, जड़-चेतन में, मूर्तिक-अमूर्तिक में जो सूक्ष्म-स्थूल, शुद्ध-अशुद्ध परिणमन ( परिवर्तन ) होता है, वह परिणमन दो कारणों से होता है - ( 1 ) उपादान कारण ( 2 ) निमित्त कारण। उपादान कारण को मुख्य कारण ( स्व कारण ) एवं निमित्त कारण को गौण कारण ( बाह्य कारण ) कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य में परिणमन-शक्ति ( अगुरुलघुत्व गुण ) होती है जो कि परिणमन के लिये मुख्य कारण है। इस मुख्य कारण को सहायता पहुंचाने वाला गौण कारण है। जैसे कुम्हार का चक्र नीचे के पत्थर के आधार पर परिभ्रमण करता है, इस परिभ्रमण में चक्र की स्वयोग्यता मुख्य कारण है और नीचे का पत्थर गौण कारण है। इसी प्रकार द्रव्य परिणमन में स्वयोग्यता मुख्य कारण और कालद्रव्य गौण कारण है। इसलिये इस सूत्र में वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व काल द्रव्य के उपकार हैं, यह कहा है।

**(1) वर्तना** - धर्मादिक द्रव्य अपनी नवीन पर्याय के उत्पन्न करने में स्वयं प्रवृत्त होते हैं, तो भी वह बाह्य सहकारी कारण के बिना नहीं हो सकती, इसलिए उसे प्रवर्ताने वाला काल है। यही 'वर्तना लक्षण' काल द्रव्य का उपकार है।

**(2) परिणाम** - एक धर्म की निवृत्ति करके दूसरे धर्म के पैदा करने रूप और

परिस्पन्द से रहित द्रव्य की जो पर्याय है, उसे परिणाम कहते हैं।

**(3) क्रिया** - द्रव्य में जो परिस्पन्द रूप परिणमन होता है, उसे क्रिया कहते हैं। इसके दो भेद हैं - ( 1 ) प्रायोगिक ( 2 ) वैस्रसिक। उनमें से गाड़ी आदि की प्रायोगिकी क्रिया है और मेघादिक की वैस्रसिकी।

**(4) परत्वापरत्व** - परत्व और अपरत्व दो प्रकार का है - ( 1 ) क्षेत्रफल ( 2 ) कालकृत। प्रकृत ( यहां पर ) में कालकृत उपकार का प्रकरण है, इसलिये कालकृत परत्व और अपरत्व को यहां ग्रहण किया गया है। ये सब वर्तनादिक काल के अस्तित्व का ज्ञान कराते हैं। तत्वार्थ सार में कहा भी है -

## काल द्रव्य का लक्षण

**स कालो यन्निमित्ताः स्युः परिणामादिवृत्तयः।**
**वर्तनांलक्षणं तस्य कथयन्ति विपश्चितः।।( 40 )**

काल वह कहलाता है जिसके निमित्त से परिणाम, क्रिया, परत्व तथा अपरत्व होते हैं। विद्वान लोग वर्तना को काल का लक्षण कहते हैं।

## वर्तना का लक्षण

**अन्तर्नीतैकसमया प्रतिद्रव्यविपर्ययम्।**
**अनुभूतिः स्वसत्तायाः स्मृता सा खलु वर्तना।।( 41 )**

प्रत्येक द्रव्य के एक-एक समयवर्ती परिणमन में जो स्वसत्ता की अनुभूति होती है, उसे वर्तना कहते हैं। काल द्रव्य की हेतुकर्तृता का वर्णन -

**आत्मना वर्तमानानां द्रव्याणां निजपर्ययैः।**
**वर्तनाकरणात्कालो भजते हेतुकर्तृताम्।।( 42 )**

सब द्रव्य, अपनी-अपनी पर्यायों रूप परिणमन स्वयं करते हैं, फिर भी वर्तना का कारण होने से कालद्रव्य हेतुकर्तृता को प्राप्त होता है।

### काल द्रव्य की हेतुकर्तृता का समर्थन

**न चास्य हेतुकर्तृत्वं निःक्रियस्य विरुध्यते।**
**यतो निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृत्त्वमिष्यते।।( 43 )**

यद्यपि कालद्रव्य स्वयं निष्क्रिय है तथापि इसकी हेतुकर्तृता विरुद्ध नहीं है, क्योंकि निमित्तमात्र में भी हेतुकर्तृता मानी जाती है।

**कालाणु किस प्रकार कहां स्थित है ?**

**एकैकवृत्या प्रत्येकमणवस्तस्य निष्क्रियाः।**
**लोकाकाशप्रदेशेषु रत्नराशिरिव स्थिताः।।( 44 )**

उस काल द्रव्य के क्रियारहित प्रत्येक अणु रत्नों की राशि के समान लोकाकाश के प्रदेशों पर एक-एक स्थित है।

**व्यवहारकाल के परिचालक लिंग**

**व्यावहारिककालस्य परिणामस्तथा क्रिया।**
**परत्वं चापरत्वं च लिङ्गान्याहुर्महर्षयः।।( 45 )**

परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व को महर्षियों ने व्यावहारिक काल का लिंग परिचायक चिह्न कहा है।

## परिणाम का लक्षण

**स्वजातेरविरोधेन विकारो यो हि वस्तुनः।**
**परिणामः सनिर्दिष्टोऽपरिस्पन्दात्मको जिनैः।।( 46 )**

अपनी जाति का विरोध न करते हुए वस्तु का जो विकार है, परिणमन है, उसे जिनेन्द्र भगवान् ने परिणाम कहा है। यह परिणाम हलन चलन रूप नहीं होता।

## क्रिया का लक्षण

**प्रयोगविस्रसाभ्यां या निमित्ताभ्यां प्रजायते।**
**द्रव्यस्य सा परिज्ञेया परिस्पन्दात्मिका क्रिया।।( 47 )**

प्रेरणा और स्वभाव इन दो निमित्तों से द्रव्य में जो हलन-चलन रूप परिणति होती है, उसे क्रिया जानना चाहिये।

**परत्व और अपरत्व का लक्षण**

**परत्वं विप्रकृष्टत्वमितरत्सन्निकृष्टता।**
**ते च कालकृते ग्राह्ये कालप्रकरणादिह।।( 48 )**

दूरी को परत्व औरन निकटता को अपरत्व कहते हैं। यहां काल द्रव्य का प्रकरण होने से दूरी और निकटता ही ग्रहण करना चाहिए।

छहों द्रव्य में से विश्व संरचना के लिए जीव का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। जीव ज्ञाता है, दृष्टा है, कर्त्ता है, भोक्ता है, प्रभू है, विभु है। जीव बिना समस्त विश्व श्मशान के समान सन्नाटामय चैतन्यरहित है। द्वितीय महत्त्वपूर्ण भूमिका पुद्गल द्रव्य की है। विश्व के संचालन ( संरचना ) में जितना जीव का

हाथ है, उतना ही हाथ पुद्गल का भी है। विश्व की समस्त भौतिक संरचना पुद्गल से होती है। विश्व को गृह मानने पर गृह का मालिक जीव है एवं गृह का निर्माण पुद्गल से होता है। धर्म द्रव्य, आने वाले पथिक के लिए मार्ग का काम करता है, तो अधर्म द्रव्य पथिक के लिए स्टेशन है। काल पुरातन को मिटाकर नवीनीकरण के लिए सूत्रधार है तो आकाश सबको विश्राम देने के लिए सहायता करता है। इस प्रकार विश्व के लिये छह द्रव्य परस्पर सहयोग देकर अनादि से सह-अवस्थान कर रहे हैं एवं करते रहेंगे।

## बहुप्रदेशी एवं एकप्रदेशी द्रव्य

**जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा पुणो य आगासं।**
**सपदेसेहिं असंखादा णत्थि पदेस त्ति कालस्स।।( 135 )**

**The souls, material bodies, principles of motion and rest, and space : all these posses innumerable space-points; but time has no space-points.**

( जीवो पोग्गलकाया ) अनन्तानंत जीव और अनन्तानन्त पुद्गल ( धम्माऽधम्मा ) एक धर्म द्रव्य एक अधर्म द्रव्य ( पुणो य आयासं ) और एक आकाश द्रव्य ( देसेहिं असंखादा ) अपने प्रदेशों की गणना की अपेक्षा संख्या-रहित हैं, ( कालस्स णत्थि पदेसत्ति ) कालद्रव्य के बहुत प्रदेश नहीं हैं। यहां पर असंख्यात प्रदेश - शब्द से बहुप्रदेशी ग्रहण करना चाहिए। वह यहां यथासम्भव घटित कर लेना चाहिए। हर एक जीव संसार की अवस्था में व्यवहार नय से अपने प्रदेशों में संकोच विस्तार होने के कारण दीपक के प्रकाश की तरह अपने प्रदेशों की संख्या में कमती व बढ़ती न होता हुआ शरीर के प्रमाण आकार रहता है तो भी निश्चय से लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश वाला है। धर्म और अधर्मसदा ही स्थित है, उनके प्रदेश लोकाकाश के बराबर असंख्यात है। स्कंध अवस्था में परिणमन किये हुए पुद्गलों के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं, किन्तु पुद्गल के व्याख्यान में प्रदेश शब्द से परमाणु ग्रहण करने योग्य हैं, क्षेत्र के प्रदेश नहीं क्योंकि पुद्गलों का स्थान अनन्त प्रदेश वाला क्षेत्र नहीं है। ( सर्व पुद्गल असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश में हैं ) उनके स्कंध अनेक जाति के बनते हैं। संख्यात परमाणुओं के, असंख्यात परमाणुओं के तथा अनन्त परमाणुओं के स्कन्ध

बनते हैं। वे सूक्ष्म परिणमन वाले भी होते हैं, इससे लोकाकाश में सब रह सकते हैं। एक पुद्गल के अविभागी परमाणु में प्रगट रूप से एक प्रदेशपना है, मात्र शक्ति रूप से उपचार से बहुप्रदेशीपना है ( क्योंकि वे परस्पर मिल सकते हैं )। आकाश द्रव्य के अनन्त प्रदेश हैं। काल द्रव्य के बहुत प्रदेश नहीं हैं। हर एक कालाणु काल द्रव्य हैं जो एक प्रदेश मात्र है। कालाणुओं में परमाणुओं की तरह परस्पर सम्बन्ध कर के स्कंध की अवस्था में बदलने की शक्ति नहीं है।

**एदाणि पंचदव्वाणि उज्झियकालं तु अत्थिकायत्ति।**
**भण्णंते काया पुण बहुप्पदेसाण पचयत्तं।।( 135-1 )**
**एदाणि पंचद्रव्याणि उज्झितकालंतु अस्तिकाया इति।**
**भण्यंते काया पुनः बहुप्रदेशानां प्रचयत्वं।।( 135-2 )**

( एदाणि दव्वाणि ) इन छः द्रव्यों में से ( उज्झिय कालं तु ) काल द्रव्य को छोड़कर ( पंचअत्थिकायत्ति ) शेष पांच द्रव्य पांच अस्तिकाय हैं, ऐसा ( भण्णंते ) कहा है ( पुण ) तथा ( बहुप्पदेसाण पचयत्तं काया ) बहुत प्रदेशों के समूह को काय कहते हैं। इन पांच अस्तिकायों के मध्य में एक जीव अस्तिकाय ही ग्रहण करने योग्य है। उनमें भी अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पांच परमेष्ठी की अवस्था, इनमें से भी अरहंत और सिद्ध अवस्था, फिर इनमें से भी मात्र सिद्ध-अवस्था ग्रहण करने योग्य है। वास्तव में तो या निश्चयनय से तो रागद्वेषादि सर्व विकल्पजालों के त्याग के समय में सिद्ध जीव के समान अपना ही शुद्धात्मा ग्रहण करने योग्य है, यह भाव है।

**समीक्षा -** विश्व में जो मूलभूत 6 द्रव्य हैं। उनमें से केवल एक काल द्रव्य के अनेक प्रदेश आदि प्रदेश नहीं हैं बल्कि एक-एक काल द्रव्य के एक-एक ही प्रदेश होते हैं, दो आदि प्रदेश नहीं होते हैं। इसलिये लोकाकाश प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य होते हैं और प्रदेश भी उतने ही होते हैं। इसलिये काल द्रव्य को अनास्तिकाय कहा है। एक जीव द्रव्य के असंख्यात प्रदेश होते हैं और यह असंख्यात प्रदेश लोकाकाश के जितने प्रदेश होते हैं, उतने होते हैं। इतने ही असंख्यात प्रदेश धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य के होते हैं। आकाश द्रव्य के अनंतानंत प्रदेश होते हैं। शुद्ध पुद्गल की अपेक्षा परमाणु एक प्रदेशी है, परन्तु स्कन्ध की अपेक्षा पुद्गल संख्यात, असंख्यात, अनंतानंत प्रदेशी होते हैं। विश्व द्रव्य

विज्ञान ( द्रव्य-संग्रह ) में आचार्य नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती ने उपर्युक्त विषय का प्रतिपादन विशद रूप में निम्न प्रकार से किया है -

## निश्चय काल का क्षेत्र एवं उसकी संख्या

**लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किका।**
**रयणाणं रासी इव ते कालाणू असंखदव्वाणि।।( 22 )**

जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान परस्पर भिन्न होकर एक-एक स्थित हैं, वे कालाणू हैं और असंख्यात द्रव्य हैं।

आचार्य श्री ने इस गाथा में निश्चय काल का क्षेत्र एवं संख्या का वर्णन किया है। कालद्रव्य अमूर्तिक, शाश्वतिक शुद्ध होने से परस्पर मिले होने पर भी स्पर्श करके स्थित होने पर भी परस्पर बंध को प्राप्त नहीं होते या मिलते नहीं हैं, क्योंकि अमूर्तिक होने के कारण स्निग्ध, रूक्षत्व गुण नहीं है, जो बन्ध के लिए कारण होते हैं। लोकाकाश में असंख्यात प्रदेश होते हैं और एक-एक प्रदेश में एक-एक काल द्रव्य स्थित हैं, इसलिये काल द्रव्य भी असंख्यात हो जाते हैं। कहा भी है -

**एकैकवृत्त्या प्रत्येकमणवस्तस्य निष्क्रियाः।**
**लोकाकाशप्रदेशेषु रत्नराशिरिव स्थिताः।।( 44 )**

उस कालद्रव्य के क्रिया रहित प्रत्येक अणु रत्नों की राशि के समान लोकाकाश के प्रदेशों पर एक-एक स्थित हैं।

## अस्तिकाय एवं अनास्ति काय

**एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।**
**उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु।।( 23 )**

इस प्रकार एक जीव द्रव्य और पांच अजीव द्रव्य ऐसे छह प्रकार के द्रव्य का निरूपण किया। इन छहों द्रव्यों में से एक काल के बिना शेष पांच अस्तिकाय जानने चाहिये। अस्तिकाय एवं अनास्तिकाय रूप से द्रव्य के दो भेद हैं। अस्तिकाय के पांच भेद हैं, यथा - 1. जीवास्तिकाय, 2. पुद्गलास्तिकाय, 3. धर्मास्तिकाय, 4. अधर्मास्तिकाय, 5. आकाशास्तिकाय। काल द्रव्य अनास्तिकाय है। रूपी और अरूपी से भी सम्पूर्ण द्रव्य के दो भेद हो जाते हैं। पुद्गल द्रव्य रूपी है तथा अवशेष 1. जीव 2. धर्म 3. अधर्म 4. आकाश 5. काल अरूपी हैं।

## अस्तित्व एवं काय की परिभाषा

**संति जदो तेणेद अत्थीत्ति भणंति जिणवरा जम्हा।**
**काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकायय।।( 24 )**

पूर्वोक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश ये पांचों द्रव्य विद्यमान हैं, इसलिये जिनेश्वर इनको 'अस्ति' हैं, ऐसा कहते हैं और ये काय के समान बहुप्रदेशों का धारण करते हैं इसलिये इनको 'काय' कहते हैं। अस्ति तथा काय दोनों को मिलाने से ये पांचों 'अस्तिकाय' होते हैं।

23 नं. गाथा में जो अस्तिकाय एवं अनास्तिकाय का वर्णन किया गया था, उसका वर्णन इस गाथा में किया गया है। कार्य का अर्थ बहुप्रदेशी है। अस्ति का अर्थ होना/भाववान/अस्तिवान/विद्यमान/वर्तमान/उपलब्ध/स्थितिवान आदि हैं। इसलिये अस्तिकाय का अर्थ हुआ अस्ति+काय जो अस्तित्ववान होकर भी बहुप्रदेशी हैं। धनंजय नाममाला के अनुसार काय की व्युत्पत्ति अर्थ 'चीयतेइति कायः' जो चयन करे/संग्रह करे, उसे काय कहते हैं। इस परिभाषानुसार धर्मादि पांच द्रव्य काय हैं, क्योंकि वे अनेक प्रदेशों का चयन/संग्रह करते हैं अर्थात् अनेक प्रदेशवान हैं।

अब इन पांचों के संज्ञा, लक्षण तथा प्रयोजन आदि से यद्यपि परस्पर भेद हैं तथापि अस्तित्व के साथ ही अभेद है। यह दर्शाते हैं - जैसे शुद्ध जीवास्तिकाय में सिद्धत्व लक्षणशुद्ध द्रव्य व्यंजन पर्याय है, केवल ज्ञान आदि विशेष गुण है, तथापि अस्तित्व वस्तुत्व और अगुरुलघुत्व आदि सामान्य गुण है और जैसे मुक्ति दशा में अव्याबाध अर्थात् बाधारहित अनन्त सुख आदि अनन्त गुणों की व्यक्ति प्रकटता रूप कार्य समयसार का उत्पाद, राग आदि विभावों से शून्य परम स्वस्थ्य स्वरूप कारण समयसार का व्यय, नाश और इन दोनों के अर्थात् उत्पाद तथा व्यय के आधारभूत परमात्म रूप जो द्रव्य है, उस रूप में ध्रौव्य स्थिरत्व है। इस प्रकार पूर्वकथित लक्षणयुक्त गुण तथा पर्यायों से और उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य के साथ मुक्त अवस्था में संज्ञा, लक्षण तथा प्रयोजन आदि का भेद होने पर भी सत्तारूप और प्रदेशरूप से किसी का किसी के साथ भेद नहीं है। क्योंकि जीवों की मुक्ति अवस्था में गुण, द्रव्य तथा पर्यायों की और उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य रूप लक्षणों की विद्यमानता ( सत्ता ) सिद्ध होती है और गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य की सत्ता के अस्तित्व को मुक्त

आत्मा जो है, वह सिद्ध करता है। इस प्रकार गुण पर्याय आदि मुक्त आत्मा गुण पर्याय की सत्ता को परस्पर सिद्ध करते हैं। अब इनके कायत्व का निरूपण करते हैं - बहुत से प्रदेशों में व्याप्त हो के स्थिति को देख के जैसे शरीर को कायत्व कहते हैं अर्थात् जैसे शरीर में अधिक प्रदेश होने से शरीर को 'काय' कहते हैं। उसी प्रकार अनन्त ज्ञान आदि गुणों के आधारभूत जो लोकाकाश के प्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेश हैं, उनके समूह, संघात अथवा मेल को देख के, मुक्त जीव में भी कायत्व का व्यवहार अथवा कथन होता है। जैसे शुद्ध गुण, पर्यायों से तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य लक्षण से सहित रहने वाले मुक्त आत्मा के निश्चय नय से सत्ता रूप से अभेद दर्शाया गया है, ऐसे ही संसारी जीवों में तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों में भी यथासम्भव परस्पर अभेद देख लेना चाहिये और कालद्रव्य को छोड़कर अन्य सब द्रव्यों के कायत्व रूप से भी अभेद हैं।

## द्रव्यों की प्रदेश संख्या

**होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे।**
**मुत्ते तिविह पदेसा कालास्सेगो ण तेण सो काओ।।( 25 )**

जीव, धर्म तथा अधर्म द्रव्य में असंख्यात प्रदेश हैं और आकाश में अनन्त हैं। मूर्त पुद्गल में संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त प्रदेश है और काल द्रव्य के एक-एक ही प्रदेश हैं, इसलिए काल काय नहीं हैं।

गाथा 23 में अस्तिकाय एवं अनास्तिकाय का निर्देश किया गया एवं गाथा 24 में दोनों ही परिभाषा ही दी गई है। परन्तु यह नहीं बताया था कि कौन से द्रव्य के कितने प्रदेश हैं। इस गाथा में प्रत्येक द्रव्य की प्रदेश संख्याओं का वर्णन किया गया है। तत्त्वार्थ सूत्र में भी द्रव्यों के प्रदेश संख्या इसी प्रकार बतायी गयी है। यथा -

**असंख्येयाः प्रदेशाधर्माधर्मैकजीवानामा।**
**धर्म, अधर्म, एक जीवानाम याः प्रदेशा भवन्ति।।( 8 )**

धर्म, अधर्म और एक जीव स्वतन्त्र-स्वतन्त्र रूप से एक-एक अखण्ड द्रव्य होते हुए भी उनके प्रदेश असंख्यात-असंख्यात हैं। धर्म द्रव्य के असंख्यात, अधर्म द्रव्य के असंख्यात और एक जीव के भी असंख्यात प्रदेश है।

संख्या को जिस गणना ने अतिक्रान्त कर लिया है, उसे असंख्यात कहते हैं

अर्थात् जो गिनती की सीमा को पार कर गये हैं अथवा जो किसी सामान्य असर्वज्ञ के द्वारा गिने नहीं जाते हैं, उनको असंख्यात कहते हैं। यहां सर्वप्रथम जान लेना चाहिए प्रदेश किसे कहते हैं ? क्योंकि यहां प्रदेश गणना के लिए इकाई एक प्रदेश है। प्रदेश की परिभाषा निम्न प्रकार है -

**जावदियं आयासं अविभागी पुग्गालाणुवट्ठध्दं तं खु पदेसं।।**

जितना आकाश अविभागी पुद्गल परमाणु से रोका जाता है, उसको प्रदेश कहते हैं। राजवार्तिक में कहा है ' प्रदिश्यते प्रतिपाद्यन्त इति प्रदेशाः।'

जो क्षेत्र के परिणाम को बताते हैं उसे प्रदेश कहते हैं -

**'द्रव्यपरमाणुः स यावति क्षेत्रेऽवतिष्ठते स प्रदेश्य इति व्यवहियते।।'**

द्रव्य परमाणु जितने क्षेत्र में रहता है, उसको प्रदेश कहते हैं, जैसे आकाश अखण्ड अभेद होते हुए भी लोकाकाश एवं अलोकाकाश रूप से इसके दो भेद हो जाते हैं। वैसे ही लोकाकाश के भी अनेक भेद-प्रभेद हो जाते हैं। जैसे उर्ध्व लोक के आकाश, मध्य लोक के आकाश, अधोलोक के आकाश, इसके भी अनेक भेद हो जाते हैं। जैसे विभिन्न घट, विभिन्न पात्र के आकाश। इसी प्रकार अखण्ड द्रव्य में भी प्रदेश भेद हो जाते हैं।

**आकाशस्यानंताः।( 9 )**

**आकाशस्यानन्ताः प्रदेशाः सन्ति। आकाश के अनन्त प्रदेश हैं।**

छहों द्रव्यों में सबसे विशालतम द्रव्य आकाश है। यह द्रव्य सर्वव्यापी है। इनके प्रदेश अनन्त हैं। जिसका अन्त/अवसान नहीं है, उसको अनन्त कहते हैं। लोकाकाश, आकाश का एक बहुत छोटा भाग है और इसके असंख्यात प्रदेश हैं। अलोकाकाश सम्पूर्ण दिशाओं में अनन्त तक फैला हुआ।

**संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम्।।( 10 )**

**संख्येयाः असंख्येयाश्च( अनन्ताः अनन्तानन्ताः )पुद्गलानाम् प्रदेशा भवन्ति।**

**पुद्गलों के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं।**

मुख्य रूप से पुद्गलों के दो भेद हैं - 1. अणु 2. स्कन्ध। अणु सर्वदा एक प्रदेशी होता है। परन्तु स्कन्ध संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त प्रदेशी भी होता है।

काल द्रव्य एक ही अविभाज्य प्रदेशी होता है। शुद्ध पुद्गल भी परमाणु की अपेक्षा एक प्रदेशी होते हुए भी उसमें स्निग्धत्व-रूक्षत्व गुण होते हैं, जिसके कारण परमाणु भविष्य में अन्य परमाणु या स्कन्ध से मिलकर

बहुप्रदेशी हो जाता है। इसलिये उपचार से परमाणु को भी बहुप्रदेशी कहते हैं, परन्तु कालाणु अमूर्ति होने के कारण उसमें स्निग्धत्व, रूक्षत्व गुण नहीं हैं, जिससे कालाणु कभी भी अन्य कालाणु से बन्ध रूप परिणमन नहीं कर सकता है, इसलिए कालाणु द्रव्यरूप में या उपचार रूप में शक्तिरूप में भी बहुप्रदेशी नहीं है।

पुद्गल द्रव्य में जो संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त प्रदेश होते हैं। यह परमाणु के समूह रूप से हैं न कि आकाश प्रदेश की अपेक्षा हैं, क्योंकि लोकाकाश के प्रदेश ही असंख्यात हैं और असंख्यात प्रदेश में ही अन्य धर्म, अधर्म, जीव, काल द्रव्य के साथ-साथ सम्पूर्ण पुद्गल परमाणु एवं स्कन्ध भी रहते हैं। इसलिए क्षेत्र की अपेक्षा संख्यात एवं असंख्यात प्रदेश हो सकते हैं परन्तु अनन्त प्रदेश नहीं हो सकते हैं।

'ण तेण सो काओ' इसी हेतु से अर्थात् एक प्रदेशी होने से वह कालद्रव्य काय नहीं हैं। अब काल के एकप्रदेशी होने से युक्ति कहते हैं। जैसे अंतिम शरीर से किंचित् न्यून प्रमाण के धारक सिद्धत्व पर्याय का उपादान कारणभूत जो शुद्ध आत्मद्रव्य है, वह सिद्धत्व पर्याय के प्रमाण ही है अथवा जैसे मनुष्य देव आदि पर्यायों का उपादान कारणभूत जो संसारी जीव द्रव्य है, वह उस मनुष्य देवादि पर्याय के प्रमाण ही है। उसी प्रकार कालद्रव्य भी समयरूप जो काल की पर्याय है, उसका विभाग से उपादान कारण है तथा अविभाग से एक प्रदेश ही होता है अथवा मंद गति से गमन करते हुए पुद्गल परमाणु के एक आकाश के प्रदेश पर्यन्त ही कालद्रव्य गति का सहकारी कारण होता है। इस कारण जाना जाता है कि वह कालद्रव्य भी एक ही प्रदेश का धारक है।

**शंका** - पुद्गल परमाणु की गति में सहकारी कारण तो धर्मद्रव्य विद्यमान है ही, इसमें कालद्रव्य का क्या प्रयोजन है ?

**समाधान** - क्योंकि, धर्मद्रव्य के विद्यमान रहते भी मत्स्यों की गति में जल के समान तथा मनुष्यों की गति में गाड़ी पर बैठना आदि के समान पुद्गल की गति में बहुत से ही सहकारी कारण होते हैं।

**शंका** - 'कालद्रव्य पुद्गलों की गति में सहकारी कारण है' यह कहां-कहां हुआ है ?

**समाधान** - श्री कुन्दकुन्द आचार्य देव ने पंचास्तिकाय नामक प्राभृत में :

'पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु' ऐसा कहा है। इसका अर्थ कहते हैं कि धर्मद्रव्य के विद्यमान होते हुए भी जीवों की गति में कर्म, नोकर्म रूप पुद्गल सहकारी कारण होते हैं और अणु तथा स्कन्ध इन भेदों से भेद को प्राप्त हुए पुद्गलों के गमन में कालद्रव्य सहकारी कारण होता है।

**एक प्रदेशी पुद्गल को अस्तिकाय कहने का कारण –**

**एयपदेसो वि अणुणाणाखंधप्पदेसदो होदि।**
**बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भंणति सव्वण्हु।।( 26)**

एक प्रदेश का धारक भी परमाणु अनेक स्कन्धरूप बहुत प्रदेशों में बहुप्रदेशी होता है। इस कारण सर्वज्ञ देव उपचार से पुद्गल परमाणु को 'काय' कहते हैं।

वस्तुतः शुद्ध पुद्गल अणु रूप ही होता है। स्कन्ध तो पुद्गल की अशुद्ध पर्याय है, तथापि पुद्गल में जो पूरण, गलन स्वभाव एवं स्निग्ध, रूक्षत्व गुण होते हैं जिसके कारण पुद्गल अन्तरंग एवं बहरंग कारणों को प्राप्त करके द्वि अणुक आदि स्कन्ध रूप बहुप्रदेशी बन सकता है। इस प्रकार की योग्यता, शक्ति एवं संभावना के कारण शुद्ध पुद्गल अणु को भी उपचार से अर्थात् व्यवहार नय से बहुप्रदेशी कहा गया है। अणु अन्य परमाणु से रहित अविभाज्य एक ही प्रदेशी होता है। ऐसा उमास्वामी आचार्य ने तत्वार्थ सूत्र में कहा है। यथा –

**नाणोः ( ।।)**
**नाणोः प्रदेशा भवन्ति।**

**परमाणु के प्रदेश नहीं होते।**

दसवें सूत्र में कहा गया कि पुद्गलों के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं। यह सामान्य कथन है, परन्तु यहां पर विशेष कथन किया गया है कि अणु पुद्गल होते हुए भी अणु के प्रदेश नहीं होते हैं। प्रदेश नहीं होते इसका मतलब ये नहीं कि अणु पूर्ण रूप से प्रदेश से रहित है, परन्तु परमाणु एक प्रदेश मात्र है तथा द्वि आदि प्रदेश से रहित है। जैसे रेखागणित में बिन्दु सत्तावान होते हुए भी अस्तित्ववान होते हुए भी इसकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई नहीं हैं। जिस प्रकार एक आकाश प्रदेश में भेद नहीं होने से वह अप्रदेशी माना गया, उसी प्रकार अणु स्वयं एक प्रदेश रूप है इसलिए उसमें प्रदेश भेद नहीं होता है। दूसरे अणु से अल्प

परिमाण नहीं पाया जाता, ऐसी कोई अन्य वस्तु नहीं जो परमाणु से छोटी हो, जिससे इसके प्रदेश भेद को प्राप्त होवें।

इस परमाणु को किसी भी कृत्रिम प्रक्रिया से या स्वयं किसी प्राकृतिक प्रक्रिया से खण्डित नहीं किया जा सकता है अथवा खण्डित नहीं होता है। एक शक्तिशाली बम पहाड़ को विध्वंस कर सकता है, परन्तु ऐसे कई शक्तिशाली बम भी अणु को खण्डित नहीं कर सकते हैं। यह परमाणु न अग्नि से जलता है न पानी से गीला होता है न वायु से उड़ता है, न चक्षु से दिखाई देता है और न ही सूक्ष्मदर्शी यंत्र से दिखाई देता है।

परमाणु जब मन्द गति में गमन करता है, तब एक समय में एक प्रदेश गमन करता है और जब तीव्र गति से गमन करता है, तब एक समय में चौदह राजू गमन कर सकता है। मध्यम गति में अनेक विकल्प है। अणु जब गमन करता है तब उसकी गति को कोई भी वस्तु या यंत्रादि भी नहीं रोक सकते हैं।

विज्ञान जिसको वर्तमान में अणु मानता है वह जैन सिद्धान्त की अपेक्षा स्थूल स्कंध ही है, जिसमें अनंतानन्त परमाणु मिले हुए हैं। वैज्ञानिक लोग परमाणु को अविभाज्य मानते हुए भी उनके द्वारा माना हुआ परमाणु पुनः-पुनः अनेक विभाग में विभाजित होता जा रहा है। पहले न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन के समूह को अणु मानते थे, परन्तु यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि स्पष्ट रूप से ये तीनों अलग-अलग हैं, इसकी लम्बाई भी है और इसका वजन भी है। इतना ही नहीं आगे जाकर वह खण्डित भी हो गया और उस अखण्डित भाग को क्वार्क कहते हैं। यह क्वार्क भी अणु नहीं है। यह क्वार्क भी अनेक परमाणु के समूह से बना स्कन्ध है। परमाणु का विशेष वर्णन प्राचीन जैनाचार्यों ने निम्न प्रकार से किया है -

**आदिमध्यान्तनिर्मुक्तं निर्विभागमतीन्द्रियम्।**
**मूर्तमप्यप्रदेशं च परमाणुं प्रचक्षछते।।( 32 )( हरिवंशपुराण पर्व, 7 )**

जो आदि, मध्य और अंत से रहित हैं, निर्विभाग है, अतीन्द्रिय है और मूर्त होने पर भी अप्रदेश-द्वितीयादिक प्रदेशों से रहित है, उसे परमाणु कहते हैं।

**एकदैक रसं वर्णं गंधं स्पर्शावबाधकौ।**
**दधत् स वर्ततेऽभेद्य शब्द हेतुः रशब्दकः।।( 33 )**

वह परमाणु एक काल में एक रस, एक वर्ण, एक गंध और परस्पर में

बाधा नहीं करने वाले दो स्पर्शों को धारण करता है, अभेद्य है, शब्द का कारण है और स्वयं शब्द से रहित है।

**आशंकया नार्थतत्त्वौर्नभोऽशानां समंततः।**
**षट्केन युगपद्योगात्परपाणोः षडंशता।।( 34 )**

पदार्थ के स्वरूप को जानने वाले लोगों को ऐसी अशंका नहीं करनी चाहिए कि सब ओर से एक समय आकाश के छह अंशों के साथ सम्बन्ध होने से परमाणु में षडंशता है।

**स्वल्पाकाशषडंशाश्च परमाणुश्च संहताः।**
**सप्तांशाः स्युकुतस्तु स्यात्परमाणोः षडंशताः।।( 35 )**

क्योंकि ऐसा मानने पर आकाश के छोटे-छोटे छह अंश और एक परमाणु सब मिलकर सप्तमांश हो जाते हैं। अब परमाणु में षडंशता कैसे हो सकती है।

**वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत्।**
**कुर्वन्ति स्कंधवत्तस्मात् पुद्गलाः परमाणवः।।( 36 )**

क्योंकि परमाणु रूप, गंध, रस और स्पर्श के द्वारा पूरण तथा गलन करते रहते हैं, इसलिए स्कंध के समान परमाणु पुद्गल द्रव्य है।

जैसे यह परमात्मा शुद्ध निश्चय नय से द्रव्यरूप से शुद्ध तथा एक है तथापि अनादि कर्मबंधन के वश से स्निग्ध तथा रूक्ष गुणों के स्थानापन्न ( स्थान को प्राप्त ) जो राग और द्वेष हैं, उनसे परिणाम को प्राप्त होकर, व्यवहार से मनुष्य नारक आदि विभाव पर्याय रूप से अनेक प्रकार का होता है। ऐसे ही पुद्गल परमाणु भी यद्यपि स्वभाव से एक और शुद्ध है तथापि राग, द्वेष के स्थानभूत जो बंध के योग्य स्निग्ध, रूक्ष गुण है उनसे परिणमन को प्राप्त होकर द्वयगुणक आदि स्कन्ध रूप जो विभाव पर्याय हैं, उनसे अनेक प्रदेशों का धारक होता है। इसी हेतु से बहुप्रदेशता रूप कायत्व के कारण से पुद्गल परमाणु को सर्वज्ञदेव उपचार से काय कहते हैं। अब यहां पर यदि ऐसा किसी का मत हो कि जैसे द्रव्यरूप से एक भी पुद्गल परमाणु के द्वयणुक आदि स्कन्ध पर्याय रूप से बहुप्रदेशरूप कायत्व सिद्ध हुआ है ऐसे ही द्रव्यरूप से एक होने पर भी कालाणु के समय, घटिका आदि पर्यायों के कायत्व सिद्ध होता है। इस शंका का परिहार करते हैं कि स्निग्ध रूक्ष गुण है, कारण जिसमें ऐसे बंध का कालद्रव्य में अभाव है, इस कारण वह 'काय' नहीं हो सकता। सो

भी क्योंकि स्निग्ध रूक्षपना जो है सो काल में कायत्व नहीं सिद्ध होता है। कदाचित् कहो कि 'अणु' यह पुद्गल की संज्ञा है। काल के 'अणु' संज्ञा कैसे हुई? तो इसका उत्तर सुनो – 'अणु' शब्द सूक्ष्म का वाचक है, जैसे परम अर्थात् प्रकर्ष ( अधिकता ) से जो अणु हो सो परमाणु है। इस व्युत्पत्ति से परमाणु शब्द जो है, वह अति सूक्ष्म पदार्थ को कहने वाले हैं और वह सूक्ष्म वाचक 'अणु' शब्द निर्विभाग पुद्गल की विवक्षा में तो 'पुद्गलाणु' को कहता है और अविभागी ( विभाव रहित ) कालद्रव्य के कहने की जब इच्छा होती है, तब 'कालाणु' को कहता है।

## लोकाकाश में सम्पूर्ण द्रव्य रहते हैं

**लोगालोगेसु णभो धम्माधम्मेहिं आददो लोगो।**
**सेसे पडुच्च कालो जीवा पुण पोग्गला सेसा।।( 136 )**

**The sky or space pervades Loka and Aloka; Loka is occupied by the principle of motion and rest, by time which rests with the other two (viz. so and matter) and by soul and matter.**

( णभो ) आकाश द्रव्य ( लोकालोगेसु ) लोक और अलोकरूप है ( सेसे पडुच्च ) शेष जीव पुद्गल को आश्रय करके ( लोगो धम्माधम्मेहिं आददो ) लोक धर्म और अधर्म द्रव्य से व्याप्त है तथा ( कालो ) काल है। ( पुण सेसा जीव पुग्गला ) और वे दो शेष द्रव्य जीव और पुद्गल है। लोकाकाश और अलोकाकाश दोनों का आधार एक आकाश द्रव्य है। इनमें से जीव पुद्गलों की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय/अधर्मास्तिकाय है जिनसे यह लोकाकाश व्याप्त है। अर्थात् इस लोकाकाश में जीव और पुद्गल भरे हैं, उन्हीं की गति और स्थिति को कारण रूप से ये धर्म अधर्म भी लोक में है। काल भी इन जीव पुद्गलों क अपेक्षा करके लोक में है, क्योंकि जीव पुद्गल की नई पुरानी अवस्था के होने से काल द्रव्य की समय घड़ी आदि पर्याय प्रगट होती है तथा जीव पुद्गल तो इस लोक में है ही। यहां यह भाव है कि जैसे सिद्ध भगवान् यद्यपि लोकाकाश प्रमाण अपने शुद्ध असंख्यात प्रदेशों में हैं जो प्रदेश केवलज्ञान आदि गुणों के आधारभूत हैं तथा अपने-अपने स्वभाव में ठहरते हैं तथापि व्यवहार नय से मोक्षशिला पर ठहरते हैं, ऐसा आचार्य कहते हैं। तैसे सर्व पदार्थ यद्यपि निश्चय से अपने स्वरूप में ठहरते हैं तथापि व्यवहार नय से

लोकाकाश में ठहरते हैं। यहां यद्यपि अनन्त जीव द्रव्यों से अनन्त गुणे पुद्गल हैं तथापि एक दीप के प्रकाश में जैसे बहुत से दीपकों के प्रकाश समा जाते हैं, तैसे विशेष अवगाहना की शक्ति के योग से असंख्यात प्रदेशी लोक में ही सर्व द्रव्यों का स्थान विरोध रूप नहीं है।

प्रथम तो, आकाश लोक तथा अलोक में है, क्योंकि वह छह द्रव्यों के समवाय और असमवाय में बिना विभाग के रहता है। धर्म और अधर्म द्रव्य सर्वत्र लोक में है, क्योंकि उनके निमित्त से जिनकी गति और स्थिति होती है। ऐसे जीव और पुद्गलों की गति या स्थिति लोक से बाहर नहीं होती, और न लोक के एक देश में होती है ( अर्थात् लोक में सर्वत्र होती है )। काल भी लोक में है, क्योंकि जीव और पुद्गलों के परिणामों के द्वारा ( काल की ) समयादि पर्यायें व्यक्ति होती हैं और वह काल लोक के एक प्रदेश में है, क्योंकि वह अप्रदेशी है। जीव और पुद्गल तो युक्ति से ही लोक में हैं, क्योंकि लोक छह द्रव्यों का समवाय स्वरूप है, किन्तु प्रदेशों का संकोच विस्तार होना जीव का धर्म होने के कारण और बंध हेतुभूत स्निग्ध रूक्ष गुण पुद्गल का धर्म होने के कारण जीव और पुद्गल का समस्त लोक में या उसके एक प्रदेश में रहने का ( कोई ) नियम नहीं है। काल जीव तथा पुद्गल एक द्रव्य की अपेक्षा से लोक के एक देश में रहते हैं और अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से अंजन चूर्ण ( काजल ) से भरी हुई डिबिया के न्यायानुसार समस्त लोक में ही हैं।

**समीक्षा -** आचार्य श्री ने इस गाथा में लोकाकाश एवं अलोकाकाश का वर्णन, सप्रमाण, सयुक्ति पूर्ण किया है। आकाश अनन्तानंत प्रदेशी वाला सर्वव्यापी द्रव्य होने के कारण आकाश लोक में भी है एवं अलोक में भी हैं। असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश में जीव एवं पुद्गलों का गमनागमन एवं स्थिति होने से वह स्वतः सिद्ध होता है कि पूर्ण लोकाकाश में गमनागमन तथा स्थिति के कारणभूत धर्म द्रव्य एवं अधर्म द्रव्य व्याप्त हैं। लोकाकाश में काल द्रव्य भी हैं; क्योंकि जीव एवं पुद्गल में परिणमन परिलक्षित होता है। बिना कालद्रव्य परिणमन संभव नहीं है। इसलिए लोकाकाश में कालद्रव्य होना युक्तियुक्त है। इसके साथ-साथ दिन, रात, ऋतु, अयन, वर्ष आदि व्यवहार काल निश्चय काल ( कालद्रव्य ) के बिना नहीं हो सकता है। अतएव व्यवहार काल से निश्चय काल की भी सिद्धि हो जाती है। पंचास्तिकाय में कहा भी है -

**जीवा पुग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा।**
**अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्स।।( 22 )पं.का. पृ.82**

जीवादि पांच अस्तिकाय है। इनको किसी पुरुष विशेष ने बनाया नहीं है। ये अपनी सत्ता से ही निर्वृत्त अथवा निष्पन्न हुए हैं अत: विद्यमान हैं। यह लोक इन पांच अस्तिकायों का व कायरहित एक प्रदेशी कालद्रव्य का इस तरह छः द्रव्यों का समुदाय है। इस तरह जैसा कहा है - 'जीवादिषड् द्रव्याणां समवायो मेलापको लोकः' इति तथा यह लोक उत्पाद व्यय व ध्रौव्य स्वरूप है इसी से इस लोक का अस्तित्व देखा जाता है; क्योंकि कहा है 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् इति' तथा इस लोक ऊर्ध्व, मध्य, अधो इन तीन अंशों को रखने वाला अवयव सहित है इससे इसको बहुप्रदेशी या कायपना कहा गया है।

मोक्षशास्त्र में उपर्युक्त विषय का विशद वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है -

**लोकाकाशेऽवगाहः ( 12 ) त.सू. पृ.281**

**There substances Dharma, Adharma, Jiva, etc. exist only in Lokakasa.**

**इन धर्मादिक द्रव्यों का अवगाह लोकाकाश में है।**

आकाश एक सर्वव्यापी अखण्ड द्रव्य होते हुए भी जिस आकाश प्रदेश में जीव आदि द्रव्य रहते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं। उसको छोड़कर अन्य अवशेष आकाश को अलोकाकाश कहते हैं। द्रव्यसंग्रह में कहा भी है -

**धम्माऽधम्मा कालो पुग्गल जीवा य सांत जावदिये।**
**आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो।।( 20 )**

धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव ये पांचों द्रव्य जितने आकाश में हैं, वह तो लोकाकाश है। उसके आगे अलोकाकाश है।

**प्रश्न** - असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश में अनन्तानंत जीव हैं उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल हैं। लोकाकाश के प्रदेशों के प्रमाण भिन्न-भिन्न कालाणु हैं तथा एक धर्म और एक अधर्म द्रव्य हैं, ये सब किस तरह इस लोकाकाश में अवकाश पा लेते हैं ?

**उत्तर** - जैसे एक कोठरी में अनेक दीपों का प्रकाश व एक गूढनाग रस के गुटके से बहुत सा सुवर्ण व एक ऊँटनी के दूध के भरे घट में मधु का भरा घट व एक तहखाने में जय-जयकार शब्द व घंटा आदि का शब्द-विशेष अवगाहना

गुण के कारण अवकाश पाते हैं। वैसे असंख्यात प्रदेशी लोक में अनंतानंत जीवादि भी अवकाश पा सकते हैं।

धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, काल द्रव्य तथा जीव द्रव्य अमूर्त्तिक द्रव्य होने के कारण उसकी अवगाहना की कोई समस्या नहीं है, शेष रहा पुद्गल द्रव्य। पुद्गल द्रव्य में भी सूक्ष्मत्व परिणमन शक्ति होने के कारण एवं आकाश में अवगाहन शक्ति होने के कारण अनन्त पुद्गल द्रव्य, असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश में समावेश होकर रह जाते हैं। जैसे - एक अगरबत्ती को जलाने से उस अगरबत्ती के धुऐ से एक कमरा भर जाता है। इस धुऐ के परमाणु ( स्कंध ) उस छोटी सी अगरबत्ती में ही समाहित थे। अभी आधुनिक विज्ञान से सिद्ध हुआ कि कुछ नक्षत्र में ऐसी धातु है जिसका माचिस के बराबर टुकड़े का वजन 60 से लेकर 250 टन से भी अधिक हो सकता है। इतना अधिक वजन होने का कारण वहाँ के परमाणु का बंधन अधिक घनस्वरूप से हुआ है। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि एक हाथी को पूर्ण रूप से दबा दिया जायेगा तब वह हाथी सूई के छेद से निकल जायेगा। इसका कारण यह है कि उस में मौजूद समस्त परमाणु समूह एक ही आकाश प्रदेश में अथवा एक परमाणु में ( एक परमाणु के आकार ) में अनन्तानंत बंध विशेष से बंधकर इकट्ठे हो जाते हैं, इसलिये एक आकाश प्रदेश में एक से लेकर तीन व संख्यात, असंख्यात, अनन्त परमाणु समाहित हो सकते हैं। जब एक आकाश प्रदेश में अनन्त परमाणु भी रह सकते हैं तो असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश में अनंतानंत परमाणु क्यों नहीं रह सकते ? अर्थात् रह सकते हैं।

**जीवापुग्गलकाया धम्मा धम्मा य लोगदोणण्णा।**
**तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं।।( 91 )( पं.का. )पृ.246**

अनन्त जीव, अनंत पुद्गल, अणु, धर्म, अधर्म द्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य इस लोक से बाहर नहीं हैं इस लोकाकाश से जुदा नहीं है। लोकाकाश से बाहर शेष आकाश अंतरहित-अनंत है।

**आगासं अवगासं गमणट्ठिदि कारणेहिं देदि जदि।**
**उड्ढगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ।।( 92 )**

जो मात्र अवकाश का ही हेतु है ऐसा जो आकाश उसमें गति स्थिति हेतुत्व ( भी ) होने की शंका की जाए तो दोष आता है, उसका यह कथन है।

यदि आकाश जिस प्रकार वह अवगाहना वालों को अवगाह हेतु है उसी प्रकार गति स्थिति वालों को गति, स्थिति हेतु भी हो तो सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविक उर्ध्वगति से परिणत सिद्ध भगवन्त बहिरंग-अन्तरंग साधन रूप सामग्री होने पर भी क्यों ( किस कारण ) उसमें आकाश में स्थिर हों।

सिद्ध भगवान स्वभाव से ऊपर को गमन करते हैं वे यदि आकाश के ही निमित्त कारण से जावें तो वे अनंत आकाश में जा सकते हैं; क्योंकि आकाश लोक से बाहर भी हैं। परन्तु वे बाहर नहीं जाते हैं कारण यही है कि वहाँ धर्म द्रव्य नहीं है। जहाँ तक धर्म द्रव्य है, वहीं गमन में सहकारीपना है।

**जम्हा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।**
**तम्हा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थित्ति।।( 93 )**

क्योंकि श्री जिनेन्द्रों ने सिद्धों का लोक के अग्रभाग में तिष्ठना कहा है, इसलिये आकाश में गमन और स्थिति में सहकारीपना नहीं है, ऐसा जानो।

इसी से ही जाना जाता है कि आकाश में गति और स्थिति का कारण पना नहीं है, किन्तु धर्म और अधर्म ही गति और स्थिति का कारण है, यह अभिप्राय है।

**जदि हवदि गमणहेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं।**
**पसजदि अलोगहाणी लोगस्स य अंतपरिवुड्ढी।।( 92 )**

यदि आकाशगति व स्थिति में कारण हो तो लोकाकाश के बाहर भी आकाश की सत्ता है तब जीव और पुद्गलों का गमन अनन्त आकाश में भी हो जावे इससे अलोकाकाश न रहे और लोक की सीमा बढ़ जावे, लेकिन ऐसा नहीं है। इसी कारण से यह सिद्ध है कि आकाश गति और स्थिति के लिए कारण नहीं है।

**धम्माधम्मागासाअपुधब्भूदा समाणपरिमाणा।**
**पुधगुवलद्धविसेसा करिंति एगत्तमण्णत्तं।।( 96 )**

व्यवहार से धर्म, अधर्म व लोकाकाश एक समान असंख्यात प्रदेश को रखने वाले हैं इसलिये इनमें एकता है परन्तु निश्चय से ये तीनों अपने-अपने स्वभाव में हैं, इससे अनेकता या भिन्नता है। जैसे - यह जीव पुद्गलादि पांच द्रव्यों के साथ व अन्य जीवों के साथ एक क्षेत्र में अवगाह रूप रहने से व्यवहार से एकपने को बताता है, परन्तु निश्चय नय से भिन्नपने को प्रगट करता है; क्योंकि यह जीव एक समय में सर्व पदार्थों में प्राप्त अनंत स्वभावों को प्रकाश

करने वाले परम चैतन्य के विलासरूप अपने ज्ञान गुण से शोभायमान हैं। वैसे ही धर्म, अधर्म और लोकाकाश द्रव्य एक क्षेत्र में अवगाह रूप होने से अभिन्न है तथा समान प्रदेशों का परिणाम रखते हैं। इसलिये उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से परस्पर एकता करते हैं, परन्तु निश्चय नय से अपने-अपने गति-स्थिति व अवगाह लक्षण को रखने से नानापना या भिन्नपना करते हैं।

**धर्माधर्मयोः कृत्स्ने।( 13 )**

**धर्माधर्मयोः कृत्स्ने लोकाकाशे अवगाहो भवति।**

**The Whole Universe or Loka is the place of Dharma and Adharma Dravyas.**

**धर्म और अधर्म द्रव्य का अवगाह समग्र लोकाकाश में है।**

लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं। उस सम्पूर्ण लोकाकाश के प्रदेश में धर्म तथा अधर्म द्रव्य के प्रदेश व्याप्त होकर रहते हैं अर्थात् लोकाकाश के एक प्रदेश में धर्म द्रव्य के एक प्रदेश तथा अधर्म द्रव्य के एक प्रदेश रहते हैं। लोकाकाश में धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्य का अवस्थान जैसे चौकी के ऊपर पुस्तक है उस प्रकार नहीं है। परन्तु जैसे दूध में घी, तिल में तेल, ईंधन में अग्नि रहती है, उसी प्रकार धर्म एवं अधर्म द्रव्य में प्रदेश लोकाकाश के सम्पूर्ण प्रदेश में व्याप्त रहते हैं। आधुनिक विज्ञान में भी माना गया है कि 'ईथर' तथा गुरुत्वाकर्षण शक्ति आकाश में व्यापत होकर रहती है। इसलिए निरवशेष व्याप्ति का प्रदर्शन कराने के लिए सूत्र में 'कृत्स्न' वचन का प्रयोग किया है क्योंकि धर्म और अधर्म द्रव्य निरन्तर सारे लोकाकाश में व्याप्त होकर रहते हैं।

**प्रश्न** - धर्म, अधर्म आदि द्रव्य के प्रदेश परस्पर अविरोध रूप से एक स्थान में कैसे रहते हैं?

**उत्तर** - अमूर्तिक होने से धर्म, अधर्म और आकाश के प्रदेशों में परस्पर विरोध नहीं है। जब मूर्तिमान जल, भस्म, रेत आदि पदार्थ बिना विरोध के एक स्थान में रह सकते हैं तब इन अमूर्तिक द्रव्यों की एकत्र स्थिति में तो कहना ही क्या? अर्थात् जैसे पानी से भरे हुए घट में चीनी, रेत, भस्म, लोहे के कांटे आदि प्रवेश कर जाते हैं, वैसे ही परस्पर विरोध रहित जीवादि अनन्त पदार्थ लोकाकाश में रह जाते हैं। इसलिए अमूर्तिक होने से इन धर्मादि के प्रदेशों का परस्पर एक स्थान में रहने में कोई विरोध नहीं है, ऐसा जानना चाहिए।

इनका अनादि सम्बन्ध पारिणामिक स्वरूप में होने से भी कोई विरोध नहीं है। भेद, संघात, गति, परिणाम पूर्वक आदिमान् सम्बन्ध वाले किसी स्थूल स्कन्धों के प्रदेशों में परस्पर विरोध हो भी सकता है - अर्थात् बहुत से प्रदेश वाले पदार्थ थोड़े स्थान में नहीं रह सकते, परन्तु भेद सघात वाले पदार्थों के समान धर्मादि पदार्थों का आकाश प्रदेशों के साथ आदि सम्बन्ध नहीं है अपितु इनका परिणामिक सम्बन्ध है अतः इनमें परस्पर प्रदेशों का अविरोध सिद्ध है अर्थात् अमूर्तिक पूर्वापर भावरहित अनादि सम्बन्धी धर्मादिक का परस्पर विरोध नहीं है।

**एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम्।।( 14 )**

**लोकाकाशे एकप्रदेशादिषु भाज्यः एक**

**प्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहः।**

**In One pradesa, i.e., in one unitary cell of space only one atom of matter will find place if it is in a free state but in an aggregate form any number of atoms can occupy one or more cells of space.**

पुद्गलों का अवगाहन लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प से होता है।

एक परमाणु आकाश के जितने क्षेत्र को घेरता है उसे एक प्रदेश कहते हैं अर्थात् एक आकाश प्रदेश में स्वतंत्र रूप से एक परमाणु रहता है। दो परमाणु यदि पृथक्-पृथक् रूप में रहते हैं तो आकाश के दो प्रदेश में रहते हैं। यदि दो परमाणु आपस में बंध जाते हैं तो आकाश के एक प्रदेश में उनका अवगाह होता है। उसी प्रकार तीन परमाणु यदि स्वतंत्र-स्वतंत्र रूप में रहते हैं तो आकाश के तीन प्रदेश में रहते हैं परन्तु जब परस्पर में बंध जाते हैं तो एक प्रदेश, दो प्रदेश और तीन प्रदेश में भी रह सकते हैं। इसी प्रकार बंध विशेष के कारण संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेशी पुद्गल स्कन्धों का लोकाकाश के एक, संख्यात और असंख्यात प्रदेशों में अवस्थान जानना चाहिये।

एक आकाश प्रदेश में एक परमाणु से लेकर अनन्तानंत परमाणु समावेश होकर रहने का कारण यह है कि, पुद्गल के समय विशेष सूक्ष्म परिणमन और आकाश की अवगाहन शक्ति के कारण होता है।

एक कोठे ( कमरे ) में अविरोध रूप से अनेक प्रकाशों का अवस्थान

देखा जाता है। जैसे एक कमरे में बहुत से दीपकों का प्रकाश रह जाता है, न तो उससे क्षेत्र विभाग ( भिन्न-भिन्न क्षेत्र ) होता है और न एक प्रदेश में रहने से उन सब प्रकाशों का एकत्व होता है अर्थात् उनकी पृथक् सत्ता नष्ट नहीं होती है उसी प्रकार एक प्रदेश में अनन्त स्कन्ध अति सूक्ष्म परिणमन के कारण स्वभाव में साङ्कर्य किए हुए बिना ही रह सकते हैं। इसमें कोई विरोध नहीं है।

अथवा, द्रव्य का स्वभाव तर्कणा के योग्य नहीं है; क्योंकि द्रव्यों के स्वभाव प्रतिनियम होते हैं। उनके स्वभाव में ऐसा हो, ऐसा न हो, ऐसा तर्क नहीं चलता। जैसे अग्नि का स्वभाव जलाने पकाने आदि का है और तृण आदि का स्वभाव जलने पकने आदि का है। इनके स्वभाव में कोई तर्क नहीं चलता, उसी प्रकार पुद्गलादि के मूर्तिमान द्रव्य होने पर भी अनेक स्कन्धों का एक आकाश प्रदेश में अवगाहन स्वभाव के कारण अवस्थान होने में कोई विरोध नहीं है अर्थात् एक प्रदेश में अनेक स्कन्ध रह सकते हैं।

अथवा आर्षप्रणीत आगम होने से सूक्ष्म निगोदिया जीवों के अवस्थान के समान एक प्रदेश में अनेक स्कन्ध रह जाते हैं। सर्वज्ञ ज्ञान के द्वारा जिसके अर्थ का सार प्रकट किया गया है, गणधरों ने जिसके वचनों का अनुसरण करके जिसकी रचना की है अर्थात् अंगों में विभक्त किया है तथा आरातीय ( प्राचीन ) आचार्यों के शिष्यों-प्रतिशिष्यों के प्रबन्ध से विच्छेद के बिना अविच्छिन्न रूप से जिसकी सन्तान-परम्परा चली आ रही है, उन निर्दोष ग्रंथों को आर्ष कहते हैं। उन आर्ष ( ऋषिप्रणित ) ग्रंथों में लिखा है कि सारा लोक-अनन्तान्त विविध प्रकार के बादर एवं सूक्ष्म पुद्गलकाय के द्वारा ठसाठस भरा हुआ है आदि। अतः आर्ष वाक्यों की प्रमाणता से भी उक्त स्कन्धों का एकादि प्रदेशों में अवगाह जानना चाहिये। जैसे सर्वज्ञ प्रणीत आगम के अनुसार एक निगोद शरीर में साधारण, आहार, जीवन, मरण और श्वासोच्छ्वास होने से साधारण संज्ञा वाले अनन्त निगोदियों का अवस्थान बताया है, इसलिये साधारण यह अन्वर्थ संज्ञा आगम प्रमाण से जानी जाती है। उसी प्रकार आगम में यह भी बताया है कि 'यह सारा लोकाकाश सर्वतः अनन्तानन्त विविध सूक्ष्म और बादर पुद्गलकायों से ठसाठस भरा हुआ है, अतः आगम प्रमाण से इनका भी अवस्थान समझना चाहिये। तत्वार्थसार में भी कहा है -

**लोकाकाशस्य तस्यैकप्रदेशादींस्तथा पुनः।**
**पुद्गला अवगाहन्ते इति सर्वज्ञशासनम्।।( 25 )** अध्याय 3, पृ. 95
**अवगाहनसामर्थ्यात्सूक्ष्मत्वपरिणामिनः।**
**तिष्ठन्त्येकप्रदेशेऽपि बहवोऽपि हि पुद्गलाः।।( 26 )**
**एकापवरकेऽनेकप्रकाशस्थितिदर्शनात्।**
**न च क्षेत्रविभागः स्यान्न चैक्यमवगाहिनाम्।।( 27 )**
**अल्पेधिकरणे द्रव्यं महीयो नावतिष्ठते।**
**इदं न क्षमते युक्तिं दुःशिक्षितकृतं वचः।।( 28 )**
**अल्पक्षेत्रे स्थितिर्दृष्टा प्रचयस्य विशेषतः।**
**पुद्गलानां बहूनां हि करीषपटलादिषु।।( 29 )**

पुद्गल द्रव्य लोकाकाश के एकप्रदेश से लेकर समस्त लोकाकाश में स्थित है ऐसा सर्वज्ञ भगवान् का कथन है। दूसरे प्रदेशों के लिये स्थान देने की सामर्थ्य होने से सूक्ष्म परिणमन करने वाले बहुत पुद्गल लोकाकाश के एक प्रदेश में रह जाते हैं। एक घर में अनेक दीपकों के प्रकाश की स्थिति देखी जाती है, इसलिये अवगाहन करने वाले द्रव्यों का क्षेत्र जुदा-जुदा नहीं होता और न उन द्रव्यों में एकरूपता आती है। ''छोटे अधिकरण में बहुत बड़ा द्रव्य नहीं रह सकता'' ऐसा अज्ञानी जनों का कहना युक्ति को प्राप्त नहीं है; क्योंकि छोटे क्षेत्र में भी सन्निवेश की विशेषता से बहुत से पुद्गलों की स्थिति देखी जाती है। जैसे गोबर के उपला आदि में धूम के बहुत से प्रदेशों की स्थिति देखी जाती है।

**असंख्येयभागादिषुजीवानाम्।( 15 )**
**लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवानामवगाहो भवति।।**

**The place of souls is in one or more of (these) innumerable parts.**

**जीवों का अवगाह लोकाकाश के असंख्यातवें भाग आदि में है।**

लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं। उसके असंख्यातवें भाग करने पर जो एक भाग प्राप्त होगा उसे असंख्यातवां भाग कहते हैं। उस असंख्यातवें भाग में भी असंख्यात प्रदेश होते हैं; क्योंकि असंख्यात को असंख्यात से भाग करने पर भागफल भी असंख्यात हो आता है; परन्तु भागफल भाज्य से छोटा होगा।

ऐसे लोकाकाश में एक जीव रह सकता है। इसका स्पष्टीकरण इसी प्रकार है –

एक असंख्यातवें भाग में एक जीव रहता है। इस प्रकार दो, तीन और चार आदि असंख्यातवें भागों को लेकर सब लोकपर्यन्त जीव का अवगाह जानना चाहिए, किन्तु नाना जीवों का अवगाह सब लोक में ही होता है।

**प्रश्न** - यदि लोक के एक असंख्यातवें भाग में एक जीव रहता है तो संख्या की अपेक्षा अनन्तानन्त सशरीर जीवराशि लोकाकाश में कैसे रह सकती है ?

**समाधान** - जीव दो प्रकार के हैं – सूक्ष्म और बादर, अतः उनका लोकाकाश में अवस्थान बन जाता है। जो बादर जीव हैं उनका शरीर तो प्रतिघात सहित होता है, किन्तु जो सूक्ष्म हैं वे यद्यपि सशरीर हैं तो भी सूक्ष्म होने के कारण एक निगोद जीव आकाश के जितने प्रदेशों को अवगाहन करता है उतने में साधारण शरीर वाले अनन्तानन्त जीव रह जाते हैं। वे परस्पर में और बादरों के साथ व्याघात को नहीं प्राप्त होते इसलिए लोकाकाश में अनन्तानन्त जीवों के अवगाह में कोई विरोध नहीं आता।

**लोगस्स असंखेज्जदिभागप्पहुदिं तु सव्वलोगो त्ति।**
**अप्पपदेसविसप्पणसंहारे वावड़ो जीवो।।( 584 )गो.जी. पृ.264**

एक जीव अपने प्रदेशों के संहार विसर्प की अपेक्षा लोक असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोक तक में व्याप्त होकर रहता है।

## प्रदेश एवं अप्रदेश की परिभाषा

**जध ते णभप्पदेसा तधप्पदेसा हवंति सेसाणं।**
**अपदेसो परमाणू तेण पदेसुब्भवो भणिदो।।( 137 )**

**Just as there are points of space, so are there of the remaining (substances), a primary atom is without space-points, because (being an unit) it gives rise to the (measure of) space-point.**

( जध ) जैसे ( ते णभप्पदेसा ) वह परमाणु से व्याप्त क्षेत्र आकाश द्रव्य का प्रदेश होता है ( तधप्पदेसा सेसाणां हवंति ) तैसे ही धर्मादि अन्य द्रव्यों के प्रदेश होते हैं। ( परमाणु अपदेसो ) एक अविभागी पुद्गल परमाणु अप्रदेशी है ( तेण ) उस परमाणु से ( पदेसुब्भवो भणिदो ) प्रदेश की प्रगटता होती है। एक परमाणु जितने आकाश क्षेत्र को रोकता है उसको प्रदेश कहते हैं। उस परमाणु के दो आदिप्रदेश नहीं है। इस प्रदेश की माप से आकाश द्रव्य की तरह

शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव परमात्म द्रव्य को आदि लेकर शेष द्रव्यों के भी प्रदेश होते हैं। इनका विस्तार से कथन आगे करेंगे।

**समीक्षा** - इस गाथा में आचार्य श्री ने प्रदेश की परिभाषा तथा प्रदेश के साथ-साथ सप्रदेशी एवं अप्रदेशी की परिभाषा दी है। अविभाज्य पुद्गल द्रव्य को परमाणु कहते हैं इसके दूसरे प्रदेश नहीं होने के कारण इसको अप्रदेशी भी कहते हैं। यह अविभाज्य पुद्गल परमाणु जितने आकाश को अवगाहित करके रहता है उसको एक आकाश प्रदेश कहते हैं। इस इकाई के माध्यम से ही सम्पूर्ण द्रव्यों के प्रदेश की गणना की जाती है। विश्व द्रव्य विज्ञान ( द्रव्य संग्रह ) में कहा भी है -

**जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं।**
**तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं।।( 27 )पृ.163**

जितना आकाश अविभागी पुद्गलाणु से रोका जाता है उसको सब परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ प्रदेश जानो।

इस गाथा में आचार्य श्री ने आकाश प्रदेश की परिभाषा एवं उसकी अवगाहनत्व शक्ति का वर्णन किया है। प्रदेश की परिभाषा करते हुए आचार्य श्री ने कहा है कि शुद्ध अविभागी पुद्गल परमाणु जो अति सूक्ष्म होता है वह जितने आकाश प्रदेश को घेरता है अथवा उसका जितना घनफल है उस घनफल को एक प्रदेश कहते हैं। यह परमाणु इतना सूक्ष्म है कि इसे मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी एवं सामान्य अवधिज्ञानी भी नहीं देख सकते हैं। इसे भौतिक वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र से भी नहीं देख सकते हैं। इसको विशिष्ट अवधिज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी एवं केवलज्ञानी ही देख सकते हैं। ऐसे परमाणु प्रमाण आकाश प्रदेश को एक प्रदेश कहते है और यह प्रदेश क्षेत्र मापने की सबसे क्षुद्रतम इकाई है। इस प्रदेश के द्वारा ही आकाश के प्रदेश, धर्म द्रव्य के प्रदेश, अधर्म द्रव्य के प्रदेश, जीव द्रव्य के प्रदेश, काल द्रव्य का प्रदेश मापा जाता है। ऐसे सूक्ष्म आकाश प्रदेश में भी इतना अवगाहन शक्ति है कि वह आकाश प्रदेश, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक काल द्रव्य, संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त परमाणु को भी अवकाश दे सकता है। इसके साथ-साथ अनेक जीवों के आत्म प्रदेशों को भी स्थान दे सकता है।

इस प्रकार की अवगाहन शक्ति जो आकाश में है इसी हेतु से असंख्यात

प्रदेश प्रमाण लोकाकाश में अनन्तानन्त जीव तथा उन जीवों से भी अनन्तगुणे पुद्गल अवकाश को प्राप्त होते हैं। सो ही जीव तथा पुद्गल के विषय में इसके अवकाश देने का सामर्थ्य आगम में कहा है।

**सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू।**
**सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो।।( 77 )पृ.217 पं.का.**

सर्व स्कन्धों का जो अंतिम भाग उसे परमाणु जानो वह अविभागी, एक शाश्वत, मूर्तिप्रभव और अशब्द है।

**आदेसमेत्तमुत्तो धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु।**
**सो णेओ परमाणु परिणामगुणो सयमसद्धो।।( 78 )**

जो आदेश मात्र से मूर्त्त हैं और जो ( पृथ्वी आदि ) चार धातुओं का कारण है, वह परमाणु जानना जो कि परिणाम गुण वाला है और स्वयं अशब्द है।

**णिच्चो णाणवकासो ण सावकासो पदेसदो भेदा।**
**खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं।।( 80 )**

जो परमाणु है, वह वास्तव में एकप्रदेश द्वारा - जो कि रूपादि गुण सामान्य वाला है उसके द्वारा सदैव अविनाशी होने से नित्य है, वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा उससे ( प्रदेश से ) अभिन्न अस्तित्व वाले स्पर्शादि गुणों को अवकाश देता है इसलिये अनवकाश नहीं है। वह वास्तव में प्रदेश द्वारा ( उसमें ) द्वि-आदि प्रदेशों का अभाव होने से, स्वयं ही आदि, स्वयं ही मध्य और स्वयं ही अन्त होने के कारण ( अर्थात् निरंश होने के कारण ) सावकाश नहीं है, वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा स्कन्धों के भेद का निमित्त होने से स्कन्धों का भेदन करने वाला है, वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा स्कन्ध के संघात का निमित्त होने से स्कन्धों का कर्त्ता है, वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा जो कि एक आकाश प्रदेश का अतिक्रमण करने वाले ( लांघने वाले ) अपने गति परिणाम को प्राप्त होता है उसके द्वारा 'समय' नामक काल का विभाग करता है इसलिये काल का विभाजक है। वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा संख्या का भी विभाजक है; क्योंकि वह एक प्रदेश द्वारा उससे रचे जाने वाले दो आदि भेदोंपूर्वक द्रव्य संख्या का विभाग स्कन्धों में करता है, ( 2 ) वह एक प्रदेश द्वारा, उसके जितनी मर्यादा वाले एक आकाश प्रदेश पूर्वक क्षेत्र संख्या के विभाग करता है, ( 3 ) वह एक प्रदेश द्वारा, एक आकाश प्रदेश का

अतिक्रम करने वाले उस गति परिणाम जितनी मर्यादा वाले समयपूर्वक काल संख्या का विभाग करता है, ( 4 ) वह एक प्रदेश द्वारा, उसमें विवर्त्तन पाने वाले ( परिवर्तित, परिणमित ) जघन्य वर्णादिक भाव को जानने वाले ज्ञानपूर्वक भाव संख्या का विभाग करता है, इस कारण वह संख्या का विभाजन करने वाला भी है।

**1. विभाजक** - विभाग करने वाला, मापने वाला। स्कन्धों में द्रव्य संख्या का माप अर्थात् वे कितने अणुओं-परमाणुओं से बने हैं, ऐसा माप करने में अणुओं की परमाणुओं की अपेक्षा होती है, अर्थात् वैसा माप परमाणु द्वारा होता है। क्षेत्र के माप का एकक ( एकम ) 'आकाश प्रदेश' है और आकाश प्रदेश की व्याख्या में परमाणु की अपेक्षा होती है, इसलिये क्षेत्र का माप भी परमाणु द्वारा होता है। काल के माप का एकक 'समय' है और समय की व्याख्या में परमाणु की अपेक्षा होती है, इसलिये काल का माप भी परमाणु द्वारा होता है। ज्ञानभाव के ( ज्ञान पर्याय के ) माप का एकक ''परमाणु में परिणमित जघन्य वर्णादिभाव को जाने उतना ज्ञान'' है और उसमें परमाणु की अपेक्षा होती है, इसलिये भाव का ( ज्ञान भाव का ) माप भी परमाणु द्वारा होता है। इस प्रकार परमाणु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का माप करने के लिये गज समान है।

**2. एक परमाणु प्रदेश बराबर आकाश के भाग को** - ( क्षेत्र को ) 'आकाश प्रदेश' कहा जाता है। वह 'आकाश प्रदेश' क्षेत्र का 'एकक' है। ( गिनती के लिये, किसी वस्तु के जितने परिणाम को एक माप माना जाये, उतने परिणाम को उस वस्तु का एकक कहा जाता है। )

3. परमाणु को एक आकाश प्रदेश से दूसरे अनन्तर आकाश प्रदेश में ( मंदगति से ) जाते हुए जो समय लगता है, उसे 'समय' कहा जाता है।

आकाश आदि बहुप्रदेशी द्रव्यों के प्रदेशों की गणना परमाणुओं के द्वारा की जाती है तथापि इनके प्रदेश परस्पर भिन्न होकर नहीं रहते हैं, परन्तु परस्पर अखण्ड रूप में रहते हैं। केवलज्ञान के माध्यम से उनकी अंश कल्पना की गई है जिस प्रकाा आकाश एक अनंतानंत प्रदेश वाला द्रव्य है। इसके लोकाकाश में असंख्यात प्रदेश होते हैं और अलोकाकाश में अनन्तानन्त प्रदेश होते हैं। लोकाकाश, अलोकाकाश कोई वस्तुतः आकाश के पूर्ण विखण्डित अलग-

अलग दो टुकड़े नहीं हैं, परन्तु जहां पर सम्पूर्ण द्रव्य रहते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं। जहां केवल आकाश रहता है उसे अलोकाकाश कहते हैं। जिस प्रकार इसमें दूसरी अपेक्षा से प्रयोजन के कारण भेद की कल्पना की गई है। इसी प्रकार जीवादि द्रव्य में जान लेना चाहिए।

( भगवत् कुंदकुंदाचार्य ) स्वयं ही ( 140वें ) सूत्र द्वारा कहेंगे कि आकाश के प्रदेश का लक्षण एकाणुव्याप्यत्व ( अर्थात् एक परमाणु से व्याप्त होना ) है। यहाँ ( इस सूत्र गाथा में ) जिस प्रकार आकाश के प्रदेश हैं उसी प्रकार शेष द्रव्यों के प्रदेश हैं। इस प्रकार प्रदेश के लक्षण की एक प्रकारता कही जाती है, इसलिये एकाणु व्याप्य ( जो एक परमाणु से व्याप्य हो ऐसे ) अंश के द्वारा गिने जाने पर जैसे आकाश के अनंत अंश होने पर आकाश अनंत प्रदेशी है, उसी प्रकार एकाणु व्याप्त अंश के द्वारा गिने जाने पर धर्म, अधर्म और एक जीव के असंख्यात अंश होने से वे प्रत्येक असंख्यात प्रदेशी हैं। जैसे ( संकोच विस्तार रहित होने की अपेक्षा ) अवस्थित प्रमाण वाले धर्म तथा अधर्म असंख्यात प्रदेशी हैं, उसी प्रकार संकोच विस्तार के कारण ( संकोच-विस्तार होने की अपेक्षा ) अनवस्थित प्रमाण वाले जीव के सूखे गीले चमड़े की भांति निज अंशों का अल्प बहुत्व नहीं होता ( संख्या में प्रदेशों की हानि वृद्धि नहीं होती ) इसलिये असंख्यात प्रदेशित्व ही है।

( यहां यह प्रश्न होता है कि अमूर्त जीव का संकोच विस्तार कैसे संभव है ? उसका समाधान किया जाता है - )

अमूर्त के संकोच विस्तार की सिद्धि तो अपने अनुभव से ही साध्य है; क्योंकि ( सबको स्वानुभव से स्पष्ट है कि ) जीव स्थूल तथा कृश शरीर में तथा बालक और कुमार के शरीर में व्याप्त होता है।( जीव के जो प्रदेश मोटे शरीर में फैले हुए थे, वे ही शरीर के पतले हो जाने पर सिकुड़ गये तथा बालक के शरीर में जो जीव प्रदेश सिकुड़े हुए थे, वे ही कुमार अवस्था के शरीर में फैल जाते हैं )। इस प्रकार से जीव के प्रदेशों का संकोच तथा विस्तार सिद्ध होता है। पुद्गल तो द्रव्य की अपेक्षा से एक प्रदेशमात्र होने से यथोक्त ( पूर्वकथित ) प्रकार से अप्रदेशी है, तथापि दो प्रदेश आदि ( द्वयणुक आदि ) स्कंधों के हेतुभूत तथाविध ( उस प्रकार के ) स्निग्ध और रूक्ष गुण रूप परिणमित होने की शक्ति रूप स्वभाव के कारण उस पुद्गल के प्रदेशों का

( बहुप्रदेशत्व का ) उद्भव है। इसलिये पर्यायतः अनेक प्रदेशित्व की भी संभावना होने से पुद्गल द्विप्रदेशत्व से लेकर संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेशत्व भी न्याययुक्त है।

## कालाणु अप्रदेशी है

**समओ दु अप्पदेसो पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स।**
**वदिवददो सो वट्टदि पदेसमागासदव्वस्स।।( 138 )प्र. सार**

**The moment of time is without space-points; it is equal to the time required by that unit of substances measured by one Pradesa to traverse one space-point of the sky-substance.**

आगे काल द्रव्य के दो तीन आदि प्रदेश नहीं हैं, मात्र एक प्रदेश है इसी से वह अप्रदेशी है, ऐसी व्यवस्था करते हैं - ( समओ दु अप्पदेसो ) कालद्रव्य निश्चय से अप्रदेशी है, ( सो ) वह काल द्रव्य ( पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स ) प्रदेश मात्र पुद्गल द्रव्य रूप परमाणु के ( आगासदव्वस्स पदेसं ) आकाश द्रव्य के प्रदेश को ( वदिवददो ) उल्लंघन करने से ( वट्टदि ) वर्त्तन करता है।

समय नामा पर्याय का उपादान कारण कालाणु है। इससे कालाणु को समय कहते हैं। वह कालाणु दो तीन आदि प्रदेशों से रहित मात्र एक प्रदेश वाला है इससे उसको अप्रदेशी कहते हैं। वह कालाणु पुद्गल द्रव्य की परमाणु की गति की परिणति रूप सहकारी कारण से वर्तन करता है। हर एक कालाणु से हर एक लोकाकाश का प्रदेश व्याप्त है। जब एक परमाणु मंदगति से ऐसे पास वाले प्रदेश पर जाता है तब इसकी गति की सहायता से काल द्रव्य वर्तन करता हुआ समय पर्याय को उत्पन्न करता है। जैसे स्निग्ध रूक्ष गुण के निमित्त से पुद्गल के परमाणुओं का परस्पर बंध हो जाता है इस तरह बंध कालाणुओं का कभी नहीं हो सकता इसीलिए कालाणु को अप्रदेशी कहते हैं। यहाँ यह भाव है कि पुद्गल परमाणु का एक प्रदेश तक गमन होना ही सहकारी कारण है, अधिक दूर तक जाना सहकारी कारण नहीं। इससे भी ज्ञात होता है कि कालाणु द्रव्य एक प्रदेश रूप ही है।

**समीक्षा** - इस गाथा में आचार्य श्री ने काल द्रव्य एक ही प्रदेश वाला है, अनस्तिकाय है इसे युक्ति से सिद्ध किया है। यह युक्ति यह है कि जब पुद्गल परमाणु आकाश के एक प्रदेश के मंदगति से पार ( उल्लंघन ) करता है अर्थात्

एक प्रदेश से उसके निकटतम दूसरे प्रदेश पर मंद गति से गमन करके जाता है, तब उस उलंघित किये जाने वाले प्रदेश पर रहने वाला कालाणु उस गति के लिये निमित्त भूत होता है; क्योंकि प्रत्येक परिणमन के लिये क्रिया के लिये काल की भी आवश्यकता है। इससे सिद्ध होता है यहाँ पर भी कालाणु है। इस प्रकार प्रत्येक कालाणु पुद्गल परमाणु के एक प्रदेश तक गमनपर्यन्त सहकारी रूप से रहता है। इससे अधिक नहीं। इससे सिद्ध होता है कि काल द्रव्य द्रव्यतः ( विस्तार से ) तथा पर्यायतः अनेक प्रदेशी नहीं है परन्तु एक प्रदेशी है। कोई प्रश्न कर सकता है कि जीव पुद्गल अनेक प्रदेश तक गमन करते हैं, जब कालाणु एक प्रदेश व्यापी है तब वे कैसे गमन करते हैं? इसका उत्तर यह है कि भले कालाणु एक प्रदेश व्यापी है तथापि लोकाकाश के हर एक प्रदेश में एक-एक कालाणु स्थित है। इसलिये आगे की गति के लिये आगे के कालाणु सहायक बनते जाते हैं। जिस प्रकार रेल की एक पटरी की लम्बाई कुछ मीटर रहती है, परन्तु अनेक पटरियां मिलकर पूरी रेल लाइन बनती है जिसके ऊपर रेल गमनागमन करती है। इसी प्रकार पूरे लोकाकाश में एक-एक कालाणु अवस्थित है। द्रव्य संग्रह में कहा भी है -

**लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का।**
**रयणाणं रासीइव ते कालाणु असंखदव्वाणि।।( 22 )**

जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान परस्पर भिन्न होकर एक-एक स्थित हैं वे कालाणु हैं और असंख्यात द्रव्य हैं।

आचार्य श्री ने इस गाथा में निश्चय काल का क्षेत्र एवं संख्या का वर्णन किया है। काल द्रव्य अमूर्तिक, शाश्वतिक शुद्ध होने से परस्पर मिले होने पर भी, स्पर्श करके स्थित होने पर भी परस्पर बन्ध को प्राप्त नहीं होते या मिलते नहीं हैं, क्योंकि अमूर्तिक होने के कारण स्निग्ध, रूक्षत्व गुण नहीं है, जो बंध के लिये कारण होते हैं। लोकाकाश में असंख्यात प्रदेश होते हैं और एक-एक प्रदेश में एक-एक कालद्रव्य स्थित है इसलिये काल द्रव्य भी असंख्यात हो जाते हैं। कहा भी है -

**एकैकवृत्त्या प्रत्येक मणवस्तस्य निष्क्रियाः।**
**लोकाकाशप्रदेशेषु रत्नराशिरिव स्थिताः।।( 44 )**

उस काल द्रव्य के क्रिया रहित प्रत्येक अणु रत्नों की राशि के समान

लोकाकाश के प्रदेशों पर एक-एक स्थित हैं।

काल अमूर्तिक द्रव्य होने के कारण इस सिद्धि-कष्ट साध्य हैं। इसलिये कालद्रव्य को अनेक दार्शनिक न तो जानते हैं, न मानते हैं, परन्तु जैन धर्म में जो द्रव्य की परिभाषा दी गई है इस द्रव्य की परिभाषा के अनुसार काल भी परिभाषित होता है इसलिये काल भी द्रव्य है। द्रव्य की विभिन्न परिभाषाओं में से 1. 'सद् द्रव्य लक्षणम्' द्रव्य का लक्षण सत् है, 2. 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' उत्पाद व्यय और ध्रौव्य से युक्त सत् होता है, 3. 'गुणपर्याययवद् द्रव्यम्' गुण और पर्याय वाला द्रव्य है, ये कुछ मुख्य परिभाषाये हैं। इन परिभाषाओं के अनुसार काल द्रव्य भी एक द्रव्य होता है। उसी प्रकार कालाणु के भी मंदगति में परिणत पुद्गल परमाणु द्वारा प्रकट किये हुए और कालाणु रूप उपादान कारण से उत्पन्न हुये ऐसे वर्तमान समय का उत्पाद है वही अतीत गये हुए समय की अपेक्षा उसका विनाश है और उन वर्तमान तथा अतीत दोनों समयों का आधारभूत कालद्रव्यपने से ध्रौव्य है। ऐसे उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य रूप लक्षण का धारक कालद्रव्य की सिद्धि है।

**शंका** - ''लोक के बाह्य भाग में कालाणु द्रव्य के अभाव से अलोकाकाश में परिणमन कैसे हो सकता है?''

**समाधान** - आकाश अखंड द्रव्य है इसलिये जैसे चाक के एक देश में विद्यमान दंड की प्रेरणा से सम्पूर्ण कुम्भकार के चाक का परिभ्रमण हो जाता है, उस तरह से अथवा जैसे एक देश में प्रिय ऐसे स्पर्शन इन्द्रिय के विषय का अनुभव करने से समस्त शरीर में सुख अनुभव होता है। उस प्रकार लोक के मध्य में स्थित जो कालाणु द्रव्य को धारण करने वाला एक देश आकाश है, उससे भी सर्व आकाश में परिणमन होता है।

**शंका** - जैसे कालद्रव्य, जीव, पुद्गल आदि द्रव्यों के परिणमन में सहकारी कारण है वैसे ही काल द्रव्य के परिणमन में कौन सहकारी है?

समाधान - जैसे आकाश द्रव्य सम्पूर्ण द्रव्यों का आधार है और अपना आधार भी आप ही है, इसी प्रकार काल द्रव्य भी अन्य सब द्रव्यों के परिणमन में और अपने परिणमन में भी सहकारी कारण है।

**शंका** - काल द्रव्य अपना तो उपादान कारण है और परिणमन का सहकारी कारण है, वैसे ही जीव आदि सब द्रव्यों को अपने उपादान कारण

और परिणति के सहकारी कारण जानो। उन जीव आदि के परिणमन में कालद्रव्य से क्या प्रयोजन है ?

**समाधान -** ऐसा नहीं। क्योंकि यदि अपने से भिन्न बहिरंग सहकारी कारण से प्रयोजन नहीं है तो सब द्रव्यों में साधारण रूप समानता से विद्यमान जो गति, स्थिति तथा अवगाहन है उसके विषय में सहकारी कारणभूत जो धर्म, अधर्म तथा आकाश द्रव्य है, उनसे भी कोई प्रयोजन नहीं है और भी कालका तो घटिका ( घड़ी ) दिन आदि कार्य प्रत्यक्ष से ही दिख पड़ता है और धर्म द्रव्य आदि का कार्य तो केवल आगम ( शास्त्र ) के कथन से ही माना जाता है। उनका कोई कार्य प्रत्यक्ष से नहीं दिख पड़ता। इसलिये जैसे कालद्रव्य का अभाव मानते हो, उसी प्रकार उन धर्म अधर्म तथा आकाश द्रव्यों का भी अभाव अवश्य प्राप्त होता है और जब इन काल आदि चारों का अभाव मान लोगे तो जीव तथा पुद्गल ये दो ही द्रव्य रह जायेंगे और दो द्रव्यों के मानने पर आगम से विरोध होगा और सब द्रव्यों के परिणमन में सहकारी होना यह केवल कालद्रव्य का ही गुण है जैसे घ्राण इन्द्रिय ( नासिका ) से रस का अस्वाद नहीं हो सकता ऐसे ही अन्य द्रव्य का गुण भी अन्य द्रव्य के करने में नहीं आता; क्योंकि ऐसा मानने से द्रव्य-संकर दोष का प्रसंग होगा अर्थात् अन्य द्रव्य का लक्षण अन्य द्रव्य में चला जाएगा, जो कि सर्वथा अनुचित है।

**शंका -** जितने काल में एक आकाश के प्रदेश को परमाणु अतिक्रम करता है अर्थात् एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में गमन करता है उतने काल का नाम समय होता है यह शास्त्र में कहा है और इस हिसाब से चौदह रज्जु गमन करने में जितने आकाश के प्रदेश हैं उतने समय ही लगने चाहिये परन्तु शास्त्र में यह भी कहा है कि पुद्गल परमाणु एक समय में चौदह रज्जु पर्यन्त गमन करता है सो यह कथन कैसे संभव हो सकता है ?

**समाधान -** आगम में जो परमाणु का एक समय में एक आकाश के प्रदेश में गमन करना कहा है सो तो मंद गति की अपेक्षा से हैं और जो परमाणु का एक समय में चौदह रज्जु का गमन कहा है, वह शीघ्र गमन की अपेक्षा से है। इस कारण परमाणु को शीघ्र गति से चौदह रज्जु प्रमाण गमन करने में भी एक ही समय लगता है। जैसे जो देवमत्त मंद गमन ( धीरी चाल ) से सौ योजन सौ दिन में जाता है, वही देवदत्ता विद्या के प्रभाव से शीघ्र गमन आदि करके सौ योजन

एक दिन में भी जाता है तो क्या उस देवदत्त को शीघ्र गति से सौ योजन गमन करने में सौ दिन लगेंगे ? नहीं एक ही दिन लगेगा। इसी प्रकार शीघ्र गति से चौदह रज्जु गमन करने में भी परमाणु को एक ही समय लगता है। मोक्षशास्त्र में काल को भी द्रव्य कहा है, यथा 'कालश्च' ( 39 ) काल भी द्रव्य है।

**कालोत्ति य ववएसो सब्भावपरूवओ हवदि णिच्चो।**
**उप्पण्णपद्धंसीअवरो दीहंतरट्ठाई।।( 580 )( गो. पृ. 263 )**

काल यह व्यपदेश संज्ञा मुख्यकाल का बोधक है, निश्चय काल द्रव्य के अस्तित्व को सूचित करता है क्योंकि बिना मुख्य के गौण अथवा व्यवहार की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। यह मुख्यकाल द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नित्य है तथा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उत्पन्नध्वंसी है तथा व्यवहार काल वर्तमान की अपेक्षा उत्पन्नध्वंसी है और भूत भविष्यत् की अपेक्षा दीर्घान्तिरस्थायी है।

**ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासा य।**
**अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टयालक्खो य कालोत्ति।।( 24 )( पंचा. पृ.87 )**

जो पाँच वर्ण पाँच रस से रहित है व जो दो गंध व आठ स्पर्श से रहित है, अगुरुलघु गुण के द्वारा षट् गुणी वृद्धि सहित है, अमूर्तिक ऐसा यह काल द्रव्य है।

नियमसार में भी सिद्ध किया गया है कि कालाणु के अभाव में किसी भी द्रव्य में परिणमन नहीं हो सकता है। परन्तु विश्व में सतत् परिणमन पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि लोकाकाश में कालाणु अवस्थित है। यथा –

**''कालाभावे न भावानां परिणामस्तदंतरात्।**
**न द्रव्यं नापि पर्यायः सर्वाभावः प्रसज्यते।।''**
**वर्तनाहेतुरेषः स्यात् कुम्भकृच्चक्रमेव तत्।**
**पंचानामस्तिकायानां नान्यथा वर्तना भवेत्।।( 48 )**

''कालद्रव्य के अभाव में पदार्थों का परिणमन नहीं हो सकता है और परिणमन के बिना न तो द्रव्य ही रह सकता है और न पर्याय ही रह सकती है, इस प्रकार से तो सभी के अभाव का प्रसंग आ जाता है।'' यह काल द्रव्य कुम्भकार के चक्र के समान पांचों अस्तिकायों में वर्तना का हेतु है। इसके बिना वर्तना नहीं हो सकती है।

**प्रतीति गोचराः सर्वे जीव पुद्गल राशयः।**
**धर्माधर्मनभः कालाः सिद्धाः सिद्धान्त पद्धते।।( 49 )**

सभी जीव और पुद्गल राशि प्रतीति के गोचर हैं और धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार द्रव्य सिद्धान्त पद्धति से सिद्ध हैं।

जीवादीदव्वाणं, परिवट्टणकारणं हवे कालो।
धम्मादि चउण्हं णं सहावगुण पज्जया होंति।।( 33 )

जीव आदि द्रव्यों में परिवर्तन का कारण काल द्रव्य होता है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चारों में स्वभाव गुण पर्यायें होती हैं।

यहाँ पर मुख्य काल द्रव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इन पांचों द्रव्यों में पर्यायों के परिणमन का हेतु होने से परिवर्तन लक्षण वाला कहा गया है।

## समय की परिभाषा

**वदिवददो तं देसं तस्सम समओ तदोपरो पुव्वो।**
**जो अत्थो सो कालो समओ उप्पण्णपद्धंसी।।( 139 )**

**That much duration required for crossing from one to the other spatial point is (known as) Samaya, instant or moment, the objective entity before and after is time: Samaya is liable to origination and destruction.**

( तं देसं ) उस कालाणु से व्याप्त आकाश के प्रदेश पर ( वदिवददो ) मंद गति से जाने वाले पुद्गल परमाणु को ( तस्सम समओ ) जो कुछ काल लगता है उसी के समान समय पर्याय है।( तदोपरो पुव्वो जो अत्थो ) इस समय पर्याय के आगे और पहले जो पदार्थ है ( सो कालो ) वह काल द्रव्य है।( समओसमय पर्याय उत्पन्न होकर नाश होने वाली है।

जब तक एक पुद्गल का परमाणु मंदगति से एक कालाणु व्याप्त आकाश के प्रदेश से दूसरे कालाणु व्याप्त आकाश के प्रदेश पर आता है तब तक उसमें जो काल लगता है उसी के समान कालाणु द्रव्य की सूक्ष्म समय नाम की पर्याय होती है - वही व्यवहारकाल है। कालद्रव्य की पर्याय का यह स्वरूप कहा गया। इस समय पर्याय के उत्पन्न होने के पहले जो अपनी पूर्व-पूर्व समय पर्यायों में अन्वय रूप से बराबर चला आ रहा है व आगामी काल में होने वाली समय पर्यायों में अन्वय रूप से बराबर चला जायेगा वह कालद्रव्य नामा पदार्थ

है। यद्यपि यह समय पर्याय पूर्व काल की और उत्तरकाल की समयों की संतान की अपेक्षा संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त समय रूप है तथापि वर्तमान काल का समय उत्पन्न होकर नाश होने वाला है, किन्तु जो पूर्व में कहा हुआ द्रव्यकाल है, वह तीनों कालों में स्थायी होने से नित्य है। इस तरह कालद्रव्य को पर्याय स्वरूप और द्रव्य स्वरूप जानना योग्य है अथवा इन दो गाथाओं से समय रूप व्यवहार काल का व्याख्यान किया जाता है। निश्चय काल का व्याख्यान तो 'उप्पादो पद्धंसो' इत्यादि तीन गाथाओं से आगे करेंगे।

सो वह इस तरह पर है कि द्वितीयादि प्रदेश रहित निरंश प्रदेशमात्र पुद्गल द्रव्य रूप परमाणु की मंदगति से किसी विवक्षित एक आकाश के प्रदेश पर जाते हुए जो वर्तन करती है वह निश्चय काल की समय पर्याय अंश रहित है। यह पहली गाथा का व्याख्यान है। वह परमाणु उस आकाश के प्रदेश पर जब पतन करता है तब उस पुद्गल परमाणु के मंद गति से गमन में जो काल लगा है उसी के समान समय है इसलिये एक समय अंश रहित है, अर्थात् समय सबसे छोटा काल है। इस तरह वर्तमान समय कहा गया। अब आगे पीछे के समयों को कहते हैं कि इस पूर्व में कहे हुए वर्तमान समय से आगे कोई समय होएगा तथा पूर्व में कोई समय हो चुका है इस प्रकार अतीत, अनागत, वर्तमान रूप से तीन प्रकार व्यवहार काल कहा जाता है। इन तीन प्रकार समयों में जो कोई वर्तमान का समय है वह उत्पन्न होकर नाश होने वाला है। अतीत और अनागत संख्यात, असंख्यात और अनंत समय है। इस तरह स्वरूप के धारी काल के होते हुए भी यह जीव अपने परमात्म तत्व को नहीं प्राप्त करता हुआ भूत की अपेक्षा अनन्त काल से इस संसार समुद्र में भ्रमता चला आया है इसलिये ही अब इसके लिए अपना ही परमात्म तत्त्व सर्व तरह से ग्रहण करने योग्य मानकर श्रद्धान करने योग्य व स्वसंवेदन ज्ञान से जानने योग्य है तथा आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा को आदि लेकर सर्व रागादि भावों को त्यागकर ध्यान करने योग्य है ऐसा तात्पर्य है। परमात्म तत्व सर्व तरह से ग्रहण करने योग्य है, ऐसा तात्पर्य है व स्वसंवेदन ज्ञान से जानने योग्य है।

किसी प्रदेशमात्र काल पदार्थ के द्वारा आकाश का जो प्रदेश व्याप्त हो, उस प्रदेश को जब परमाणु मंदगति से उल्लंघन करता है, तब उस प्रदेशमात्र अतिक्रमण ( उल्लंघन ) के परिणाम ( काल ) के बराबर जो काल पदार्थ की

सूक्ष्मवृत्ति ( परिणति ) रूप 'समय' है, वह उस काल पदार्थ की पर्याय है और ऐसी उस पर्याय से पूर्व की तथा बाद की वृत्ति रूप से वर्तित होने से जिसका नित्यत्व प्रगट होता है, ऐसा पदार्थ द्रव्य है। इस प्रकार द्रव्य समय ( कालद्रव्य ) अनुत्पन्न-अविनष्ट है और पर्याय समय उत्पन्नध्वंसी है। यह समय निरंश है; क्योंकि यदि ऐसा न हो तो आकाश के प्रदेश का निरंशत्व न बने। एक समय में परमाणु के लोक के अंत तक जाने पर भी, समय के अंश नहीं होते क्योंकि ( परमाणु के ) विशिष्ट ( विशेष प्रकार के ) अवगाह परिणाम विशिष्ट गति परिणाम होता है। इसे समझाते हैं - जैसे विशिष्ट अवगाह परिणाम के कारण एक परमाणु के परिमाण के बराबर अनंत परमाणुओं का स्कन्ध बनता है, तथापि वह स्कंध परमाणु के अनंत अंशों को सिद्ध नहीं करता; क्योंकि परमाणु निरंश है। उसी प्रकार जैसे एक कालाणु से व्याप्त एक आकाश प्रदेश के अतिक्रमण के माप के बराबर एक 'समय' में एक परमाणु विशिष्ट गति परिणाम के लोक के एक छोर से दूसरे छोर तक जाता है तब ( उस परमाणु के द्वारा उल्लंघित होने वाले ) असंख्य कालाणु 'समय' के असंख्य अंशों को सिद्ध नहीं करते; क्योंकि समय निरंश है।

यहां प्रश्न है कि जब पुद्गल-परमाणु शीघ्र गति के द्वारा एक 'समय' में लोक के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंच जाता है तब वह चौदह राजू तक आकाश प्रदेशों में श्रेणिबद्ध कितने कालाणु है उन सबको स्पर्श करता है। इसलिये असंख्य कालाणुओं को स्पर्श करने से 'समय' के असंख्य अंश होना चाहिए ?

**समाधान** - जैसे अनंत परमाणुओं का कोई स्कंध आकाश के एक प्रदेश में समाकर परिमाण में एक परमाणु जितना ही होती है, सो वह परमाणुओं के विशेष प्रकार के अवगाह परिणाम के कारण ही है ( परमाणुओं में ऐसी ही कोई विशिष्ट प्रकार की अवगाह परिणाम की शक्ति है, जिसके कारण ऐसा होता है ), इससे कहीं परमाणु के अनंत अंश नहीं होते। इसी प्रकार कोई परमाणु एक समय में असंख्य कालाणुओं को उल्लंघटन करके लोक के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँच जाता है, सो वह परमाणु के विशेष प्रकार के गति परिणाम के कारण ही है ( परमाणु में ऐसी ही कोई विशिष्ट प्रकार के गति परिणाम की शक्ति है, जिसके कारण ऐसा होता है ), इससे कहीं समय के असंख्य अंश नहीं होते।

**समीक्षा** - इस गाथा में आचार्य श्री ने व्यवहार काल तथा निश्चय काल की सिद्धि की है। व्यवहार काल उसे कहते हैं, जब एक परमाणु मंद गति से एक आकाश प्रदेश को उल्लंघन करता है तब उस उल्लंघन करने के लिए जो अवधि चाहिए उसे समय कहते हैं। यह समय व्यवहार काल की क्षुद्रतम इकाई है। उस अवधि के पहले एवं उस अवधि के बाद जो परिवर्तन होता है और उस परिवर्तन के लिए जो मूलभूत कारण है वह है निश्चय कालद्रव्य। इसलिए व्यवहार काल तो उत्पन्न होने वाला और नाश होने वाला है परन्तु निश्चय काल अनादि अनिधन है। पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्द देव ने भी कहा है -

**णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता।**
**पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्च-भावो।।( 26 ) पृ.93**

बहुत काल को चिर व थोड़े काल को क्षिप्र कहते हैं। लोक में चिर या क्षिप का व्यवहार बिना मर्यादा के नहीं हो सकता। घड़ी प्रहर आदि के काल को जब चिरकाल कहेंगे तब उससे छोटे काल को क्षिप्रकाल कहेंगे। सूक्ष्मकाल एक समय है जो मंद गति में परिणमन करते हुए पुद्गल के परमाणु के बिना नहीं जाना जाता है। जो निमिष मात्र है व आँख के पलक मारने के बिना नहीं जाना जाता है। चिरकाल, घड़ी आदि घटिका के निमित्त जलपात्र आदि द्रव्य के बिना नहीं जाने जाते हैं। इस कारण समय घटिकादि रूप सूक्ष्म या स्थूल व्यवहार काल यद्यपि निश्चय नय से कालद्रव्य की पर्याय है तथापि व्यवहार से परमाणु व जल आदि पुद्गल द्रव्य के आश्रय या निमित्त से उत्पन्न होता है, ऐसा कहा जाता है। जैसे निश्चय से पुद्गल पिंड रूप मिट्टी के उपादान कारण से उत्पन्न जो घट सो व्यवहार से कुंभार के निमित्त से बना होने से कुंभार से किया गया ऐसा कहा जाता है। तैसे ही समयादि व्यवहार काल यद्यपि निश्चय से परमार्थ कालद्रव्य के उपादान कारण से उत्पन्न हुआ है तथापि समय को निमित्त भूत परमाणु द्वारा या घटिका को निमित्त भूत जलादि पुद्गल द्रव्य द्वारा प्रगट होने से पुद्गल से उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा जाता है। फिर किसी ने कहा - समय रूप व्यवहार काल को छोड़कर ही मानो निश्चय काल कालाणु द्रव्य रूप कोई नहीं है ? इसका समाधान आचार्य कहते हैं कि समय सबसे सूक्ष्म काल रूप प्रसिद्ध एक पर्याय है, वह द्रव्य नहीं है। पर्याय इसलिए है कि समय उपजता विनशता है। कहा है - **'समओ उप्पण्ण पद्धंसी'** पर्याय बिना द्रव्य के नहीं हो सकती है। द्रव्य निश्चय से अविनाशी होता है

इसलिये काल की समय पर्याय का उपादान कारण कालाणु रूप काल द्रव्य ही है पुद्गलादि नहीं; क्योंकि यह नियम है कि जैसा उपादान कारण होता है, वैसा कार्य होता है। मिट्टी का पिंड जैसा होगा वैसा ही उसके उपादान कारण के समान घट बनेगा। और तो क्या ? काल शब्द ही परमार्थ काल का वाचक होने से अपने ही वाच्य परमार्थ काल के स्वरूप को स्थापित करता है। जैसे सिंह शब्द सिंह पदार्थ को, सर्वज्ञ शब्द सर्वज्ञ-पदार्थ को, इन्द्र शब्द इन्द्र पदार्थ को सिद्ध करता है। फिर भी संकोचते हुए निश्चय तथा व्यवहार काल का स्वरूप कहते हैं।

समय आदि रूप सूक्ष्म व्यवहार काल का व घटिका आदि रूप स्थूल व्यवहार काल का जो कोई उपादान कारण है तथा जो समय घटिकादि के भेद से कहने योग्य व्यवहार काल की भेद कल्पना से रहित है व जो तीनों कालों में रहने वाला अनादि अनंत लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों के प्रमाण असंख्यात कालाणु रूप भिन्न-भिन्न द्रव्य है, सो निश्चय काल है तथा जो निश्चय काल के उपादान कारण से पैदा होने पर भी पुद्गल परमाणु व जल पात्रादि से प्रगट होता है सो समय घटिका दिवस आदि रूप से विशेष-विशेष व्यवहार की कल्पना में आने वाला व्यवहार काल है। इस व्याख्यान में से यह तात्पर्य लेना कि जिसका लाभ भूत के अनंत काल में दुर्लभ रहा है, ऐसा जो शुद्ध जीवास्तिकाय है। उसी के ही चिदानंदमई एक स्वभाव में सम्यक् श्रद्धान करना चाहिये उसी को रागादि से भिन्न जानकर भेद ज्ञान प्राप्त करना चाहिये तथा उसी में ही रागादि विभाव रूप सर्व संकल्प-विकल्प-जाल छोड़कर स्थिर चित्त करना चाहिए।

**कालो परिणाम भवो परिणामो दव्वकाल संभूदो।**
**दोणहं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो।।( 100 )**

समय, निमिष, घड़ी, दिन आदि को व्यवहार काल कहते हैं। जब एक पुद्गल का परमाणु एक कालाणु से निकटवर्ती कालाणु पर मंद गति से उल्लंघन कर जाता है तब समय नाम का सबसे सूक्ष्म व्यवहार काल प्रगट होता है अर्थात् इतनी देर को समय कहते हैं। आँखों की पलक लगाने से निमिष, जल के बर्तन, हाथ के विज्ञान आदिपुरुष की चेष्टा से एक घड़ी तथा सूर्य के बिम्ब के आने से दिन प्रगट होता है। इत्यादि रूप से पुद्गल द्रव्य की हलन-चलन रूप पर्याय को परिणाम कहते हैं। उससे जो प्रगट होता है

इसलिए इस व्यवहार काल को व्यवहार में पुद्गल परिणाम से उत्पन्न हुआ कहते हैं, निश्चय से यह कालाणु रूप निश्चय काल की पर्याय है। एक अणु का दूसरे अणु को उल्लंघन कर मंद गति से जाना आदि पूर्वोक्त पुद्गल का परिणाम, जैसे शीतकाल में विद्यार्थी को अग्नि पढ़ने में सहकारी है व कुम्हार के चाक के भ्रमण में नीचे की शिला सहकारी है, वैसे बाहरी सहकारी कारण कालाणु रूप द्रव्यकाल के द्वारा उत्पन्न होता है इसलिए परिणमन को द्रव्यकाल से उत्पन्न हुआ करते हैं। व्यवहार काल पुद्गलों के परिणमन से उत्पन्न होने वाला है इसलिये परिणामजन्य है तथा निश्चयकाल परिणामों को उत्पन्न करने वाला है इसलिए परिणामजनक है तथा समय रूप सबसे सूक्ष्म व्यवहार काल क्षणभंगुर है तथा अपने ही गुण और पर्यायों का आधार रूप होने से निश्चय कालद्रव्य नित्य है।

**कालो त्ति य ववदेसो सब्भाव परूवगो हवदि णिच्चो।**
**उपण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई।।( 101 )**

काल जो शब्द जगत् में दो अक्षरों का प्रसिद्ध है सो अपने वाच्य को जो निश्चय काल सत्ता रूप है, उसको बताता है। जैसे सिंह शब्द सिंह के रूप को तथा 'सर्वज्ञ' शब्द सर्वज्ञ के स्वरूप को बताता है। ऐसा अपने स्वरूप को बताने वाला निश्चय कालद्रव्य यद्यपि दो अक्षर रूप से तो नित्य नहीं है तथापि काल शब्द से कहने योग्य होने से नित्य है, ऐसा निश्चय काल जानना योग्य है। व्यवहार काल वर्तमान एम समय की अपेक्षा उत्पन्न होकर नशा होने वाला है, क्षण-क्षण में विनाशिक है तो भी पूर्व और आगे के समयों की संतान की अपेक्षा से व्यवहार नय से आवली, पल्य, सागर आदि रूप से दीर्घकाल तक रहने वाला भी है। इसमें कोई दोष नहीं है। इस तरह निश्चय काल नित्य है, व्यवहार काल अनित्य है, ऐसा जानना योग्य है अथवा दूसरे प्रकार से निश्चय और व्यवहार काल का स्वरूप कहते हैं, जो अनादि अनंत है, समय आदि की कल्पना या भेद से रहित है। वर्णादि रहित अमूर्तिक है व कालाणु द्रव्य रूप से आकाश में स्थित है। सो निश्चय काल है, वह ही कालाणु द्रव्य की पर्याय रूप सादि सांत समय रूप सूक्ष्म पर्याय व समयों के समुदाय की अपेक्षा निमिष, घड़ी आदि कोई भी माना हुआ भेद रूप काल का नाम सो व्यवहार काल है। नियमसार में व्यवहार काल का वर्णन निम्न प्रकार से किया है -

**समयावलिभेदेण दु, दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं।**
**तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणप्पमाणं तु।।( 31 )( नि.सा., पृ.87 )**

समय और आवली के भेद से काल दो प्रकार का है अथवा त्रिभेद वाला - भूत, भविष्यत, वर्तमान भेद वाला होता है। भूतकाल संख्यात आवली से गुणित सिद्धों के संस्थान प्रमाण है।

यह व्यवहार के स्वरूप का और उसके अनेक भेदों का कथन है। एक आकाश के प्रदेश पर जो परमाणु ठहरा हुआ है उसको मंदगति से अन्य परमाणु उल्लंघन करता है। उतना मात्र काल वह 'समय' नाम का व्यवहार काल है ऐसे असंख्यात समयों का एक 'निमिष' होता है अथवा नेत्र के पलक झपकने में जितना काल लगता है वह 'निमिष' है। आठ निमिषों की एक काष्ठा होती है, सोलह काष्ठाओं की एक 'कला', बत्तीस कलाओं की एक घड़ी साठ घड़ी का एक दिन-रात, तीस दिन-रात का एक मास,दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन और दो अयन का एक संवत्सर होता है। ऐसा आवली आदि रूप से व्यवहार काल का क्रम कहा। इस प्रकार से यह व्यवहार काल समय और आवली के भेद से दो प्रकार का है अथवा अतीत, अनागत और वर्तमान के भेद से तीन प्रकार का है। अब अतीत काल का विस्तार कहते हैं - अतीत कालीन सिद्धों के सिद्ध पर्याय के उत्पन्न होने के समय से पूर्व बीता हुआ जो आवली आदि व्यवहार काल है वह इन सिद्धों के संसार अवस्था में जितने संस्थान-आकार-शरीर व्यतीत हो चुके हैं उनके सदृश होने से 'अनंत' प्रमाण है। अनागतकाल की अनागत सिद्धों के जितने अनागत शरीर होवेंगे उनके सदृश होने से उन अनागत सिद्धों के मुक्त होने पर्यन्त जितना अर्थात् अनन्त है।

**जीवादु पुग्गलादोणंतगुणा चावि संपदा समया।**
**लोयायासे संति य, परमट्ठो सो हवे कालो।।( 32 )**

अब जीव और पुद्गल से भी अनंतगुणे समय होते हैं और लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर जो विद्यमान हैं वह परमार्थ काल होता है। मुख्य काल के स्वरूप का यह कथन है।

जीव राशि और पुद्गल राशि से अनंतगुणे समय है और कालाणु लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेशों पर पृथक्-पृथक् ठहरे हुए हैं वह काल ही परमार्थ काल है।

कालाणु असंख्यात हैं वे आकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु स्थित है। इसलिये काल द्रव्य तो असंख्यात हैं, किन्तु काल के त्रैकालिक समय 'अनंत' माने गये हैं। 'सोऽनन्तसमयः' ऐसा सूत्रकार श्री उमास्वामी आचार्य का वचन है। यहाँ पर यह अनंत भी सम्पूर्ण अनन्तानन्त जीवराशि और उससे अनंत गुण पुद्गल राशि से भी अनंत गुणे प्रमाण जो काल है उतने प्रमाण वाला है। जो कालाणु है वे ही परमार्थ काल हैं अर्थात् उन्हें ही निश्चय काल द्रव्य कहा गया है।

## आकाश प्रदेश का लक्षण

**आगासमणुणिविट्ठं आगासपदेससण्णया भणिदं।**

**सव्वेसिं च अणूणं सक्कदि तं देदुमवगासं।।( 140 )**

**That much portion of the space occupied by one atom is called the space-point and it is capable of giving room to the atoms of all (substances).**

( अणुणिविट्ठं आगास ) अविभागी पुद्गल के परमाणु द्वारा व्याप्त जो आकाश है, उसको ( आगासपदेसयण्णया ) आकाश के प्रदेश की संज्ञा से ( भणिदं ) कहा गया है तथा ( त ) वह प्रदेश ( सव्वेसिं च अणूणं ) सर्व प्रकार के परमाणु तथा सूक्ष्म स्कंधों को ( अवगासं देदुं सक्कदि ) जगह देने के समर्थ है।

एक परमाणु द्वारा व्याप्त आकाश के प्रदेश में इतनी जगह देने की शक्ति नहीं होती कि वह अन्य परमाणुओं को व सूक्ष्म पदार्थों को जगह दे सकता है, तो यह अनन्तानन्त जीव राशि और उससे भी अनन्त गुणी पुद्गल राशि किस तरह असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश में जगह पाती, इसको विस्तार से पहले कह चुके हैं।

**शंका** - अखण्ड आकाश द्रव्य के भीतर प्रदेशों का विभाग कैसे सिद्ध हो सकता है ?

**समाधान** - चिदानन्दमई एक स्वभावरूप निज आतम तत्त्व में परम एकाग्रता लक्षण समाधि से उत्पन्न विकाररहित आल्हादमई एक रूप, सुख अमृत रस के स्वाद में तृप्त दो मुनियों के जोड़े का ठहरने का क्षेत्र एक है या अनेक है ? यदि एक ही स्थान है तब दो मुनियों का एकत्व हो जाएगा, सो ऐसा नहीं है और यदि उनका क्षेत्र भिन्न-भिन्न है, तब अखंड आकाश के भी प्रदेशों

का विभाग करने में कोई विरोध नहीं आता है।

**समीक्षा** - विश्व द्रव्य विज्ञान ( द्रव्य संग्रह ) में आचार्य नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती ने उपर्युक्त विषय का वर्णन निम्न प्रकार से किया है -

**जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं।**

**तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं।।( 27 )**

जितना आकाश अविभागी पुद्गलाणु से रोका जाता है उसको सब परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ प्रदेश जानो।

इस गाथा में आचार्य श्री ने आकाश प्रदेश की परिभाषा एवं उसकी अवगाहनत्व शक्ति का वर्णन किया है। प्रदेश की परिभाषा करते हुए आचार्य श्री ने कहा है कि शुद्ध अविभागी पुद्गल परमाणु जो अति सूक्ष्म होता है वह जितने आकाश प्रदेश को घेरता है अथवा उसका जितना घनफल है उस घनफल को एक प्रदेश कहते हैं। यह परमाणु इतना सूक्ष्म है कि इसे मति-ज्ञानी, श्रुत-ज्ञानी एवं सामान्य अवधिज्ञानी भी नहीं देख सकते हैं। इसे भौतिक वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र से भी नहीं देख सकते हैं। इसको विशिष्ट अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी एवं केवलज्ञानी ही देख सकते हैं। ऐसे परमाणु प्रमाण आकाश प्रदेश को एक प्रदेश कहते हैं और यह प्रदेश ( क्षेत्र ) मापने की सबसे क्षुद्रतम ईकाई है। इस प्रदेश के द्रव्य से ही आकाश के प्रदेश, धर्म द्रव्य के प्रदेश, अधर्म द्रव्य के प्रदेश, जीव द्रव्य के प्रदेश, काल द्रव्य का प्रदेश मापा जाता है। ऐसे सूक्ष्म आकाश प्रदेश में इतनी अवगाहन शक्ति है कि वह आकाश प्रदेश एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक काल द्रव्य का प्रदेश, संख्यात-असंख्यात एवं अनन्त परमाणु को भी अवकाश दे सकता है। इसके साथ-साथ अनेक जीवों के आत्म प्रदेशों को भी स्थान दे सकता है।

इस प्रकार की अवगाहन शक्ति जो आकाश में है इसी हेतु से असंख्यात प्रदेश प्रमाण लोकाकाश में अनंतानंत जीव तथा उन जीवों से भी अनंतगुणे पुद्गल अवकाश को प्राप्त होते हैं। सो ही जीव तथा पुद्गल के विषय में इसके अवकाश देने का सामर्थ्य आगम में कहा है।

**एगणिगोदसरीरो जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।**

**सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण।।( 1 )**

''एक निगोद शरीर में द्रव्य प्रमाण से भूतकाल के सब सिद्धों से अनन्त गुणेजीव देखे गये हैं।''

**उग्गाढगाढणिचिदो पुग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो।**

**सुहुमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविहेहिं।।( 2 )**

यह लोक सब तरफ से विविध तथा अनंतानंत सूक्ष्म और बादर पुद्गल कार्यों द्वारा अति सघनता के साथ भरा हुआ है।

अब कदाचित् किसी का ऐसा मत हो कि ''मूर्तिमान् पुद्गलों का तो अणु तथा द्वयणुक स्कंध आदि विभाग ही, इसमें कुछ विरोध नहीं है, परन्तु अखंड तथा अमूर्त आकाश द्रव्य की विभाग कल्पना कैसे हो सकती है?''

यह शंका ठीक नहीं; क्योंकि राग आदि उपाधियों से रहित, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष भावना से उत्पन्न जो सुख रूप अमृतरस है उनके आस्वादन से तृप्त ऐसे मुनि युगल ( दो मुनियों ) के रहने का स्थान एक है अथवा अनेक? यदि दोनों का निवास क्षेत्र एक ही है तब तो दोनों की एकता हुई परन्तु ऐसा नहीं है और यदि भिन्न मानों तो घट के आकाश तथा पट के आकाश की तरह विभाग रहित आकाश द्रव्य की भी विभाग कल्पना सिद्ध हुई।

पंचास्तिकाय में आकाश द्रव्य का स्वरूप बताते हुए कहा है -

**सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च।**

**जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं।।( 90 )पृ.244**

लोक में जीवों और पुद्गलों को वैसे ही शेष समस्त द्रव्यों को जो सम्पूर्ण अवकाश देता है, वह आकाश है।

सर्व द्रव्यों को आकाश तो अवगाहन देता ही है परन्तु प्रत्येक द्रव्य में अवगाहन शक्ति है और वे एक दूसरे को भी अवगाहना देते हैं। यदि केवल आकाश ही अवगाहन देता और परस्पर अन्य द्रव्य अवगाहन न देते तो लोकाकाश में अन्य पांचों द्रव्य अवगाहित होकर नहीं रह सकते थे। इसी सिद्धान्त को आ. कार्तिकेय ने कहा भी है।

**सव्वाणं दव्वाणं अवगाहण सत्ती अत्थि परमत्थं।**

**जहभसम पाणियाणं जीव-पएसाण बहुयाणं।।( 214, पृ.148 )**

वास्तव में सभी द्रव्यों में परस्पर अवकाश देने की शक्ति है। जैसे भस्म में और जल में अवगाहन शक्ति है वैसे ही जीव के असंख्यात प्रदेशों में जानों।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, सभी द्रव्यों में निश्चय से अवगाहन शक्ति है। जैसे पानी से भरे हुए घड़े में राख समा जाती है वैसे ही लोकाकाश में सब द्रव्य परस्पर में एक दूसरे को अवकाश देते हैं तथा जैसे एक दीपक के प्रकाश में अनेक प्रदीपों का प्रकाश समा जाता है, या एक प्रकार के रस में बहुत सा सोना समाया रहता है अथवा पारदगुटिका में दग्ध होकर अनेक वस्तुएँ समाविष्ट रहती है, वैसे ही विशिष्ट अवगाहन शक्ति के होने से असंख्यात प्रदेशी भी लोक में सब द्रव्यों के रहने में कोई विरोध नहीं आता।

**जदि ण हवदि सा सत्ती सहाव-भूदा हि सव्व-दव्वाणं।**

**एक्केक्कास-पएसे कह ता सव्वाणि वट्टंति।।( 215 )**

यदि सब द्रव्यों में स्वभाव भूत अवगाहन शक्ति न होती तो एक आकाश के प्रदेशों में सब द्रव्य कैसे रहते ?

सब द्रव्यों में अवगाहन शक्ति स्वभाव से ही पाई जाती है। यदि अवगाहन शक्ति न होती तो आकाश के प्रत्येक प्रदेश में सब द्रव्य नहीं पाये जाते, किन्तु जैसे जल से भरे हुए घड़े में नमक समा जाता है, सूईयाँ समा जाती हैं, वैसे ही आकाश के एक प्रदेश में सब द्रव्य रहते हैं। आकाश के जितने भाग को पुद्गल का एक परमाणु रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं। उस प्रदेश में धर्म, अधर्म, काल आदि सभी द्रव्य पाये जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि सभी द्रव्यों में स्वाभाविक अवगाहन शक्ति है।

**शंका** - यदि सभी द्रव्यों में स्वाभाविक अवगाहन शक्ति है तो अवकाश देना आकाश का असाधारण गुण नहीं हुआ; क्योंकि असाधारण गुण उसे कहते हैं जो दूसरों में न पाया जाये ?

**समाधान** - यह आपत्ति उचित नहीं है; क्योंकि अन्य सब पदार्थों को अवकाश देना आकाश का असाधारण लक्षण है। अन्य द्रव्य सब पदार्थों को अवकाश देने में असमर्थ है।

**शंका** - अलोकाकाश तो किसी भी द्रव्य को अवकाश नहीं देता अतः इसमें अवकाशदान की शक्ति नहीं मानना चाहिए ?

**समाधान** - अलोकाकाश में आकाश के सिवाय अन्य कोई द्रव्य नहीं पाया जाता, किन्तु इससे वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ देता।

## तिर्यक प्रचय एवं ऊर्ध्वता प्रचय

**एक्को व दुगे बहुगा संखातीदा तदो अणंता य।**

**दव्वाणं च पदेसा संति हि समयत्ति कालस्स।।( 141 )प्र. सार**

**All substances (excepting time) have one, two, many, innumerable, or even infinite space-points, while time has only one space-point viz., samaya, instant or moment.**

( दव्वाणं पदेसा ) काल द्रव्य के बिना पांच, द्रव्यों के प्रदेश ( एक्को व दुगे च बहुगा संखातीदा तदो अणंता य संति ) एक या दो या बहुत, या असंख्यात तथा अनन्त यथायोग्य होते हैं - ( कालस्स हि समयत्ति ) परन्तु निश्चय से एक प्रदेशीकाल द्रव्य के समय पूर्वोक्त संख्यात वाले होते हैं।

मुक्तात्मा पदार्थ में एकाकार व परम समता रस के भाव में परिणमन रूप परमानन्दमई एक लक्षण सुखामृत से भरे हुए और केवलज्ञानादि प्रगट रूप अनन्त गुणों के आधारभूत, लोकाकाश प्रमाण शुद्ध असंख्यात प्रदेशों का जो प्रचय या समूह या समुदाय या राशि है उसको तिर्यक् प्रचय, तिर्यक् विस्तार सामान्य या अक्रम अनेकान्त कहते हैं। यह प्रदेशों का समुदाय रूप तिर्यक् प्रचय जैसे मुक्तात्मा द्रव्य में कहा गया है तैसे काल को छोड़कर अन्य द्रव्यों में अपने-अपने प्रदेशों की संख्या के अनुसार तिर्यक् प्रचय होता है, ऐसा कथन समझना चाहिए तथा समय वर्तने वाली पूर्व और उत्तर पर्यायों की संतान को ऊर्ध्व प्रचय, ऊर्ध्व सामान्य, आयत सामान्य या क्रम अनेकान्त कहते हैं, जैसे मोती की माला में मोतियों को क्रम से गिना जाता है। इसी तरह द्रव्य की समय-समय में होने वाली पर्यायों को क्रम से गिना जाता है। इन पर्यायों के समूह को ऊर्ध्व सामान्य कहते हैं। यह सब द्रव्यों में होता है, किन्तु काल के सिवाय पांच द्रव्यों की पूर्व उत्तर पर्यायों का संतान रूप जो ऊर्ध्व प्रचय है, उसका उपादान कारण तो अपना-अपना द्रव्य है परन्तु कालद्रव्य उनके लिये, प्रति समय में सहकारी कारण है। परन्तु जो काल द्रव्य का समय संतान रूप ऊर्ध्व प्रचय है उसका काल ही उपादान कारण है और काल ही सहकारी कारण है; क्योंकि काल से भिन्न कोई और समय नहीं है। काल की जो पर्यायें हैं, वे ही समय है,

ऐसा अभिप्राय है।

प्रदेशों का समूह तिर्यक् प्रचय औरसमय विशिष्ट वृत्तियों का ( पर्यायों का ) समूह ऊर्ध्व प्रचय है। वहां आकाश अवस्थित ( स्थिर ) अनन्त प्रदेश वाला है तथा अधर्म अवस्थित असंख्यात प्रदेश वाले हैं, जीव अनवस्थित असंख्यात प्रदेशी हैं और पुद्गल द्रव्यतः अनेक प्रदेशित्व की शक्ति से युक्त एक प्रदेश वाला है तथा पर्याय की अपेक्षा दो अथवा बहुत ( संख्यात असंख्यात अनन्त ) प्रदेश वाला है, इसलिये उनके ( आकाशादिक के ) तिर्यक् प्रचय है, परन्तु काल के तिर्यक् प्रचय नहीं हैं, क्योंकि वह शक्ति तथा व्यक्ति ( की अपेक्षा ) से एक प्रदेश वाला है।

ऊर्ध्व प्रचय तो सर्व द्रव्यों के अनिवार्य ही है, क्योंकि द्रव्य की वृत्ति ( परिणति ) तीन कोटियों को ( भूत, वर्तमान और भविष्यत् ऐसे तीनों कालों को ) स्पर्श करती है, इसलिये अंशों से युक्त है ( एक समय की पर्याय त्रैकालिक परिणति का एक अंश है ), परन्तु इतना अन्तर है कि समय विशिष्ट वृत्तियों का प्रचय ( काल को छोड़कर ) शेष द्रव्यों का ऊर्ध्व प्रचय है और समयों का प्रचय काल द्रव्य का ऊर्ध्व प्रचय है, क्योंकि शेष द्रव्यों की वृत्ति समय से अर्थान्तर भूत ( अन्य ) है, इसलिये वह ( वृत्ति ) समय से विशिष्ट ( विशेषित ) है। काल द्रव्य की वृत्ति तो स्वतः समयभूत है, इसीलिये वह समयविशिष्ट नहीं हैं।

**समीक्षा** - काल द्रव्य एक प्रदेशी होने के कारण इसके एक-दो संख्यात-असंख्यात अनंत प्रदेश नहीं होते हैं। इसलिये इसके तिर्यक् प्रचय नहीं होता, परन्तु धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव एवं पुद्गल में संख्यात, असंख्यात, अनंत प्रदेश होते हैं, इसलिये इन द्रव्यों में तिर्यक् प्रचय है। परन्तु छहों द्रव्य में उर्ध्वता प्रचय होता ही है, क्योंकि सम्पूर्ण द्रव्यों में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होता है। एक द्रव्य के अनेक प्रदेशों का होना तिर्यक् प्रचय एवं एक द्रव्य में अनेक पर्यायों का होना ऊर्ध्वता प्रचय है। इसलिये कालाणु के अनेक प्रदेश नहीं होने के कारण उसके तिर्यक् प्रचय नहीं है। छहों द्रव्यों में अनेक पर्यायें होती हैं। इसलिये छहों द्रव्यों में ऊर्ध्वता प्रचय है। यह सब होना वस्तु का स्वस्वरूप है, क्योंकि सामान्य विशेषात्मक द्रव्य होता है। सन्मति सूत्र में कहा भी है -

**एगंतणिव्विसेसं एगंतविसेसियं च वयमाणो।**

**दव्वस्स पज्जवे पज्जवा हि दवियं णियत्तेइ।।( 2 )पृ.99**

एकांती का यह कथन है कि सामान्य विशेष से रहित है और विशेष सामान्य से रहित है। अतः यह द्रव्य को पर्यायों से और पर्यायों को द्रव्य से अलग करता है, किन्तु द्रव्य ऐसा भिन्न-भिन्न नहीं है। जहां द्रव्य है, वहां पर्याय है और जहां पर्याय है, वहां द्रव्य है। वास्तव में दोनों एक दूसरे से अलग नहीं है।

**पच्चुप्पण्णं भावं विगयभविरसेहिं जं समण्णेइ।**

**एवं पडुच्चवयणं दव्वंतरणिस्सियं जं च।।( 3 )**

जो वचन वर्तमान पर्याय का भूत तथा भविष्यत पर्याय के साथ समन्वय करता है, वह ऊर्ध्वता सामान्य रूप वचन परमार्थ से सत्य है। यही सर्वज्ञवाणी है। इसके अतिरिक्त वाणी श्रद्धान योग्य नहीं है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न द्रव्यों में अवस्थित सामान्य अर्थात् तिर्यक् सामान्य का समन्वय करने वाले वचन प्रतीत्यवचन हैं।

**दव्वं जहा परिणयं तहेव अत्थि त्ति तम्मि समयम्मि।**

**विगयभविस्सेहि उपज्जयेहिं भयणा विभयणा वा।।( 4 )**

जिस समय जो द्रव्य जिस पर्याय रूप परिणम गया है, वह द्रव्य उस समय उसी रूप में है। जो द्रव्य अपनी भूतकालिक भविष्यत्कालीन तथा वर्तमान की पर्यायों को अपने में समेटे रहता है, जिनके साथ उसका अभेद है और भेद भी है। इस प्रकार काल क्रम से होने वाली पर्यायों में तथा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में समन्वय करने वाला वचन युक्तियुक्त है और वही प्रतीत्य वचन है।

## काल द्रव्य भी उत्पाद व्यय ध्रौव्यवाला है

**उप्पादो पध्दंसो विज्जदि जदि जस्स एकसमयम्हि।**

**समयस्स सो वि समओ सभावसमवट्ठिदो हवदि।।( 142 )**

**That Samays or instant, which has origination and destruction at one and the same moment, is (still) a samaya established in its nature.**

आगे समय-संतान रूप ऊर्ध्व-प्रचय का अन्वयी रूप से आधारभूत काल

द्रव्य को स्थापन करते हैं ( जस्स समयस्स ) समयरूप पर्याय को उत्पन्न करने वाले जिस कालाणु द्रव्य का ( एक समयम्हि ) एक वर्तमान समय में ( जदि ) जो ( उप्पादो ) उत्पाद तथा ( पद्धंसो ) नाश ( विज्जदि ) होता है ( सो वि समओ ) सो ही काल पदार्थ ( सभाव समवट्ठि दो हवदि ) अपने स्वभाव में भले प्रकार स्थिर रहता है।

कालाणु द्रव्य में पहली समय रूप पर्याय का नाश नयी समय रूप पर्याय का उत्पाद जिस वर्तमान समय में होता है, उसी समय इन दोनों उत्पाद और नाश का आधार रूप कालाणु रूप द्रव्य ध्रौव्य रहता है। इस तरह उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप त्रयात्मक स्वभावमई सत्ता रूप अस्तित्व इस काल द्रव्य का भले प्रकार सिद्ध है। भले प्रकार अवस्थित स्वभाव वाला समवस्थित है। जैसे एक हाथ की अंगुली को टेढ़ा करते हुए जिस वर्तमान क्षण में ही वक्र अवस्था का उत्पाद हुआ है, उसी ही क्षण में उसी ही अंगुली द्रव्य की पहली सीधीपने की पर्याय का नाश हुआ है, परन्तु इन दोनों की आधारभूत अंगुली द्रव्य ध्रौव्य है। इस तरह द्रव्य की सिद्धि होती है अथवा जिस किसी आत्म द्रव्य में अपने स्वभावमई सुख का जिस क्षण में उत्पाद है, उसी ही क्षण में उसके पूर्व अनुभव होने वाले आकुलता रूप दुःख पर्याय का नाश है, परन्तु इन दोनों के आधारभूत परमात्म द्रव्य का ध्रौव्य है। इस तरह द्रव्य की सिद्धि है अथवा एक आत्म द्रव्य में जिस समय मोक्ष, पर्याय का उत्पाद है, उस ही समय रत्नत्रयमई मोक्षमार्ग रूप पर्याय का नाश है, परन्तु इन दोनों के आधारभूत परमात्म द्रव्य का ध्रौव्य है। इस तरह द्रव्य की सिद्धि है। तैसे ही जिस काल द्रव्य की जिस क्षण में वर्तमान समय रूप पर्याय का उत्पाद है, उसी काल द्रव्य की पूर्व समय की पर्याय का नाश है, परन्तु इन दोनों के आधार रूप अंगुली द्रव्य के स्थान में कालाणु द्रव्य का ध्रौव्य है। इस तरह काल द्रव्य सिद्ध है।

**समीक्षा -** जो द्रव्य होता है, उसमें अवश्य परिणमन भी होता है। बिना परिणमन किसी भी द्रव्य की सत्ता नहीं हो सकती है, क्योंकि 'उत्पादव्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' अर्थात् जो सत् होता है, उसमें पूर्व पर्याय का नाश उत्तर पर्याय का उत्पाद और दोनों पर्याय के मध्य ध्रौव्य का होना द्रव्य का स्व-स्वभाव है और स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता है। इसलिए काल एक द्रव्य होने के कारण उसमें भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होना स्वाभाविक है। यह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ही काल द्रव्य का ऊर्ध्वता प्रचय है।

## सर्व समय में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होते हैं

**एगम्हि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्ठा।**

**समयस्स सव्वकालं एस हि कालाणुसब्भावो।।( 143 )**

**This is the essential nature of kalanu (the unit of time) all the while, that it undergoes what are called origination, permanence and destruction at one and the same moment.**

आगे यह निश्चित करते हैं कि जैसे पूर्व में कहे प्रमाण एक वर्तमान समय में काल द्रव्य का ( एकम्मि समये ) एक समय में ( समयस्स ) काल द्रव्य का ( संभवठिदिणाससण्णिदा अट्ठा ) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाव ( संति ) है ( एसहि ) निश्चय करके ऐसा ही ( कालाणु सब्भावो ) कालाणु द्रव्य का स्वभाव ( सव्वकालं ) सदा काल रहता है।

जैसे पहले अंगुली द्रव्य आदि के दृष्टांत से एक समय में ही उत्पाद और व्यय का आधारभूत होने से एक विवक्षित वर्तमान समय में ही काल द्रव्य के उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना स्थापित किया गया, तैसा ही सर्व समयों में जानने योग्य है। यहां यह तात्पर्य निकालना चाहिये कि यद्यपि भूतकाल के अनन्त समयों में दुर्लभ और सब तरह से ग्रहण करने योग्य सिद्ध गति का काललब्धि रूप से बाहरी सहकारी कारण काल है तथापि निश्चय नय से अपने ही शुद्ध आत्मा के तत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र तथा सर्व पर द्रव्य की इच्छा का निरोधमई लक्षण रूप तपश्चरण। इस तरह यह जो निश्चय चार प्रकार की आराधना है, यही उपादान कारण है। काल उपादान कारण नहीं है, इससे कालद्रव्य त्यागने योग्य है, यह भावार्थ है।

काल पदार्थ के सभी वृत्यंशों में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होते हैं, क्योंकि ( 142वीं गाथा में जैसा सिद्ध हुआ है तद्नुसार ) एक वृत्यंश में वे ( उत्पाद व्यय ध्रौव्य ) देखे जाते हैं और यह योग्य ही है, क्योंकि विशेष अस्तित्व की सामान्य अस्तित्व के बिना उत्पत्ति नहीं हो सकती। यही काल पदार्थ के सद्भाव की सिद्धि है। ( क्योंकि ) यदि विशेष और सामान्य अस्तित्व सिद्ध होते हैं, तो वे अस्तित्व के बिना किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं होते।

**समीक्षा** - आचार्य श्री ने इस गाथा में सिद्ध किया है, जो हेतु उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य एक समय में होते हैं और यह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सर्व काल में होते हैं,

इसलिये काल द्रव्य का भी सद्भाव है, क्योंकि द्रव्य भले स्व-उपादान कारण से परिणमन करता है तथापि बिना काल द्रव्य के परिणमन नहीं करता है, क्योंकि यह वस्तु स्वरूप है कि वस्तु समर्थ उपादान कारण एवं योग्य समग्र बाह्य निमित्त कारणों के सद्भाव से और विरोधी कारण के अभाव होने पर कार्य करती है। इसके बिना न केवल निमित्त कारण से और न केवल उपादान कारण से कार्य हो सकता है। आ. समन्तभद्र स्वमी ने कहा भी है -

**बाह्योतरोपाधि समग्र तेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।**

**नैवान्यथा मोक्ष विधिश्च पुंसां तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम्।।( 5 )**

हे भगवन्! घट आदि कार्यों में यह जो बाह्य और आभ्यन्तर कारणों की पूर्णता है, वह आपके मत में जीवादि द्रव्य गत स्वभाव है। अन्य प्रकार से घटादि की विधि ही नहीं, किन्तु मोक्षाभिलाषी पुरुषों के मोक्ष की विधि भी घटित नहीं होती है, इसीलिये परम ऋषियों से युक्त आप गणधरादि बुध जनों के वंदनीय हैं।

घटादि कार्यों की उत्पत्ति के लिये बहिरंग और अन्तरंग दोनों कारणों की पूर्णता आवश्यक है, क्योंकि दण्ड, चक्र, चीवर आदि बहिरंग कारणों के बिना घट निर्माण के योग्य मिट्टी रूप अन्तरंग कारण के रहते हुए भी घट की उत्पत्ति नहीं हो सकती और दंड, चक्र, चीवर आदि बहिरंग कारणों के रहने पर भी घट निर्माण की योग्यता से रहित प्रचुर बालुका से युक्त मिट्टी के द्वारा उपादान कारण के अभाव में घट की उत्पत्ति नहीं हो सकती। जब निज की योग्यता रूप अन्तरंग उपादान कारण और उस योग्यता को विकसित करने में सहायक रूप बहिरंग निमित्त कारण दोनों की अनुकूलता होती है, तभी घटादि कार्यों की उत्पत्ति होती है। यही द्रव्य का स्वभाव है - यही द्रव्य का अर्थ क्रिया कारित्व है। सो यह स्वभाव उक्त विधि से ही प्रकट हो सकता है अन्य विधि से नहीं। 'मोक्ष विधिश्च पुंसां' यहां चकार का अर्थ अपि है इसलिये यह अर्थ प्रकट होता है। यह विधि न केवल घटादि कार्यों के विषय में है, किन्तु मोक्षाभिलाषी पुरुषों के मोक्ष रूप कार्य के विषय में भी है। मोक्ष जीवद्रव्य की पर्याय है, इसका उपादान कारण सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र की पूर्णता से युक्त भव्यात्मा है तथा सहकारी कारण मुनिव्रत से युक्त कर्म भूमिज मनुष्य का शरीर आदि है। इन दोनों कारणों की अनुकूलता होने

पर ही जीव द्रव्य में मोक्ष पर्याय रूप कार्य की उत्पत्ति होती है। मात्र उपादान से या मात्र निमित्त से कार्य की उत्पत्ति मानना संगत नहीं है। यह ठीक है कि निमित्त कार्य रूप परिणत नहीं होता, उपादान ही कार्यरूप परिणत होता है इसलिये उपादानोपादेय मात्र एक द्रव्य में ही बनता है, भिन्न द्रव्यों में नहीं, परन्तु इतने मात्र से निमित्त नैमित्तिक भाव का निषेध नहीं हो सकता, क्योंकि निमित्त नैमित्तिक भाव भिन्न द्रव्यों से बनता है। कर्म रूप पुद्गल द्रव्य के निमित्त से जीव में रागादि विकारी भावों की उत्पत्ति होती है और जीव के रागादि विकारी भावों के निमित्त से पुद्गल द्रव्य में कर्म रूप पर्याय की उत्पत्ति होती है तथा जीव और कर्म के संयोग से चतुर्गति रूप संसार चल रहा है। इस प्रत्यक्ष सिद्ध वस्तु तत्त्व का अपलाप नहीं किया जा सकता। हे भगवन्! चूंकि आपने इस द्रव्यगत स्वभाव की इस कार्यकारण भाव की व्यवस्था बतलाई है तथा आप ऋषि हैं, अनेक ऋषियों से युक्त निस्पृह साधु हैं, इसीलिये गणधरादिक बड़े-बड़े विद्वान आपको अभितः - सब और मनसा वाचा कर्मणा वंदना करते हैं। कार्य कारण का विज्ञान होता है, क्योंकि बिना कारण कार्य नहीं होता है। जहां कार्य है, वहां कारण अवश्य होगा। जिस प्रकार जहां अमृतधारा है, वहां अमृत धारा के कारण रूप अजवाइन सत्, पीपरमेंट और कपूर अवश्य होंगे। इसी प्रकार इस गाथा में सिद्ध किया गया है कि जो हेतु द्रव्य में सदाकाल परिणमन होता है और परिणमन के लिये बाह्य द्रव्य कालाणु चाहिये। इसलिये कालाणु का भी सद्भाव तीन काल में है। पंचास्तिकाय में कहा भी है -

**सब्भावसभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।**

**परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो।।( 23 ) पृ.84**

द्रव्यों के नूतन अवस्था से जीर्ण होने को परिवर्तन या परिणमन कहते हैं, सो जिससे होता है वह कालाणु रूप द्रव्य है, ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है। यहां शिष्य शंका करता है कि आपने यह पातनिका की थी कि इस पंचास्तिकाय के व्याख्यान को करते हुए निश्चय काल द्रव्य को कहने पर भी भाव से उसको ग्रहण कर लेना चाहिये सो किस तरह सिद्ध होता है ? इस प्रश्न का समाधान आचार्य करते हैं कि ये पांचों जीवादि अस्तिकाय परिणमन करते रहते हैं। परिणमन करने से परिणाम या पर्याय रूप कार्य होता है। सो कार्य कारण की

अपेक्षा रखता है। यद्यपि उपादान शक्ति द्रव्यों में स्वयं परिणमने की है, परन्तु निमित्त कारण की आवश्यकता है सो द्रव्यों के परिणमन में निमित्त रूप कालाणु रूप द्रव्य काल है, इसी युक्ति की सामर्थ्य से काल द्रव्य झलकता है। शिष्य फिर यह पूर्व पक्ष कहता है कि पुद्गल परमाणु के गमन से उत्पन्न जो समय रूप सूक्ष्म सूक्ष्मकाल वही निश्चय काल कहा जाता है तथा घड़ी, घंटा आदि रूप स्थूलकाय सो व्यवहार काल कहा जाता है। सो व्यवहार काल घड़ी घंटे आदि के निमित्त कारण जल भरने, भोजन व वस्त्र व काष्ठ बनाने में जो पुरुषों के हाथों की व्यापार रूप क्रिया विशेष होती है, उसी से उत्पन्न होता है। द्रव्य काल से कोई व्यवहार काल नहीं होता है। इसी का आचार्य समाधान करते हैं कि यद्यपि समय रूप सूक्ष्म व्यवहार काल पुद्गल परमाणु की मंदगति से प्रगट होता है या जान पड़ता है तथा घड़ी, घंटा आदि रूप जो व्यवहार काल है, सो घटिका आदि के निमित्त कारण जल, बर्तन, वस्त्र आदि द्रव्य विशेष की क्रिया से जाना जाता है तथापि समय की घटिका आदि पर्याय रूप जो व्यवहार काल है, उस ही का उपादान कारण कालाणु रूप द्रव्य काल है। ऐसा मानना ही चाहिये, क्योंकि यह आगम का वचन है कि कार्य उपादान कारण के समान होता है। जैसे जो घट रूप कार्य कुंभर, चक्र, चीवर आदि बाहरी निमित्त कारणों से बनता है, उसका उपादान कारण मिट्टी का पिण्ड है। अथवा जो पट या कपड़ा रूपा कार्य, कुविंद, तुरी, बेम, शलाका आदि बाहरी निमित्त कारणों से बनता है उसका उपादान कारण तागों का ( धागों का ) समूह है अथवा ईंधन अग्नि आदि बाहरी निमित्त कारणों से उत्पन्न जो भात रूप कार्य है, उसका उपादान कारण चावल या तंदुल है अथवा कर्मों के उदय के निमित्त से होने वाले नर-नारक आदि पर्याय रूप कार्य का उपादान कारण जीव है। इसी तरह वस्तुओं की क्रिया विशेष से प्रगट जो व्यवहार काल है, उसका उपादान कारण कालाणु रूप निश्चय काल द्रव्य है।

आचार्य जयसेन स्वामी ने अपनी टीका में कहा कि भले मोक्ष के लिये काल द्रव्य भी चाहिये जिसे काल लब्धि भी कहते हैं, परन्तु यह काल लब्धि मोक्ष के लिये उपादान कारण, समर्थ कारण नहीं है, क्योंकि काल बाह्य कारण में भी उदासीन बाह्य कारण है। उदासीन बाह्य कारण तो जब कार्य होता है, उस समय वह औदासीन्य रूप से, निष्क्रिय रूप से सहायक बनता है। जिस प्रकार स्वयं गति करते हुए जीव एवं पुद्गल को गति करने में धर्म द्रव्य

सहायक होता है, परन्तु बिना गति करते हुए जीव पुद्गल को सहायक या प्रेरक नहीं बनता है। इसी प्रकार काल द्रव्य के निमित्त से जब भव्य जीव सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तप आराधना के बल पर मोक्ष प्राप्त करता है उस समय में उस मोक्ष रूप कार्य के लिये/परिणमन के लिये काल द्रव्य केवल उदासीन बाहरी सहकारी कारण बनता है। इसलिये आचार्य श्री ने टीका में कहा है कि चार आराधना ही मोक्ष के लिए उपादान कारण है। काल उपादान कारण नहीं है इसलिये काल त्यागने योग्य है। कुछ एकांती नियतवादी, कालवादी, भोगवादी, आत्मकल्याण के लिये प्रमादी जीव मानते हैं जो कुछ होगा वह सब काल लब्धि से ही हो जायेगा। उनका मत है –

**कालवाद-**

**कालो सव्वं जणयदि, कालो सव्वं विणस्सदे भूदं।**

**जागत्ति हि सुत्तेसुवि, ण सक्कदे वंचिंदु कालो।।( 88 ) गो.कर्म**

काल ही सबको उत्पन्न करता है, काल ही सबका नाश करता है, सोते हुए प्राणियों को काल ही जगाता है, सो ऐसे काल को ठगने में कौन समर्थ हो सकता है ?इस प्रकार काल से ही सब कार्य मानना कालवाद कहलाता है।

**न कालव्यतिरेकेण गर्भबालयुवादिकम्।**

**यत्किंचिज्ज्ञायते लोके तदसौ कारणं किल।।( 1 )**

**किंच कालादृते नैव मुद्गपक्तिरपीक्ष्यते।**

**स्थाल्यादिसंनिधानेऽपि ततः कालादसौ मता।।( 2 )**

**कालाभावे च गर्भादि सर्वं स्यादव्यवस्थया।**

**परेष्टहेतुसद्भावमात्रादेव तदुद्भवात्।।( 3 )**

**कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।**

**कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।।( 4 ) षड्.द., पृ.16**

इस संसार में गर्भाधान, बाल्यकाल, जवानी आदि जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब काल ही की सहायता से ही उत्पन्न होता है। काल के बिना नहीं, क्योंकि काल एक समर्थ कारण है। बटलोई, ईंधन आदि पाक की सामग्री मिल जाने पर भी जब तक उनमें काल अपनी सहायता नहीं करता, तब

तक मूंग की दाल का परिपाक नहीं देखा जाता। अतः यह मानना ही होगा कि मूंग का परिपाक काल ने ही किया है।

यदि दूसरों के द्वारा माने गये हेतु के सद्भाव मात्र से ही कार्य हो और काल हो, और काल को कारण न माना जाय तो गर्भाधान आदि की कोई व्यवस्था ही नहीं रहेगी। अर्थात् यदि ऋतु काल की कोई अपेक्षा ही नहीं है तो मात्र स्त्री पुरुष के संयोग से ही गर्भाधान होना चाहिये।

काल पृथ्वी और भूतों के परिणमन में सहायक होता है। काल ही प्रजा का संहार करता है, अर्थात् उन्हें एक अवस्था से दूसरी अवस्था में ले जाता है। सदा जागृत काल ही सुषुप्तिदशा में भी प्राणियों की रक्षा करता है। अतएव यह काल दुरतिक्रम है, अर्थात् उसका निराकरण अशक्य है।

**नियतिवाद –**

**जत्तु जदा जेण जहा, जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा।**
**तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु।।( 882 ) गो.कर्म**

जो जिस समय जिससे जैसे जिसको नियम से होता है, वह उस समय उससे वैसे उसके ही होता है, ऐसे नियम सभी वस्तु को मानना नियतिवाद कहलाता है।

नियर्तिर्नाम तत्त्वान्तरमस्ति यद्वशादेते भावाः सर्वेऽपि नियतेनैव रूपेण प्रादुर्भावमश्नुवते, नान्यथा। तथाहि यद्यदा यतो भवदि तत्तदा तत एव नियतेनैव रूपेण भवदुपलभ्यते, अन्यथा कार्यकारण व्यवस्था, प्रतिनियत रूपव्यवस्था च न भवेतु, निययामकाभावात्। तत एवं कार्यनैयत्यतः प्रतीयमानामेनां नियतिं को नाम प्रमाण पथकुशलो बाधितुं क्षमते। मा प्रापदन्यत्रापि प्रमाणपथव्याघात प्रसंग। तथा चोक्तम्।

नियति नाम का एक स्वतंत्र तत्व है। इस नियति से ही सभी पदार्थ नियत रूप से उत्पन्न होते हैं, अनियत रूप से नहीं। जो जिस समय जिससे उत्पन्न होता है, वह उस समय उससे नियत रूप से ही उत्पत्ति लाभ करता है। यदि नियत तत्त्व न हो तो संसार से कार्यकारण की व्यवस्था तथा पदार्थों को अपने निश्चित स्वरूप की व्यवस्था ही उठ जायेगी। इस तरह जब कार्यों की नियत अवस्था ही इस नियति तत्व के अस्तित्व से इंकार कर सकता है। यदि प्रतीति सिद्ध वस्तु का एक जगह लोप किया जाता है, तो संसार से प्रमाण मार्ग ही उठ जायेगा। और कहा भी है –

**नियतनैव रूपेण सर्वे भावा भवन्ति यत्।**

**ततो नियतिजा ह्येते तत्सवरूपानुवेधतः।।( 1 )**

**यद्यदैव यतो याक्तत्तदैव ततस्तथा।**

**नियतंजायतेन्यायात्क एनांबाधितुंक्षमः।।शा.चा.श्लो.( 173,174 )**

''चूंकि संसार के सभी पदार्थ अपने-अपने नियत स्वरूप से उत्पन्न होते हैं, अतः यह ज्ञान हो जाता है कि ये सब नियति से उत्पन्न हुये हैं। यह समस्त चराचर जगत् नियति तत्त्व से गुंथा हुआ है। उससे तादात्म्य को प्राप्त होकर नियतिमय हो रहा है।''

''जिसे जिस समय जिससे जिस रूप में होना है, वह उससे उसी समय उसी रूप में उत्पन्न होता है। इस तरह अबाधित प्रमाण से प्रसिद्ध इस नियति के स्वरूप को कौन बाधा दे सकता है ? यह सर्वतः निर्बाध है।''

परन्तु उपर्युक्त कालवाद या नियतवाद एकांत होने से मिथ्या है, क्योंकि वस्तुस्वरूप अनेकांतात्मक है। अनेकांत से ही कार्य होता है, एकांत से कार्य नहीं होता है। कार्य के लिये जो मुख्य कारण है, वे पांच प्रकार के हैं। इन पांचों कारणों के सम्यक् समवाय से ही कार्य होता है, अन्यथा नहीं। सिद्धसेन दिवाकर ने भी कहा है -

**कालो सहाव णियई पुव्वकयं पुरिस कारणेगंता।**

**मिच्छत्तं ते चेव उसमासओ होंति सम्मत्तं।।( 53 )स.सू.अ.3**

( 1 ) काल ( 2 ) स्वभाव ( 3 ) नियति ( 4 ) पूर्वकृत ( कर्म, दैव ) ( 5 ) पुरुषार्थ को पृथक्-पृथक् कार्य की उत्पत्ति में कारण मानना असम्यक् है। कार्य की उत्पत्ति में सापेक्ष रूप से समवाय से पांचों ही कारणों को मानना सम्यक् है। इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करने के लिये निम्न उदाहरण प्रस्तुत करता हूं -

माली बाग में नारियल का बीज बोता है। योग्य पानी और खाद देता है सुरक्षा के लिये बाड़ बनाता है तथा औषधि का भी उपचार करता है। कुछ महीनो ( 5-6 महीनों ) के बाद बीज से अंकुर होता है। कुछ वर्षों के बाद ( 5-6 वर्षों ) नारियल का फल भी आने लगता है।

क्या नारियल के बीजों को बोते ही अंकुर होकर, फल आने लगता है ?

कदापि नहीं। जब तक योग्य काल नहीं होगा, तब तक अंकुर होना संभव नहीं है। अतएव अंकुर तथा फल आने योग्य कार्य के लिये 'काल' रूपी कारण की नितान्त आवश्यकता है। इसी अपेक्षा से जो काल वादी कहते हैं कि काल ही सबका नाश करता है, काल ही सोते हुए प्राणी को जगाता है। काल ही जन्म, जरा, मरण का कर्त्ता है, यह सत्य है।

नारियल के बीज से नारियल का ही अंकुर होता है तथा नारियल का ही फल आता है, परन्तु नारियल के बीज से आम का पेड़ या आम का फल उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि नारियल के बीज से नारियल का ही अंकुर एवं नारियल के पेड़ से नारियल का आना उसका स्वभाव है। इस प्रकार अग्नि का स्वभाव उष्ण, जीव का स्वभाव चैतन्य, अजीव का स्वभाव अचेतन है। इसी कारण स्वभाव को कोई भी, कभी भी, किसी भी शक्ति का प्रयोग करके परिवर्तन नहीं कर सकता। इस अपेक्षा से स्वभाव वादी जो कहते हैं, कांटे की तीक्ष्णता, पक्षियों में जो विभिन्नता है - वह स्वभाव से है , कहना सत्य है।

नारियल के बीज को सीधा उल्टा कैसे भी रोपण करने पर अंकुर नियम से जमीन के ऊपर ही आयेगा तथा जड़ नियम से जमीन के भीतर ही जायेगी। नियति ( नियम ) से नारियल के फूल से ही नारियल का फल आयेगा। नारियल के फल के अंदर ही पानी रहेगा तथा नरेठी ( कड़ा भाग ) के ऊपर नहीं रहेगा।

इसी प्रकार सूर्य नियति से पूर्व में सुबह उदय होकर शाम को पश्चिम में अस्त होता है। कभी भी सूर्य मध्याह्न में, दक्षिण में होकर अर्धरात्रि को उत्तर दिग् में अस्त नहीं होगा।

भुज्यमान आयु कर्म नियम से पूर्ण रूप से नष्ट होने पर मरण होगा, उसके पहले कभी भी मरण नहीं हो सकता है। इस अपेक्षा नियतिवादी जो कहते हैं कि, ''जो, जिस समय, जिससे जैसे, जिसको नियम से होता है, वह उस समय, उससे, वैसे उसको ही होता है'' कहना सत्य है।

माली जितने नारियल के बीज बोता है, सभी बीज अंकुरित हों, ऐसा कोई नियम नहीं है। कुछ अंकुरित होने के बाद सूख भी जाते हैं तथा कुछ पेड़ों में फल भी आते हैं अथवा कुछ में नहीं। कभी अधिक फल आते हैं, तथा कभी कम आते हैं, कभी फल सड़-गल भी जाते हैं। समीप के बगीचे में अधिक फल

आते हैं तथा उसके पास के बगीचे में अच्छे फल नहीं आते, ऐसा क्यों ? इसका कारण उस बगीचे के मालिक का पूर्वकृत पुण्य एवं पाप का फल है। इसी प्रकार संसारी जीवों को जो अवांछित सुख-दुःख मिलते हैं, वे सर्व पूर्वोपार्जित पुण्य पाप के फल हैं। इस अपेक्षा से जो दैववादी मानते हैं कि प्रत्येक कार्य दैव या पूर्वकृत् कर्म से होता है, मानना सत्य है।

यदि माली योग्य रीति से नारियल के बीज को रोपण नहीं करेगा, योग्य जल, खाद, प्रकाश से सुरक्षा नहीं करेगा, तब भी बीज से अंकुर, अंकुर से पेड़ तथा पेड़ से फल नहीं आयेगा। यदि नारियल के बीज को निर्वात स्थान में रखकर योग्य जल, वायु, प्रकाश से वंचित रखा जायेगा, तो क्या उस बीज से अंकुर, अंकुर से वृक्ष, वृक्ष से फल उत्पन्न हो सकता है ? कदापि नहीं। इसी प्रकार सामने रखी हुई भोजन की थाली से जब तक पुरुषार्थ करके भोजन को उठाकर मुख में डालकर नहीं खाते हैं, तब तक क्या पेट भर जायेगा ? कभी नहीं भरेगा। इसी प्रकार चलना, उठना, बैठना, व्यापार करना, कृषि, वाणिज्य, शिल्प कार्य करना सब पुरुषार्थ से होता है। दैव ( पूर्वकृत् पुण्य-पाप ) का निर्माण भी पुरुषार्थ से ही होता है, प्रत्येक कार्य सम्पादन करने के लिए पुरुषार्थ का योगदान अनिवार्य है। विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ कार्य मोक्ष के लिये तो पुरुषार्थ का योगदान सबसे महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि रत्नत्रय रूपी पुरुषार्थ के बिना मोक्षरूपी कार्य का सम्पादन करना दुरूह नहीं, असंभव है।

इसी प्रकार काल आदि कार्य सम्पादन के लिये कारण होते हुए भी पूर्ण कारण नहीं है, परन्तु आंशिक कारण हैं। आंशिक कारण मानना सत्य होते हुए भी आंशिक कारण को ही पूर्ण कारण मान लेना ही असत्य है तथा कार्य सम्पादन के लिए काल का योगदान होते हुए भी केवल काल स्वतंत्र रूप से स्वभाव, नियति, पूर्वकृत् ( कर्म ) पुरुषार्थ के बिना सहायता से कार्य नहीं कर सकता है। इसलिए स्वतंत्र रूप से काल कार्य सम्पादन के लिए अकिंचित्कर है। अन्य एक दृष्टिकोण से काल एक बाह्य निमित्त कारण है। केवल एक बाह्य निमित्त कारण अन्य सहकारी कारण तथा उपादान कारण के बिना कैसे कार्य सम्पादन कर सकता है, क्योंकि कार्य सम्पादन के लिए योग्य अन्तरंग एवं बाह्य निमित्त कारण की आवश्यकता होती है। एक भी कारण के अभाव से कार्य सम्पादन नहीं होता है। यह अखण्डित सिद्धान्त है। इसी प्रकार स्वभाव, नियति, पूर्वकृत् पुरुषार्थ के लिये जान लेना चाहिए।

यदि काल ही सम्पूर्ण कार्यों को करता है तब एक ही समय में विश्व के सम्पूर्ण कार्य हो जाने चाहिए। द्वितीयादि समय के लिये कोई भी कार्य अवशेष नहीं रहना चाहिये क्योंकि एक ही काल संपूर्ण कार्यों को करने के लिए समर्थ कारण होने पर अन्य कारणों की अपेक्षा नहीं रखता है और समर्थ कारण होने पर कार्य होने में देरी नहीं होती है। परन्तु आगम, अनुमान, प्रत्यक्ष अनुभव से सिद्ध होता है कि विश्व के सम्पूर्ण कार्य एक समय में निरवशेष नहीं होते हैं, इससे सिद्ध होता है कि काल ही सम्पूर्ण कार्यों के लिए एकमात्र अद्वितीय जनक नहीं है।

स्वभाव भी कार्य सम्पादन के लिए एक कारण होने के कारण कारणांश है, परन्तु पूर्ण कारण नहीं है। आंशिक कारण मानना सत्य होते हुए पूर्ण कारण मानना असत्य है। सुवर्ण पाषाण में स्वभावतः सुवर्ण होते हुए भी जब तक उस पाषाण को अग्नि आदि के माध्यम से तपाकर, गलाकर, ताडना, घर्षण आदि के माध्यम से शुद्ध नहीं किया जाता है, तब तक स्वभाव का व्यक्तिकरण नहीं होता है। भव्य जीव में सिद्ध होने का स्वभाव होने पर भी जब तक योग्य काललब्धि, व्यवहार-निश्चय, रत्नत्रय आदि का योगदान नहीं होता है, तब तक सिद्ध स्वभाव का व्यक्तिकरण नहीं होता है। कांटा में तीक्ष्ण तथा अग्नि में उष्णता, नीम में कडुवापन, जीव में जो भेद-प्रभेद पाया जाता है, वह भी निष्कारण स्वभाव नहीं है। उसका कारण पूर्वोपार्जित कर्म ही है। इसलिए केवल स्वभाव को ही सर्वेसर्वा माना जाये तो वह भी असत्य की कोटि में आ जाता है।

जो जिस समय, जिससे, जैसे, जिसको नियम से होता है वह उस समय, उसमें वैसे उसको ही होता है, ऐसा मानना सापेक्ष दृष्टि से कथंचित् सत्य होते हुए भी निरपेक्ष दृष्टि से मानना मिथ्या है, क्योंकि संसारी जीवों को जो सुख-दुःख, जन्म-मरण, लाभ-अलाभ प्राप्त होता है, उसमें भी पूर्वकृत पुण्य-पाप तथा काल आदि का योगदान रहता है। परन्तु नियतिवाद निरपेक्ष नियति को स्वीकार करता है। सूत्रकृतांग सूत्र में नियतिवाद का इस प्रकार कथन पाया जाता है -

**आधायं पुण ऐगिसिं उववन्ना पुणे जिया।**
**वेदयंवि सुहं दुक्खं अदुवा लुधंति ठाणओ।।( 1 )( द्वितीय अध्याय )**

पुनः किन्हीं मतवादियों का कहना है कि ( संसार में ) सभी जीव पृथक्-पृथक् है, यह युक्ति से सिद्ध होता है तथा वे ( जीव पृथक्-पृथक् ही ) सुख-दुःख भोगते हैं अथवा अपने स्थान से अन्यत्र जाते हैं, अर्थात् एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाते हैं।

**न तं सयकंडं दुक्खं कओ अन्नकड च णं।**
**सुहं वा जइ वा दुक्खं सेहिय वा असेहियं।।( 2 )**
**न समं कडं ण अन्नेहि वेदयन्ति पुठो जिया।**
**संगतियं तं तहा तेसिं इहमेगोसि माहियं।।( 3 )**

वह दुःख ( जब ) स्वयं द्वारा किया हुआ नहीं है, तो दूसरे का किया हुआ भी कैसे हो सकता है ? वह सुख या दुःख चाहे सिद्धि से उत्पन्न किया हुआ हो अथवा सिद्धि के अभाव से उत्पन्न हुआ हो, जिसे जीव पृथक्-पृथक् तो भोगते हैं, वह न तो स्वयं का किया हुआ है और न दूसरे के द्वारा किया हुआ है, उनका वह ( सुख या दुःख ) सांगतिकि-नियतिकृत् है। ऐसा इस दार्शनिक जगत् में किन्हीं ( नियतिवादियों ) का कथन है।

गोम्मट्टसार कर्मकाण्ड में एकांत काल वाद एकांत नियतवाद को भी मिथ्या कहा गया है। यथा -

**कालो सव्वं जणयदि कालो सव्वं विणस्सदे भूदं।**
**जागत्ति हि सुत्तेसुवि ण सक्कदे वंचिदुं कालो।।( 879 )पृ.251**

काल ही सबको उत्पन्न करता है और काल ही सबका नाश करता है, सोते हुए प्राणियों में काल ही जागता है। ऐसे काल के ठगने को कौन समर्थ हो सकता है। इस प्रकार काल से ही सबको मानना, यह कालवाद का अर्थ है।

**जत्तु जदा जेण जहा जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा।**
**तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु।।( 882 )**

जो जिस समय जिससे जैसे जिसके नियम से होता है, वह उस समय उससे तैसे उसके ही होता है। ऐसा नियम से ही सब वस्तुओं को मानना उसे नियतिवाद कहते हैं।

## सर्व शून्य (असत्य) की परिभाषा

**जस्स ण संति पदेसा पदेसमेत्तं तु तच्चदो णादुं।**

**सुण्णं जाण तमत्थं अत्थंतरभूदमत्थीदो।।( 144 )प्र.सार**

**That, which has not many space-points nor even one space-point in order that it might be known (?) should be known as void, which is something other than existence.**

**किं पलविएण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गये काले।**

**सिज्झिहहिं जेवि भविया तं जाणह सम्ममाहणं।।**

आगे उत्पाद व्यय ध्रौव्यमई अस्तित्व में ठहरे हुए कालद्रव्य के एक प्रदेशपना स्थापित करते हैं –

( जस्स पदेसाण संति ) जिस किसी पदार्थ के बहुप्रदेश नहीं है ( वा पदेस मेत्तं तच्चदो णादुं ) अथवा जो वस्तु अपने स्वरूप से एक प्रदेश मात्र भी नहीं जानी जाती है ( तमत्थं सुण्णं जाण ) उस पदार्थ को शून्य जानो, क्योंकि ( अत्थीदो अत्थंसर भूदम् ) वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप अस्तित्व से अर्थान्तर भूत अर्थात् भिन्न हो जाएगा क्योंकि उसमें एक प्रदेश भी नहीं है जिससे उसकी सत्ता का बोध हो, जैसा पूर्व सूत्रों में कहा है। उस प्रकार काल पदार्थ में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप अस्तित्व विद्यमान है। यह अस्तित्व प्रदेश के बिना नहीं घट सकता है। जो प्रदेशवान् है, वही काल पदार्थ है। कोई कहे कि कालद्रव्य के अभाव में भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य घट जाएगा? इसका समाधान करते हैं कि ऐसा नहीं है। जैसे अंगुली द्रव्य के न होते हुए वर्तमान वक्र पर्याय का जन्म और भूतकाल की सीधी पर्याय का विनाश तथा दोनों के आधारभूत ध्रौव्य किसका होगा? अर्थात् किसी का भी न होगा। तैसे ही कालद्रव्य के अभाव में वर्तमान समय रूप उत्पाद व भूत समय रूप विनाश व दोनों का आधार रूप ध्रौव्य किसका होगा? किसी का नहीं हो सकेगा। यदि सत्तारूप पदार्थ को न माने तो यह होगा कि विनाश किसी दूसरे का, उत्पाद किसी अन्य का और ध्रौव्य किसी और का रहेगा। ऐसा होते हुए सर्व वस्तु का स्वरूप बिगड़ जाएगा। इसलिये वस्तु के नाश के भय ये यह मानना पड़ेगा कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य का कोई भी एक आधार है। वह इस प्रकरण में एक प्रदेश मात्र कालाणु

पदार्थ ही है। यहां यह तात्पर्य समझना कि अनन्त भूतकाल में जितने कोई सिद्ध सुख के पात्र हो चुके हैं व भविष्य काल में अपने ही उपादान से सिद्ध व स्वयं अतिशय रूप इत्यादि विशेषण रूप अतीन्द्रिय सिद्ध सुख के पात्र होवेंगे। वे सब ही काललब्धि के वश से ही हुए हैं व होंगे, तो भी अपना परमात्मा ही उपादेय है। ऐसी रूचिरूप तथा वीतराग चारित्र के अविनाभावी निश्चय सम्यग्दर्शन की ही मुख्यता है न कि काल की इसलिए काल हेय है। जैसा कहा है बहुत क्या कहें, जितने उत्तम पुरुष भूतकाल में सिद्ध हुए हैं व जो भव्य जीव भविष्य में सिद्ध होंगे, सो सब सम्यग्दर्शन की महिमा जानो।

प्रथम तो, अस्तित्व उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य की ऐक्य रूप प्रवृत्ति है। सूत्र में कही हुई वह ( वृत्ति ) प्रदेश के बिना ही काल के होनी सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रदेश के अभाव में वृत्तिमान का अभाव होता है ( और ) वह तो शून्य ही है, क्योंकि अस्तित्व नामक वृत्ति से अर्थान्तरभूत ( अन्य ) है और यदि यहां यह तर्क दिया जाए ( मात्र समय पर्यायरूप वृत्ति ही माननी चाहिए, वृत्तिमान् पदार्थ की क्या आवश्यकता है ? तो उसका समाधान इस प्रकार है ) मात्र वृत्ति ही काल नहीं हो सकती, क्योंकि वृत्तिमान के बिना वृत्ति नहीं हो सकती यदि ( यह कहा जाए कि वृत्तिमान के बिना भी ) वृत्ति हो सकती है, तो ( प्रश्न होता है कि वृत्ति तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य की एकतारूप होनी चाहिए ) अकेली वृत्ति उत्पाद व्यय ध्रौव्य की एकतारूप कैसे हो सकती है ? यदि यह कहा जाय कि 'अनादिअनन्त, अनन्तर ( परस्पर अन्त हुए बिना एक के बाद एक प्रवर्तमान ) अनेक अंशों के कारण एकात्मकता ( एक स्वरूपता ) होती है, इसलिये, पूर्व-पूर्व अंशों का उत्पाद होता है तथा एकात्मकतारूप ध्रौव्य रहता है - इस प्रकार मात्र ( अकेली ) वृत्ति भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकता स्वरूप हो सकती है, ऐसा नहीं है।( क्योंकि उस अकेली वृत्ति में तो ) जिस अंश में नाश है और जिस अंश में उत्पाद है, वे दो अंश एक साथ प्रवृत्त नहीं होते, इसलिये ( उत्पाद और व्यय का ) ऐक्य कहां से हो सकता है ?( अर्थात् नहीं हो सकता ) तथा नष्ट अंश के सर्वथा अस्त होने से और उत्पन्न होने वाला अंश अपने स्वरूप को प्राप्त होने से ( अर्थात् उत्पन्न हुआ है, इसलिये दोनों भिन्न-भिन्न हुये, फिर ) नाश और उत्पाद की एकता में प्रवर्तमान ध्रौव्य कहां से हो सकता है ( अर्थात् नहीं हो सकता )। ऐसा होने पर त्रिलक्षणता ( उत्पादव्ययध्रौव्यता )

नष्ट हो जाती है, क्षणभंगुरता ( बौद्धसम्मत क्षणविनाश ) उल्लसित हो उठता है, नित्य द्रव्य अस्त हो जाता है और क्षणविध्वंसी भाव उत्पन्न होते हैं। इसलिये तत्वविप्लव के ( वस्तु-स्वरूप की व्यवस्था बिगड़ जाने के ) भय से अवश्य ही वृत्ति का आश्रयभूत कोई वृत्तिमान ढूंढ़ना स्वीकार करना योग्य है। वह तो प्रदेश ही है ( अर्थात् वह वृत्तिमान सप्रदेश ही होता है ), क्योंकि अप्रदेश के अन्वय तथा व्यतिरेक का अनुविधायित्व असिद्ध है।( जो अप्रदेश होता है वह अन्वय तथा व्यतिरेकों का अनुसरण नहीं कर सकता, अर्थात् उसमें ध्रौव्य तथा उत्पाद-व्यय नहीं हो सकते। )

**प्रश्न** - जब कि इस प्रकार काल सप्रदेश है तो उसके एक द्रव्य के कारणभूत लोकाकाश के तुल्य ( बराबर ) असंख्यातप्रदेश क्यों न मानने चाहिए?

**उत्तर** - ऐसा हो तो पर्यायसमय सिद्ध नहीं होता, इसलिये असंख्य प्रदेश मानना योग्य नहीं है। परमाणु के द्वारा प्रदेश मात्र कालद्रव्य का उल्लंघन करने पर ( अर्थात् परमाणु के द्वारा एक प्रदेशमात्र कालाणु से निकट के दूसरे प्रदेशमात्र कालाणु तक मंदगति से गमन करने पर ) समय रूप पर्याय की सिद्धि होती है। यदि द्रव्य समय आकाश तुल्य असंख्य प्रदेशी हो तो समय रूप पर्याय की सिद्धि कहां से होगी?( नहीं होगी )

'यदि द्रव्य समय अर्थात् कालपदार्थ लोकाकाश जितने असंख्य प्रदेश वाला एक द्रव्य हो तो भी परमाणु के द्वारा उसका एक प्रदेश उल्लंघित होने पर पर्याय समय की सिद्धि हो जायेगी, ऐसा कहा जाए तो यह ठीक नहीं है। क्योंकि ( उसमें दोष आते हैं )।

( 1 ) एक प्रदेश की वृत्ति को सम्पूर्ण द्रव्य की वृत्ति मानने में विरोध है। ( उपरोक्त मान्यता से ) सम्पूर्ण काल पदार्थ का जो सूक्ष्म वृत्यंश है यह 'समय' होगा, परन्तु उसके एक देश का वृत्यंश समय नहीं होगा।( अथवा )

( 2 ) तिर्यक्प्रचय को ऊर्ध्वप्रचयत्व का प्रसंग आता है। वह इस प्रकार है कि - प्रथम कालद्रव्य एक प्रदेश से वर्ते, फिर दूसरे प्रदेश से वर्ते और फिर अन्य प्रदेश से वर्ते ( ऐसा प्रसंग आ जाता है ) इस प्रकार तिर्यक् प्रचय ऊर्ध्व प्रचय बनकर द्रव्य को प्रदेशमात्र स्थापित करता है।( अर्थात् तिर्यक् प्रचय ही

ऊर्ध्व प्रचय है, ऐसा मानने का प्रसंग आता है, इसलिये द्रव्य प्रदेशमात्र ही सिद्ध होता है ) इसलिये तिर्यक् प्रचय को ऊर्ध्व प्रचयत्व न मानने ( चाहने ) वाले को प्रथम ही कालद्रव्य को प्रदेशमात्र निश्चय करना चाहिए।

**समीक्षा** - जो द्रव्य होगा उसमें अवश्य एक या अनेक प्रदेश होंगे। जिस प्रकार कालाणु का एक प्रदेश पुद्गलाणु का एक प्रदेश, धर्म, अधर्म और एक जीव के असंख्यात प्रदेश तथा आकाश के अनंतानंत प्रदेश होते हैं। प्रदेश के बिना कोई द्रव्य ही नहीं हो सकता है। सर्व शून्य अभाव, अस्तित्व शून्य में ही प्रदेश नहीं होता है अर्थात् जहां प्रदेश नहीं है, वहां द्रव्य का भी अभाव ही है। आचार्य श्री का यह सब विस्तार से लिखने का आशय यह है कि कुछ श्वेताम्बर आचार्य व्यवहार काल को मानते हैं, परन्तु निश्चय काल को नहीं मानते हैं। यथा - 'कालश्चेत्येक' 38

आचार्य का कहना है कि निश्चय काल के बिना व्यवहार हो ही नहीं सकता, क्योंकि निश्चय के बिना व्यवहार नहीं होता और द्रव्य के बिना पर्याय नहीं होती। क्योंकि 'गुणपर्ययवद् द्रव्यम्'। अर्थात् गुण और पर्याय वाला द्रव्य होता है। ज्ञेय को ही ज्ञान जानता है, क्योंकि 'णाणं णेय पमाणं' अर्थात् ज्ञेन-ज्ञेय प्रमाण होता है। यदि ज्ञेय ही नहीं होगा तो ज्ञान भी नहीं होगा, इसी प्रकार वाच्य-वाचक सम्बन्ध होता है। यदि वाच्य ( द्रव्य, ज्ञेय, कथन करने योग्य वस्तु ) भी नहीं होगा इसीलिए काल द्रव्य यदि नहीं होता तो काल शब्द भी नहीं होता, परन्तु काल शब्द का प्रयोग काल द्रव्य को मानने वाले एवं नहीं मानने वाले भी करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि निश्चय काल अवश्य है और उसका प्रदेश भी है।

## ज्ञान, ज्ञेय और व्यवहार जीवत्व के हेतु

**सपदेसेहिं समग्गो लोगो अट्ठेहिं णिट्ठिदो णिच्चो।**
**जो तं जाणदि जीवो पाणचदुक्केणाभिसंबद्धो ।।( 145 )**

**The physical world is stable, eternal and (filled) complete with entities endowed with space-points, he who knows it, is the soul endowed with four life-essentials.**

( णिच्चो ) द्रव्यार्थिक नय से नित्य अथवा किसी पुरुष विशेष से नहीं किया हुआ सदा से चला आया हुआ ( लोगो ) यह लोकाकाश ( सपदेसेहिं

समग्गो ) अपने ही असंख्यात प्रदेशों से पूर्ण है और ( अट्ठेहिं णिट्ठिदो ) सहज शुद्धबुद्ध एक स्वभावरूप परमात्म पदार्थ को आदि लेकर अन्य पदार्थों से भरा हुआ है अथवा अपने-अपने प्रदेशों को रखने वाले पदार्थों से भरा हुआ है ( जो तं जाणदि ) जो कोई इस ज्ञेय रूप लोक को जानता है ( जीवो ) सो जीव पदार्थ है तथा वह ( पाणचदुक्केणसंबद्धो ) संसार अवस्था में व्यवहार से चार प्राणों का सम्बन्ध रखता है।

निश्चय से यह जीव शुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावधारी है इसलिये यह ज्ञान भी है और ज्ञेय भी है। शेष सब पदार्थ मात्र ज्ञेय ही हैं, इस तरह ज्ञाता और ज्ञेय का विभाग है तथा यद्यपि निश्चय से यह स्वयं सिद्ध परम चैतन्य स्वभाव रूप निश्चय प्राण से जीता है तथापि व्यवहार से अनादि से कर्मबन्ध के वश से आयु आदि अशुद्ध चार प्राणों से भी सम्बन्ध रखता हुआ जीता है। यह चार प्राणों का सम्बन्ध शुद्ध निश्चय से जीव का स्वरूप नहीं है, ऐसी भेद भावना समझनी चाहिये, यह अभिप्राय है।

**समीक्षा** - विश्व में केवल छह द्रव्य होने के कारण विश्व छह द्रव्यों में ही समाप्ति को प्राप्त हो जाता है अर्थात् छह द्रव्यों को छोड़कर विश्व में और कुछ है ही नहीं। छहों द्रव्य प्रदेशवान है। ये द्रव्य अकृत्रिम/प्राकृतिक/स्वयंभू होने के कारण नित्य/अविनश्वर/शाश्वतिक/अनादि अनिधन है। इसको जानने वाला ज्ञान शक्ति युक्त जीव है, क्योंकि ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध होता है, अर्थात् ज्ञान है तो ज्ञेय भी है और ज्ञेय है तो ज्ञान भी है। परन्तु जीव ज्ञान ( ज्ञाता ) भी है और ज्ञेय भी है। क्योंकि ज्ञान गुण से जीव स्वयं के अनंत गुणों को जानता है और अन्य ज्ञेय ( द्रव्य ) को भी जानता है, किन्तु जीव को छोड़कर अन्य द्रव्य केवल ज्ञेय ही है, क्योंकि उसमें ज्ञान गुण का अभाव है। यह ज्ञायक/ज्ञाता/ज्ञानी जीव संसारावस्था में कर्म से पराभूत होकर चार प्राणों से सम्बन्धित होकर जीता है तथा यथायोग्य जानता भी है तथापि यह चार प्राण जीव के स्वाभाविक प्राण नहीं है।

## चारों प्राणों का स्वरुप

**इंदियपाणो य तधा बलपाणो तह य आउपाणो य।**
**आणप्पाणप्पाणो जीवाणं होंति पाणा ते।।( 146 )**

**Life-essentials of Jivas or souls are senses, bala (i.e. the channels of activities), duration of life and respiration.**

( इन्द्रियपाणो ) इन्द्रिय प्राण ( य तहा ) तथा ( बलपाणो ) बल प्राण ( तह य ) तैसे ही ( आउ पाणो ) आयु प्राण ( य ) और ( आणप्पाणप्पाणो ) श्वासोच्छ्वास प्राण ( ते पाणा ) ये प्राण ( जीवाणं ) जीवों के ( होंति ) होते हैं।

अतीन्द्रिय और अनन्त सुख के कारण न होने से इन्द्रिय प्राण आत्मा के स्वभाव से विलक्षण हैं। मन, वचन, काय के व्यापार से रहित परमात्म द्रव्य से भिन्न बल प्राण हैं। अनादि और अनन्त स्वभावमयी परमात्म पदार्थ से विपरीत आदि और अन्त सहित आयु प्राण है। श्वासोच्छ्वास के पैदा होने के खेद से रहित शुद्धात्म तत्त्व से विपरीत श्वासोच्छ्वास प्राण है। इस तरह आयु, इन्द्रिय, बल, श्वासोच्छ्वास के रूप में व्यवहारनय से जीवों के चार प्राण होते हैं। ये प्राण शुद्ध निश्चय नय से जीव से भिन्न हैं, ऐसी भावना करनी योग्य है।

**प्राणों के दस भेद –**

**पंचवि इन्दियपाणा मणवचिकाया य तिण्णि बलपाणा।**
**आणप्पाणप्पाणो आउगपाणेण होंति दसपाणा।।( 146 )**

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पांच इन्द्रिय प्राण है। मन, वचन, काय ये तीन बलप्राण हैं। श्वासोच्छ्वास तथा आयु प्राण को लेकर दश प्राण होते हैं। ये दसों प्राण चिदानन्दमयी एकरूप परमात्मा से निश्चय से भिन्न है, ऐसा जानना चाहिये, यह अभिप्राय है।

**समीक्षा -** निश्चय नय से जीव भाव प्राण से जीता था, जी रहा है और आगे भी जीयेगा, परन्तु कर्म परतंत्र जीव व्यवहार नय से इन्द्रियादि प्राणों से जीता था, जी रहा है और जीयेगा। सामान्यतः संसारी जीव इन प्राणों के द्वारा जीते हैं, सुख-दुःख अनुभव करते हैं व पहिचान में आते हैं। आधुनिक जीव विज्ञान में भी इन प्राणों को ही प्रधान करके जीवों का विश्लेषण, शोध एवं बोध किया जाता है। आधुनिक विज्ञान में इन प्राणों का ही यत्किंचित् ज्ञान हो पाया है। परन्तु इसके पीछे जो अमूर्तिक चैतन्ययुक्त भाव प्राण है, उसका कोई परिज्ञान नहीं है इसलिए वे शरीर आदि से युक्त जीव की अशुद्ध अवस्था को ही जीव मान लेते हैं। इसके अनुसार ही जीव की परिभाषा बना दी है। यथा - जो जन्म लेता है, वृद्धि को प्राप्त करता है, भोजन ग्रहण करता है, वंश वृद्धि करता है, आत्मरक्षा करता है, मरता है, आदि गुणों से युक्त है, वह जीव है। यह

परिभाषा संसारी जीव की अपेक्षा कथंचित् सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नहीं है, क्योंकि उपरोक्त गुणों से वियुक्त भी अनंतानंत जीव होते हैं, जिन्हें सिद्ध कहते हैं। ये सिद्ध जीव संसारी जीवों में अविकसित रूप में रहता है और उस जीव के बिना शरीर इन्द्रियां आदि कुछ काम नहीं कर सकती हैं इसलिए केवल शरीर आदि ही जीव नहीं है। मुख्यतः वही चेतना शक्ति ही शरीर आदि को सचेत करती है, संचालित करती है, सक्रिय करती है। उसके अभाव में शरीर आदि निष्क्रिय, शक्तिहीन, बेकार हो जाता है। परमात्म प्रकाश में कहा भी है

**देहि वंसतें जेण पर इंदय – गामु वसेइ।**
**उव्वसु होइ गएण फुडु सो परमप्पु हवेइ।।( 44 )पृ.43**

जिसके केवल देह में रहने से इन्द्रिय गांव रहता है, और जिसके परभव में चले जाने पर उजड निश्चय से हो जाता है, वह परमात्मा है।

**जो णिय – करणहिं पंचहिं वि पंच वि विसय मुणेइ।**
**मुणिउण पंचहिं पंचहिं वि सो परमप्पु हवेइ।।( 45 )**

जो आत्माराम शुद्ध निश्चय नयकर अतीन्द्रिय ज्ञानमय है, तो भी अनादि बंध के कारण व्यवहार नय से इन्द्रियमय शरीर को ग्रहण कर अपनी पांचों इन्द्रियों द्वारा रूपादि पांचों ही विषयों को जानता है, अर्थात् इन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमन करके इन्द्रियों से रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श हो जानता है और आप पांच इन्द्रियों कर तथा पांचों विषयों से नहीं जाना जाता, अगोचर है ऐसे लक्षण जिसके हैं, वही परमात्मा है।

पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्द देव ने संसारी जीव तथा प्राणों का वर्णन निम्न प्रकार से किया है –

**पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं।**
**सो जीवो पाणा पुण वलमिंदियमाउउस्सासो।।( 30 )पृ.119**

यद्यपि जीव शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध चैतन्यादि प्राणों से जीता है तथापि अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से द्रव्य रूप चारों प्राणों से तथा अशुद्ध निश्चय नय से भाव रूप चार प्राणों से संसार अवस्था में वर्तमान काल में जी रहा है, भविष्य में जीवेगा, तथा आगे जी चुका है वे पूर्वोक्त द्रव्य प्राण तथा भावप्राण अभेद से बल इन्द्रिय, आयु श्वासोच्छ्वास है। यहां यह भावार्थ है

कि मन, वचन, काय को रोक करके व पांचों इन्द्रियों के विषयों से वैराग्य भाव के बल से जो शुद्ध चैतन्य आदि प्राणों का धारी शुद्ध जीवास्तिकाय है, उस ही को उपादेय रूप से ध्याना चाहिये।

## जीव की परिभाषा

**पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हि जीविदो पुव्वं।**
**सो जीवो पाणा पुण पोग्गलदव्वेहिं णिव्वत्ता।।( 147 )**

**That which formerly lived, lives now and will live in future with the four life-essentials is the Jiva, the sentient principle, these life-essentials, moreover, are fashioned by material substances.**

( जो हि ) जो कोई वास्तव में ( चउहिं पाणेहिं ) चार प्राणों से ( जीवदि ) जीता है, ( जीविस्सदि ) जीवेगा व ( पुव्वं जीविदो ) पहले जीता था ( सो जीवो ) वह जीव है ( ते ) वे ( पाणा ) प्राण ( पुग्गलदव्वेहिं ) पुद्गल द्रव्यों से ( णिव्वत्ता ) रचे हुए हैं। यद्यपि यह जीव निश्चयनय से सत्ता, चैतन्य, सुख, ज्ञान आदि शुद्ध भाव प्राणों से जीता है, जीता था तथा जीता रहेगा तथापि व्यवहारनय से यह संसारी जीव इस अनादि संसार में जैसे वर्तमान में द्रव्य और भावरूप अशुद्ध प्राणों से जीता है। ऐसे ही पहले जीता था अथवा जब तक संसार में है, जीता रहेगा, क्योंकि ये अशुद्ध प्राण उदय प्राप्त पुद्गल द्रव्य से रचे गये हैं। इसलिये ये प्राण पुद्गल द्रव्य से विपरीत अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि अनन्त गुण स्वभावधारी परमात्मा तत्त्व से भिन्न है, ऐसी भावना करनी योग्य है। यह भाव है।

**समीक्षा** - इस गाथा में आचार्य श्री ने संसारी जीव का स्वरूप के साथ-साथ संसारी जीव के प्राण पौद्गलिक मय है, इसका वर्णन किया है। शरीरादि पौद्गलिक है, क्योंकि ये पुद्गल से निर्मित हैं। पुद्गल से प्रभावित हैं, पुद्गल से बढ़ते हैं और उसके अभाव में उसमें क्षीणता भी आती है। जिस प्रकार मनुष्य का शरीर माता-पिता के रज-वीर्य के मिश्रण से बनता है, जल-भोजन से बढ़ता है। भोजनादि के अभाव में क्षीण हो जाता है और पूर्ण अभाव से शरीर निष्प्राण भी हो जाता है। इसी प्रकार मन, श्वासोच्छ्वास आदि भी पौद्गलिक हैं। शरीरादि पौद्गलिक हैं ऐसा स्पष्ट वर्णन उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थ सूत्र में दिया है।

**शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम्।( 19 )( पृ.298 )**

**शरीर वाङ्मनस्प्राण - अपानाः जीवानां पुद्गलानां उपकारः।।**

**The function of matter forms the physical basis of the bodies, speech mind the respiration of the souls.**

**शरीर, वचन, मन और प्राणापान यह पुद्गलों का उपकार है।**

इस सूत्र में संसारी जीवों के लिए पुद्गल का क्या-क्या उपकार है, उसका वर्णन किया गया है। संसारी जीवों के पांचों शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास पुद्गल से बनते हैं अर्थात् शरीर आदि पुद्गल स्वरूप हैं। गोम्मट्टसार जीव काण्ड में विश्व में स्थित 23 पौद्गलिक वर्गणाओं में से किन-किन वर्गणाओं से उपरोक्त शरीर आदि बनते हैं, उसका वर्णन निम्न प्रकार किया है -

**आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासओ।**

**णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधादु तेजगं।।( 607 )गो.सा. पृ.272**

तेईस जाति की वर्गणाओं में से आहारवर्गणा के द्वारा औदारिक, वैक्रियक, आहारक, ये तीन शरीर और श्वासोच्छ्वास होते हैं तथा तेजोवर्गणा रूप स्कन्ध के द्वारा तैजस शरीर बनता है।

**भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो।**

**अट्ठविहकम्मदव्वं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।( 608 )**

भाषा वर्गणा के द्वारा चार प्रकार का वचन, मनोवर्गणा के द्वारा हृदय स्थान में अष्ट दल कमल के आकार का द्रव्यमन तथा कार्माण वर्गणा के द्वारा आठ प्रकार के कर्म बनते हैं। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

'शरीर आदि पौद्गलिक हैं', इसको सिद्ध करने के लिए तार्किक शिरोमणि भट्टअकलंक देव ने राजवार्तिक में तार्किक एवं वैज्ञानिक प्रणाली से बहुत सुन्दर वर्णन किया है, जो निम्न प्रकार है -

**1. शरीर पौद्गलिक** - औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण इन पांचों शरीर कर्म मूलतः सूक्ष्म होने से अप्रत्यक्ष हैं और जो स्थूल हैं, वह प्रत्यक्ष है। मन अप्रत्यक्ष ही है। वचन और श्वासोच्छ्वास कुछ प्रत्यक्ष और

कुछ अप्रत्यक्ष है, क्योंकि ये इन्द्रियों के विषय नहीं है, अतः इन्द्रियों से अतीत हैं। अतः शरीर पुद्गल है।

**2. कार्माण शरीर पौद्गलिक** - यद्यपि कार्माण शरीर आकार रहित है तथापि मूर्तिमान पुद्गलों के सम्बन्ध में अपना फल देता है। जैसे ब्रीहि ( चावल ) आदि धान्य, पानी, धूप आदि मूर्तिमान पुद्गलों के सम्बन्ध से पकता है, इसलिए पौद्गलिक है। उसी प्रकार कार्माण शरीर भी गुड़ कंटक आदि मूर्तिमान पुद्गल द्रव्यों के सम्बन्ध से पकता है अर्थात् इष्टनिष्ट बाह्य सामग्री के निमित्त से कार्माण शरीर अपना फल देता है, अतः कार्माण शरीर पौद्गलिक है, क्योंकि कोई भी अमूर्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थ के सम्बन्ध से नहीं पकता तथा अमूर्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थ से विपच्यमान दृष्टिगोचर नहीं होता।

**3. वचन पौद्गलिक** - पुद्गल के निमित्त से होने से दोनों प्रकार के वचन पौद्गलिक है। वचन दो प्रकार के हैं - द्रव्यवचन और भाववचन। दोनों ही पौद्गलिक हैं, क्योंकि दोनों ही पुद्गल के कार्य हैं। अर्थात् पुद्गल के निमित्त से ही होते हैं। भाववचन, वीर्यान्तराय और मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपशम तथा अङ्गोपाङ्ग नाम कर्म के उदय के निमित्त से होते हैं। अतः भावमन पुद्गल का कार्य होने से पौद्गलिक है, यदि वीर्यान्तराय और मतिश्रुत - ज्ञानावरण रूप पौद्गलिक कर्मों का क्षयोपशम नहीं हो तो भाव वचन हो ही नहीं सकता। भाववचन के सामर्थ्य वाले आत्मा के द्वारा प्रेर्यमाण पुद्गल वचन रूप से परिणत होते हैं अर्थात् आत्मा के द्वारा तालु आदि क्रिया से जो पुद्गल वर्गणाएं वचनरूप परिणत होती हैं, उसे द्रव्य वचन कहते हैं। श्रोत्रेन्द्रिय का विषय होने से द्रव्य वचन भी पौद्गलिक है।

मूर्तिक मदिरा के द्वारा इन्द्रियज्ञान का जो अभिभव देख जाता है, वह भी मूर्त से मूर्तिक का ही अभिभव है, क्योंकि क्षयोपशमिक ज्ञान इन्द्रियादि पुद्गलों के अधीन होने से पौद्गलिक है, अन्यथा ( यदि विज्ञान पौद्गलिक नहीं है तो ) आकाश के समान विज्ञान का भी मदिरा आदि के द्वारा अभिभव नहीं हो सकता था। अतः उपर्युक्त हेतुओं से शब्द पौद्गलिक पदार्थ सिद्ध होता है।

**4. प्राणापान पौद्गलिक** - कोष्ठ ( उदर ) की वायु को उच्छ्वासलक्षण प्राण कहते हैं। वीर्यान्तराय, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और अंगोपांग नाम कर्म के उदय की अपेक्षा रखने वाला आत्मा के द्वारा शरीर कोष्ठ से जो वायु बाहर निकाली जाती है, उसको उच्छ्वासलक्षण प्राण कहते हैं।

बाह्य वायु को आभ्यन्तर करना अपान है। वीर्यान्तराय, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और अंगोपांग नाम कर्म के उदय की अपेक्षा रखने वाले आत्मा के द्वारा जो बाह्य वायु भीतर ली जाती है, उस निःश्वास को अपान कहते हैं। ये श्वासोच्छ्वास ( प्राणपान ) आत्मा के जीवन में कारण होते हैं। अतः इनके द्वारा पुद्गल आत्मा का उपकार करता है।

इन सबका प्रतिघात देख जाता है, अतः ये सब मूर्तिक है। उन प्राणापान और वाङ् ( वचन ) मन, श्वासोच्छ्वास का प्रतिघात आदि होने से इन को मूर्तिमान ( पौद्गलिक ) समझना चाहिए। जैसे - भय के कारणों से तथा वज्रपात आदि के शब्दों के द्वारा मन का प्रतिघात और मदिरा आदि के द्वारा मन का अभिभाव देखा जाता है। हाथ से मुख और नाक को बंद कर देने पर श्वासोच्छ्वास का प्रतिघात और कण्ठ में कफ आदि के आ जाने से श्वासोच्छ्वास का अभिभव देखा जाता है। अतः मन और श्वासोच्छ्वास पौद्गलिक हैं, क्योंकि मूर्तिक पदार्थों के द्वारा अमूर्तिक पदार्थ के अभिघात और अभिभव ( रूकावट ) नहीं हो सकते।

श्वासोच्छ्वास रूपी कार्य से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है, इनके द्वारा आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है, क्योंकि प्राणापानादि कर्म आत्मा के कार्य हैं, अतः आत्मा रूपी कारण के बिना श्वासोच्छ्वास रूपी कार्य नहीं हो सकता। जैसे किसी यंत्र मूर्ति की चेष्टाएं उसके प्रयोक्ता का अस्तित्व बताती है, उसी प्रकार प्राणापानादि क्रियाएं क्रियावान आत्मा की सिद्धि करती है।

पंचास्तिकाय में कुंदकुंद देव ने कहा भी है -

**जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।**
**भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो।।( 27 )**

आत्मा जीव है, चेतयिता है, उपयोगलक्षित है, प्रभु है, कर्त्ता है, भोक्ता है, देहप्रमाण है, अमूर्त है और कर्म संयुक्त है।

विश्व द्रव्य विज्ञान ( द्रव्य संग्रह ) में नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती ने संसारी जीव के साथ-साथ निश्चय नय से जीव की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है -

**तिक्काले चदुपाणा इंदिय बलमाउआणपाणो य।**

**ववहारा सो जीवो णिच्छय णयदो दु चेदणा जस्स।।( 3 )**

तीन काल में इन्द्रिय, बल, आयु और आनपान इन चारों प्राणों को जो धारण करता है, वह व्यवहार नय से जीव है और निश्चय नय से जिसके चेतना है, वह जीव है।

आचार्य श्री ने इस गाथा में व्यवहार नय से एवं निश्चय नय से जीव की परिभाषा दी है। संसारी जीव अनादि काल से कर्म संतति की अपेक्षा कर्म से युक्त है। इसलिये कर्म परतंत्र जीव यथायोग्य कर्म के उदय से प्राप्त यथायोग्य द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है। इसलिये व्यवहार नय से चार द्रव्य प्राणों से और भाव प्राणों से जो जीता है, जीवेगा या पहले जिया है, उसे जीव कहते हैं। अनुपचरित असद्भुत व्यवहार नय से द्रव्येन्द्रिय आदि द्रव्य प्राण है और भावेन्द्रिय आदि क्षायोपशमिक भाव भाव-प्राण अशुद्ध निश्चय नय से हैं तथा निश्चय नय से शुद्ध चैतन्य ज्ञान आदि शुद्ध भाव प्राण हैं।

प्रत्येक द्रव्य, पर से उत्पन्न न होने वाला सत्तावान होने से प्रत्येक द्रव्य आदि अनिधन अर्थात् शाश्वतिक है। विज्ञान के अनुसार भी द्रव्य एवं ऊर्जा कभी भी नष्ट नहीं होते हैं, परन्तु परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए प्रत्येक जीव अनादि से हैं और अनंत तक रहेगा, भले उसमें सतत् परिवर्तन होता है। डार्विन आदि कुछ आधुनिक वैज्ञानिक एवं चार्वाक आदि कुछ प्राचीन दार्शनिक जीव को शाश्वतिक नहीं मानते हैं, परन्तु इनका यह मत कपोल कल्पित असत्य है। इसका विशेष वर्णन मैंने 'विश्व विज्ञान रहस्य' में किया है। विशेष जिज्ञासु **'विश्व विज्ञान रहस्य'** का अध्ययन करें।

## अनुच्छेद - 5
## विज्ञान की दृष्टि में.....
# ब्रह्माण्ड विज्ञान या ब्रह्माण्डिकी

### परिभाषा ब्रह्माण्ड विज्ञान की

ब्रह्माण्ड विज्ञान ( Cosmology ) विज्ञान की वह शाखा है, जिसका संबंध ब्रह्माण्ड ( Universe ) की उत्पत्ति, उसकी वर्तमान संरचना, विकास तथा अंतिम नियति से है।

यह ब्रह्माण्ड किस तरह उत्पन्न हुआ और समय के साथ किस तरह बदलता रहा तथा भविष्य में इसका क्या होगा, इसकी संकल्पनाएँ खगोलविदों द्वारा ब्रह्माण्डीय मॉडलों ( Cosmologial models ) के आधार पर की जाती हैं।

विगत साठ-सत्तर वर्षों में इस तरह के तीन मॉडल ( Models ) सामने आए हैं -

1. महाविस्फोट ( Big bang ) मॉडल,
2. स्थायी दशा ( Steady State ) मॉडल, और
3. स्पंदमान ( Oscillatory ) मॉडल।

इन तीनों में से महाविस्फोट मॉडल का पलड़ा भारी है। ऐसे ब्रह्माण्डीय मॉडल भौतिक घटनाओं को किसी तरह का दैवी कारण या महत्ता प्रदान न करके उन्हें प्रकृति के नियमों के आधार पर घटित बताने का प्रयास करते हैं।

किसी भी मॉडल द्वारा इस मूलभूत प्रेक्षण की पुष्टि होनी चाहिए कि सुदूर मंदाकिनियों ( Galaxies ) से आने वाले प्रकाश को स्पेक्ट्रम में 'अभिरक्त सिरा' ( Red End ) की ओर विस्थापित होना चाहिए। यह घटना 'ब्रह्माण्डीय अभिरक्त विस्थापन' ( Cosmological Red Shift ) कहलाती हैं।

आधुनिक सिद्धान्त कहता है कि यह अभिरक्त विस्थापन 'डॉप्लर प्रभाव' ( Doppler Effect ) है, जिसके अनुसार अन्य मंदाकिनियां हमसे दूर भाग रही हैं। सुदूरतम मंदाकिनियों में सर्वाधिक अभिरक्त विस्थापन पाया जाता है। वे सर्वाधिक गति से हमसे दूर पलायन करती जा रही हैं।

इसकी पुष्टि में पांच मंदाकिनियों की दूरियां तथा उनके अभिरक्त विस्थापन के मान दिए जा सकते हैं -

| मंदाकिनियाँ | दूरी (प्रकाश वर्ष) | अभिरक्त विस्थापन |
|---|---|---|
| कन्या ( Virgo ) | 55 मिलियन | 750 मील/सैकेंड |
| सप्तर्षि ( Ursa Major ) | 700 मिलियन | 930 मील/सैकेंड |
| उत्तरी किरीट ( Corona Borealis ) | 1 बिलियन | 13,400 मील/सैकेंड |
| बोतीज ( Bootes ) | 1.8 बिलियन | 24,400 मील/सैकेंड |
| महासर्प ( Hydra ) | 2.8 बिलियन | 38,000 मील/सैकेंड |

यदि दूरी तथा विस्थापन वेग ( मील/सै. ) के बीच आरेख खींचा जाए तो पांचों मंदाकिनियां एक सीध में पड़ेंगी।

इस तरह के संबंध का गहन अध्ययन करने वाले थे 'एडविन हुबल' ( Edwin Hubble ) जिन्होंने अनेक मंदाकिनियों की दूरी तथा उनके पलायन वेग ( Velocity of Recession ) में संबंध स्थापित किया, जो इस प्रकार है -

'जो मंदाकिनी जितनी दूर है, वह उतनी ही तेजी से दूर जा रही है।'

इसे हुबल नियम ( 1929 ) कहते हैं, जिसे हम इस तरह लिख सकते हैं -

$$v = Hx$$

जहां H = हुबल स्थिरांक है।

इस स्थिरांक का अत्यधिक महत्त्व है, क्योंकि यह उस दर को बताता है जिससे मंदाकिनियाँ हमसे दूर जा रही है या कि जिस गति से 'ब्रह्माण्ड का प्रसार' हो रहा है।

इसका मान लगभग 20 किलोमीटर प्रति सैकेंड प्रति मिलियन प्रकाश वर्ष है। यानी

$$H = 15\text{-}30 \text{ Km/Sec.MLY}$$

इन मंदाकिनियों से भी परे हैं ताराकल्प, यानी 'क्वासर' ( Quasar ) जो सबसे तेजी से हमसे दूर भाग रहे हैं।

**तीन प्रकार के मॉडलों का विवरण**

( 1 ) महाविस्फोट मॉडल सर्वाधिक लोकप्रिय है। उसके अनुसार, 10 से 20 बिलियन प्रकाशवर्ष पूर्व यह ब्रह्माण्ड बुरी तरह से विस्फोट कर गया, जिसे महाविस्फोट कहते हैं। महाविस्फोट के पूर्व हमारे वर्तमान ब्रह्माण्ड का सारा 'पदार्थ' ( Matter ) तथा 'विकिरण' ( Radiation ) आदि अग्नि के

गोले में समाहित था और वह अत्यन्त गरम सघन अवस्था में था। फलस्वरूप ब्रह्माण्ड तेजी से प्रसार कर गया। महाविस्फोट के साथ ही 'दिक्' ( Space ) तथा 'काल' ( Time ) का शुभारम्भ हुआ।

इस तरह पदार्थ ( प्रोटॉन तथा इलेक्ट्रॉन ) एवं विकिरण तेजी से प्रसरित हुए और शीतल होने लगे। कई लाख वर्षों बाद यह मंदाकिनियों में संघनित हो गया। ब्रह्माण्ड तब से प्रसार करता आया है और ये मंदाकिनियां तभी से एक-दूसरे से दूर पलायन करती रही हैं।

आज भी ब्रह्माण्ड का प्रसार हो रहा है - यह 'ब्रह्माण्ड प्रसरणशील' है। आज भी मंदाकिनियों के अन्तर्गत तारे निर्मित हो रहे हैं। ये महाविस्फोट से निकली प्रारम्भिक हाइड्रोजन गैस का उपयोग कर रहे हैं। स्वाभाविक है कि भविष्य में यह प्रारम्भिक ( आदि ) हाइड्रोजन तारों का निर्माण करते-करते चुक जाएगी और तब वह ब्रह्माण्ड जो महाविस्फोट के साथ प्रारम्भ हुआ था अंधकारमय बन जाएगा, यानी श्याम ब्रह्माण्ड प्रतिफलित होगा, जो नितांत शीतल या ठंडा होगा।

( 2 ) स्थायी दशा मॉडल के अनुसार, ब्रह्माण्ड समय के साथ न तो विकसित होता है, न ही बदलता है, इसका न कोई आदि है, न कोई अंत। यह ब्रह्माण्ड भूत, वर्तमान तथा भविष्य में जैसे का तैसा बना रहेगा।

यह मॉडल पूर्ण ब्रह्माण्डीय सिद्धान्त का पालन करता है, जो कहता है कि ब्रह्माण्ड सर्वत्र तथा सदा वही रहेगा। इस तरह पदार्थ का घनत्व सदैव यही बना रहेगा।

इसके अनुसार, नवीन हाइड्रोजन इस गति से निरन्तर उत्पन्न होती रहेगी कि पलायन कर रही मंदाकिनियों के साथ जो पदार्थ चला जाता है, उसकी अपूर्ति होती रहेगी। यह मॉडल बहुतेरे खगोलविदों को इसलिए पसन्द है, क्योंकि यह इस दार्शनिक पक्ष को प्रस्तुत करता है कि ब्रह्माण्ड सदैव विद्यमान था और भविष्य में भी विद्यमान रहेगा। किन्तु शायद यही इस मॉडल का सबसे बड़ा दोष है; क्योंकि यह ऊर्जा संरक्षण नियम का विरोध करता है - इसमें यह नहीं बतलाया गया कि नई हाइड्रोजन कहां से आएगी। ऊर्जा का न तो सृजन किया जा सकता है, न विनाश। हां, इसका रूपान्तरण हो सकता है।

( 3 ) स्पंदमान मॉडल का कथन है कि हमारे ब्रह्माण्ड की शुरुआत महाविस्फोट के साथ हुई तो है, किन्तु यह सदैव प्रसार नहीं करता रहेगा। गुरुत्व के कारण यह प्रसार रुक जाएगा।

इसके अनुसार, ब्रह्माण्ड सदैव स्पंदमान रहता है यानी बाहर की ओर प्रसार करता रहता है और फिर से भीतर की ओर संकोच करता है। भविष्य में भी इसी तरह स्पंदित होता रहेगा। संप्रति प्रसार अवस्था है जो विगत 10-20 बिलियन प्रकाशवर्षों से चल रही है। भविष्य में यह ब्रह्माण्ड का प्रसरण बंद पड़ता जाएगा और जब प्रसरण पूरी तरह रुक जाएगा तब इसका संकुचन होगा। संकुचन के साथ ही सारी मंदाकिनियां भहरा पड़ेंगी और सारा पदार्थ पुनः उसी में संघटित हो जाएगा। तब पुनः महाविस्फोट होगा और उसी पदार्थ से नूतन प्रसरणशील ब्रह्माण्ड उत्पन्न होगा। यह ब्रह्माण्ड सतत दोलायमान होता रहेगा।

इस तरह प्रथम तथा तृतीय मॉडल विकासीय मॉडल ( Evolutionary Models ) कहे जाते हैं - जिनके अनुसार ब्रह्माण्ड में परिवर्तन अवश्यंभावी है। इनमें से प्रथम विवृत प्रणाली ( खुला ) है तो तीसरा संवृत ( बंद ) प्रणाली।

**हुबल स्थिरांक की भूमिका**

यदि मंदाकिनियों की पलायन गति मंद पड़ रही है तो वर्तमान में हुबल स्थिरांक का जो मान है, उसे लाखों वर्ष पूर्व की अपेक्षा कम होना चाहिए। दोलायमान ( स्पंदनशील ) मॉडल में इस स्थिरांक का मान तेजी से घटेगा, अपेक्षा महाविस्फोट मॉडल के; जबकि स्थायी दशा में यह मॉडल अपरिवर्तित रहेगा। एलान सैंडेज ने माउंट पैलोमर वेधशाला में कार्य करते हुए पाया है कि हुबल स्थिरांक घट रहा है - जिसका अर्थ है कि ब्रह्माण्ड का प्रसरण मंद पड़ रहा है। इसलिए हुबल स्थिरांक का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है, जब हमें ब्रह्माण्ड के आकार तथा आयु का ज्ञान करना होता है।

**ब्रह्माण्ड की आयु**

ब्रह्माण्ड की कोई आयु नहीं बताई जाती, वह अजन्मा है। फिर भी -

( 1 ) बाइबिल में ब्रह्माण्ड की आयु छह हजार वर्ष बताई गई है और फारसी लोककथा के अनुसार बारह हजार वर्ष एवं बेबीलोन के ज्योतिषी ने बीस लाख वर्ष बताई है। हाल ही में शिकागो विश्वविद्यालय के डेविड एन. श्रैम ( David N. Schramm ) ने ब्रह्माण्ड की आयु बीस बिलियन प्रकाशवर्ष बताई है। इसका आधार रेनियम-187 के प्रयोग द्वारा अपनाई गई रेडियो-सक्रिय तिथि अंकन विधि है।

( 2 ) किन्तु ब्रह्माण्ड की आयु की परिमाप बताने में हुबल स्थिरांक का मान महत्त्वपूर्ण है। हुबल काल = 1/H जो कि यह महाविस्फोट के समय से

लेकर आज तक ब्रह्माण्ड की आयु है, इसके अनुसार ( क्योंकि इसका मान ज्ञात कर पाना अति कठिन है ) ब्रह्माण्ड की आयु दस से बीस बिलियन प्रकाशवर्ष है।

( 3 ) सबसे प्राचीन तारे की आयु से ब्रह्माण्ड की आयु नौ से अठारह बिलियन वर्ष निकलती है।

**ब्रह्माण्ड की त्रिज्या**

ब्रह्माण्ड की त्रिज्या हुबल दूरी ( Hubble distance ) के मान पर निर्भर करेगी। यह हुबल दूरी दृश्य ब्रह्माण्ड की छोर तक की दूरी है और 'X' के तुल्य है यानी प्रकाश के वेग में हुबल स्थिरांक का भाग देने से जो मान प्राप्त होता है, वही ब्रह्माण्ड की त्रिज्या है। इसका मान बारह से अठारह बिलियन प्रकाशवर्ष आता है।

इस तरह हमारा ब्रह्माण्ड ऐसे वृत्त के रूप में है, जिसका व्यास 24-32 बिलियन प्रकाशवर्ष है - कितना विशाल अंडा - ब्रह्माण्ड है यह! और कितना जटिल है यह ब्रह्मांडिकीय विज्ञान या अंतरिक्ष ब्रह्माण्ड। ब्रह्मा के लिए इतना विस्तृत ब्रह्माण्ड करना कोई खेल नहीं।

**यह असीम विश्व कैसे उत्पन्न हुआ ? सर्वत्र शून्य-ही-शून्य**

पहले ब्रह्माण्ड में नीहारिकाओं या आकाशगंगा जैसा कुछ नहीं था। उस समय सर्वत्र शून्य था। उस शून्यता में एक हलका पतला द्रव्य था। किसी अनजाने कारण से उसमें कम्पन हुआ और द्रव्य के कण एक-दूसरे कणों से मिलकर बड़े होते गए। बड़े पिंड आकर्षण बल से शून्य के द्रव्य को अपनी ओर खींचकर अपना आकार बढ़ाने लगे। इस तरह शून्य में प्रचंड गैस-बादल उत्पन्न हो गए। ये गैस-बादल अपनी-अपनी धुरी पर घूमने लगे। उसी से ये नीहारिकाएं बनीं, इस प्रकार द्रव्य संचय हुआ और शेष शून्य तो शून्य ही रहता आया।

यूनानी विश्वास है कि बहुत समय पूर्व अटूट अंधकार था। इससे दो संतानें उत्पन्न हुई - रात तथा मृत्यु। इन दोनों ने मिलकर प्रेम को जन्म दिया। प्रेम से प्रकाश और प्रकाश से दिन उत्पन्न हुआ। फिर पृथ्वी बनी, तब आकाश पिता तथा पृथ्वी माता के अनेक संतानें हुईं, जिनमें मनुष्य भी था।

भारतीय पुराणों के अनुसार पहले न पृथ्वी थी, न आकाश, न सूर्य, न चन्द्र, न तारें। केवल परमात्मा का अस्तित्व था, जो शक्ति के रूप में था, रूपविहीन। तब उनकी इच्छा हुई कि सृजन हो। ( एकोऽहम् बहुस्याम ) फलतः उसकी शक्ति काम करने लगी। उसकी माया तीन गुणों में अवतरित हुई, फिर

अहंकार का जन्म हुआ। तामस से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई।

इस तरह कुछ नहीं से पंच तत्त्वों का निर्माण हुआ।

ईसाई मत के अनुसार छह दिनों में सारी सृष्टि हुई। पहले दिन परमेश्वर ने स्वर्ग, पृथ्वी, जल, प्रकाश और अंधकार को बनाया। दूसरे दिन आकाश और पानी का विभाजन किया, तीसरे दिन पृथ्वी पर जल और स्थल भाग अलग हो गए, चौथे दिन सूर्य तथा चन्द्रमा बने, पांचवे दिन अनेक प्रकार के पशु बने और छठे दिन मनुष्य बना।

सातवें दिन परमेश्वर विश्राम करने लगा।

**मानव ब्रह्माण्ड के जन्म और विकास का परिणाम है या कारण ?**

उत्तर होगा मानव इसका परिणाम है। ब्रह्माण्ड का जन्म आज से लगभग 10-20 बिलियन प्रकाशवर्ष पूर्व हुआ, किन्तु मानव को वर्तमान स्वरूप मे जन्मे अधिक से अधिक दस लाख वर्ष हुए होंगे। यह अवधि 10-20 बिलियन की तुलना में नगण्य है। समय माप के अनुसार ब्रह्माण्ड की तुलना में मानव का जन्म मानो आज ही हुआ। तो फिर आज की घटना बीस बिलियन वर्ष पूर्व की घटना का कारण कैसे बन सकती है ?

**यह ब्रह्माण्ड रिक्त नहीं**

यद्यपि हमने ब्रह्माण्ड को 'शून्य' कहा, किन्तु इसमें इतने ग्रह, उपग्रह, तारक भरे हैं कि ब्रह्माण्ड को रिक्त कैसे कहा जा सकता है।

**ब्रह्माण्ड जैसा आज है वैसा क्यों है ?**

ब्रह्माण्ड के आदि अवयव में, जिनमें परस्पर सूचना का आदान-प्रदान भी नहीं हो रहा था, जो एक-दूसरे से नितांत असंपृक्त थे, किसी कारणवश ( Casuality ) नहीं बँधे थे। उन अवयवों के व्यवहार में परस्पर पग-पग पर सहयोग के बिना ब्रह्माण्ड कुछ-का-कुछ हो सकता था। आदि अवस्था में तनिक-सा भी विचलन बाद में बड़े भारी परिवर्तनों को जन्म देता।

उदाहरणार्थ, यदि ब्रह्माण्ड में तनिक भी हलचल हो रही होती तो 'कास्मिक बैकग्राउण्ड विकिरण' का तापमान हजारों गुणा भिन्न हो सकता था, किन्तु इस विकिरण का तापमान इतना न्यून ( 3° सेंटीग्रेड परमताप ) होना इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि ब्रह्माण्ड का आदि स्वरूप अत्यन्त जटिल था, परन्तु साथ ही अत्यन्त शांत, हलचलरहित रहा होगा।

यदि यह ताप 100° सेंटीग्रेड से अधिक होता है तो ब्रह्माण्ड में जल द्रव

अवस्था में न रहा होता और तब जीवन का विकास न हो पाता। आदि विस्फोट से आज तक ब्रह्माण्ड के विकसित होने के लिए कई विकल्प थे, पर इन विकल्पों में से वर्तमान ब्रह्माण्ड बना। उसमें इसका प्रसार अत्यन्त सहज ढंग से हो रहा है।

हमारा अस्तित्व अनेक ऐसी घटनाओं का सुखद और सुंदर परिणाम है जिनके घटने की प्रायिकता ( Probability ) नगण्य होते हुए भी घटना घटित हुई। इन अद्‌भुत संयोगों से हम अवाक् रह जाते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड का वर्तमान स्वरूप इसलिए ऐसा है जिससे मानव का जन्म हो पाता। यह सृष्टि मानव के लिए बनी है। शुरू से आज तक घटित प्रत्येक घटना सोद्देश्य थी, पूर्व निर्धारित थी।

किन्तु ऐसा दैववाद सभी को ग्राह्य नहीं हो सकता।

**ईथर (ग्जीमत) जैसी कोई वस्तु नहीं, किन्तु वह सर्वव्यापी है**

आधुनिक भौतिकी समस्त विश्व को एक या अधिक ईथरों से सम्बद्ध करती है। चूंकि बिना किसी माध्यम के तरंगों की कल्पना करना दुरूह है, अतः यह कल्पना की गई कि तरंगें 'ईथर' से चलती है। इसे कल्पना इसलिए कहा जा रहा है, क्योंकि ईथर जैसा कोई पदार्थ है नहीं - अज्ञात पदार्थ को ही वास्तविकता का नाम प्रदान किया गया।

विज्ञान में ईथर की कल्पना लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व की गई थी। जब स्थूल पदार्थ के सात गुणों के आधार पर किसी घटना की व्याख्या करना असंभव हो गया तो वैज्ञानिकों ने एक ऐसे 'कल्पित सर्वव्यापी ईथर' की सृष्टि करके इस कठिनाई को हल कर लिया, जिसमें उन्होंने ठीक उन्हीं गुणों का आरोप किया जिनसे अपेक्षित व्याख्या हो सकती थी। डेकॉर्ड ने कहा कि 'पदार्थों का एक-दूसरे से दूर होना मात्र ही उन दोनों के बीच एक माध्यम के अस्तित्व का प्रमाण है।' मैक्सवेल ने कहा, 'ईथर की कल्पना इसलिए हुई थी कि ग्रह उसमें तैर सकें, विद्युतीय वातावरण और चुम्बकीय प्रवहन का निर्माण हो सके, हमारे शरीर के इन्द्रिय ज्ञान एक भाग से दूसरे भाग तक पहुंच सके और इसी प्रकार अंत में सारा अंतरिक्ष हर बार ईथर से भर गए।' इस तरह भौतिकी की जितनी समस्याएं आगे आएंगी उतने ही ईथर होंगे।

सौ वर्ष पहले एक ही ईथर था - प्रकाशवाही ईथर जिसमें विकिरण प्रेषित हो सके।

**ईथर का स्वरूप**

यह ईथर सांद्र द्रव का समुद्र था, जिसमें तरंगें उसी तरह चल सकती थीं जैसे कोई स्पंदन या कोई तरंग एक सांद्र द्रव में चल सकती थी। ये तरंगें ऐसी विकिरण थीं जो प्रकाश, उष्मा, अवरक्त या अंतरिक्षत विकिरण में से कोई भी हो सकती थीं।

थॉमस यंग ने उपमा दी 'ईथर अंतरावकाश में उसी प्रकार चलता है जिस प्रकार वृक्ष-वाटिका में से चलने वाली हवा।'

**ईथर में पृथ्वी किस तरह गति करती है?**

जून 1905 में आइंस्टाइन ने कहा, 'प्रकृति ऐसी है कि किसी भी प्रयोग से विशुद्ध निरपेक्ष गति का मापना असंभव है।' अतः ईथर के अस्तित्व के बिना अंतरिक्ष में निरपेक्ष वेग ज्ञात करना असंभव होगा।

किन्तु जो ईश्वर विद्युत् की क्रियाओं का प्रेषण करता है वह गुरुत्वाकर्षण की क्रिया को प्रेषित नहीं कर सकता। इस कमी को पूरा करने में 'आपेक्षिकता सिद्धान्त' सहायक हुआ। इस तरह यांत्रिक ईथर का स्थान आपेक्षिकता सिद्धान्त( Theory of Relativity )ने ले लिया।

फलतः आकाश के बारे में यह धारणा बनीं कि वह हमें चारों ओर से घेरे हैं और काल ऐसी वस्तु है जो हमारे पास और हमारे अंदर से होकर जा रही है। हम चाहें तो आकाश में पीछे लौट सकते हैं, किन्तु समय पीछे नहीं लौट सकता। इस तरह दिक् तथा काल पृथक्-पृथक् लगते हैं, किन्तु मिंकोवस्की ने दिखाया कि आपेक्षिकता सिद्धान्त के अनुसार, सब विद्युतीय घटनाएं दिक् और काल में अलग-अलग प्रकट नहीं होतीं, अपितु संयुक्त दिक्-काल में होती हैं।

**अंतरिक्ष की विमाएँ तीन या चार ?**

प्रकृति के अनुसार अंतरिक्ष तीन विमाओं वाला हैं, जिनमें भेद करना असंभव है, किन्तु चौथी विमा 'समय' है और आपेक्षिकता सिद्धान्त समझने के लिए चार विमाओं वाले अंतरिक्ष की कल्पना करनी पड़ती है।

चार विमाओं वाले आयतन की ऐसी कल्पना को सांतत्यक' ( Continuum ) कहा जा सकता है। इस तरह विद्युत् चुम्बकीय घटनाएं सांतत्यक में घटती हैं। चाहें तो ईथर को अब चार विमाओं वाला सांतत्यक

कह सकते हैं। इस तरह इसमें अंतरिक्ष तथा समय व्याप्त हैं। सर ऑर्थर एडिंगटन ने ठीक ही कहा था कि बड़े भौतिकीविदों में से आधे तो ईथर के अस्तित्व को मानते हैं और आधे उसके अस्तित्व को नहीं मानते।

**दिक् तथा काल की एक ही इकाई**

इस तरह ईथर को अमूर्त मानना सर्वाधिक सुविधाजनक होगा। काल तथा दिक् का मापन एक ही इकाई से करना उचित होगा। प्रकाश एक सेकेंड में 1,86,000 मील चलता है। इसे एक मात्रक माना गया। समय को सेकेंड के बजाए $\sqrt{-1}$ से प्रदर्शित किया गया।

सांतत्यक में सूर्य प्रकाश जितनी देर में पृथ्वी पर आता है, वह दूरी 1,25,00,000 मील एक मात्रक होगा। इस तरह हमारा विश्व बुलबुले का आंतरिक भाग नहीं, बल्कि उसका बाहरी तल है। साबुन के बुलबुले में दो विमाएं हैं, किन्तु विश्वरूपी बुलबुला चार विमाओं वाला है।

**क्या हम ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित हैं?**

हम प्रसरणशील मंदाकिनी में रह रहे हैं और देख रहे हैं कि चारों ओर मंदाकिनियां बिखरी हुई हैं। हम इस भ्रम में हो सकते हैं कि हम प्रसरण के केन्द्र में हैं और हम ब्रह्माण्ड के ऐसे स्थिर बिंदु में हैं जहां से अन्य तारक् जगत् से दूर भाग रहे हैं, किन्तु प्रायिकता के सिद्धान्त से यह विचार मेल नहीं खाता। क्यों?

यह हमारा भ्रम है कि हम केन्द्र में हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम मोटरकार के एक गतिशील काफिले में किसी बीच की मोटरकार में सवार हों तो हमें लगेगा कि हम केन्द्र में हैं। भले ही आगे की मोटरकारें कितना आगे क्यों न हों और पीछे की कितनी पीछे क्यों न छूट रही हों। यही बात मंदाकिनी के अभिरक्त विस्थापन ( Red Shift ) की है। यह हमारे तथा अन्य मंदाकिनियों के बीच बढ़ती दूरी को बताता है; किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम केन्द्र में हैं। यदि हम किसी अन्य मंदाकिनी में जाएं तब भी ऐसा ही लगेगा।

# अंतरिक्ष की गहराइयों में

## कुछ विचार

'हम अब भी अपनी ही गुहा में बंद पड़े हैं। हमारी पीठ प्रकाश की ओर है और हम केवल दीवारों पर पड़ने वाली प्रतिच्छाया को ही देख सकते हैं।' – प्लेटो

'प्रकृति की महान् पुस्तक गणितीय भाषा में ही लिखी गई है। – गैलीलियो

'गणितज्ञ को छोड़कर अन्य कोई भी व्यक्ति विश्व के मूल स्वरूप की गुत्थी को नहीं सुलझा सकता। वास्तव में समस्त विश्व की तुलना में हमारी पृथ्वी इतनी लघु है और समस्त अंतरिक्ष में चिंतन शक्ति वाले एकमात्र प्राणी अर्थात् हम मानव विश्व की मुख्य योजना से इतनी दूर और प्रत्यक्ष रूप से इतने दैवयौगिक मालूम पड़ते हैं कि बिना प्रत्यक्ष अनुभव के भी यही संभाव्य लगता है कि सम्पूर्ण विश्व का जो भी अर्थ हो वह हमारे पार्थिव अनुभवों से बिलकुल परे होगा और इस प्रकार वह हमारे लिए पूर्णतः अग्राह्य होगा। ऐसी स्थिति में विश्व के वास्तविक स्वरूप की खोज में निकलने का कोई आधार ही नहीं रहेगा।' – जेम्स जींस

'प्रकृति गणित के उन नियमों से खूब परिचित है जो हमारे गणितज्ञों ने अपने अध्ययनों के दौरान अपनी आंतरिक चेतना के सहारे बनाए हैं। इसमें उन्होंने बाह्य जगत् के अनुभवों का बहुत कम सहारा लिया है।' 'यह विश्व किसी विशुद्ध गणितज्ञ द्वारा प्रकल्पित है।' – जेम्स जींस

'गणितज्ञ प्रकृति की केवल गणितीय उपनेत्रों से ही देखता है जिनको उसने स्वयं ही बनाया है।' – जेम्स जींस

'जिस प्रकार नीले रंग का चश्मा पहने हुए एक आदमी केवल नीला संसार ही देख सकता है, उसी प्रकार अपने मानसिक झुकाव के कारण हम केवल गणितीय संसार ही देख सकते हैं।' – कांट

## गणितीय ढाँचा अधिक उपयुक्त

मानव मन एक सदी पूर्व भी गुण और कार्य प्रणाली की दृष्टि से आज जैसा ही था। उसके वैज्ञानिक दृष्टिकोण में जो महान् परिवर्तन हुआ है, वह विज्ञान की अपार प्रगति के कारण है, मानव मन में किसी परिवर्तन के कारण नहीं। हमने अपने से बाहर के वस्तु-जगत् में कुछ ऐसी बातें पाई हैं, जो अब

तक अज्ञात थीं। हमारे पूर्वज देवताओं को मानव रूप मानते थे और उन्होंने प्रकृति को अपनी ही बनाई हुई धारणाओं के आधार पर समझने की कोशिश की; किन्तु वे विफल हुए। यही नहीं, प्रकृति की यांत्रिक व्याख्या करने वाले हमारे पूर्वगामी निकट पूर्वज भी उतने ही विफल हुए। प्रकृति को मानव-निर्मित इन दोनों ढांचों के अनुरूप नहीं बनाया जा सकता, जबकि विशुद्ध गणित की संकल्पनाओं के आधार पर प्रकृति को समझने के हमारे अब तक के प्रयास इसीलिए सफल सिद्ध हुए हैं। यह निर्विवाद-सा लगता है कि प्रकृति जीवविज्ञान या यांत्रिकी की अपेक्षा विशुद्ध गणित की संकल्पनाओं के अधिक निकट है। इसे यदि तीसरा मॉडल मान लें तो यह पहले दो मॉडलों की तुलना में अधिक उपयुक्त है।

डेढ़ सौ वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों ने इस विश्व को यांत्रिकी रीति से समझने की कोशिशें कीं, तो किसी भी विवेकवान व्यक्ति को यह कहने का दुस्साहस नहीं हो सकता था कि यह यांत्रिक दृष्टिकोण गलत सिद्ध होगा, किन्तु विश्व अब गणितात्मक मालूम होता है। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि सब कुछ गणितीय ही है।

### प्लेटो का विश्व

प्लुटार्क ने लिखा है - प्लेटो कहा करता था कि ईश्वर हमेशा रेखागणितीय विधान करता है। प्लेटो ने कहा था कि जो असीमित है, रेखागणित उसको सीमित कर देती है और उसने यह भी कहा था कि ईश्वर ने विश्व का निर्माण 'पांच' सुडौल पिण्डों के आधार पर किया था। उसका विश्वास था कि भूमि, वायु, अग्नि और जल कणों का आकार घन, अष्टफलकीय, चतुष्फलकीय और विसंगतिफलकीय होता है और यह विश्व 'द्वादशफलकीय आकार' का है। यही नहीं, सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों की दूरियां दो अंक भेदों के अनुपात की होती हैं, जिसका अर्थ है उनके अनुसार पूर्ण संख्याओं का क्रम ऐसा था जिसमें 2 या 3 के 1, 2, 3, 4, 8, 9, 27 आदि घात हों।

यदि इन धारणाओं में से किसी में कुछ भी सत्यता बची है तो वह पहली ही है अर्थात् आपेक्षिकता सिद्धान्त की दृष्टि में विश्व इसलिए सीमित है कि वह रेखागणितीय है। चार मूल तत्त्वों और विश्व की पांच समठोस वस्तुओं में किसी भी प्रकार के संबंध की आशा करना कोरी कल्पना है। चाँद और ग्रहों के बीच की वास्तविक दूरी का प्लेटो की संख्याओं से कोई संबंध नहीं है।

### प्रकृति की गणितात्मकता

प्रकृति का आचरण हमारे आचरण की तरह नहीं बदलता। हमारे आचरण पर हमारी सनक और भावावेशों की प्रभाव पड़ता है। चाहे हमारे मन के नियमों का प्रभाव प्रकृति पर पड़ता हो या प्रकृति हमारे ऊपर अपने नियमों का प्रभाव डालती हो, दोनों ही स्थितियों में यही बात सही है और इससे हमें प्रकृति को गणितात्मक मानने के लिए पर्याप्त प्रमाण मिल जाता है। यह अस्वीकार किया जा चुका है कि इस विश्व की योजना किसी जीववैज्ञानिक या इंजीनियर ने तैयार की। अपनी सृष्टि के अंतर्निहित प्रमाणों से इस विश्व का महान् शिल्पी अब कोई विशुद्ध गणितज्ञ ही हो सकता है। इस विश्व को भौतिक रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता। जेम्स जींस के अनुसार, 'विश्व केवल एक मानसिक संकल्पना रह गया है।'

### द्रव्यात्मकता क्या है ?

द्रव्यात्मकता एक शुद्ध मानसिक संकल्पना है जो हमारी स्पर्श इन्द्रियों पर वस्तुओं के प्रभाव का माप है। उदाहरणार्थ, हम पत्थर या मोटरकार को तो द्रव्यात्मक कहते हैं, किन्तु प्रतिध्वनि या इन्द्रधनुष को नहीं।

स्वप्न में दिखाई देने वाले अंतरिक्ष और दैनिक जीवन के अंतरिक्ष के बीच में भी ऐसा ही भेद समझना चाहिए। यही बात काल ( समय ) के संबंध में है।

विश्व को शुद्ध विचार मानने की धारणा से आधुनिक भौतिकी के अध्ययन में आने वाली समस्याओं पर नया प्रकाश पड़ता है। अब यह ठीक से समझा जा सकता है कि जिस ईथर के अन्तर्गत विश्व की सभी घटनाएं घटित होती हैं, वह किस प्रकार एक गणितात्मक अमूर्तीकरण के रूप में परिणत हो सकता है। हम यह भी समझ सकते हैं कि विश्व की मूल वस्तु - ऊर्जा को एक गणितात्मक अमूर्तीकरण ( अवकल समीकरण ) के रूप में क्यों मानना पड़ा। गणितीय सूत्र कभी भी यह नहीं बता सकता है कि कोई वस्तु क्या है। वह इतना ही बता सकता है कि वह वस्तु कैसा आचरण करती है।

जब प्रकाश के आचरण की यथार्थता को व्यक्त करने वाला गणितीय सूत्र मिल चुका है तो हम अपनी मनोदशा और सुविधा के अनुसार प्रकाश को चाहे कण कहें या तरंग। और तरंग के रूप में मानने पर हम चाहे तो तरंगों को प्रेषित करने वाले ईथर की कल्पना कर सकते हैं, किन्तु यह ईथर प्रतिदिन बदलता रहेगा।

इसी तरह हम इस विश्व को दिक्-काल को व्यक्त करने वाले साबुन के बुलबुले के रूप में देख सकते हैं।

**यदि अंतरिक्ष ससीम है तो**

पृथ्वी से विशुद्ध गणितज्ञ का संबंध भौतिक वस्तुओं से नहीं, बल्कि केवल विचार से है। उसकी रचनाएं विचारों से निर्मित ही नहीं, बल्कि साक्षात् विचारमय हैं - उसी तरह जिस तरह शिल्पी की रचनाएं यंत्रमय होती हैं। आज जो संकल्पनाएं प्रकृति को समझने में सहायक सिद्ध हो रही हैं, वे हैं - ससीम अंतरिक्ष, रिक्त विश्व, चार, सात या अधिक विमाओं वाला अंतरिक्ष।

**सदैव प्रसरणशील अंतरिक्ष**

ये सारी संकल्पनाएं शुद्ध विचार-प्रसूत हैं। इन्हें किसी भी ऐसे ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है कि वे भौतिक दिखाई पड़ें।

आलोचकों का कहना है कि यदि अंतरिक्ष ससीम है तो इस ससीम अंतरिक्ष से बाहर जाना संभव होना चाहिए, लेकिन उसके बाहर भी हमें अंतरिक्ष-ही-अंतरिक्ष मिलेगा। इसके अतिरिक्त और होगा भी क्या? इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अंतरिक्ष ससीम नहीं हो सकता।'

आलोचक यह भी कहते हैं कि यदि अंतरिक्ष प्रसरणशील है तो वह अंततः प्रसरित होकर अंतरिक्ष ही तो रहेगा। इससे भी यही सिद्ध होता है कि जो प्रसरण हो रहा है वह अंतरिक्ष का एक अंश मात्र ही है, इसलिए समस्त अंतरिक्ष का विस्तार संभव नहीं।

**एंट्रापी की वृद्धिः प्रलय/मृत्यु**

उष्मागतिकी से पता चलता है कि प्रकृति में सभी चीजें अपनी अंतिम अवस्था पर 'एंट्रापी की वृद्धि' द्वारा पहुंचती है। एंट्रापी सदैव वृद्धि करती रहती है और यह उस समय तक वृद्धि करती रहेगी, जब तक और आगे की वृद्धि असंभव न हो जाए। जब ऐसी अवस्था आ जाएगी तो आगे प्रगति असंभव हो जाएगी और विश्व का अंत हो जाएगा। अतः प्रकृति के लिए दो ही विकल्प हैं - प्रगति या मृत्यु। किन्तु स्मरण रहे, एंट्रापी अभी वहां तक नहीं पहुंची। वह अब भी तेजी से बढ़ रही है, इसलिए वह अवश्य ही कभी-न-कभी शुरू हुई होगी। यह घटना बहुत पहले कभी हुई होनी चाहिए, जिसे हम सृष्टि कहते हैं, किन्तु यह अनादिकाल नहीं है।

### चक्रवत् विश्व की संकल्पना : अनश्वर विश्व

किन्तु वैज्ञानिक इस पर सहमत नहीं। वे यह तो मानते हैं कि ये तारे विकिरण के रूप में पिघलते जा रहे हैं, किन्तु उनका कहना है कि कहीं सुदूर अंतरिक्ष की गहराइयों में यह विकिरण पुनः पदार्थ के रूप में संगृहीत हो रहा होगा। इसका अर्थ यह होता है कि शायद कहीं नए आकाश और नई पृथ्वी की सृष्टि हो रही हो – जो राख से नहीं, अपितु विकिरण से बन रही हो। इस प्रकार वे विश्व की ऐसी संकल्पना प्रस्तुत करते हैं जिसे 'चक्रवत् विश्व' कहा जा सकता है।

किन्तु यह चक्रवत् विश्व की संकल्पना उष्मा के दूसरे नियम के बिलकुल विपरीत है, जिसके अनुसार एंट्रापी को लगातार बढ़ते रहना चाहिए।

जिस तरह सतत गतिशील यंत्र का होना असंभव है, उसी तरह चक्रवत् विश्व भी असंभव है। अधिकांश लोगों को विश्व के नष्ट होने की कल्पना उतनी ही अप्रिय लगती है जितनी कि स्वयं अपनी मृत्यु की। विश्व को अनश्वर मानने का यह प्रयत्न मनुष्य को स्वयं अमरत्व प्राप्त करने के प्रयत्नों का भी एक भ्रांतिपूर्ण रूप है।

ऑगस्टीन का अनुमान सही लगता है कि 'समय और आकाश एक ही क्षण उत्पन्न हुए। यदि वे कभी विलीन होंगे तो एक साथ ही विलीन होंगे। समय की सृष्टि करते समय ईश्वर का मन और विचार ऐसा ही था।'

जेम्स जींस का यह तर्कसंगत लगता है कि 'ज्ञान का प्रवाह ऐसी वास्तविकता की ओर अग्रसर हो रहा है जो यांत्रिक वास्तविकता से बिलकुल भिन्न है और यह विश्व विशाल यंत्र की अपेक्षा एक महान् विचार की तरह दिखाई देने लगा है।'

गीता में 'यंत्रारूढानि मायया' जैसे विचार की पुष्टि नहीं हो सकती। हमारे ऋषियों ने इसीलिए काल को मृत्यु भी कहा है।

### विश्व का स्वरूप : केवल तरंगों से निर्मित

गैलीलियो और न्यूटन के काल में सारे विश्व को एक यंत्र के रूप में मानने की प्रकृति शुरू हुई और उन्नीसवीं सदी के अंत तक अपनी चरम पर पहुंच गई। हेल्महोल्ट्ज ने घोषणा की, 'सारे प्रकृति विज्ञान का अंतिम लक्ष्य यंत्र विज्ञान के रूप में ही परिणत होना है।'

इसका कारण यह था कि उस काल के वैज्ञानिक अधिकांशतया 'इंजीनियर' थे और वे समस्त प्रकृति का 'यांत्रिक मॉडल' तैयार करना चाहते थे। गैसों के गुण भी यंत्रवत बताए गए। प्रकाश और गुरुत्वाकर्षण के लिए भी ऐसी ही व्याख्या की कोशिश हुई, किन्तु सफलता नहीं मिली। तब भी विश्व की एक विशुद्ध यांत्रिक व्याख्या पर विश्वास अटल रहा। किन्तु इसके विपरीत आदर्शवादी दृष्टिकोण वाले संसार को केवल विचारों की सृष्टि के रूप में देखने और विचारों से निर्मित मानने का प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण में नैतिकता के लिए गुंजाइश न थी।

उन्नीसवी सदी के अंत तक यह सिद्ध हो गया कि विकिरण और गुरुत्वाकर्षण की विशुद्ध यांत्रिक व्याख्या संभव नहीं है। प्लैंक द्वारा प्रस्तुत विकिरण की व्याख्या न केवल अयांत्रिक थी, बल्कि उसका संबंध किसी भी यांत्रिक विचार पद्धति से जोड़ना असंभव था। यही आगे चलकर 'क्वांटम पद्धति' के नाम से विख्यात हुई। यहीं से विज्ञान में यांत्रिक युग का अंत और नए युग का सूत्रपात हुआ।

पुराने विज्ञान ने घोषणा की थी कि प्रकृति कार्य और कारण की अविच्छिन्न शृंखला का पालन करती है। नए विज्ञान में 'आपेक्षिक प्रायिकताओं ( Probabilities ) पर बल था। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता था कि एक स्थिति के बाद कौन स्थिति आएगी। आज विज्ञान इस प्रायिकता की उपेक्षा नहीं कर सकता।

अब पदार्थ और विकिरण दोनों तरंगों के रूप में प्रस्तुत होते हैं। अतः हम एक ऐसे जगत् में रह रहे हैं जो केवल तरंगों से बना है।

**विश्व के मूल संघटक परमाणु यानी परमाणुओं का विश्व**

जब तक परमाणुओं को स्थायी और अनश्वर माना जाता रहा तब तक उनको विश्व के मूल संघटक अंगों के रूप में मानना स्वाभाविक था यानी यह 'विश्व परमाणुओं का ही विश्व' था। विकिरण को गौण स्थान प्राप्त था, किन्तु जब यह मान लिया गया कि परमाणु का निर्माण विद्युत् कणों ( इलेक्ट्रॉन तथा प्रोटॉन ) से हुआ है तो परिस्थिति बदलने लगी।

फैरेडे तथा मैक्सवेल ने विद्युत् कण को एक ऑक्टोपस ( Octopas ) जैसी रचना वाला बतलाया, जिसके क्षुद्र तथा ठोस पिंड से सारे अंतरिक्ष में टैंटेकिल्स ( संस्पर्शक ) या फीलर्स जैसी बल रेखाएं निकलती हैं।

जब किसी परमाणु से विकिरण निकलता था तो ऐसा लगता था जैसे वह अपने कुछ संस्पर्शक अंतरिक्ष में उसी तरह विसर्जित कर देता हो जिस तरह सेही ( एक पशु ) अपने कांटे गिरा देता है। इस तरह पदार्थ और विकिरण पहले की अपेक्षा अधिक निकट संबंधित हो गए।

आइंस्टाइन के सिद्धान्त के अनुसार विकिरण में द्रव्यमान होना चाहिए, क्योंकि यह विकिरण ऊर्जा का ही रूप है। जब किसी परमाणु से विकिरण निकलता है तो उसके द्रव्यमान में जो कमी आएगी वह उत्सर्जित विकिरण के द्रव्यमान के तुल्य होगी। आइंस्टाइन ने 1905 में यह सिद्धान्त दिया था कि गतिज ऊर्जा ही नहीं, बल्कि 'हर' प्रकार की ऊर्जा का अपना द्रव्यमान होता है।' कठिन शारीरिक परिश्रम करने वाले मनुष्य की व्यय होने वाली ऊर्जा का भार केवल 1/60,000 औंस होगा, यानी ऊर्जा का द्रव्यमान नगण्य होगा।

मैक्सवेल ने 1873 में सिद्ध किया था कि जब विकिरण किसी तल पर पड़ता है तो उस पर दबाव डालता है। इस तरह विकिरण का द्रव्यमान स्वयंसिद्ध है। प्रकाश की एक किरणावली प्रकाश के वेग ( 1,86,000 मील/सेकेंड ) के वेग से चलने वाले एक द्रव्यमान के रूप में है।

पृथ्वी पर प्रकाश का दबाव बहुत ही कम होता है; किन्तु तारों के भीतर विकिरण का यह दबाव इतना अधिक है कि तारे का अधिकांश भार उसी के कारण है। गणना करने पर पता चला है कि पृथ्वी या अन्य पिंडों के प्रति वर्ग मील पर सूर्य से प्रति मिनिट एक औंस के लगभग एक हजारवें भाग के बराबर सूर्य प्रकाश पड़ता है। यह प्रकाश के वेग से चलता है और पृथ्वी पर विरामावस्था प्राप्त करने तक लगभग 0.000,000,000,04 वायुमंडल दबाव डालता है। वैसे तो परिमाण में यह अत्यल्प है, किन्तु एक वर्गमील का क्षेत्र खगोलीय अंतरिक्ष की दृष्टि से बहुत सूक्ष्म है।

**सूर्य से निकलने वाले विकिरण का भार पच्चीस करोड़ टन/मिनट**

सूर्य से प्रति मिनट लगभग पच्चीस करोड़ टन भार का विकिरण निकलता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सूर्य तभी अपना भार बनाए रख सकता है जब प्रति मिनट पच्चीस करोड़ टन पदार्थ सूर्य के अंदर पहुंचे। यदि यह मान लिया जाए कि उल्कापिंडों से ( शैप्ले के अनुमान के अनुसार ) सूर्य के अंदर पहुंचने वाला पदार्थ प्रति सेकेंड दो हजार टन से अधिक नहीं हो सकता, जो विकिरण द्वारा नष्ट होने वाले भार का 1/2000 होगा। इस तरह हमारी आँखों

के सामने सूर्य निरन्तर क्षीण होता जा रहा है। इसकी पुष्टि खगोल विज्ञान के तथ्यों से मेल खाती है, क्योंकि नए तारे पुराने तारों की अपेक्षा अधिक भारी होते हैं, कभी-कभी दस से सौ गुना तक। सूर्य इतना भार प्रति मिनट खोकर भी लाखों-करोड़ों वर्षों में क्षय होगा। तारों की आयु लाखों-करोड़ों वर्ष मानी जा सकती है।

### अंतरिक्ष की वक्रता पदार्थ के कारण

आइंस्टाइन के आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार अंतरिक्ष में स्वयं वक्रता है। यह वक्रता वैसी ही है जैसी पृथ्वी के तल की है। सूर्य ग्रहण के अवसर पर दिखाई देने वाली किरणों की वक्रता का और ग्रहों तथा धूमकेतुओं के पथों की वक्रता का भी यही कारण है - अंतरिक्ष की वक्रता भी पदार्थ की उपस्थिति के कारण है। इसका अर्थ यह हुआ कि 'पदार्थविहीन यानी रिक्त अंतरिक्ष बिलकुल ऋजु या सीधा होगा', इसलिए वह असीम होगा, किन्तु यह विश्व रिक्त नहीं। इसका आकार इसमें विद्यमान पदार्थ की मात्रा पर निर्भर करेगा। विश्व में जितना अधिक पदार्थ होगा वह उतना ही वक्र होगा, तेजी से वक्र होने वाला वृत्त धीरे-धीरे वृत्त से छोटा बन जाता है।

### बुलबुले जैसा विश्व

यह विश्व साबुन के बुलबुले के समान है। जिस तरह बुलबुले का आकार उसके आवेश की मात्रा पर निर्भर करता है, उसी प्रकार विश्व का आकार उसके पदार्थ की मात्रा पर निर्भर रहता है। लेकिन बुलबुला इस अर्थ में थोड़ा भिन्न है कि आवेशरहित होने पर वह वक्र बना रहता है, जबकि पदार्थविहीन रिक्त विश्व असीम आकार का हो जाता है। विद्युत आवेश बढाने पर बुलबुले का आकार बढ़ता रहता है, किन्तु विश्व में अधिक पदार्थ होने पर और आगे पदार्थ भरने की गुंजाइश नहीं रहती।

तो भी आइंस्टाइन ने विश्व को बुलबुले के समान माना है। उसके अनुसार विश्व में पदार्थ से उत्पन्न वक्रता के साथ-साथ एक सहज वक्रता भी होती है, जिसके कारण पदार्थ के परिमाण के बढ़ने के साथ उसका आकार बढ़ जाता है।

इस तरह यदि इस विश्व का निर्माण आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार हुआ है तो उसके अंदर विद्यमान सभी पदार्थ या तो एक-दूसरे से दूर भाग रहे होंगे या एक-दूसरे के निकट आ रहे होंगे। इसकी पुष्टि सुदूर नीहारिकाओं से होती है, जो भूमि से दूर भाग रही हैं - 900-4500 मील प्रति सेकेंड के वेग से।

सुदूर नीहारिकाएं हमसे दूर जा रही हैं इसका प्रमाण यही है कि उनसे मिलने वाला प्रकाश अधिक लाल दिखाई देता है। निकटतम नीहारिकाएं जो हमारी ओर आ रही है, उनका प्रकाश नीला होता है।

**ब्रह्माण्ड में जीवन**

हमारी पौराणिक कथाओं में सबसे ऊपरी स्वर्ग वैकुंठलोक है, जिसमें विष्णु निवास करते हैं। उससे नीचे के स्वर्गों में देवता तथा देवांगनाएं निवास करती हैं। वे प्रायः आकाश से पुष्प-वर्षा करते हैं। नारद ऋषि अंतरिक्ष में बिना यान के विचरण करते हैं। योगी भी अंतरिक्ष में विचरण करते हैं। देवता विमानों का प्रयोग करते हैं।

ऐसी ही कथाएं अन्यत्र भी मिलती हैं। किन्तु 1938 में अंग्रेजी उपन्यासकार एच.जी. वेल्स ने 'द वार ऑफ वर्ल्ड्स' में मंगलवासियों को पृथ्वी पर आक्रमण करते दिखाया है। ये वासी ऑक्टोपस जैसे दैत्याकार, किन्तु बहुत ही बुद्धिमान थे।

इसी तरह समय-समय पर पृथ्वी पर अंतरिक्ष से उतरने वाली उड़नतश्तरियों ( U.F.O. ) के विवरण मिलते हैं। ये विवरण विज्ञान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

फलस्वरूप तमाम लोग पृथ्वी के अतिरिक्त अंतरिक्ष के पूर्ण विकसित जीवन के अस्तित्व पर विश्वास करते हैं। किन्तु विरोधी मत के लोगों का कहना है कि पृथ्वी के परे ब्रह्माण्ड जीवनविहीन है। अधिक-से-अधिक जीवाणु, शैवाल या काई ही किन्हीं ग्रहों पर हो सकती है।

आजकल अन्य लोकों में जीवन की संभावना विषयक नवीन विज्ञान 'बहिर्जीव विज्ञान'( Exobiology ) विकसित हो रहा है।

किन्तु जीव निर्माण काफी जटिल प्रक्रम है। अभी पृथ्वी सौरमण्डल का एकमात्र भाग्यशाली ग्रह है, जिस पर सभी प्रकार का जीवन है - वृक्ष, पशु तथा बुद्धिमान मनुष्य पाए जाते हैं। एक तरह से सौरमण्डल में पृथ्वी ही आदर्श स्थली है जीवन के लिए। किन्तु क्या अन्य तारे, जिनके ग्रह हैं, उनमें पृथ्वी जैसा जीवन नहीं हो सकता ?

सचमुच मानव जाति के लिए सबसे अनूठी खोज होगी, बाह्य अंतरिक्ष में पृथ्वी जैसी सभ्यता का अस्तित्व।

### ब्रह्माण्ड के कितने ग्रह जीवन के अनुकूल हैं?

खगोलविदों का अनुमान है कि ब्रह्माण्ड में $10^{20}$ तारे हैं और इनमें से अधिकांश के ग्रह हैं, जो उसी तरह चक्कर लगाते हैं जिस तरह सूर्य के चारों ओर उसके ग्रह। इसी तरह खगोलविदों ने गणना की है कि लगभग $10^{11}$ ग्रहों में - लगभग आधे तारों के बराबर जीवन का उदय हुआ। इनमें से बहुत से ग्रह हमारी पृथ्वी जैसे है और हमारी पृथ्वी जैसा ही जीवन उदय हुआ।

हमें ज्ञात है कि पृथ्वी पर कुछ ऐसे जीव हैं - जीवाणु तथा शैवाल - जो उबलते जल के ताप पर अपनी वृद्धि करते रह सकते हैं। इसी तरह कुछ जीव हिमांक से निम्न ताप पर भी जीवित रहते हैं।

ज्यों-ज्यों हम अंतरिक्ष के अन्य ग्रहों की जानकारी प्राप्त करते जा रहे हैं, त्यों-त्यों पृथ्वी के भूत और भविष्य की हमें नवीन जानकारी होगी और जीवविहीन जगत् भी हमारे लिए सूचनाप्रद बन सकते हैं। अभी तो हमें सौरमंडल के ग्रहों का ही प्रत्यक्ष ज्ञान है।

हाल ही में बुध तथा मंगल ग्रहों पर मानवरहित अंतरिक्ष यान भेजे गए हैं। बृहस्पति में वायुमण्डल न होने तथा उच्च ताप के कारण जल तथा कार्बनिक अणु तक नहीं हैं। बुध में, जो कि पृथ्वी जैसा है, जीवन की कुछ-कुछ संभावनाएं व्यक्त की गई हैं। गल्प लेखकों ने बुध में जंगल तथा दलदल बताते हुए सरीसृपों तथा जल-जलचरों की कल्पना की है; किन्तु रेडियो दूरबीन से उनका यह मोहक संसार ध्वस्त हो चुका है।

सूर्य के चौथे ग्रह मंगल में खगोलविदों ने बुद्धिमान प्राणियों के होने की संभावना व्यक्त की थी, किन्तु जब से मानवरहित अंतरिक्ष यान भेजे गए हैं, तब से यह धारण असत्य सिद्ध हो चुकी है। मंगल ग्रह की नहरें कभी की असत्य घोषित हो चुकी हैं।

बृहस्पति, शनि, वारुणी, वरुण तथा यम ऐसे ग्रह हैं, जिनमें जीवन की संभावना से इंकार किया गया है। एक तो सूर्य से दूर होने के कारण वे ठंडे हैं, विशाल आकार-प्रकार के होते हुए भी पृथ्वी की तुलना में कम सघन है और संभवतया गैसीय अवस्था में हैं, जिससे उन पर जीवन संभव नहीं है।

### बाह्य अंतरिक्ष में सभ्यताएँ

जीवन से बढ़कर रोमांचक होगा, बुद्धिमान जीवन की खोज तथा उनके

साथ सम्पर्क स्थापित करना। चूंकि दूरबीन से विभिन्न ग्रहों पर परिस्थितियों का ज्ञान नहीं हो सकता था इसलिए बहुत काल तक बुद्धिमान प्राणियों की कल्पना को प्रश्रय मिलता रहा। खगोलविद् तर्क देते रहे कि ये प्राणी हमसे सम्पर्क करना चाहेंगे, यदि उन्हें ज्ञात हो जाए कि पृथ्वी पर बुद्धिमान प्राणी हैं।

यह बताने के लिए, हमारी पृथ्वी पर बुद्धिमान प्राणी हैं बड़े आकार के अक्षर, संकेत या ज्यामितीय आकृतियों का प्रयोग किया गया, जिससे वे मंगल, शुक्र तथा चन्द्रमा पर दिख सकें। कुछ लोगों ने बड़ी-बड़ी नालियों में तेल भरकर जलाया जिसकी लपटें निकटवर्ती ग्रहवासी ( यदि हों ) देख सकें और समझें कि पृथ्वी सभ्य लोगों से बसी है, किन्तु ऐसे विचार अव्यावहारिक थे।

उन्नीसवीं सदी के अंत में रेडियो के ईजाद के बाद 1920 में अंतरिक्ष में रेडियो संकेत भेजे गए। कभी-कभी कुछ संकेत वापस आते बतलाए गए। 1960 में अंतरिक्ष से नियमित विद्युत् चुम्बकीय स्पंद प्राप्त होने की खबर से खलबली मच गई, किन्तु बाद में पता चला कि ये प्राकृतिक संकेत हैं, जो असामान्य तारकों-पल्सार से उत्सर्जित होते हैं।

यदि हम पृथ्वी से कोई रेडियो संकेत भेजें तो उसे निकटतम तारे तक पहुंचने में 4.4 वर्ष लगेंगे। उसका उत्तर मिलने में भी इतना ही समय लगेगा। इस तरह के संवाद में 9 वर्ष लग जाएंगे। इसलिए अन्य तारों से दुतरफा संवाद असंभव है।

**तो क्या हम ब्रह्माण्ड में अकेले हैं?**

प्रोजेक्ट साइक्लोप में बहुत विस्तृत क्षेत्र वाली रेडियो दूरबीन अमेरिका में स्थापित की गई है। इससे 100 प्रकाशवर्ष दूर से संकेत का पता चल सकेगा। हमारे देश में पुणे के पास विशाल रेडियो दूरबीन से ऐसी सभ्यता का पता चल सकेगा।

तब शायद हम अकेले प्राणी न हों अंतरिक्ष के। अभी तो हम ब्रह्माण्ड में अकेले हैं - इसीलिए प्रकृति के साथ छेड़छाड़ भी करते हैं।

**पृथ्वी पर ही जीवन क्यों?**

हम चाहे जिस भी ग्रह में उत्पन्न होते, हमें उसी ग्रह में अपने शरीर को बनाने वाले आवश्यक तत्त्व कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए थी। इनके अतिरिक्त अल्प मात्रा में कैल्शियम, फॉस्फोरस और लोहा आदि भी।

साथ ही हमें वायुमण्डल में न तो मीथेन चाहिए, न सल्फर डाइ ऑक्साइड, न अमोनिया जैसी विषैली गैसें - जैसी कि सौरमण्डल के अन्य ग्रहों में हैं। अज्ञात ग्रह पर गुरुत्वाकर्षण इतना होना चाहिए कि यह वायुमण्डल को बांधे रह सके। गुरुत्वाकर्षण इतना भी अधिक न हो कि चलने फिरने में कठिनाई हो।

हमारी पृथ्वी इन सभी शर्तों को पूरा करती है और सूर्य उसे आवश्यक ऊर्जा प्रदान कर रहा है। इतना ही नहीं, पृथ्वी पर हमें अन्य सुविधाएं भी मिली हुई हैं - यथा वायुमण्डल में ओजोन परत, जो सूर्य की मारक 'पराबैंगनी प्रकाश किरणों' से सुरक्षा-कवच का काम करती है। पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र भी हमारे लिए कम महत्त्व का नहीं। इसके बिना पृथ्वी पर ब्रह्माण्ड किरणों तथा कणों की लगातार बमबारी होती रहती।

सूर्य से भिन्न अन्य किसी तारे के इर्द-गिर्द इस प्रकार की जीव सृष्टि संभव भी नहीं है।

हम भाग्यशाली हैं पृथ्वी जैसे ग्रह को पाकर। इसीलिए हम इसकी वंदना माता रूप में करते हैं।

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'।( अन्तरिक्ष की रोचक बातें )

सुबह से शाम तक काम करकेआदमी इतना नहीं थकता जितना क्रोध या चिन्ता से एक घण्टे में थक जाता है ।

-जेम्स ऐलन

दिन रात काम करके मैं जितना नहीं थकता हूँ, उससे भी अधिक एक क्षण मात्र के क्रोध, चिन्ता, अयोग्य चिन्तन-भाव-व्यवहार तथा दूसरों की अव्यवस्था लड़ाई-झगड़ा, परनिन्दा आदि से मैं थक जाता हूँ।

-आचार्य कनकनन्दी

बुद्धिमान व्यक्ति समय पर सीखतें हैं, मूर्ख उस समय सीखते है जब ऐसा करना बहुत जरूरी हो जाता हैं।

-आर्थर बेले

बुद्धिमान व्यक्ति समय पर सीखते हैं, जबकि मूर्ख उस समय सीखते हैं जब विवशता हो, या स्वयं की स्वार्थ पूर्ति हो ।

-आचार्य कनकनन्दी

अनुच्छेद-6

## वस्तु–स्वरुप अनेकान्तात्मक एवं सापेक्ष एकान्त भी

**जं वत्थु अणेयंतं एयंतं तं पि होदि सविपेक्खं।**
**सुय-णाणेण णएहि य णिरवेक्खं दीसदे णेव।।261।।का. अनु.**

अर्थ - जो वस्तु अनेकान्तरूप है वही सापेक्ष दृष्टि से एकान्तरूप भी है। श्रुतज्ञान की अपेक्षा अनेकान्तरूप है और नयों की अपेक्षा एकान्तरूप है। बिना अपेक्षा के वस्तु का रूप नहीं देखा जा सकता।

भावार्थ - पहले वस्तु को अनेकान्तरूप सिद्ध कर आये हैं, क्योंकि प्रमाण के द्वारा वस्तु में अनेक धर्मों की प्रतीती होती है। प्रमाण के दो भेद हैं - स्वार्थ और परार्थ। श्रुतज्ञान के सिवा बाकी के मति आदि चारों ज्ञान स्वार्थ प्रमाण ही हैं, किन्तु श्रुतज्ञान स्वार्थ भी होता है और परार्थ भी होता है। ज्ञानरूप श्रुतज्ञान स्वार्थ है और वचनरूप श्रुतज्ञान परार्थ है। श्रुतज्ञान के भेद नय हैं। प्रमाण से जानी हुई वस्तु में अपेक्षा भेद से एक धर्म को ग्रहण करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। जैसे प्रमाण से वस्तु को अनेक धर्मात्मक जानकर ऐसा जानना कि वस्तु स्वचतुष्ट्य की अपेक्षा सत्स्वरूप ही है अथवा परद्रव्यादि चतुष्ट्य की अपेक्षा असत्स्वरूप ही है, यह नय है। इसी से प्रमाण को सकलग्राही और नय को विकलग्राही कहा है। किन्तु एक नय दूसरे नय की अपेक्षा रखकर वस्तु को जाने, तभी वस्तु धर्म की ठीक प्रतीति होती है। जैसे, यदि कोई यह कहे कि वस्तु सत्स्वरूप ही है, असत्स्वरूप नहीं है तो यह नय सुनय न होकर दुर्नय कहा जायेगा। अत: इतर धर्मों का निषेध न करके एक धर्म की मुख्यता से वस्तु को जानने से ही वस्तु की ठीक प्रतीति होती है। इसी से आलाप पद्धति में कहा है 'प्रमाण से नाना धर्मयुक्त द्रव्य को जानकर सापेक्ष सिद्धि के लिये उसमें नय की योजना करो'। यथा - स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव को ग्रहण करने वाले नय की अपेक्षा द्रव्य अस्तिस्वभाव है 1। परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव को ग्रहण करने वाले नय की अपेक्षा नास्तिस्वभाव है ( 2 )। उत्पाद और व्यय को गौण करके ध्रौव्य को मुख्यता से ग्रहण करने वाले नय की अपेक्षा द्रव्य नित्य है ( 3 )। किसी पर्याय को ग्रहण करने वाले नय की अपेक्षा द्रव्य अनित्यस्वभाव है ( 4 )। भेदकल्पना निरपेक्ष नय की अपेक्षा द्रव्य एकस्वभाव है ( 5 )। अन्वयग्राही द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा एक होते हुए भी द्रव्य अनेकस्वभाव है ( 6 )। सद्भूत व्यवहार नय से गुण गुणी आदि की

अपेक्षा द्रव्य भेदस्वभाव है ( 7 )। भेद कल्पना निरपेक्ष नय की अपेक्षा गुण गुणी आदि रूप से अभेद स्वभाव है ( 8 )।परमभाव के ग्राहक नय की अपेक्षा जीवद्रव्य भव्य तथा अभव्य रूप पारिणामिक स्वभाव है ( 9 )। शुद्ध या अशुद्ध परमभाव ग्राहक नय की अपेक्षा जीवद्रव्य चेतन स्वभाव है ( 10 )। असद्भूत व्यवहार नय से कर्म और नोकर्म भी चेतन स्वभाव है ( 11 )।किन्तु परमभाव ग्राहक नय की अपेक्षा कर्म और नोकर्म अचेतन स्वभाव है ( 12 )। असद्भूत व्यवहार नय से जीव भी अचेतन स्वभाव है ( 13 )। परमभाव ग्राहक नय की अपेक्षा कर्म और नोकर्म मूर्त स्वभाव है ( 14 )। असद्भूत व्यवहार नय से जीव भी मूर्त स्वभाव है ( 15 )।परमभावग्राही नय की अपेक्षा पुद्गल को छोड़कर शेष सब द्रव्य अमूर्त स्वभाव है तथा पुद्गल उपचार से भी अमूर्तिक नहीं है। परमभावग्राही नय की अपेक्षा कालाणु तथा पुद्गल एक परमाणु एकप्रदेशी है। भेद कल्पना की अपेक्षा न करने पर शेष धर्म, अधर्म, आकाश और जीवद्रव्य भी अखण्ड होने से एकप्रदेशी है।किन्तु भेद कल्पना की अपेक्षा से चारों द्रव्य अनेकप्रदेशी हैं। पुद्गल का परमाणु उपचार से अनेकप्रदेशी है क्योंकि वह अन्य परमाणुओं के साथ बन्धने पर बहुप्रदेशी स्कन्धरूप हो जाता है किन्तु कालाणु में बंध के कारण स्निग्ध रूक्ष गुण नहीं है, इसलिये कालाणु उपचार से भी अनेक प्रदेशी नहीं है।इसी से अमूर्त काल द्रव्य में बहुप्रदेशत्व के बिना शेष 15 स्वभाव ही कहे हैं।शुद्धाशुद्ध द्रव्यार्थिक नय से पुद्गल विभाव स्वभाव है।शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से शुद्ध स्वभाव है और अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय से अशुद्ध स्वभाव है तथा असद्भूत व्यवहार नय से उपचरित स्वभाव है।सारांश यह है कि द्रव्यों का जैसा स्वरूप है वैसा ही ज्ञान से जाना गया है तथा वैसा ही लोक में माना जाता है।नय भी उसे वैसा ही जानते हैं। अन्तर केवल इतना है कि प्रमाण से वस्तु के सब धर्मों को ग्रहण करके ज्ञाता पुरुष अपने अभिप्राय के अनुसार उसमें से किसी एक धर्म की मुख्यता से वस्तु का कथन करता है। यही नय है।इसी से ज्ञाता के अभिप्राय को भी नय कहा है तथा जो नाना स्वभावों को छोड़कर वस्तु के एक स्वभाव को कथन करता है, वह नय है। नय के भी सुनय और दुर्नय दो भेद हैं। जो वस्तु को प्रतिपक्षी धर्म से निरपेक्ष एकान्तरूप जानता या कहता है, वह दुर्नय है।दुर्नय से वस्तु स्वरूप की सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि यह बतला आये हैं कि वस्तु सर्वथा एकरूप ही नहीं है।अतः जो प्रतिपक्षी धर्मों की अपेक्षा रखते हुए वस्तु

के एक धर्म को कहता या जानता है, वही सुनय है। इसी से निरपेक्ष नयों को मिथ्या बतलाया है और सापेक्ष नयों को वस्तुसाधक बतलाया है। स्वामी समन्तभद्र ने स्वयंभूस्तोत्र में विमलनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा है - 'वस्तु नित्य ही है' अथवा 'वस्तु क्षणिक ही है' जो ये निरपेक्ष नय स्व और पर के घातक हैं, हे विमलनाथ भगवन्! वे ही नय परस्पर सापेक्ष होकर आपके मत में तत्त्वभूत हैं, और स्व और पर के उपकारक हैं।

**सव्वं पि अणेयंतं परोक्ख-रूवेण जं पयासेदि।**
**तं सुय-णाणं भण्णदि संसय-पहुदीहि परिचत्तं।।262।।**

**अर्थ** - जो परोक्ष रूप से सब वस्तुओं को अनेकान्त रूप दर्शाता है, संशय आदि से रहित उस ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।

**भावार्थ** - तीन मिथ्याज्ञान होते हैं - संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय। यह ठूंठ है अथवा आदमी है? इस प्रकार के चलित ज्ञान को संशय कहते हैं। सीप को चाँदी जानना विपर्यय ज्ञान है। मार्ग में चलते हुए किसी वस्तु का पैर में स्पर्श होने पर 'कुछ होगा', इस प्रकार के ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं। इन तीनों मिथ्या ज्ञानों से रहित, जो ज्ञान अनेकान्त रूप वस्तु को परोक्ष जानता है, वही श्रुतज्ञान है। पहले श्रुतज्ञान को परोक्ष बतलाया है, क्योंकि वह मन से होता है तथा मतिपूर्वक ही होता है। श्रुतज्ञान के दो मूल भेद हैं - एक अनक्षरात्मक और एक अक्षरात्मक। स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु इन चार इन्द्रियों से होने वाले मतिज्ञानपूर्वक जो श्रुतज्ञान होता है, वह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है तथा शब्दजन्य मतिज्ञानपूर्वक होने वाले श्रुतज्ञान को अक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं। शास्त्र से तथा उपदेश वगैरह से जो विशेष ज्ञान होता है, वह सब श्रुतज्ञान है। शास्त्रों में सभी वस्तुओं के अनेकान्त स्वरूप का वर्णन होता है। अतः श्रुतज्ञान सभी वस्तुओं को शास्त्र वगैरह के द्वारा जानता है, किन्तु शास्त्र के बिना अथवा जिनके वचनों का सार शास्त्र में है, उन प्रत्यक्षदर्शी केवली के बिना सब वस्तुओं का ज्ञान नहीं हो सकता। इसी से समन्तभद्र स्वामी ने आप्तमीमांसा में श्रुतज्ञान का महत्त्व बतलाते हुए कहा है - 'श्रुतज्ञान और केवलज्ञान, दोनों ही समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि श्रुतज्ञान परोक्ष रूप से जानता है और केवलज्ञान प्रत्यक्ष रूप से जानता है।' जो श्रुतज्ञान और केवलज्ञान का विषय नहीं है, वह अवस्तु है अर्थात् ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो इन दोनों ज्ञानों के द्वारा न जानी जा सके।

**लोयाणं ववहारं धम्म-विवक्खाइ जो पसाहेदि।**
**सुय-णाणस्स वियप्पो सो णओ लिंग-संभूदो।।263।।**

श्रुतज्ञान का स्वरूप बतलाकर श्रुतज्ञान के भेद नय का स्वरूप बतलाते हैं। **अर्थ** - जो वस्तु के एक धर्म की विवक्षा से लोकव्यवहार को साधता है, वह नय है। नय श्रुतज्ञान का भेद है तथा लिंग से उत्पन्न होता है।

**भावार्थ** – लोकव्यवहार नय के द्वारा ही चलता है, क्योंकि दुनिया के लोग किसी एक धर्म की अपेक्षा से ही वस्तु का व्यवहार करते हैं। जैसे, एक राजा के पास सोने का घड़ा था। उसकी लड़की को वह बहुत प्यारा था। वह उससे खेला करती थी, किन्तु राजपुत्र उस घड़े को तुड़वाकर मुकुट बनवाने की जिद किया करता था। उसे घड़ा अच्छा नहीं लगता था। एक दिन राजा ने घड़े को तोड़कर मुकुट बनवा दिया। घड़े के टूटने से लड़की बहुत रोई, और मुकुट के बन जाने से राजपुत्र बहुत प्रसन्न हुआ। किन्तु राजा को न शोक हुआ और न हर्ष हुआ। इस लौकिक दृष्टान्त में लड़की की दृष्टि केवल घड़े के नाश पर है, राजपुत्र की दृष्टि केवल मुकुट की उत्पत्ति पर है और राजा की दृष्टि सोने पर है। इसी तरह से दुनिया के पर्यायबुद्धि लोग पर्याय की अपेक्षा वस्तु को नष्ट हुआ अथवा उत्पन्न हुआ देखते हैं और द्रव्यदृष्टि लोग उसे ध्रुव मानकर वैसा व्यवहार करते हैं, अतः लोकव्यवहार नयाधीन है। किन्तु सच्चा नय वस्तु के जिस एक धर्म को ग्रहण करता है, उसे युक्तिपूर्वक ग्रहण करता है। जैसे वस्तु को यदि सत् रूप से ग्रहण करता है तो उसमें हेतु देता है कि अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा वस्तु सत्रूप है। इस तरह नय हेतुजन्य है। इसी से अष्टसहस्री में श्रुतज्ञान को अहेतुवाद और नय को हेतुवाद कहा है। जो बिना हेतु के वस्तु के किसी भी एक धर्म को स्वेच्छा से ग्रहण करता है वह नय नहीं है।

**णाणा-धम्म-जुदं पि य एवं धम्मं पि बुच्चदे अत्थं।**
**तस्सेय-विवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाणं।।264।।**

आगे, नाना स्वभाव वाली वस्तु के एक स्वभाव का ग्रहण नय की अपेक्षा से कैसे किया जाता है, यह बतलाते हैं।

**अर्थ** - नाना धर्मों से युक्त भी पदार्थ के एक धर्म को ही नय कहता है; क्योंकि उस समय उसी धर्म की विवक्षा है, शेष धर्मों की विवक्षा नहीं है।

**भावार्थ** - यद्यपि जीवादि पदार्थ अनेक प्रकार के धर्मों से युक्त होते हैं, स्वद्रव्य आदि की अपेक्षा सत्स्वभाव है, परद्रव्य आदि की अपेक्षा असत्स्वभाव है, उत्पाद व्यय को गौण करके ध्रुवत्व की अपेक्षा नित्य है, पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। इस तरह एकत्व, अनेकत्व, भेद, अभेद, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व आदि अनेक धर्मयुक्त हैं। किन्तु उन अनेक धर्मों में से नय एक ही धर्म को ग्रहण करता है। जैसे, जीव नित्य ही है या सत्स्वभाव ही है; क्योंकि उस समय वक्ता की इच्छा उसी एक धर्म को ग्रहण करने की अथवा कहने की है। किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि वस्तु में अनेक धर्म नहीं है इसलिये वह एक धर्म को ग्रहण करता है, बल्कि शेष धर्मों के होते हुए भी उनकी विवक्षा नहीं है इसी से वह विवक्षित धर्म को ही ग्रहण करता है।

**सो चिय एक्को धम्मो वाचय-सद्दो वि तस्स धम्मस्स।**
**जं जाणदि तं नाणं ते तिण्णि वि णय-विसेसा य।।265।।**

आगे, वस्तु के धर्म, उसके वाचक शब्द तथा उसके ज्ञान को नय कहते हैं।

**अर्थ** - वस्तु का एक धर्म, उस धर्म का वाचक शब्द और उस धर्म को जानने वाला ज्ञान, ये तीनों ही नय के भेद हैं।

**भावार्थ** - नय के तीन रूप हैं - अर्थरूप, शब्दरूप और ज्ञानरूप। वस्तु का एक धर्म अर्थरूप नय है, उस धर्म का वाचक शब्द शब्दरूप नय है और उस धर्म का ग्राहक ज्ञान ज्ञानरूप नय है। वस्तु का एक धर्म नय के द्वारा ग्राह्य है इसलिये उसे नय कहा जाता है और उसका वाचक शब्द तथा ग्राहक ज्ञान एक धर्म को ही कहता अथवा जानता है इसलिये वह तो नय है ही।

**ते सावेक्खा सुणया णिरवेक्खा ते वि दुण्णया होंति।**
**सयल-ववहार-सिद्धी सु-णयादो होदि णियमेण।।266।।**

यहां यह शंका हो सकती है कि जब एकान्तवाद मिथ्या है तो एक धर्म का ग्राहक होने से नय मिथ्या क्यों नहीं है? इसी का आगे समाधान करते हैं।

**अर्थ** - ये नय सापेक्ष हों तो सुनय होते हैं और निरपेक्ष हों तो दुर्नय होते हैं। सुनय से ही नियमपूर्वक समस्त व्यवहारों की सिद्धि होती है।

**भावार्थ** - ये तीनों ही नय यदि सापेक्ष होते हैं, अर्थात् अपने विपक्षी की अपेक्षा करते हैं तो सुनय होते हैं। जैसे सत्, अनित्य और अभेद को ग्रहण करने

वाले, नय असत्, अनित्य और भेद की अपेक्षा करने से सुनय यानी सच्चे नय होते हैं और यदि ये नय निरपेक्ष होते हैं अर्थात् यदि अपने विपक्षी की अपेक्षा नहीं करते, जैसे वस्तु असत् से निरपेक्ष सर्वथा सत्स्वरूप है, अनित्यत्व से निरपेक्ष सर्वथा नित्य स्वरूप है या अभेद निरपेक्ष सर्वथा भेद रूप है, ऐसा यदि मानते जानते अथवा कहते हैं तो ये दुर्नय है। कहा भी है - 'दुर्नय के विषयभूत एकान्त रूप पदार्थ वास्तविक नहीं है, क्योंकि दुर्नय केवल स्वार्थिक है, दूसरे नयों की अपेक्षा न करके केवल अपनी पुष्टि करते हैं और जो स्वार्थिक अंत एवं विपरीतग्राही होते हैं, वे नय सदोष होते हैं।' इसका खुलासा इस प्रकार है - वस्तु को सर्वथा एकान्त रूप से सत् मानने पर वस्तु के नियत रूप की व्यवस्था नहीं बन सकती, क्योंकि जैसे वह स्वरूप से सत् है, वैसे ही पररूपसे भी सत् है। अतः घट-पट चेतन-अचेतन कोई भेद नहीं रहेगा और इस तरह संकर आदि दोष उपस्थित होंगे तथा वस्तु को एकान्तरूप से सर्वथा असत् मानने पर सब संसार शून्य रूप हो जायेगा। सर्वथा नित्य रूप वस्तु को मानने पर उसमें अर्थक्रिया नहीं बनेगी और अर्थक्रिया के अभाव में वस्तु का ही अभाव हो जायेगा। सर्वथा अनित्य मानने पर वस्तु का निरन्वय विनाश हो जाने से उसमें भी अर्थक्रिया नहीं बनेगी और अर्थक्रिया के अभाव में वस्तु का भी अभाव हो जायेगा। वस्तु को सर्वथा एकरूप मानने पर उसमें विशेष धर्मों का अभाव हो जायेगा, और विशेष के अभाव में सामान्य का भी अभाव हो जायेगा, क्योंकि बिना विशेष का सामान्य गधे के सींग की तरह असंभव है और बिना सामान्य के विशेष भी गधे के सींग की तरह संभव नहीं है। अर्थात् सामान्य विशेष के बिना नहीं रहता और विशेष सामान्य के बिना नहीं रहता। अतः निरपेक्ष नय मिथ्या होते हैं। इसलिये सापेक्ष सुनय से ही लोक व्यवहार की सिद्धि होती है।

**जं जाणिज्जइ जीवो इंदिय-वावार-काय-चिट्ठाहिं।**
**तं अणुमाणं भण्णदि तं पि णयं बहु-विहं जाण।।267।।**

आगे परोक्ष ज्ञान अनुमान का स्वरूप कहते हैं। अर्थ - इन्द्रियों के व्यापार और कार्य की चेष्टाओं से जो जीव को जानता है, वह अनुमान ज्ञान है। यह भी नय है। इसके अनेक भेद हैं।

**भावार्थ** - जीवद्रव्य इंद्रियों से दिखाई नहीं देता, किन्तु जिस शरीर में जीव रहता है, वह शरीर हमें दिखाई देता है। उस शरीर में आंख, नाक, कान, वगैरह

इन्द्रियां होती हैं। उनके द्वारा वह खाता-पीता है, सूंघता है, जानता है, हाथ-पैर हिलाता है, चलता-फिरता है, बातचीत करता है, बुलाने से आ जाता है। इन सब चेष्टाओं को देखकर हम यह जान लेते हैं कि इस शरीर में जीव है। यही अनुमान ज्ञान है। साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं तथा जो सिद्ध करने के लिये इष्ट होता है, जिसमें कोई बाधा नहीं होती तथा जो असिद्ध होता है उसे साध्य कहते हैं और जो साध्य के होने पर ही होता है, उसके अभाव में नहीं होता, उसे साधन कहते हैं। जैसे, इस पर्वत पर आग है, क्योंकि धुआं उठ रहा है जैसे रसोईघर। यह अनुमान ज्ञान है। इसमें आग साध्य है और धुआं साधन है; क्योंकि आग के होने पर ही धुआं होता है और आग के अभाव में नहीं होता। अत: धुआं को देखकर आग को जान लेना अनुमान ज्ञान है। इस अनुमान के अनेक भेद परीक्षामुख वगैरह में बतलाये हैं अथवा परोक्ष ज्ञान के स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान ओर आगम ये अनेक भेद बतलाये हैं। यहां ग्रंथकार ने अनुमान ज्ञान को जो नय बतलाया है वह एक नई-सी बात प्रतीत होती है, क्योंकि अकलंक देव वगैरह ने अनुमान ज्ञान को परोक्ष प्रमाण के भेदों में ही गिनाया है और अन्य किसी भी आचार्य ने उसे नय नहीं बतलाया। किन्तु जब नय हेतुवाद है तो अनुमान भी नयरूप ही बैठता है। इसके लिए अष्टसहस्री की कारिका 106 देखना चाहिये।

**सो संगहेण एक्को दु-विहो वि य दव्व-पज्जएहिंतो।**
**तेसि च विसेसादो णइगम-पहुदी हवे णाणं।।268।।**

आगे नय के भेद कहते हैं। **अर्थ** - संग्रह अर्थात् सामान्य से नय एक है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक के भेद से दो प्रकार का है। उन्हीं दोनों के भेद नैगम आदि ज्ञान हैं।

**अर्थ** - द्रव्य और पर्याय का भेद न करके सामान्य से नय एक हैं और द्रव्य तथा पर्याय के भेद से नय के भी दो भेद हैं - एक द्रव्यार्थिक और एक पर्यायार्थिक नय। जिस नय का विषय केवल द्रव्य ही है, वह द्रव्यार्थिक नय है और जो नय केवल पर्याय को ही ग्रहण करता है, वह पर्यायार्थिक नय है। इन दोनों नयों के नैगम आदि अनेक भेद हैं। नैगमनय, संग्रहनय और व्यवहारनय ये तीन द्रव्यार्थिक नय हैं और ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ एवं भूत ये चार पर्यायार्थिक नय हैं।